वर्णी-दर्शन



शान्ति निकेतन उदासीन आश्रम

ईसरी बाजार

१९७४

प्रकाशक

शान्ति निकेतन-उदासीन आश्रम

ईसरी बाजार (डि गिरिडीह)

दातार .

श्रीमान सेठ लादूरामजी सरावगी

कन्हैयालाल बिरधीचन्द, कलकत्ता

विषय वर्णी जीवनी तथा धर्मका मर्म

संस्करण प्रथम

प्रतियाँ १०००

मूल्य दस रुपये

मुद्रक

शिव लाल प्रिण्टर्स,

नायक बाजार, वाराणसी

प्रकाशन तिथि

आश्विन कृ० ४ वि० सं० २०३१, ५-१०-'७४

स म र्प ण

लोग कहते है कि उन्हे जन्मे आज
१०० वर्ष हो गए, परन्तु मै कहता हूँ
कि उनका जन्म हुआ ही कब ?

लोग कहते है कि सं० २०१८ मे उनका
समाधि पूर्वक देह-त्याग हुआ, परन्तु मै
कहता हूं कि उनको देह थी ही कब ?

लोग कहते है कि वे हमे छोडकर
स्वर्ग चले गए, परन्तु मे कहता हूं
कि वे गए ही कहाँ ?

निकटसे निकटतम हृदयकी
गुफामे वह तो यह रहे, यह रहे।

१. प्रकाशकीय

"श्री दि० जैन विद्वद्परिषदने आगामी वर्ष स्वर्गीय पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक गणेश प्रसादजी वर्णीका शताब्दी समारोह मनानेका निश्चय करके यह प्रस्ताव पास किया कि यह समारोह चार स्थानोपर मनाया जाय—वर्णीजीके जन्मस्थान हँसेरा ग्राम (झाँसी) मे, सागरमें, वाराणसीमें, एवं ईसरीमें" यह सूचना मुझे उक्त परिषदके मन्त्री श्रीमान् पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य द्वारा प्राप्त हुई, एवं साथ ही 'वर्णी-शताब्दी-रूपरेखा' नामक एक पुस्तिका भी मिली। यह देखकर विद्वत्परिषदके समयोचित प्रस्तावकी हृदयसे सराहना की, और साथ ही यह विकल्प भी उत्पन्न हुआ कि, क्योंकि इस संस्थाका (आश्रमका) बीजारोपण उन्हीके द्वारा हुआ है और इसे उनका समाधिस्थल बननेका भी सौभाग्य प्राप्त है, इसलिये इस संस्थाको इस पुण्य-कार्यमे अधिक-से-अधिक सहयोग देकर स्वर्गीय आत्माके प्रति अपनी भक्तिपूर्ण श्रद्धाञ्जली अर्पित करनी चाहिये।

इन्ही दिनो ता० १६-१२-७३ को यहाँकी प्रबन्धकारिणी कमेटीकी बैठक भी होने वाली थी। इस अवसरपर मैंने कमेटीके समक्ष विद्वद्परिषदके उक्त निश्चयका उल्लेख किया, और यह प्रस्ताव रखा कि, इस अवसरपर स्वर्गीय पूज्य श्री वर्णीजीके व्यक्तित्व और वक्तव्य विषयक जो साहित्य अभी प्रकाशनकी प्रतीक्षामे पड़ा है, उसमें से किन्ही महत्त्वपूर्ण विषयोका संग्रह करके, उन्हीकी भाषामे एक ऐसा ग्रन्थ प्रकाशित किया जाय, जो प्राचीन होकर भी अर्वाचीनवत् प्रतीत हो, और जो वर्तमानके शिक्षित युवक समाजको तथा आगामी सन्ततिको सन्मार्गका उपदेश दे सके। कमेटीने सर्व सम्मतिसे प्रस्तावको स्वीकार किया और इसका समस्त भार मेरे दुर्बल कन्धोपर रखते हुए यह आशा प्रगट की कि इस

ग्रन्थका प्रकाशन पूज्य-श्रीकी आगामी जयन्ती तक अर्थात् आश्विन सन् १९७४ तक पूर्ण हो जाना चाहिये।

ऐसी स्थितिमें मुझे यह चिन्ता होना स्वाभाविक थी कि उनका अप्रकाशित साहित्य किसी प्रकार प्राप्त किया जाय। एवं उसके लिये यथा सम्भव प्रयत्न किया गया, पर दुर्भाग्यवश सफलता न मिली। समय कम था, अतएव यही निश्चय हुआ कि जीवन गाथा, वर्णी-वाणी, पत्रावली तथा अभिनन्दन ग्रन्थके रूपमें उनका जो कुछ भी साहित्य उपलब्ध है, उसमें से ही सारात्मक विषयोंका चयन करके उन्हें इस प्रकारसे सजोया जाय, जिस प्रकार कि माली उद्यानमें पुष्पोंका चयन करके एक सुन्दर हार बनाता है।

इस संस्थाके महान् पुण्योदयवश श्री .... महोदय गत एक वर्षसे आश्रममें ही मौन साधनामें अपना समय यापन कर रहे हैं। शरीरसे अत्यन्त कृश होकर भी आप ऐसे दृढ संकल्पी हैं कि जिस कार्यको अनेकों विद्वान् मिलकर वर्षोंमें पूर्ण कर सकें, उसे आप एकाकी ही अल्प समयमें सुन्दर व आकर्षित ढंगसे पूर्ण करनेके लिये समर्थ हो जाते हैं। आप जिन-वाणीके गहनतम विषयोंको सरल शब्दोंमें बोधिगम्य बनाने तथा विलक्षण-पद्धति द्वारा शिष्य-जनोंको हृदयगम करानेकी अद्भुत प्रतिभासे सम्पन्न हैं, साथ ही जन साधारणको वक्तृत्व कलाके द्वारा मुग्ध करनेकी योग्यता रखते हैं।

मेरे मुखसे मेरे उक्त मनोरथको जानकर आपने हार्दिक प्रसन्नता प्रगटकी और अन्य किसी बाह्य प्रेरणाके बिना ही, केवल पूज्य-श्रीके प्रति अपनी श्रद्धा एवं भक्तिसे प्रेरित होकर, आपने कहा कि, "चिन्ता मत कीजिये, मैं उनके साहित्यमें से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयोंका सचयन भी कर दूँगा और उसके शीघ्र प्रकाशनकी व्यवस्था करके शताब्दीके शुभ मुहूर्त पर इस ग्रन्थको प्रबन्ध-कारिणीके समक्ष प्रस्तुतत भी कर दूंगा।" आपके इस प्रेमपूर्ण व उत्साह-वर्धक वचनोंको सुनकर मुझे वैसा ही हर्ष हुआ जैसा कि अन्धेको चक्षुलाभ होने-पर होता है, तथा कृतज्ञतासे हृदय भर गया।

इससे पूर्व इन्होंने श्री जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष आदि महान ग्रन्थोंका एकाकी सम्पादन कर स्वयकी दैवी शक्तिका ऐसा परिचय दिया है कि 'वर्णी-दर्शन' नामक ग्रन्थका सम्पादन कर देना उनके लिये बाल चेष्टाके समान प्रतीत होता है, तथापि आश्चर्य इस बातका है कि जब अधिक-से-अधिक मूल्य देकर भी कहीं सामग्री उपलब्ध नहीं होती है, तथा कागज प्राय अनुपलब्धके तुल्य हो गया

है, ऐसे महँगाई व अभावके दुष्कालमें तथा अनेक प्रकारकी शारीरिक बाधाओंके सद्भावमें भी समस्त एषणाओंसे अस्पृष्ट रहते हुए, आपने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार, ग्रन्थको समयसे भी पहले प्रस्तुत कर दिया। ऐसे महानोपकारी निष्काम-सेवी महापुरुषके प्रति दि० जैन शान्तिनिकेतन नामक इस संस्थाकी कमेटीके सदस्योंका मस्तक नत हो जाना स्वाभाविक है।

इसी प्रकार मै उन उदारचेता 'स्वर्गीय सेठ लादूरामजी सरावगी मालिक फर्म कन्हैयालाल विरधी चन्द' कलकत्ता वालोंकी धर्मपत्नी श्रीमति रत्ना-देवीजीका नाम भी बड़े आदरके साथ स्मरण करता हूँ, जिनके सद्द्रव्यसे कि इस ग्रन्थका प्रकाशन हो रहा है। साथ ही उक्त स्वर्गीय दम्पतिके ज्येष्ठ पुत्र श्रीमान बा० मानमल्लजी कलकत्ताकी विवेक-बुद्धिकी भी सराहना करता हूँ, जिन्होंने कि शिक्षाप्रद इस ग्रन्थके प्रकाशनमें व्यय करके उस द्रव्यको सार्थक किया है।

इस ग्रन्थमें एक भी शब्द सम्पादकने अपनी ओरसे नहीं लिखा है। प्राय सभी सामग्री 'वर्णी ग्रन्थमाला–वाराणसी' द्वारा प्रकाशित वर्णी-जीवनगाथा, वर्णी वाणी तथा पत्रावलीसे सकलित की गई है। इस लिये वास्तवमें इस ग्रन्थके उद्भवका परम्परागत श्रेय उस संस्थाको और उसके सयोजक प० फूलचन्दजी शास्त्री तथा बा० दरबारी लालजी कोठिया वाराणसीको ही प्राप्त है। अत उनके प्रति भी मै आभार प्रदर्शन किये बिना नहीं रह सकता।

तथा श्री नरेन्द्र विद्यार्थी धनराआके प्रति भी जो शरीरसे दूर होते हुए भी इस सर्व साहित्यमें सम्पादित मूल्यवान सामग्रीके माध्यमसे हम सभोंके निकट है। कौन नहीं जानता कि पूज्य वर्णीजीके उपलब्ध साहित्यमें सजोये गए प्रत्येक शब्दमें उनके स्वेद बिन्दु चू रहे है। आपस यदि गुरु प्रतापसे यह भक्तिपूर्ण निरीह परिश्रम जागृत न हुआ होता, तो वर्णीजीका परिचय कुछ मात्र इने गिने व्यक्तियोंको ही हुआ होता। उनकी आत्माको घर-घरमें पहुँचाने वाली आपकी लेखनीके आभारको कैसे भुलाया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त श्री मान् ला० दरबारी लाल छुन्नू मल जी जैन देहली, श्री पं० जमना लाल जी जैन पार्श्वनाथ विद्याश्रम वाराणसी, श्री जय कृष्ण जी जैन इण्डियन वाच एण्ड ग्रामोफोन कं० वाराणसी, तथा बा० नानक चन्द जी जैन सेंट्रल आफिस विश्वविद्यालय वाराणसी के भी हम आभारी है, जिन्होंने

अपना मूल्यवान् समय देकर कागज का तथा फोटुओ का प्रबन्ध करने में बडी सहायता की है। साथ ही श्री हरि प्रसाद जी निगम प्रोपराइटर शिव लाल प्रिंटर्स को भी धन्यवाद दिये बिना नही रह सकते जिन्होंने ग्रन्थ का इतना शीघ्र प्रकाशन करने के लिये अथक परिश्रम किया है।

अन्तमे श्रीयुत प० खुशाल चन्दजी गोरावालाके प्रति मै अपना आभार किन शब्दोमे प्रस्तुत करूँ यह नही सोच पाता, क्योकि इस ग्रन्थकी प्रारम्भिक योजनामे सहयोग देनेके अतिरिक्त शताब्दी समारोहकी सर्व योजना भी यहाँ उनके बल बूतेपर ही सम्पन्न हो पाई है। आपके द्वारा सम्पादित 'वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ'मे से भी कुछ सामग्रीका चयन किया गया है।

महगाईकी अति होनेके कारण यद्यपि ग्रन्थ पर अधिक लागत आई है, तथापि जन साधारण इसमे लाभ उठा सके इस दृष्टिमे आधे मूल्यपर देनेके लिये निश्चय किया है। इसलिये आशा करता हूँ कि जिज्ञासु जन इससे अधिकसे अधिक लाभ उठायेगे। स्वय पढनेके पश्चात् इसे अलमारीमे बन्द करके न रखेगे, किन्तु अपने मित्रोंको भी अवश्य प्रेरणा पूर्वक इसे पढनेके लिये प्रदान करेगे। इस ग्रन्थपरसे उन्हे पूज्य वर्णीजीके व्यक्तित्वका ही नही अपितु जैन सिद्धान्तके गहन-तम मर्मका भी उन्ही की हृदय-स्पर्शी सरल भाषामे परिचय प्राप्त होगा।

प्रभु पार्श्वके तथा सज्जीवन-प्रदाता गुरुवरके श्री चरणोमे अपनी हार्दिक नति अर्पित करते हुए मै अपना यह छोटा सा वक्तव्य पूर्ण करता हूँ।

ब्र० सुरेन्द्र नाथ–ईसरी

२. दातार परिचय

दिगम्बर जैन समाज कलकत्ताके कर्णधार महानुभावोंमें सेठ कन्हैया लाल विरधीचन्द जी अपना एक विशिष्ट स्थान रखते थे। चितपुरका नया मन्दिर तथा पुरानी बाडीका दि० जैन मन्दिर आपकी उदारता और चतुराईके दो कीर्ति-स्तम्भ हैं। स्व० बा० लादू रामजीको इन सेठ विरधी चन्द जीके सुपुत्र होनेका सौभाग्य प्राप्त था। आप तथा आपकी धर्म पत्नी श्री रत्ना देवी जी दोनों ही बडे धर्मात्मा व दानी प्रकृतिके व्यक्ति थे। धार्मिक कार्योंके प्रति आप दोनोंका हाथ सदा खुला रहता था। अपने स्वर्गारोहणके अवसरपर श्रीमतिजीने अपनी सम्पत्तिका एक बडा भाग धर्मार्थ पृथक कर दिया था, और अपने ज्येष्ठ सुपुत्र श्रीयुत बा० मानमल जीको यह आदेश दिया था कि इस द्रव्यका उपयोग दानार्थ ही किया जाय।

स्वर्गीय इस दम्पतिकी पूज्य वर्णीजीमें प्रगाढ भक्ति थी। उनके जीवन कालमें वे सदा आश्रममें आते रहते थे। आज यद्यपि वे हमारे मध्य विद्यमान नहीं हैं तथापि अपने उपर्युक्त सुपुत्रके माध्यमसे अब भी आश्रमके प्रति अपना प्रेम अभिव्यक्त करते रहते हैं। गत मास श्री बा० मानमल जीका अनायास ही यहा आना हुआ। वर्णी शताब्दी समारोहके विषयमें जानकर आपको अत्यन्त हर्ष हुआ और जब यह सुना कि इसी उपलक्ष्यमें 'वर्णी दर्शन' ग्रन्थ प्रकाशित होने जा रहा है तो आपके हर्षका पारावार न रहा, क्योंकि आपको ऐसा लगा कि पूज्या माताजीके द्वारा पृथक् किये द्रव्यका इससे अधिक सदुपयोग और क्या हो सकता है कि उसे ज्ञान प्रसारके कार्यमें व्यय किया जाय।

अतः बिना किसी बाह्य प्रेरणाके आपने अपने इस मनोगत भावको प्रगट किया और प्रबन्ध कारिणी कमेटीसे यह प्रार्थनाकी कि इस पुण्य कार्यके लिये वह उन्हें सेवाका अवसर प्रदान करे। कमेटीने साभार व धन्यवाद सहित आपकी भावना का स्वागत किया। महगाईके कारण इस ग्रन्थके प्रकाशनमें ८०००) के लगभग व्यय होने वाला है, यह जानकर आपने कलकत्तासे तुरत आश्रमके नामपर इतनी रकम भेज दी।

यह सब वास्तवमें उस महान आत्माके पुण्यका ही प्रताप है कि इस संस्थाके सर्व कार्य इसी प्रकार आगे-आगे स्वत हुआ करते हैं।

३. सत्य व्यक्तित्व

व्यक्ति का जीवन पाँच भागोंमें विभक्त है--देह, वाणी, मन, बुद्धि व हृदय। पाँचों में उत्तर उत्तरवर्ती अंग पूर्व पूर्ववर्ती की अपेक्षा अन्तरङ्ग व सूक्ष्म है। खाने-पीने व चलने फिरने आदि रूप क्रिया करना तथा भोजन वस्त्र आदि बाह्य विषयों का ग्रहण व त्याग करना देहका कार्य है। देहगत इन बाह्य विषयों की तथा अप्रोक्त मनोगत व बुद्धिगत अन्तरंग विषयों की दूसरों के प्रति अभिव्यक्ति करना वाणी का कार्य है। वाणीके द्वारा अभिव्यक्त किये जानेवाले इन उभयविध विषयोंके सम्बन्ध में ग्रहण त्यागके विकल्प करना मनका कार्य है। दृष्ट श्रुत व अनुभूत बाह्याभ्यन्तर तथ्यों तथा हार्दिक भावोंका अवधारण करना बुद्धिका कार्य है। और क्षमा प्रेम आदि भावोंका अथवा इनसे विपरीत क्रोधादि भावोंका अधिष्ठान हृदय कहलाता है।

इन पाँचों में हृदय सदा सत्य ही होता है, क्योंकि उसमें कृत्रिमता होना सम्भव नहीं। हजार कृत्रिमतायें करने पर भी क्षमाशील व्यक्ति क्रोध कर नहीं सकता, और इसी प्रकार हजार प्रयत्न करने पर भी क्रोधी व्यक्ति क्षमाशील हो नहीं सकता। जिस प्रकार शिशु के प्रति किया गया माता का क्रोध हृदयमें विपरीत होनेके कारण अक्रोध है, इसी प्रकार क्रोधी की मौखिक क्षमा हृदयमें विपरीत होनेके कारण अक्षमा है। इसी प्रकार दया दान संयम तप त्याग आदि सभी में जानना।

हृदयातिरिक्त शेष चार अंग सत्य भी हो सकते हैं और असत्य भी। हृदयानुसारी होने पर वे चारों सत्य हैं और उससे विपरीत होने पर वे असत्य हैं। बालकमें अपने व्यक्तित्व का अहंकार नहीं होता, इसलिये वह अपने हृदयगत

भावोंको छिपानेका प्रयत्न नहीं करता। प्रेम उभरा तो हंस कर चिपट गए और क्रोध उभरा तो मुंह बनाकर बिरट गए। अत. जैसा भीतरमे होता है, वैसा ही बाहर में। इसी से लोग उसकी किसी क्रिया को तथा बातको सन्देह की दृष्टिसे नही देखते।

परन्तु ज्यों-ज्यो वह बडा होता जाता है, उसका अहंकार जागृत होता जाता है। तब वह अपने भीतरी रूपको छिपाकर कृत्रिम उपायो के द्वारा अपने देह व वाणीका अन्यथा प्रदर्शन करना सीख जाता है। तब वह भीतर व बाहरसे समान नही रह पाता। यही कारण है कि लोग तब उसीकी हर क्रियाको व हर बातको सन्देहकी दृष्टिसे देखने लगते है।

भीतरसे दयालु व प्रेमी तथा त्यागी व विरागी न होने पर भी वह क्षुद्र-प्राणियोंकी रक्षा तथा कृत्रिम प्रेम द्वारा और बाह्य विषयोके त्याग द्वारा अपनी दैहिक क्रियाको वैसा बनानेका प्रयत्न करता है। वाणीके द्वारा वैसी भाषा बोलनेका तथा उपदेशादि देनेका प्रयत्न करता है। शास्त्रीय तथ्योका अवधारण हो जाने मात्रसे बुद्धिमे अपनेको वैसा मान बैठता है, तथा मनके द्वारा अपने विषयमें वैसी ही भ्रान्त कल्पनाये करने लगता है। परन्तु यह सब कुछ करने पर भी उसका व्यक्तित्व क्या वास्तव मे वैसा हो जाता है? मा को अपने बच्चे से जिस प्रकारका प्रेम होता है, क्या हजार प्रयत्न करने पर भी आप उसके साथ वैसा प्रेम कर सकते है?

अत कृत्रिम व्यापार चार अंगोंमे चल सकता है पर हृदयमे नही। ये चारों अग जब हार्दिक स्वरूपकी सीधमे अर्थात् उसके अनुरूप होते है, तब व्यक्ति का व्यक्तित्व सरल कहलाता है। और जब वे एक सीधमे नही होते है, अर्थात् हृदयके विपरीत होते है, तब व्यक्ति का व्यक्तित्व वक्र कहलाता है।

कितना भी बडा विद्वान् तथा तपस्वी क्यो न हो वक्र व्यक्तित्व प्रभावक व महान् नही हो सकता, क्योकि भले वह अपने को छिपानेका प्रयत्न करे, परन्तु एक अदृष्ट शक्ति ऐसी है, जो उसे अभिव्यक्त कर ही देती है। इस प्रकार का व्यक्तित्व वास्तव मे दम्भ है, जो हजार प्रयत्न करने पर भी लोगो की दृष्टिमे चढ नही सकता। इसके विपरीत सरल व्यक्ति प्रभावक व महान होता है। विद्वत्ता व बाह्य तप त्याग आदि न होने पर भी वह लोगो की दृष्टि मे चढ जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थके अभिनेता पूज्य १०५ क्षु० श्री गणेश प्रसादजी वर्णी ऐसे ही कोई विशिष्ट व महान् व्यक्तित्वसे सम्पन्न थे। प्रकाण्ड विद्वान तथा चारित्रवान्

होते हुए भी उन्हे अपने व्यक्तित्व का अहंकार नही था, इस लिये बालकवत् सरल थे। जैसे भीतर वैसे ही बाहर। न कोई कृत्रिमता न छल। दोषो को तुरत स्वीकार कर लेना तथा गुणो का अभिमान न होना, निर्धन व धनवान, बालक व वृद्ध, जैन व अजैन, उच्चवर्णी व हीनवर्णी, सबके साथ समान व्यवहार, सबके साथ शिष्टता व प्रेम, बालकवत् सीधी-सीधी व भोली-भाली भाषा, सबके प्रति सौहार्द्र। विषमता किसे कहते है, इस बात का सम्भवत. उन्हे भान ही नही था। यद्यपि लोगबाग उनकी इस सरल बालवृत्तिका अनुचित लाभ उठाते थे, परन्तु उन्हे इस बात की कोई चिन्ता ही नही थी। और यही थी उनके व्यक्तित्व की महत्ता, उनकी गुरुता, जिसके समक्ष जैन जगत के ही नही हजारो अजैन व्यक्तियो के मस्तक भी नत है।

व्यक्तिकी भाषा भी दो प्रकार की होती है—एक व्यक्त और दूसरी अव्यक्त। मुख द्वारा विनिर्गत भाषा व्यक्त है, जिसमे असत्यता व कृत्रिमता होनी सम्भव है। परन्तु अव्यक्त भाषा वह होती है जो व्यक्ति की आखे बोलती है और जिसमे असत्यता व कृत्रिमता सम्भव नही। आप मुख द्वारा बडी-बडी बाते करके अपने हृदयको छिपानेका प्रयत्न कर सकते है पर नेत्र उसे तुरत बता ही देते है। मुख द्वारा आप बच्चेको कितना ही घुडके और शरीर द्वारा कितना ही मारे, परन्तु यदि आपके हृदयमे प्रेम है तो वह आखोकी ओर देखकर हसता ही रहेगा तथा चिपटता ही रहेगा। और यही है सत्य।

देह के द्वारा बाह्य त्याग करना कुछ कठिन नही। दूसरे को उपदेश देना भी सरल है। शास्त्र पढकर विद्वान् भी बना जा सकता है, परन्तु धन्य है वे जिन्हे यह सत्यता प्राप्त है। विद्वान व त्यागी बन जानेसे व्यक्ति का व्यक्तित्व नही बदल जाता। उसकी कषायो का रूप ही बदलता है व्यक्तित्व नही। जैसे कि धन-सम्बन्धी लोभ बदलकर शिष्य-मण्डलीका तथा ख्याति प्राप्तिका लोभ हो जाता है। वेष व त्याग बदलना और बात है और व्यक्तित्व बदलना और। महान् है व्यक्तित्व उनका जिनको उपरोक्त सरलता व सत्यता प्राप्त है। हमारे अभिनेता पूज्य वर्णीजी भी उनमे से ही एक थे।

प्रतिदिन कुछ मात्र क्षणोके लिये दर्शनार्थ पास बैठ जाना, न उनका कुछ बोलना और न मेरा कुछ पूछना। बस केवल १०-१५ दिनका यह ससर्ग ही था मेरा उनके साथ प्रथम व अन्तिम परिचय। न उससे पहले कभी उनके दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त हुआ और न उसके पश्चात्। परन्तु इस परिचय ने मेरे जीवन पर एक अमिट छाप लगा दी।

सहज भावसे मेरी आंखें उनकी आंखों पर पड़ गईं, और मैं ने देखा वहाँ कुछ, जिसे सम्भवत. वह स्वयं भी हजार उपदेशों व प्रवचनोंके द्वारा बतानेके लिये समर्थ न हो पाते, तब मै तो बता ही कैसे सकता हूँ। ओह ! यही है सत्य-उपदेश, यही है सत्य प्रवचन, यही है सत्य जीवन, यही है सत्य व्यक्तित्व—महान् सचमुच महान् । एक ही झलक ने पूर्वकृत शास्त्राभ्यास को किनारे रख दिया और मैं देखता रह गया । बस देखता रह गया । पुन पुन. भाव आता है कि उसके दर्शन हो, सत्य व्यक्तित्वके दर्शन हो, महान् व्यक्तित्व के दर्शन हो, पर इन चर्म चक्षुओ के द्वारा अब कैसे सम्भव हो सकता है वह ।

परन्तु एक और भी चक्षु है मेरे पास, और वही है सबके पास भी—हृदयकी चक्षु । अपने भीतर जब चाहे देख लो उस चक्षुके द्वारा—उसे । कितने निकट हो गए है वे । लोग कहते है कि उन्हे जन्मे आज १०० वर्ष हो गए, और मैं कहता हूँ कि उनका जन्म ही हुआ कब ? लोग कहते है कि उन्होने स० २०१८ मे देह त्याग कर दिया, परन्तु मै कहता हूँ कि उनको देह थी ही कब ? लोग कहते है कि उन्होने स्वर्गारोहण किया, परन्तु मैं कहता हूँ कि वह गए ही कहां ? वे तो यह है, यह, हृदय गुफामे, निकटसे भी निकटतम । ●

४. ग्रन्थ परिचय

पूज्य १०५ क्षु० श्री गणेश प्रसादजी वर्णीकी १०० वी वर्ष गाँठके उपलक्ष्य मे अपनी श्रद्धाञ्जली अर्पित करनेके लिये ईशरी आश्रम द्वारा प्रकाशित यह ग्रन्थ पाठक गणके समक्ष उसके महान् व्यक्तित्वका संक्षिप्त सा परिचय ही परस्तुत करनेका प्रयास करता है, अन्य कुछ नही, और वह भी उन्हीके अपने भोले-भाले शब्दो मे ।

'मेरी जीवन गाथा' नामसे अपनी जीवनी स्वयं उन्होने अपनी लेखनीसे लिखी थी जिसका प्रकाशन 'श्री गणेश प्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला' मे हुआ । प्रेमी जनोको वह इतना रुचिकर हुआ कि अब तक उसके चार सस्करण निकल चुकने पर भी उसकी मॉग शान्त न हुई । प्रस्तुत ग्रन्थ भी उसीका सक्षिप्त रूपान्तर मात्र है, अन्य कुछ नही ।

विशेपता केवल इतनी है कि जिन तथ्योंको वहाँ एक धारावाही रूपमे कहा गया है, उन्ही को सकलित करके यहाँ इस ढंग से संजोया गया है, कि वह एक दर्शन-शास्त्रका तथा धर्म-शास्त्रका रूप धारण कर लेता है । ग्रन्थ-संकलित वे तथ्य दस अधिकारोमे विभक्त किये गए है--१ प्रभातोदय अर्थात् पज्य-श्रीका जन्मादि, २. ज्ञान पिपासा, ३ निष्क्रमण अर्थात् उनकी यात्राये, ४ सुधार आन्दोलन, ५ प्रवचन-सार अर्थात् तात्त्विक उपदेश ६ लेख व पत्र ७. धर्मका मर्म, ८ अमृत निर्झर ९ प्रतिध्वनि १० और शान्ति निकेतन जिसमे धर्ममाता चिरौजा बाई तथा उदासीन आश्रम ईशरीका परिचय दिया गया है । इन दसो अधिकारोका सक्षिप्त स्वरूप निम्न प्रकार है--

१. पूज्य श्री वर्णीजी बुन्देलखण्डके मडावरा ग्राममें एक साधारण से वैष्णव कुलमें उत्पन्न हुए। किसी कारणवश आपकी श्रद्धा जैन धर्मपर हो गई। बरुआ-सागरमें धर्म-माता चिरौंजा बाईको प्राप्त करके ठाठका जीवन बिताया। परन्तु अन्तरङ्ग विवेकको बराबर जागृत रखा। ज्ञानाभ्यास पूर्ण करते ही त्याग मार्गमें प्रवेश किया। सप्तम प्रतिमाको आदि लेकर क्रमश. क्षुल्लक पदपर आरूढ़ हो गए। विद्वत्ता, तत्त्वज्ञता, दृढ़प्रतिज्ञता, तपस्विता, कर्मठता, नि स्पृहता, मधुर-भाषित्व, सरल चित्तता, सुहृदयता, पर-दु.ख कातरता आदि अनेकानेक असाधारण गुणोके द्वारा आप शीघ्र ही जैन जगतके धर्म गुरु बन गए।

२ ज्ञान पिपासाकी अन्तर्वेदनाको शान्त करनेके लिये, आपने कष्टोकी परवाह न करते हुए अत्यन्त साधन-विहीन दशामें डगर-डगर और ग्राम-ग्रामका भ्रमण किया। अनेक स्थानो पर रह-रहकर विविध विद्वानोंके पास ज्ञान सुमनोंका सञ्चय किया, और संस्कृत भाषा व न्यायके पूर्ण पण्डित बन गए।

अपने इस विद्यार्थी जीवनमें ही बनारसके एक ब्राह्मण पण्डितसे तिरस्कृत हो जानेके कारण, अत्यन्त साधन-विहीन भी आपने, केवल अपने दृढ संकल्पके आधारपर, जैन समाजको प्रेरित करके एक जैन संस्कृत विद्यालयकी स्थापना कराई और उसीमें स्वय भी अध्ययन किया। तत्पश्चात् त्याग-मार्गमें प्रवेश कर जानेपर, जैन जगतका अज्ञान तिमिर दूर करनेके लिये स्थान-स्थानपर जाकर पाठशालायें, विद्यालय, छात्रालय, गुरुकुल, स्कूल व कालेज खुलवाये।

३ अपनी चञ्चल प्रवृतिके कारण आप कभी भी किसी एक स्थान पर टिक कर न रह सके। पहले तो ज्ञानार्जनके उद्देश्यसे, और तत्पश्चात् जन कल्याणार्थ आपका सारा जीवन प्राय. भ्रमणमें ही बीत गया। अत्यन्त साधन विहीन दशामें कवल दो पैसेके चनोपर निर्वाह करते हुए एकाकी भयकर अटवियोमें से पैदल भ्रमण किया। पीछे बाईजी (धर्ममाता) के साथ अनेक तीर्थ क्षेत्रोंकी वन्दना की। और तत्पश्चात् त्याग अवस्थामें सवारीका त्याग कर देनेपर भी बराबर जन-मंगलकी भावनासे पद विहार करते रहे। यद्यपि आपकी यह वृत्ति आत्म-कल्याणमें बाधक थी, परन्तु जगत्-कल्याणके लिये यही साधक सिद्ध हुई।

जब तक एक मील भी चलनेकी सामर्थ्य रही, तब तक इच्छा व भावना होते हुए भी आप अपनी इस प्रकृतिसे उपरत न हो सके। अन्तमें जब आपका शरीर ८० के छोरेको स्पर्श करने लगा तब पार्श्व प्रभुके पादमूलमें जीवनके

अन्तिम दिन बितानेका संकल्प करके ईसरी आये। इनकी प्रेरणासे ही यहाँ आश्रमकी स्थापना हुई। लगभग ७ वर्ष यहाँ स्थान करनेके पश्चात् सन् १९६१ मे अत्यन्त वैराग्य-पूर्ण दिगम्बर अवस्थामे आप समाधिको प्राप्त हुए।

४ स्मृति-कालीन जिस अहकार-पूर्ण वर्ण-व्यवस्थाका तथा जाति-पाति गत भेद-भावका निराकरण करके, सकल मानव समाजको प्रेम व मैत्रीके एक सूत्रमे बान्धनेके लिये, भगवान वीरको इतना कुछ प्रयास करना पडा था, वे सर्व प्रथाये जैन समाजमे धीरे-धीरे पुन प्रविष्ट हो चुकी थी। अज्ञानतावश इस प्रकारके भेद-भावमे ही धर्मकी रक्षा मानकर सकल मानव समाजमे, विशेषत बुन्देलखण्ड की जैन जनतामे घृणाका प्रसार हो रहा था। तनिक-तनिकसी बातोपर व्यक्तिको जातिसे बहिष्कृत कर दिया जाता था, जिससे जैनियोकी सख्या बराबर क्षीण होती जा रही थी। हरिजनोको अस्पृश्य शूद्र कह कर उनके साथ अमानवीयताका व्यवहार किया जाता था। अन्य धर्मावलम्बियोको मिथ्यादृष्टि कहकर उनके प्रति शिष्टाचारको भी तिलाञ्जली दे दी गई थी।

पूज्य बाबाका दयापूर्ण हृदय यह सब देखकर रो उठा। उसने प्रेम, मैत्री, सुहृदयता, अहिसा व दयाका झडा उठाया और धीर वीरकी भाँति एकाकी सुधार-मार्ग पर चल पडे। सत्य-प्रतिज्ञा सुहृदयता व निस्वार्थतासे प्रभावित होकर समाजने आपका स्वागत किया, लोगोने तथ्योको समझा, और धीरे-धीरे सर्व कुप्रथाओको मुँह काला करके भाग खडा होना पडा।

५ सामाजिक क्षेत्रमें ही नही तात्त्विक क्षेत्रमे भी आपकी दृष्टि अत्यन्त प्रखर थी। आगम-गत प्रत्येक सैद्धान्तिक व आध्यात्मिक विषय उनके अनुभवमे हस्ता-मलकवत् प्रत्यक्ष था। अपने प्रवचनो व चर्चाओमे आपने कठिन-से-कठिन विषय-को इतनी सरलतासे जनताके समक्ष रखा कि सकल भ्रान्तिये विलय गई। समय-सार जैसे अत्यन्त रहस्यपूर्ण जिस ग्रन्थराजको लेकर निश्चय व्यवहार, पुण्य-पाप, निमित्त उपादान जैसे विषयोमे लोग विवाद करते थे, उसके यथार्थ स्वरूपका प्रतिपादन करके, आपने सामञ्जस्यकी स्थापना की, तथा स्व-मत व पर-मत विषयक विवादको छोडकर आत्मकल्याणका अवलम्बन करनेकी प्रेरणा दी। विविध मतमतान्तरो व धर्मोमे भी सामञ्जस्य व सम्मलकी स्थान करके अनेकान्त सिद्धान्तकी व्यापकताका दिग्दर्शन कराया।

६ नामार्जनके लिये पुस्तकें लिख-लिखकर प्रकाशित करना आपकी विरक्त प्रकृतिने कभी स्वीकार नही किया। सहज भावसे समयसारकी एक टीका लिखनी

प्रारम्भकी परन्तु वह भी अस्त-व्यस्त व अधूरी रही। और उसे भी इतना गुप्त रखा कि अन्तिम क्षण तक किसीको उसका पता न चल पाया। मुमुक्षु प्रेमियोंको यदा कदा लिखे गए आपके पत्रोंका यदि संग्रह किया जाय तो वह ही स्वयं अध्यात्म-रस-पूर्ण तथा प्रेरणाप्रद एक महान् शास्त्र बन जाय।

७ मनुष्यकी प्रकृति निम्न गामिनी है, इसलिये किसी एक देश व कालमें हित व सत्यके लिये ग्रहणकी गई उसकी सर्व क्रियायें व विधि विधान, कुछ काल पश्चात् धीरे-धीरे भाव-विहीन निष्प्राण व शुष्क रूढि मात्र बनकर रह जाते हैं। सदासे ऐसा होता आया है और होता रहेगा। युग-निर्माता तीर्थकरों की उत्पत्ति होने पर ही उनका निराकरण व पुनरुत्थान होता है। वर्तमान युगीन धार्मिक क्षेत्रमें कृत्रिमता-पूर्ण ऐसी जिन रूढियों व विडम्बनाओंका तथा जिन प्रपञ्चों व जटिलताओंका प्रसार गृहस्थ व त्यागी वर्गमें हो गया है, इसे कौन नही जानता जिसके कारण कि आजका धर्म व धार्मिक, समाज व देशके ऊपर प्राय भार बन कर रह गया है।

बाबाका हृदय यह सब देखकर चुप कैसे रह सकता था। भले ही आन्दोलन के रूपमें न सही, पर अपने प्रवचनों व चर्चाओंमें आप बराबर इन रूढियोंकी पोल खोल कर लोगोंको जागृत करते रहते थे, और उन्हे जीवनगत अनेकों अनुभूतियोंके उदाहरण दे देकर यह तथ्य हृदयगत कराते रहते थे कि जगतमें महानतम समझा जाने वाला जैन-धर्म किस बुरी तरह, इन अज्ञान जन्य रूढियों व विडम्बनाओंके कारण उपहासका पात्र बन रहा है। यथा—

(क) मानवके प्रति अपने कर्त्तव्यको भूल कर उसके प्रति सुहृदयता व शिष्टता का त्याग करके, केवल क्षुद्र जीवोंकी रक्षा करना तथा छानकर पानी पीना अहिंसा धर्मका उपहास है।

(ख) जिनके प्रति दौर्मनस्यता है, उनके प्रति कषायका त्याग न करके, क्षमावनी वाले दिन सुहृद मित्रोंसे शाब्दिक क्षमा माँगना और उन्हे गले लगाना क्षमा धर्मका उपहास है।

(ग) वास्तवमें गुणवान व महान न होकर भी अनेक कृत्रिम उपायोंके द्वारा तथा बाह्य व्रत व तप आदिके द्वारा अपनेको महान् दिखानेका प्रयत्न करना आर्जव-धर्मका उपहास है।

(घ) धनोपार्जन विषयक घरेलू व्यापार धन्धेको छोड कर साधु व त्याग वृत्ति

अपनाना तथा वहाँ परोपदेशके मिस प्रतिष्ठा उपार्जन विषयक लोक-रञ्जनाका व्यापार करना शौच धर्मका उपहास है।

(च) इन्द्रिय वृत्तिका निरोध किये बिना केवल बाह्य वस्तुओंका त्याग कर देना संयम धर्मका उपहास है। भोजन चर्याके विषयमें वर्णीजी यद्यपि द्रव्य व क्षेत्र आदिकी शुद्धिका तथा मन वचन कायकी शुद्धिका विचार रखते थे, परन्तु इस विषयमें जाति-पाति-गत रूढ विचारको उनका सौहार्द्र न्याय संगत नहीं समझता था। आपकी विशाल दृष्टि तो भक्ति भावसे दिये गए अस्पृश्य शूद्र तकके आहारको ग्रहण करनेमें कोई दोष नहीं देखती थी। यद्यपि समाजके भयसे वह ऐसा करते नहीं थे, परन्तु इसे वह अपना गुण नहीं दोष मानते थे।

(छ) इच्छाओंका निरोध किये बिना घरको छोड़कर शिष्य-मण्डलीका संग्रह तथा जन संसर्गके रूपमें बड़ा घर बसाना तप व वैराग्यका उपहास है।

(ज) इसीप्रकार विविध प्रकारके परिग्रह व सम्पर्कवाद आदिके रूपमें नाना विडम्बनाओंको ओढ़कर साधुओं क्षुल्लकों व त्यागियोंका इधर-उधर घूमना व चन्दा आदि माँगना त्याग धर्मका उपहास है।

(झ) अभाव ग्रस्तोंकी सहायता न करके तथा विद्या आदिके प्रसारमें द्रव्यका न लगा कर केवल नामार्जनके लिये प्रतिष्ठायें आदि करानेमें तथा मन्दिरों आदिके निर्माणमें द्रव्यका अपव्यय करना दान धर्मका व प्रभावना अंगका उपहास है।

८ चर्चाओं व प्रवचनोंके मध्य तथा साधारण बात-चीतके मध्य आपके श्रीमुखसे निकले सीधे-साधे वाक्य कितने हृदय-स्पर्शी तथा अध्यात्म रससे सने हुए होते हैं, यह बात पाठक-जन स्वयं अनुभव करेंगे।

९ साधारण-जन-दुर्लभ इन महान गुणोंको देखकर किसका मस्तक आपके चरणोंमें नत नहीं हो जायेगा। जैन व जैनेतर, धीमान व श्रीमान सभीके द्वारा आपके चरणोंमें अर्पित सहस्रों श्रद्धाञ्जलियें व लेख आपके महान् व्यक्तित्वके परिचायक प्रमाण पत्र हैं।

१० आपका यह महान् व्यक्तित्व वास्तवमें उन पावन संस्कारोंका ही परिपक्व रूप है, जो कि धर्ममाता पूज्या श्री चिरौंजा बाईने आपके हृदयमें

गहरे पैठा दिये थे। अत आपके साथ-साथ उस परमोपकारी माताके श्री चरणो मे भी हम सभोंके मस्तक सदा नत रहेंगे।

आप ही की प्रेरणासे सं० १९९१ तदनुसार सन् १९३४ मे ईसरीका शान्ति-निकेतन नामक यह उदासीन आश्रम जिसमे कि आपके जीवनके अन्तिम सात वर्ष व्यतीत हुए, और जहाँ कि मुनि गणेश कीर्तिके रूपमे आपने समाधि लाभ किया, आज भी ज्ञान व धर्मके जिज्ञासुओ व साधकोकी उसी प्रकार सेवा कर रहा है तथा ऐसे महानुभावोका सप्रेम आवाहन व स्वागत करता है। ●

५. गुरु गणेश

री ? अरी लेखनी तू लिख दे,
मेरे गुरुकी गुरुता महान।
चित्रित कर दे वह सजग चित्र,
जिसमे उनकी प्रभुता महान् ।।

ओ ! दृढ प्रतिज्ञ, ओ सन्यासी,
ओ ! आर्ष-मार्गके उन्नायक।
ओ ! विश्व हितैषी, लोकप्रिय,
ओ ! आदि भारतीके गायक ।।

वात्सल्य मूर्ति सच्चे साधक,
ओ ! नाम मात्र अंशुक धारी।
ओ ! भूले युगके मान्य पुरुष,
जन-मनमे समता सचारी ।।

तुम नही परिस्थितिके वश मे,
तुमने ही उसको किया दास।
अपमानो अत्याचारो मे,
पल कर तुमने पाया प्रकाश ।।

सान्तवना-पूर्ण तेरी वाणी,
मानव मानसकी परिचित सी।
कुछ कह देती समझा देती,
सत्पथ दर्शाती परिमित सी ।।

मानस-सागर कितना निर्मल,
है राग द्वेषका लेश नही।
तुम नि सकोची सत्य प्रिय,
है छद्म तुम्हारा वेष नही ।।

स्याद्वाद् दि० जैन विद्यालय] (वि०) रवीन्द्र कुमार

विषय-सूची

●



पूज्य १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी

१

•

प्रभातोदय

•

साधारण से एक ग्रामीण वैष्णव कुल मे
उत्पन्न हुआ बालक जैन जगत
का धर्मगुरु बन गया

१—अवतरण

१. जन्म

नमः समयसराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ॥

मेरा नाम गणेश प्रसाद वर्णी है। जन्म सम्वत् १९३१ कुवार वदी ४ को हसेरा गाँवमें हुआ था। यह स्थान जिला ललितपुर (झाँसी) तहसील महरौनाके अन्तर्गत मदनपुर थानेमें स्थित है। पिताका नाम श्री हीरालालजी और माताका नाम उजियारी था। मेरी जाति असाटी थी। यह प्राय बुन्देलखण्डमें पायी जाती है। इस जातिवाले वैष्णव धर्मानुयायी होते हैं। पिताजीकी स्थिति सामान्य थी। वे साधारण दुकानदारीके द्वारा अपने कुटुम्बका पालन करते थे।

बचपनमें मुझे असाताके उदयमें सुकीका रोग हो गया था। साथ ही लिवर आदि भी बढ गया गया था। फिर भी आयुष्यकर्मके निषेकोंकी प्रबलताके कारण इस सकटसे मेरी रक्षा हो गई थी। मेरी आयु जब ६ वर्षकी हुई, तब मेरे पिता मडावरा आ गए थे। तब वहाँ एक मिडिल स्कूल था। मैने ७ वर्षकी अवस्थामें विद्यारम्भ किया और १४ वर्षकी अवस्थामें मिडिल पास किया।

मेरे दो भाई और भी थे, परन्तु वे परलोक सिधार गए। मेरा

विवाह १८ वर्षमें हुआ था। विवाहके बाद ही पिताजीका स्वर्गवास हो गया।

२. धर्म परिवर्तन

मेरे विद्या गुरु श्रीमान पण्डित मूलचन्दजी ब्राह्मण थे। उनके साथ मैं गाँवके बाहर श्री रामचन्द्रजीके मन्दिरमे जाया करता था। वही रामायण पाठ होता था। मेरे घरके सामने जिनालय था। वहाँ भी जाया करता था।

जब मै १० वर्षका था तबकी बात है। सामने मन्दिरजीके चबूतरे पर प्रतिदिन पद्म पुराण (जैन रामायण) का प्रवचन होता था। एक दिन त्यागका प्रकरण आया। उसमे रावणके परस्त्री-त्याग करनेका उल्लेख किया गया था। बहुतसे भाइयोने प्रतिज्ञा ली, मैने भी उस दिन आ-जन्म रात्रि-भोजनका त्यागकर दिया। इसी त्यागने मुझे जैनी बना दिया।

एक दिन गुरुजीसे भी कह दिया कि पद्मपुराणमे पुरुषोत्तम राम-चन्द्रजीका चरित्र चित्रण किया है। वहा मुझे सत्य भासता है। रामायणमे रावणको राक्षस और हनुमानको बन्दर बताया है। इसमे मेरी श्रद्धा नही है। अब मै उस मन्दिरमे नही जाऊगा। और इसी प्रकार एक दिन माताजीसे भी कह दिया कि आजसे म श्री जिनेन्द्रदेवको छोड़कर अन्यको न मानूगा। मेरा पहलेसे ही यह भाव था। जैन धर्म ही मेरा कल्याण करेगा।

वैष्णव होते हुए भी मेरे पिताजीकी जैन धर्मम दृढ श्रद्धा थी। इसका कारण णमोकार मन्त्र था क्योकि एक बार बाहर गोवसे बैल-गाड़ी पर दुकानदारीका माल लाते समय मार्गवाले भयकर वनमे णमोकार मन्त्रका स्मरण करनेमे शेर शेरनी उनका मार्ग काटकर चले गए थे।

स्वर्गवासके समय पिताजीने मुझे यह उपदेश दिया था कि—"बेटा! संसारमें कोई किसीका नही, यह श्रद्धान दृढ रखना। तथा यह भी कहा कि मैने णमोकार मन्त्रके स्मरणसे अपनेको बडी-बडी आपत्तियोसे बचाया है। तुम निरन्तर इसका स्मरण रखना। तुमको यदि संसार बन्धनसे

मुक्त होना इष्ट है तो इस (जैन) धर्ममें दृढ़ श्रद्धान रखना। इसकी महिमाका वर्णन करना हमारेसे तुच्छ ज्ञानियो द्वारा होना असम्भव है। तुम इसे जाननेका प्रयास करना।"

जैसा कि आगे कहा जायेगा इस धर्म परिवर्तनके कारण माता व पत्निसे भी मेरा सम्बन्ध विच्छेद हो गया। तथा मेरे चचेरे भाई लक्ष्मणके विवाहमे मैने अपने काकाजीसे भी कह दिया कि 'यहाँ तो अशुद्ध भोजन बना है। मै पंक्तिमें सम्मिलित नही हो सकता'। इससे मेरी जातिवाले बहुत बिगड़े और मेरा जाति-बहिष्कार कर दिया, जिसे मैने हाथ जोडकर स्वीकार कर लिया।

३. माता व पत्नी

मेरी स्त्री माके बहकावेमें आ गई और कहने लगी कि 'तुमने धर्म परिवर्तनकर बडी भूल की है। अब फिर अपने सनातन धर्ममे आ जाओ'। यह विचार सुन मेरा उसमे प्रेम हट गया। मैंने उन दोनोंको कह दिया कि आप जैन धर्म स्वीकार करे तो मै आपके सहवासमें रहूँगा, अन्यथा मेरा आपसे कोई सम्बन्ध नही।

माँने कहा—बेटा! मैने तुम्हारे पीछे क्या-क्या कष्ट सहे, यदि उनका दिग्दर्शन कराऊँ तो तुम्हे रोना आ जायगा। परन्तु मैने एक न सुनी, और यहा तक कह दिया कि "यदि तुम जैन धर्म अङ्गीकार न करोगी तो मै तुम्हारे हाथका भोजन तक न करूँगा।" मेरे मनमें अज्ञानतावश यह धारणा हो गई थी कि "जितने जैनी होते हैं वे सभी उत्तम प्रकृतिके मनुष्य होते है। इसके सिवा दूसरोसे सम्बन्ध रखना अच्छा नही है।" अत: मैने माँसे कह दिया कि "अब न तो हम तुम्हारे पुत्र ही है, और न तुम हमारी माता हो"। और यही बात स्त्रीसे भी कह दी। वे अत्यन्त दु:खी होकर रोने लगीं पर मै निष्ठुर होकर चला गया।

बम्बईकी परीक्षामें बैठा प्रश्न-पत्र लिख रहा था कि एक पत्र मिला। खोलकर पढा तो लिखा था कि मेरी स्त्रीका देहावसान हो गया है। मैने मन ही मन कहा—'हे प्रभो! आज मै बन्धनसे मुक्त हुआ।'

४. जीवन यापन

पिताजीके मरनेके बाद मेरी माता बहुत व्यथित हुई। इससे मैंने मदनपुर गाँवमें मास्टरी कर ली। वहाँ केवल चार मास रहकर नार्मल स्कूलमें शिक्षा लेनेके अर्थ आगरा चला गया। परन्तु वहाँ दो मास ही रह सका। इसके बाद जयपुर चला आया और एक माह बाद इन्दौर जाकर शिक्षा विभागमें नौकरी कर ली। देहातमें रहना पड़ा। वहाँ भी उपयोगिता स्थिर न हुई, अत फिर देश चला आया।

[जातिसे बहिष्कृत हो जानेके कारण वहाँसे मैं टीकमगढ़ आ गया, और जतारा स्कूलमें अध्यापक हो गया।]

५. धर्म माताकी गोदमें

जतारामें जब अध्यापकी करता था, तब मोतीलालजी वर्णी व भायजीने मुझसे कहा कि '४ मील निकट वाले सिमरा गाँवमें चिरौंजा बाई बहुत सज्जन व त्याग मूर्ति है, उनके पास चलो। वहाँ आनेपर भायजीके आग्रहसे डरते-डरते शास्त्रकी गद्दीपर बैठ गया। दैवयोगसे शास्त्र पद्मपुराण था। उसे सुनकर जनता प्रसन्न हुई।

उस दिन बाईजीके घर ही भोजन था। चौकेमें पहुँचने पर मैं अपरिचित होनेके कारण भयभीत होने लगा। बाईजीने कहा बेटा! सानन्द भोजन करो। मैं तुम्हारी धर्म माता हूँ। यह घर तुम्हारे लिये है। कोई चिन्ता न करो। म जब तक हूं, तुम्हारी रक्षा करूंगा। उन्होंने भायजीसे कहा कि इसे देखकर मुझे पुत्र जैसा स्नेह होता है। इसको देखते ही मेरे भाव हो गए है कि इसे पुत्रवत् पालूँ।

बाईजीने भायजीसे कहा कि इसको माँ व पत्नीको भी यहां ही बुला लो, मैं इन तीनोंकी रक्षा करूँगी। और मुझे भी समझाया कि तुम्हे उनके साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं है। [परन्तु मेरी एक भी समझमें न आई। तदपि बाईजी मेरा हर प्रकार भरण पोषण करने लगी। उन ही की कृपासे जयपुर आदि जाकर विद्याध्ययन किया]. जब अध्ययनार्थ बनारस आया तो इस आशयसे कि मुझे कोई व्यग्रता न हो, वे स्वयं भी बनारस ही भेलूपुरमें रहने लगी। उनकी कृपासे मुझे आर्थिक व्यग्रता नहीं रहती थी।

६. अन्धानुकरण

(१) टीकमगढ़ आनेपर पं० मोतीलालजी वर्णी, श्रीयुत कडोरेलाल भायजी तथा स्वरूपचन्द बनपुरिया आदिसे परिचय हो गया। इससे मेरी जैन धर्ममे अधिक श्रद्धा बढने लगी। दिन-रात धर्म श्रवणमे जाने लगा। संसारकी असारता पर निरन्तर परामर्श होते थे।

हम लोगोमे भायजी अच्छे तत्वज्ञानी थे। उनका कहना था कि तत्वज्ञानका सम्पादन करनेके पश्चात् ही त्याग धर्मकी ओर दृष्टि डालनी चाहिये। परन्तु मै तो रगरूट था। जो मनमे आता त्यागकर बैठता। मैं कुछ-कुछ स्वाध्याय करने लगा और खाने-पीनेके पदार्थोके छोडनेमे ही अपना धर्म समझने लगा था।

भायजीने मुझे बताया कि धर्म आत्माकी वह परिणति है जिसमे मोह राग-द्वेषका अभाव हो। अभी तुम "पानी छानकर पीना, रात्रि भोजन त्याग, नित्य देव दर्शन, दुःखित बुभुक्षित प्राणिवर्ग पर दया, स्त्रीसे प्रेम न करना, जैनियोका सहवास करना और दूसरोके सहवासका त्याग करना" आदिको ही धर्म समझ बैठे हो, परन्तु धर्मका स्वरूप जाननेके लिये आगमाभ्यास द्वारा तत्व निर्णयकी आवश्यकता है।

(२) खुर्ईमे प० पन्नालाल न्याय दिवाकरजीसे भेट हुई। उन्होने पूछा कि जैन धर्ममे क्या विशेषता देखी, कि तुम्हारी अभिरुचि इसकी ओर हुई। मैने कहा कि इस धर्मवाले दयाका पालन करते है, छानकर पानी पीते है, रात्रि भोजन नही करते, प्रतिदिन मन्दिरमे जाते है, मन्दिरमे मूर्तिया बहुत सुन्दर है, वहाँ प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन होता है, किसी दूसरी जातिका भोजन नही करते, इत्यादि शुभाचरणकी विशेषता देखकर ही मै जैन धर्ममे दृढ़ श्रद्धावान हो गया हूँ।

यह सुनकर पण्डितजीने कहा कि तुमने धर्मका मर्म नही समझा। केवल खान-पानके लोभसे जैनी हो जाना सर्वथा अनुचित है। वञ्चना करना महा पाप है। न तो तुम वैष्णव ही रहे और न जैनी हो। पण्डित जीकी बात पर मुझे बड़ा खेद हुआ और यह प्रतिज्ञा की किसी तरह ज्ञानार्जन करना आवश्यक है।

[तिजारी (तैया) ज्वरकी वेदनाके कारण तथा साधनाभावके कारण शरीर अत्यन्त कृश हो जानेपर भी गिरनारजीके लिये पैदल चले

जा रहा था।] गज पन्थाजी पहुँचकर एक सेठजीके साथ पर्वतकी वन्दनाको चला।

सेठजी—कहाँ जाओगे।

मै—गिरनार जी।

सेठजी—कैसे जाओगे।

मै—पैदल।

सेठजी—तुम्हारा शरीर इस योग्य नहीं है।

मै—शरीर नश्वर है। एक दिन जावेगा ही। कुछ धर्मकार्य इससे लिया जावे।

सेठजी—(हँसकर) अभी बालक हो। शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनं। अतः इसको सुरक्षित रखना चाहिये।

(३) यद्यपि भायजीका आदेश था कि पहले अपनी धर्मपत्नी और पूज्य माताजीको बुलाओ, फिर सानन्द धर्म साधन करना, और पीछे बाईजीने भी मुझ डॉटकर कहा था कि—'ससारमे कोई किसीका स्वामी नही, तुम्हे कौन-सा अधिकार है, कि उनके धर्मका परिवर्तन कराते हो। परन्तु यहाँ तो मूढता थी। एक भी बात समझमे नही आई।

भाद्रमास आया, सयममे दिन बिताने लगा, पर सयम क्या वस्तु है, यह नही जानता था। सयम समझकर भाद्रमास भरके लिये छहो रस छोड दिये थे। अभ्यास न होनेसे शरीर शक्ति होन हो गया।

२–धार्मिक जीवन

•

१. जिन भक्ति

(१) यद्यपि यात्राके मध्य सोनागिर, गवालियर आदि जिन जिन स्थानो पर पहुचा सर्वत्र भक्ति पूर्वक भगवानकी पूजा वन्दना करने मे आनन्द आता रहा, परन्तु खुरई वाले मन्दिरमें श्री १००८ देवाधिदेव पार्श्वनाथ की सातिशय प्रतिमाको देखकर हृदयमे जो प्रमोद हुआ वह अवर्णनीय है। नासाग्र दृष्टि को देखकर प्रतीत होता था कि प्रभुकी सौम्यता अतुल है। इतना भर कह सकता हू कि उस समय जो अनुपमेय आनन्द मुझे आया व पञ्चेन्द्रियोके विषय सेवनमे नही आ सकता।

(२) कुण्डलपुर मे वीर प्रभुके दर्शन किये। वहा जो प्रार्थना की उसका सार यह है—"हे प्रभु। वीतराग होनेके कारण आप तो न किसी से राग करते है न द्वेष। आपके गुणो मे अनुराग करने वाला स्वयं ही तज्जन्य पुण्य बन्धके कारण शान्तिलाभ कर लेता है।"

(३) [आगे चलकर ज्ञानप्राप्तिके पश्चात् यही जिन भक्ति तात्त्विक हो जाने से अत्यन्त प्रखर हो गई। उस समय यह भाव होने लगा कि] मन्दिर जानेका यह प्रयोजन है कि वीतराग देवकी स्थापना देखकर वीतराग भाव की प्राप्तिके लिये स्वयं द्रव्य निक्षेप बनो। वीतरागके नामका पाठ करने (मात्र) से वीतराग न हो जाओगे। उन्होने जिस

मार्गका अवलम्बनकर वीतरागता की प्राप्ति की है उस मार्ग पर चलकर स्वयं वीतराग होनेका पुरुषार्थ करो।

२. दृढ़ आस्था

(१) बैशाख मासमे शिखरजी की यात्रार्थ जानेके लिये विचार मग्न था कि सेठ मेवारामजी आ गए, और कहने लगे कि शीतकालमें हमारे साथ चलना। गर्मीके दिन है, १८ मीलकी यात्रा तुम कैसे करोगे ? मैने कहा कि मेरा पूरा विश्वास है कि यात्राके ८ घण्टा पहले अखण्ड जल धारा गिरेगी। सेठजी हँसते-हँसते बोले—'अच्छा, पानी बरसे तो हमेभी पत्र देना'। मैने दृढताके साथ कहा 'बरसे क्या, बरसेगा ही।

मधुवन पहुचने पर सायकाल चबूतरे पर सामायिक क्रिया करते हुए सो गए। रात्रिके ९ बजे से लेकर १ बजे तक अखण्ड वर्षा हुई। मन आल्हादसे भर गया।

(२) इसी प्रकार जब गिरिराज की परिक्रमा करते हुए मार्ग भूल गए और पिपासाके मारे प्राण निकलने तक की आशंका हो गई, तब विचार आया कि निष्कपट भावसे पार्श्वप्रभुका स्मरण करेंगे, तो क्या यह आपत्ति दूर न होगी ? प्रभुसे प्रार्थना कर चुकने पर अन्तरात्मासे उत्तर मिला, कि यह पार्श्वप्रभुका दरबार है। कष्टके विकल्प को छोडो। जो बीचमे गली है, उसीसे प्रस्थान करो। एक फर्लांग चले होगे कि सामने ही पानीसे लबालब भरा हुआ एक कुण्ड दिखाई पडा।

अगम्य अरण्यकी चिन्ता छोडकर कुण्डके किनारे पर ही तीन घण्टे सामायिकमे बिता दिये। दिन अस्त होनेपर चले। तब भी न जाने किस प्रकार चार मील का मार्ग डढ घण्टे मे तय करके मधुवन पहुच गए।

३. दृढ़ प्रतिज्ञा

१. रात्रि भोजन त्याग—

(१) नैनागिरसे कुण्डलपुरकी पद यात्रा करते समय मार्गके गाँवमे एक अहीरके घर पर ठहरा। रात्रिको आग जलाकर उसने कहा कि भोजन बना लो।

मै—भैया हम रात्रि को भोजन नही करते।

अहीर—अच्छा भैंस का दूध पीलो, जिससे मुझे तसल्ली हो जाय।

मै—मै पानीके सिवाय (रात्रिको) कुछ नही लेता।

अहीर की स्त्री—जिसके द्वार पर महमान भूखा पडा रहे उसको कहा तक सन्तोष होगा ?

मै—मा ! मै लाचार हूँ।

स्त्री—अच्छा प्रात काल भोजन करके जाना। अन्यथा आप दूसरे स्थानपर जाकर सोवे।

मै—प्रातःकाल होनेपर आपकी आज्ञाका पालन होगा। [परन्तु मालिक से बिना पूछे ही प्रात ५ बजे वहा से चल दिया]

(२) हरिपुर मे पं० ठाकुर दासजीके पास पढना था—

प०—हाथमे भोजन मत बनाया करो तुम्हारी मा बना दिया करेगी।

मै—आपके यहाँ न तो पानी छाना जाता है, और न ढीमरके जल का परहेज है। साथ ही हमे शामको (सूर्यास्तमे पहले) भोजन न मिल सकेगा।

माजी—(बड़े प्रेमसे)–जिस प्रकार तुम कहोगे उसी प्रकार बना दूगी। हम भी रात्रिका भोजन शाम को ही कर लिया करेगे।

(३) एक दिन पण्डितजीके एक शिष्यके बहकावमे आकर भाग की गोली खा ली। नशा होने पर सो गया।

प०—लो यह दही व खटाई खा लो। तुम्हारा नशा उतर जावेगा।

मै—मै रात्रिके समय पानीके सिवाय कुछ नही लेता।

प०—भग पीनेको जैनी न थे।

मै—मै शास्त्रार्थ करना नही चाहता। कृपाकर मुझे शयन करने दीजिये।

२. मास-घृणा—

(१) संबत् १७८४ मे चकौती गाँव जिला दरभंगामे श्रीसहदेवझाके पास न्यायका अध्ययन करता था। यहा ब्राह्मणों की बस्ती थी। सभी

मत्स्य व मास भोजी थे। विवाह व त्योहार आदि सभी अवसरों पर बकरोकी बलि होती थी। मुझसे न देखा गया। आटा खाना छोड़ दिया। केवल चावल और शाक खाकर दिन काटता था। और कभी-कभी सूखे चने चबाकर।

एक बुड्ढे ब्राह्मणको दया आ गई। उन्होने मोहल्लेके सब ब्राह्मणोंको जमाकर यह प्रतिज्ञा कराई कि 'जब तक यह अपने ग्राममे छात्र रूपसे रहे तब तक आप लोग मत्स्य व मास न बनावे और न देवी पर बलि प्रदान करे। यह भद्र प्रकृतिका बालक है।

(२) ललितपुर चातुर्मास के समय फोडा हुआ। तीव्र वेदना थी। लोगो ने आप्रेशन करानेकी प्रेरणाकी, परन्तु मैने दृढतासे कहा कि मास भोजीमे आप्रेशन कराना नही चाहता। डाक्टरने मेरी बात सुनी तो उसने बडी प्रसन्नता से कहा कि मै जीवन पर्यन्तके लिये मासका त्याग करता हूं।

३ आदर्श-विहीन गुरुका परित्याग—

(१) टीकमगढमे राज-विद्वान् श्री दुलार झासे न्यायके शास्त्र पढता था। उनकी मेरे प्रति बहुत अनुकम्पा थी, परन्तु बलि प्रथाके पोषक होनेके कारण उनमे मेरी अरुचि हो गई। यद्यपि विनय पूर्वक किये गए मेरे तर्कोंके सामने वे निरुत्तर हो गए, और उन्होने मेरी बात स्वीकार कर ली, तदपि कुलपरम्पराके कारण वे उसका त्याग न कर सके। तब 'मूर्ख रहना अच्छा परन्तु हिसा पोषक उपाध्यायसे विद्यार्जन करना उत्कृष्ट नही' यह समझकर वापस सिमरा चला गया।

(२) बनारसमे विद्यार्जनका साधन ढूढनेकी चिन्तामे चला जाता था। मार्गमे एक श्वेताम्बर विद्यालय मिला। उसमे चला गया। पाठशालाध्यक्ष श्री धर्मविजय सूरि को विनयसे प्रणाम किया।

सूरि—तुम चिन्ता मत करो, यहां पर आओ और अध्ययन करो।

मै—महाराज! मै दिगम्बर सम्प्रदायका हूँ। मेरी श्रद्धा निर्ग्रन्थ साधुमे है। वस्त्रधारीको साधु नही मानता। यदि मैने अन्य शिष्य वर्गकी भाति आपकी वन्दना न की तो आपके मनमे क्षोभ होगा। इसलिये अध्ययनका सुअवसर मिलते हुए भी इसे खो रहा हूँ।

३—निजदोष-दर्शन

१. जूआ

मुक्तागिरि से गिरनार जीकी यात्राका सकल्प करके चल तो दिया पर पास मे केवल पाच रुपये थे। तीन कोस चलकर एक हाठ मिली। वहां पत्तेका जूआ हो रहा था। १) के ५) मिलते थे। हमने विचार किया 'चलो ५) लगा दो २५) आ जावेगे। फिर, आनन्दसे रेलमे बैठकर श्री गिरिनारजीकी यात्रा सहजमे हो जावेगी इत्यादि। एक मे पांच मिलेगे इस लोभमे तीन लगा दिये। पत्ता हमारा नही आया। ३) चले गये। विचार किया कि अब गलती न करना।

२. अविनय

(१) आगरामें पं० बल्देव जीसे सर्वार्थसिद्धि पढने जाता था। छापेका रिवाज न था। हस्त लिखित ग्रन्थ पर ही अभ्यास करना था। गर्मीके दिन, मध्यान्हके समय वह ग्रन्थ हाथमे लेकर पण्डित जी के घर जाना होता था। मार्गमे पत्थरोंसे पटी हुई सडक मिलती थी। पैरो की रक्षार्थ जूता पहने ही जाना था। यद्यपि शास्त्रकी अविनय थी, पर निरुपाय था। विचार करने पर अन्तरात्माने यही उत्तर दिया कि तुम्हारी छात्रावस्था है, अध्ययनकी मुख्यता रखो। अध्ययनके बाद कदापि ऐसी अविनय न करना। एक दिन मार्गमे प० नन्दरामजी मिल गए—

पं०—पंचम काल है, ऐसा ही होगा। तुमसे धर्मोन्नतिकी क्या आशा है।

मैं—महाराज निरुपाय हूँ।

(२) इसी प्रकार एक बार चतुर्दशीके दिन पं० ठाकुरदासजी शर्माके लिये बाजारसे पूडी शाक लाता था। मार्गमे पुन: उपरोक्त पण्डितजी टकरा गए।

पं०—कहा गए थे ?

मैं—हरिपुरवाले पण्डितजीके लिये पूरी शाक लेने गया था।

पं०—शाक क्या है ?

मैं—आलू बैंगन।

प—(झल्ला कर) अरे नादान चतुर्दशीके दिन यह क्या अनर्थ ? हम पण्डित गोपालदासजीसे तुम्हारे अपराधोका दण्ड दिलायेगे। मार्गपर न आये तो तुम्हे विद्यालयसे पृथक करा देगे।

मैं—(मनमे) तुमने नही खाया। गुरुजीकी आज्ञासे लाया। पण्डितजी महान विवेकी व दयालू है। पृथक न करेगे। आकर गोपालदासजी बरैया से मैने यह सब कुछ कह दिया।

मैं—मेरेसे ये दो अपराध बन गए है। क्या आप मुझे खुलनेवाले (मथुराके) विद्यालयमें न रखेगे ?

प—तूने तो नही खाया।

मैं—नही महाराज मैने नही खाया।

पं०—सन्तोष करो, चिन्ता छोडो। तुम्हारे वे सब अपराध क्षमा किये जाते है। यदि अष्टमी व चतुर्दशीका दिन हो तो कहारको साथ ले जाया करो।

३. उग्र प्रकृति

जब मैने सप्तम प्रतिमाके व्रत ग्रहण करनेका संकल्प किया तब बाईजीने मुझे मना करते हुए बालचन्दजीको बताया कि। 'भैया बालचन्दजी ! इसकी प्रकृति सरल है परन्तु उग्र है—क्रोधी है। यह ठीक है कि स्थायी क्रोध नही। मायाचारी नही, भोजन इसके विरुद्ध कुछ भी

हुआ कि इसका क्रोध १०० डिग्री हो जाता है। थाली फोडदे, लोटा फोडदे, स्वयं भूखा मरे। मै ही इसके अनर्गल क्रोधको सहती हूँ, और सहनेका कारण यह है कि इसे प्रारम्भसे पुत्रवत् पाला है।

४. छल

(१) एक बार जब मैं मथुरा पढता था। मुझे बाईजी को मिलनेके लिये जानेकी इच्छा हुई। मैने विद्यालयके मन्त्री श्रीगोपालदासजी वरैया को झूठ मूठ यह पत्र लिखा कि बाईजीका स्वास्थ्य अत्यन्त खराब है। मुझे १५ दिनके लिये सिमरा बुलाया है। आपने उत्तर दिया कि बाईजी का जो पत्र आया है, उसे हमारे पास भेज दो।

मैने बाई जीके हस्ताक्षरोका बनावटी पत्र अपने पते पर लिखकर मथुराकी ही डाकमे डाल दिया, जो अगले दिन मुझे विद्यालयमें प्राप्त हो गया। यही झूठा पत्र लिफाफेमे बन्दकरके पण्डितजीके पास भेज दिया। उत्तर आया तुम शीघ्र ही चले जाओ। परन्तु लौटते समय हमसे आगरामे मिलकर फिर मथुरा जाना।

पण्डितजी मेरी मायाचारीको परख गए थे। जब जतारा होकर ५ दिन पश्चात् आगरा गया तो मुस्कराते हुए बोले कि यह श्लोक याद कर लो कि—

उपाध्याये नटे धूर्ते कुट्टिन्यां च तथैव च।
माया तत्र न कर्तव्या माया तैरेव निर्मिता ।।

श्लोक तुरत याद हो गया, और गुरुजीका भावभी समझ गया। मैने उनसे नम्र प्रार्थना की कि 'महाराज! मैने बडी गलती की है, जो आपको मिथ्या पत्र देकर असभ्यता का व्यवहार किया।' गुरुजीने तुरत क्षमाकर दिया, और कहा कि इसी प्रकारकी (दोष-स्वीकृतिकी) प्रकृतिको अपनाओगे तो सदा आनन्दसे रहोगे।

(२) एक बार की बात है कि मेरठ वाले क्षु० लालमनदासजी बनारस सिंहपुरी (सारनाथ) की यात्राको गए थे, और मै भी वहाँके दर्शनके लिये गया था। मै उस समय छात्र था। मैंने सविनय आपको प्रणाम किया। आपने प्रश्न किया—'कुछ त्याग कर सकते हो ?'

कुछ विचारके पश्चात् मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। बोले कि— 'भोजनमें तुम्हें जो शाक सबसे प्रिय हो उसका त्याग करदो।' मुझे भिण्डी अत्यन्त प्रिय थी। मैने कहा—'जब तक बनारस भोजनालयमें नहीं पहुचा तब तक त्याग है।'

महाराज बोले—'बेटा! हम समझ गए। ऐसी दम्भिता सुखकारी नहीं। छोड़ना इष्ट नही था तो सीधा उत्तर देते कि हम नहीं छोड़ सकते। छलसे काम न करना। मैने महाराजसे कहा—'१२ मासको त्याग दिया।' महाराज प्रसन्न होकर आशीर्वाद देने लगे।

५. रसगृद्धि

(१) भोजन करने बैठे ही थे कि वर्णी मोतीलालजी आ गए। दूसरे दिन विचार हुआ कि रस-खीर खाना चाहिये। श्री सर्राफ मूलचन्द जीसे रस मँगवाया। हम और मोतीलाल जी उसके सिद्ध करनेमें लग गए। बाईजीने कहा—'भैया ११ बज गए, अब भोजनकर लो।' हमने एक न सुनी और खीरके बनानेमे ११॥ बजा दिये। सामायिकका समय हो गया।

सामायिकके बाद १२॥ बजे हम दोनों भोजनके लिये बैठे। बाईजी रोटी परोसने लगी। मैने कहा—'पहले खीर परोसिये'। उन्होंने कहा कि 'भोजनके पश्चात् खाना।' हमने कहा—'जब पेट भर जावेगा तब क्या खावेगे?' उन्होने कहा—'अभी खीर गरम है।' हमने कहा— 'थालमें ठण्डी हो जायेगी'। उन्होंने खीर परोस दी।

एक-एक ग्रास मुँहमें जानेके बाद ज्यों ही दूसरा ग्रास उठाने लगे त्यों ही दो मक्खियाँ परस्परमें लडती हुई आई और एक हमारी तथा दूसरी मोतीलालजी की थालीमें गिर गई। खीर गरम थी, अत गिरते ही दोनोंके प्राणान्त हो गए। अन्तराय आ जानेसे हम दोनो उस दिन भोजनसे वञ्चित रहे। बाईजी बोली—'भैया। लौलुपता अच्छी नही।' मैं सुनकर चुप रह गया।

(२) [जयपुर आया तब मेरे पास ७५-७६ रुपये थे]। मन्दिरके पास श्री नेकरदासजीकी दुकान थी। उनका कलाकन्द भारतमे प्रसिद्ध था। मुझे उसमें अत्यन्त स्वाद भाया। मैं १२ मास जयपुरमें रहा, परन्तु

एक दिन भी उसका त्याग न कर सका। मनुष्योंको चाहिये कि ऐसी प्रकृति न बनावें कि कष्ट उठाने पर भी उसे त्याग न सके।

६. ठाट बाट

बण्डामे पञ्च कल्याणक थे। हम वहाँ गए। राजगद्दीके समय मुझे भी बोलनेका अवसर आया। व्याख्यानके समय मेरा हाथ मेजपर पडा, जिससे मेरी अंगूठीका हीरा निकल गया। वहाँसे डेरे पर आकर सो गए। प्रात: काल सामायिकके पश्चात् पता चला। मैने स्वयं-सेवकोंको बुलाया और मेलामे यह घोषणा करा दी, कि वर्णीजीकी अगूठीमें से हीरा निकलकर कही मण्डपमे गिर गया है, जो कि ५००) का है। यदि किसीको मिल जाये तो कॉच समझकर फेंक न दे' 'इत्यादि।

वह हीरा जिस बालकको मिला, उसने अच्छा काँच समझकर रख लिया था। जब मै भोजन कर रहा था तब हीरा लेकर आया और भोजनके बाद मुझे देते हुए बोला, कि एक बात आपसे कहना हमारा कर्त्तव्य है। "आपका महान पुण्यका उदय है, कि जो ऐसी माँ मिल गई। उनके उदार भावसे आप यथोचित् द्रव्य व्यय कर सकते हो। परन्तु आप ब्रह्मचारी है। आपको हीरेकी अगूठी क्या शोभा देती है? यदि आपके तेलका हिसाब लगाया जावे तो मेरी समझमे उतनेमे एक आदमीका भोजन हो सकता है। यदि फलादिककी बात कही जावे तो आप लज्जित हो उठेगे। अत: आशा करता हूँ कि आप इसका सुधार करेंगे"।

उसके मुखसे अपनी इतनी खरी समालोचना सुनकर मै बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसी समय मैने वह हीरा सिघई कुन्दनलालको दे दिया, तथा भविष्यमे हीरा पहननेका त्याग कर दिया। साथ ही सुगन्धित तेलोका व्यवहार भी छोड दिया।

७. निर्विवेक उदारता

(१) सागरम एक दिन बाजार जाते समय एक गाडी लकडीकी मिली। मैने उसके मालिकसे पूछा कितनेमे दोगे? वह बोला—'पौने तीन रुपया मे।' मैने कहा ठीक कहो। वह बोला कि 'सबेरेसे दोपहर

हो गई। कुछ खाया नही। फिर भी लोग पौने दो रुपयासे अधिक नही लगाते।' मैने कहा—'अच्छा चले चलो, पौने तीन रुपया ही देगे।'

लकडी रखने लगा तो मैने कहा कि काटकर रक्खो। वह बोला कि काटनेके दो आने और दो। मैने कहा कि पौने दो की बजाये पौने तीन दिये, फिर भी दो आने और माँगते हो। वह बोला कि "आपने पौने तीन रुपयामे ठहरा ली, इसमें मेरा कौन-सा अपराध है। उस समय यह तो नही कहा था कि काटना पडेगा, अब दो आनाके लिये क्यों बेईमानी करते हो। लो मैं तो काटकर रखे देता हूँ, परन्तु आप अपनी भूलपर पछताओगे।"

भोजन करनेके लिये बैठा। आधे भोजनके बाद मुझे अपनी भूल याद आई। अन्तमे एक सेर पक्वान्न और दो आने लेकर चला। दो मील चलनेके बाद वह गाडी वाला मिला। मैने उसे दो आने और पक्वान्न दिया। वह खुश हुआ और आशीर्वाद देते हुए बोला—'देखो जो काम करो विवेकसे करो'। यदि मेरा उपकार करना था, तो लकडीके तो पौने दो ही देते और एक रुपया स्वतन्त्र देते। तब दो आनेके लिये बेईमान न बनना पडता।

(२) अभ्यास रूपसे जब सप्तम प्रतिमाके व्रत धारण किये, तब बाईजीने तथा बालचन्दजीने मुझे मना किया। बाईजीने बालचन्दजीसे कहा—'भैया बालचन्दजी! मै आपकी प्रकृतिको जानती हूँ। इसके स्वभावका यह महान दोष है, कि यह पूर्वापर आलोचना किये बिना ही कार्यको प्रारम्भ कर देता है, चाहे उसमे उत्तीर्ण हो या अनुत्तीर्ण। दानी है, पर जहाँ दान देना चाहिये इसका विवेक नही।

(३) सम्मेद शिखर पर जब बाईजीने दूसरी प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये तब भी उन्होने मुझे उपदेश दिया कि योग्य पात्रको दान देना। विवेक शून्य दानकी कोई महिमा नही है।

८. प्रायश्चित

बनारस विद्यालयमे पढता था। बाबा भागीरथ दास जी अधिष्ठाता थे। उनका शासन अत्यन्त कठोर था। रामनगर की प्रसिद्ध रामलीला चलती थी। आश्विन सुदी ९ को यह देखनेके लिये कि किस प्रकार

पापके कारण अधिक से अधिक वैभवशाली भी पतन को प्राप्त हो जाता है, मैं ५,६ अन्य छात्रोंको साथ लेकर नौका द्वारा, रामलीला देखने को चला गया। बाबा जी सामायिकको बैठ गए थे, इसलिये प्रत्यक्ष आज्ञा न ले सका, वैसे ही उनके समक्ष कह कर चला गया।

रात्रिको १० बजे लौटा। बाबा जी बहुत बिगडे और विद्यालयके मन्त्री आरा निवासी पं० जैनेन्द्र किशोर जी के नाम इस आशयका पत्र लिखकर चपरासीको डाकमें डालनेके लिये दे दिया कि गणेशप्रसाद जैसे उदण्ड छात्रको रखना पाठशालाको कलंकित करना है। मैने बाहर जाकर चपरासीको यह समझाकर उससे पत्र ले लिया कि बाबाजीका क्रोध क्षणिक है, अभी शान्त हो जायेगा। उसने झूठ मूठ आकर कह दिया कि पत्र डाल आया।

अनुनय विनय करने पर, तथा छात्र-गणके समक्ष रामलीला देखनेका अपना निर्मल अभिप्राय बताकर आनेको निर्दोष सिद्ध करते हुए मैने जब सबसे क्षमा मागी तो बाबाजीको दया आ गई। बोले कि तुम्हारा अपराध क्षमा किया जाता है, और इस आनन्दमें कलको विशेष भोजन खिलया जायेगा। परन्तु मेरे मुखसे जब मेरा उपरोक्त अपराध सुना तो उन्हे बडा दुःख हुआ। 'इसका प्रायश्चित् तुम स्वयं ले लो' इतना मात्र कह कर उन्होने अपने पदसे इस्तीफा दे दिया। मैने प्रायश्चित स्वरूप वह सामूहिक भोजन छात्रोंकी पंक्तिसे बाहर बैठकर किया। भोजनोपरान्त छात्रोंके भोजनका स्थान अपने हाथसे पवित्र किया, और एक मासके लिये मधुर भोजनका त्याग किया। ●

४–व्रत व त्याग

१. व्रतारोपण

(१) बरुआसागरसे हम और बाई जी सागर चले गए। उस समय मैं उत्तम वस्त्र रखता था। बड़े बाल थे, उनमें आठ रुपये सेरका चमेलीका तेल डालता था। एक वर्षमें १२ धोती-जोड़े बदलता था। परन्तु इतना होनेपर भी मेरी पापमय प्रवृत्ति स्वप्नमें भी नहीं होती थी।

प्रतिदिन एक कुंजड़ी की दुकानसे शाक लाता था। वह मुझे खूब अच्छा-अच्छा छाटकर देती थी। अधिकाश लोगोके कान होते है, आँख नही। ससार सबको पापमय देखता है। मेरी यह् वृत्ति लोगो की शंकित दृष्टिमे खटकने लगी। मेरी आत्मा पर गहरा प्रभाव पडा। एक दिन जब कि छेदीलालजीके बागमे सब जनियोका भोजन था, मैने सबके समक्ष इस बातका स्पष्टीकरण कर यह निश्चय किया कि मै आजन्म ही ब्रह्मचर्य प्रतिमा का पालन करूगा। घर आकर अपने पासकी सारी बाह्य सामग्री वितरण कर दी, और यह नियम किया कि किसी त्यागी महाशयके समीप इस व्रतको नियम पूर्वक अगीकार करूंगा। परन्तु अभ्यास अभीसे करता हूँ।

मेरे व्रतमें चरणानुयोगकी बहुतसी गलतियाँ रहती थी, और उन्हे जानता भी था। परन्तु शक्तिकी हीनता-जनित परिणामोकी दृढता न

होनेसे यथा योग्य व्रत नही पाल सकता था। अतः धीरे-धीरे उसमें सुधार करने लगा।

(२) बाबा गोकुलचन्द एक अद्वितीय त्यागी थे। आपहीके उद्योगसे इन्दौरमे उदासीन-आश्रमकी स्थापना हुई थी। मैने कुण्डलपुरमें उनसे प्रार्थनाकी कि, 'महाराज! मुझे सप्तमी प्रतिमा के व्रत दीजिये। पहले ब्र० शीतल प्रसाद जी से भी इस विषयमे प्रार्थना की, परन्तु कुछ बातोंमें मतभेद होनेके कारण, उन्होने देना उचित नही समझा। बाबाजीने कहा—'अच्छा आज ही व्रत ले लो।' मैने आनन्दसे श्रीवीर प्रभुकी पूजा की। अनन्तर बाबाजीने मुझे सप्तम प्रतिमाके व्रत दिये।

(३) ईशरीमे सात वर्ष रहकर जब सागरकी ओर पैदल यात्रा कर रहा था, तब मार्गमे बनारसकी हद छोड़ देनेके बाद दसवीं प्रतिमाका व्रत पालने लगा।

(४) बुन्देलखण्डका पर्यटन करते हुए बरुआसागर आया। फाल्गुन शुक्ल वीर नि०२४७४ का अष्टान्हिका पर्व था। वहाँ त्यागी सम्मेलन हुआ जिसमे ५० त्यागी पधारे। विद्वद्-परिषदका अधिवेशन भी हुआ, जिसमें प० कैलाशचन्दजी आदि अनेक पण्डितोका शुभागमन हुआ। बा० रामस्वरूपजी तथा उनकी धर्मपत्नीने दूसरी प्रतिमाके व्रत लिये। मैने भी मिति फाल्गुन सुदी सप्तमी २४७४ को प्रातःकाल श्री शान्तिनाथ भगवान की साक्षीमे आत्म कल्याणके लिये क्षुल्लकके व्रत लिये।

२. सवारीका त्याग

(१) बाईजीके समाधिकरणके पश्चात्, उनके वियोगसे दुःखी होकर शान्तिके अर्थ द्रोणगिरिके लिये चला। भैयालालजी गोदरेने मोटरकी सबसे आगे वाली सीट पर बैठा दिया। मोटर बण्डा पहुची। वहाँ ड्राइवर ने कहा—'वर्णी जी! आप इस सीटको छोड़कर बीचमें बैठ जाइये।' मै बोला 'क्यों?' वह बोला, 'यहाँ दारोगा साहब आते है, वे शाहपुर जा रहे है'। मैने कहा—'यह न्याय नही बलात्कार है'। चुपचाप गाड़ीसे उतर गया और उस रोजसे यह प्रतीज्ञा की कि अब आजन्म मोटर पर न बैठूँगा।

(२) एक दिन शाहपुरसे लोकमणि दाऊ आए। उनके कहनेसे मै

शाहपुर चला गया । प० हुकुमचन्दजी सलावा वाले आदि कुछ अन्य भी सज्जन वहाँ आ गए । तात्विक चर्चाका विशेष आनन्द रहा । श्री कमलापति सेठ और वर्णी मोतीलालजी परस्परमे चर्चाकर रहे थे । कि—"एकान्तमे रहना कल्याणकारी है । वर्णीजीकी प्रकृति चञ्चल है । यदि वे यातायात छोड़ देवे तो हम अनायास उनके साथ रहने लगेगे और उनके साथ आजन्म जीवन निर्वाह करेंगे । मैने कहा कि—'यदि मै रेलकी सवारी छोड़ दूँ तो क्या आप लोग भी छोड सकते है' ? दोनो महाशय बोले, 'इसमे क्या शक है ?'

मै भोलाभाला उन दोनो महाशयोंके जालमे फँस गया । उसी समय उनके समक्ष प्रतीज्ञा कर ली कि—'मैने आजन्म रेलकी सवारी त्याग दी' । उन्होने कुछ छूट छाट रखकर त्याग किया और मुझसे भी वैसा ही करनेके लिये कहने लगे । परन्तु मै अपने विचारोंपर दृढ रहा । भाद्रमासके पश्चात् सब अपने-अपने स्थानपर चले गए, मै वही रह गया । आधे आश्विनमे पैदल सागर गया ।

३. सर्वस्व परित्याग

(१) बाईजीका समाधि मरण हो जानेपर मै बहुत दु खी हुआ । मैने कहा—'उन्होने मेरे लिये अपना सर्वस्व दे दिया । आज मैं जो कुछ उन्होने मुझे दिया, सबका त्याग करता हूं । मेरा स्नेह बनारस विद्यालय से है, अत कल ही बनारस भेज दूँगा । जो मेरा पुस्तकालय था वह भी मैने स्याद्वाद विद्यालयको दे दिया ।

(२) बाईजीके वियोगमे चित्त स्थिर न रहा तो पैदल श्री गिरिराजकी यात्राके लिये चल पडा । जब बरुआसागर पहुचा तो एक दिन श्री कुन्दनलालजी सर्राफ कहने लगे कि—'बाईजी एक हजार रुपया हमारे पास इस शर्तपर जमा करा गई थी कि इसका पाँच रुपया मासिक ब्याज भैयाको देते जाना, सो लीजिये । मैंने कहा—'मुझे रुपया नही चाहिये । उसे यहाँकी (अपने वाली) पाठशालाके नाम जमा करा दीजिये । बाईजीके भावका मै व्याघात नही कर सकता । मै पाँच रुपया मासिक ब्याजका ही लेनेवाला हूँ ।

४. जीवन संघर्ष

अपने सारे जीवनमे वर्णीजी दृढ संकल्पी व कर्मठ बनकर रहे। अपने संकल्पके सामने न वे सम्भव असम्भवका विचार करते थे, और न अपनी क्षमताका। "जिस बातका सकल्प करो उसकी पूर्तिके अर्थ तन मन जीवन सब कुछ दांवपर• लगादो, और देखोगे कि असम्भव किस प्रकार सम्भव हो जाता है", यह था उनका प्रकृति जात अन्तरंग सिद्धान्त। फिर 'जहाँ संकल्प तहाँ मार्ग और जहाँ मार्ग तहाँ सफलता', इस उक्तिके अनुसार उन्हे असफलताका मुख क्यो देखना पडता। पवित्र हृदय होनेके कारण सर्वत्र उनका पुण्य भी उनका पथानुगामी होता था।

यह बात अवश्य है कि अपनी इस दृढ सकल्पताके कारण उनको ऐसी-ऐसी विकट परिस्थितियो व परीक्षाओमेसे गुजरना पडा, कि ऐसी अवस्थामे अन्य व्यक्तिके लिये साहस व धैर्यका पल्ला पकडे रहना शायद सम्भव न होता।

ज्ञान पिपासाको हृदयमे लिये आपको कहाँ-कहाँ की धूल छाननी पडी, किन-किनके पास कैसी-कैसी स्थितिमे अध्ययन करना पडा, किस प्रकार बनारसमे एक ब्राह्मण विद्वान द्वारा अपमानित होनेपर अत्यन्त साधन विहीन बाल्यावस्थामे ही जैन विद्यालयोका निर्माण करानेका सकल्प जागृत हुआ, किस प्रकार अज्ञानजन्य रूढियोसे त्रस्त जैन समाज का त्राण करनेके लिये आपका हृदय छटपटा उठा, और किस प्रकार स्थान-स्थानपर भ्रमण करके आपने अपने इन सर्व उद्देश्योको पूर्ण किया, यह सर्व कथन आगेके प्रकरणोमे क्रमश किया जानेवाला ।

आप ही की प्रेरणासे गिरिराजके पादमूल ईशरीमे उदासीन आश्रम की स्थापना हुई। परन्तु समाजोत्थानकी अभ्यन्तर टीसने आपको उस समय तक निश्चल बैठने न दिया जब तक कि आपको ८० वर्षीय वृद्धावस्थाके छोरोका स्पर्श न हो गया। यहाँ पहुचकर आपके जीवनमे मोड़ आया, चित्तवृत्ति प्रवृत्तिसे निवृत्तिकी ओर झुकी और स० २०१० (सन् १९५४) मे आप यह सकल्प करके ईशरी आ गए, कि अब जीवनके ये अन्तिम दिन पार्श्वप्रभुके चरणोंमे ही बीतेंगे और उन्हीके पादमूलमें समाधि पूर्वक इस अस्थि पञ्जरका त्याग करेंगे।

और इस प्रकार जैन जगतको आलोक प्रदान करनेके लिए अवतीर्ण जीवन-ज्योति हम सभोके देखते-देखते ईशरी आश्रमके प्राङ्गणमें तिरोहित हो गई। वर्णीजी चले गए पर वर्णीजीकी स्मृति सदा ही जैन सन्ततिके हृदयपट पर जीवित रहेगी।

२

•

ज्ञान-पिपासा

•

नगर-नगर और डगर-डगरसे ज्ञान सुमन संचित
किये, और ग्राम-ग्राममे पाठशालाओकी
स्थापना करके तम· प्रच्छन्न जैन
जगतमें आलोककी प्रतिष्ठा की

१–सुमन सञ्चय

•

१. जयपुर प्रवेश

भायजीने मुझे बताया कि धर्म जाननेके लिये तत्त्व ज्ञानकी आवश्यकता है और वह आगमज्ञ पण्डितोंके सहवासमे होगा। अत तुम्हे उचित है कि शास्त्रोंका अध्ययन करो। जयपुरमे अच्छे-अच्छे विद्वान है। वहाँ जानेसे तुम्हे यह लाभ हो सकेगा।

गिरनारजीकी यात्राके लिये जाते हुए किन्ही सेठजीके आग्रहसे मै उनके साथ बम्बई चला गया था। वहाँ पर मन्दिरमे एक जैन पाठशाला थी। वहाँ श्रीगुरुजी (प० पन्नालाल बाक्लीवाल जी) की कृपासे संस्कृतका अध्ययन करने लगा और भाद्रमासमे रत्न करण्ड श्रावकाचार तथा कातन्त्र व्याकरणकी पञ्चसन्धिमे परीक्षा दी। मै दोनो ही विषयोंमें उत्तीर्ण हुआ, साथम २५ रुपया इनाम भी मिला। समाज प्रसन्न हुई।

गुरुजीने मुझे अजमेरके पास केकडी है, वहा भेज दिया। पन्द्रह दिन केकडीमे रहकर जयपुर चला गया। यहां १२ मास रहकर श्री वीरेश्वर जी शास्त्रीसे कातन्त्र व्याकरणका अभ्यास किया। श्री चन्द्रप्रभु चरित्र भी पाँच सर्ग पढा। श्री तत्त्वार्थ-सूत्रजीका अभ्यास किया और एक अध्याय श्री सर्वार्थसिद्धिका भी अध्ययन किया। इतना पढ पुन बम्बई-की परीक्षामे बैठ गया। श्रीजीके चरणोके प्रसादसे मै परीक्षामे उत्तीर्ण हो गया। महती प्रसन्नता हुई।

२. मथुरा छात्रावास प्रवेश

बम्बई परीक्षामे सफल हो जानेपर आगरासे श्रीमान् स्वर्गीय पं० गोपालदासजीका यह पत्र आया कि मथुरामें दिगम्बर जैन महाविद्यालय खुलनेवाला है, यदि तुम्हे आना हो तो आ सकते हो। उनकी आज्ञा पाते ही मै जयपुरसे आगरा चला गया। यहाँ ही मेरे परमोपकारी पूर्वोक्त श्री गुरुजी भी आ गए और प० बलदेवदासजीसे सर्वार्थसिद्धिका अभ्यास करने लगे। मै भी आपके साथ जाने लगा। साथ-साथ श्रीमान् बरैयाजी से न्याय दीपिका भी पढा करता था।

मथुरा चौरासीमें श्रीमान् राजा साहबके कर कमलों द्वारा महा-विद्यालयकी स्थापना हुई। प० गोपालदासजी बरैया उसके मन्त्री नियुक्त हुए। आपने प्रथमाके कोर्समे व्याकरणमे कातन्त्रको, न्यायमे न्याय-दीपिकाको, और साहित्यमें चन्द्रप्रभ चरितको ही स्थान दिया।

३. खुर्जा पाठशाला प्रवेश

मथुरा दो वर्ष रहा। पश्चात् कारणवश खुरजा चला गया यहाँ एक ब्राह्मणोंकी संस्कृत पाठशाला थी। उसमे दो वर्ष पढा और बनारसकी प्रथम परीक्षा तथा न्याय मध्यमाका प्रथम खण्ड यहाँसे पास किया। यद्यपि यहाँ सब प्रकार की सुविधा थी, परन्तु फिर भी श्री सम्मेद शिखर जीकी यात्राके विकल्पके कारण खुरजा छोड़ना पड़ा।

४. टीकमगढ़ प्रवेश

सम्मेद शिखरजी की यात्रा करके बाईजीके यहाँ सिमरा पहुँच गया। यहाँ पता चला कि टीकमगढमे न्यायके बडे भारी विद्वान दुलार झा राजाके प्रमुख विद्वान है। उनके पास जाकर मैने मुक्तावली, पञ्चलक्षणी, व्यधिकरण आदि न्यायके ग्रन्थोंका अध्ययन किया। यद्यपि उनकी मेरे ऊपर बहुत अनुकम्पा थी, परन्तु बलि प्रथाके पोषक होनेके कारण उनमे मेरी अरुचि हो गई। और मै अध्ययन छोड़कर सिमरा लौट आया।

५. बनारस प्रवेश

सम्वत् १९६० की बात है। बाईजीकी आज्ञा लेकर पं० ठाकुरदास

जीके पास हरिपुर चला गया, और उनसे प्रमेय-कमल मार्त्तण्ड पढने लगा। यहाँ पर कुछ दिन रहकर सम्बत् १९६१ में बनारस चला गया। क्वीस कालेजके अध्यापकने जैनीको पढानेसे मना किया, जिसके कारण जैनत्वका अपमान समझकर वहाँ एक विद्यालयकी स्थापना कराई। जिसका अपना एक पृथक इतिहास है।

उसी विद्यालयमे मै आनन्दसे पढने लगा। साथ-साथ श्री अम्बानाथ जी शास्त्रीसे न्याय शास्त्रका अध्ययन करने लगा। उनके अनुग्रहसे अष्ट-सहस्री ग्रन्थ एक वर्षमे पूर्ण हो गया। मैने श्री शास्त्रीजीके चरण-कमलोमे ५००) की एक हीरेकी अगूठी भेट की। उन्होने मना किया, परन्तु मै उनके चरणोमे लेट गया। मैने नम्र शब्दोमे कहा कि 'महाराज! आज मुझे इतना हर्ष है कि मेरे पास राज्य होता तो उसे भी आपके चरणोमे समर्पित कर तृप्त नही होता।

सम्वत् १९७७ की बात है कि श्री शास्त्रीजी महोदयसे जो अब हिन्दू यूनीवर्सिटीमे सस्कृत विभागके प्रिंसिपल हो गए थे, विश्वविद्यालय मे ही न्याय शास्त्रका अध्ययन करने लगा। दो वर्षके अध्ययनके पश्चात् न्यायशास्त्रीकी परीक्षाका फार्म भर दिया। परन्तु फार्म भरकर ललित-पुर गज-रथ महोत्सव देखनेको चला गया। दो माससे अधिक समय लग गया। केवल बीस दिन परीक्षाके रह गए।

शास्त्रीजी बहुत बिगडे। मैने अपना अपराध स्वीकार किया। इतना बडा कोर्स बीस दिनमे कैसे पढना। श्री पार्श्वप्रभुका दर्शन, महा-मन्त्रको जाप और जिन सहस्रनामका पाठ, बस यही थे एकमात्र सम्बल। इसी तरह १५ दिन पूर्ण किये। परीक्षावाले दिन प्रात शौचादिसे निवृत्त होकर उपरोक्त कार्य क्रम पूरा किया और विश्वविद्यालयको चले गये। मार्गमे पुस्तकके ५-६ स्थल देख लिये। श्री महामन्त्रके प्रसादसे वे ही स्थल प्रश्न पत्रमे आ गए। आनन्दकी सीमा न रही।

परीक्षा फल निकला शास्त्री जी बडी प्रसन्नतासे बोले—'अरे बेटा! तेरा भाग्य जबरदस्त निकला। तू फर्स्ट डिवीजनमे उत्तीर्ण हुआ। इतना ही नही फर्स्ट पास हुआ। अब तू शास्त्राचार्यकी परीक्षा पासकर। तुझे २५) मासिक छात्रवृत्ति मिलेगी। क्वीस कालेज बनारसकी न्याय-मध्यमामे तो मै पहले ही सम्वत् १९६४ मे उत्तीर्ण हो चुका था। अत आचार्य प्रथम खण्डके पढ़नेकी कोशिश करने लगा।

परन्तु इतनेमे बाईजीके मस्तक मे शूल वेदना हो गई । उनकी वैयावृत्यमे पढ़ना लिखना छूट गया । यद्यपि बाईजीके आग्रहसे बनारस चला आया, परन्तु चित्त बाईजीकी बीमारीमे था, अत अभ्यासकी शिथिलता रही । फल यह हुआ कि परीक्षामे अनुत्तीर्ण हो गया ।

बाईजीकी आँखोका आप्रेशन हो चुका तब वह कहने लगी—'बेटा तुम्हारा पढना छूट गया इसका रज है । तुम फिर बनारस चले जाओ ।' उनकी आज्ञासे मे पुन बनारस आकर शास्त्रीजीसे न्याय शास्त्रका अध्ययन कर, तीन खण्ड न्यायाचार्यके पास हो गया ।

६. पुन टीकमगढ़

विश्व विद्यालयके सुप्रिण्टेण्डेण्टसे मनोमालिन्य होनेके कारण मै पुन बनारससे टीकमगढ आ गया, और पूर्वोक्त दुलार झॉजीसे न्याय पढने लगा । इसी समय उनके पुत्र श्री शान्तिलाल झॉ अपने पिताके दर्शनार्थ वहाँ आये । एक दिन वे हमसे बोले कि 'यह तो अब वृद्ध हो गए है, आप हमसे न्याय पढो ।' मै उन्हे साथ लेकर बरुआ सागर चला आया । श्री सर्राफ मूलचन्द जो उन्हे ३०) मासिक देने लगे । मै उनसे पढने लगा ।

सम्वत् १९८४ मे उन्हीके साथ एक बार चकौती (जिला दरभगा) आना पडा । यह ब्राह्मणोकी बस्ती थी । समस्त वातावरण न्यायमय था । यहाँ महदेव झॉ नामके एक बडे भारी नैयायिक थे । यद्यपि यह बात श्री शान्तिलाल जीको बहुत अनिष्टकारक हुई, तो भी मै उनके पास अध्ययन करने लगा ।

७. नवद्वीप प्रवेश

चकौती गॉवके मास भक्षी वातावरणको सहन न करके मै नवद्वीप आया । वहाँ भी सब छात्र मासभोजी थे । अत वहाँ भी ठहर न सका । कलकत्ता चला गया । पण्डित ठीकुरदासजीने सस्कृत-कालेजमे नाम लिखा दिया । वहाँ एक बङ्गाली विद्वानसे न्याय शास्त्रका अध्ययन करने लगा । ६ मासके बाद चित्तम उद्वेग हुआ, जिससे फिर बनारस चला आया और उन्ही श्री अम्बानाथ जी शास्त्रीसे अध्ययन करने लगा । ३ खण्ड न्यायाचार्यके पास किये । फिर उद्वेगवश बाईजीके पास बरुआसागर चला गया ।

२—शिक्षा-संस्था-तीर्थ-प्रवर्तन

१. स्याद्‌वाद विद्यालय बनारस

१ स्थापना—

सम्वत् १९६१ में विशेष अध्ययनके लिये बनारस आया। क्वीन्स कालेजके मुख्य अध्यापक जीवनाथ मिश्र थे। उनके घर पर जाकर उनके चरणोमे एक रुपया भेट किया और न्याय पढनेकी इच्छा व्यक्त की।

पं०—कौन ब्राह्मण हो।

मै—महाराज मै ब्राह्मण नही। मेरा मौलिक मत श्री रामका उपासक था। परन्तु अब विश्वास जैन धर्ममें दृढ़ हो गया है।

प०—(आवेग मे रुपया फेंकते हुए।) 'चले जाओ हम नास्तिक लोगोको नही पढाते। हठग्राही मनुष्योको न्यायविद्याका पण्डित बनाना नास्तिक मतकी पुष्टि करना है।

मैं चुप चाप वहाँसे आकर अपनी कोठरीमे रुदन करता हुआ सो गया। स्वप्नमें कोई एक सुन्दर पुरुष कहता दिखाई दिया कि तुम्हारे परम हितैषी बाबा भगीरथ जी है, उन्हे बुलाओ। आपको बहुत सहायता मिलेगी। विशुद्ध परिणामसे पुरुषार्थ करो। सब कुछ होगा।

बाबाजी पत्र पाते ही बनारस आगए। बनारसमे अग्रवाल महासभा का जलसा हुआ। वहाँ से लौटते समय यही चर्चाका विषय था कि

दिगम्बर जैन विद्यालय कब स्थापित होगा। यह सुनकर झम्मनलालजी कामावालोंने एक रुपया विद्यालयकी सहायताके लिये दिया। मैंने बड़ी प्रसन्नतासे ले लिया। बाबाजीने कहा कि एक रुपयेसे क्या होगा। मैंने कहा कि 'कौन जाने ? वीर प्रभुने यह एक रुपया ही जैन विद्यालयके उत्थानका मूल कारण देखा हो ?'

पोस्ट आफ़िसमें ६४ पोस्ट कार्ड लिये, और ६४ स्थानों पर भेज दिये। उनमें यह लिखा था, कि, "वाराणसी जैसी विशाल नगरीमें जहाँ हज़ारो छात्र संस्कृत विद्याका अध्ययन करते है, क्या हमारी दिगम्बर समाज १० या २० छात्रोंके अध्ययनका प्रबन्ध नही कर सकेगी। यह मेरी एककी ही नही, किन्तु अखिल समाजके छात्रोकी वेदना है।"

एक मासके भीतर बहुतमे महानुभावोके आशाजनक उत्तर आ गए। साथ ही १००) मासिक सहायताके वचनभी मिले। हर्षका ठिकाना न रहा। श्रीमान गुरु पन्नालालजी बाकलीवालको पत्र दिया। १० दिन बाद आपका शुभागमन हो गया। श्रीमान स्वर्गीय बाबू देवकुमारजी रईस आराको भी एक पत्र इस आशयका लिखा कि वह अपने भदैनी घाट वाले विशाल मन्दिरमे हमे विद्यालय खोलनेकी आज्ञा दे दें। वहाँ ५० छात्र सानन्द अध्ययन कर सकते हैं। ऊपर रसोई घर भी है। एक पत्र स्वर्गीय सेठ माणिक चन्दजी जे पी बम्बईको भी लिखा, जिसमे उनके कर कमलोंसे विद्यालयका उद्घाटन कराने की इच्छा व्यक्त की। आठ दिन बाद उनकी भी स्वीकृति आ गई।

दूसरे दिन बरुआ सागरसे बाई जीका पत्र आया कि भैया! आप पत्र देखते ही शीघ्र चले आओ। सर्राफ मूलचन्द जी सख्त बीमार है। दूसरे दिन बरुआसागर पहुँच गए। श्रीजीके प्रसादसे सर्राफ जीने स्वास्थ्यलाभ कर लिया। सर्राफ जीसे भी विद्यालयके विषयमे कहा। आपने कहा उत्तम कार्य है, २०००) गज शाही, जिनके १५००) कल्दार होते है, हम देवेंगे, हम लोग बहुत प्रसन्न हुए।

जेठ सुदी ४ को सहारनी से प० वशोधर जी तथा श्रीयुत गोविन्दराम जी, बम्बईसे सेठ साहब, आरासे बाबू देवकुमार जी, देहलीसे श्रीमान ला० मोतीलालजी, तथा श्री एडवाकेट अजितप्रसाद जी इत्यादि सब नेतागण आ गए और मैदागिनमें ठहर गए। जेठ सुदी ५ को बड़े समारोहके साथ विद्यालयका उद्घाटन हुआ।

२ द्रव्यकी व्यवस्था—

यद्यपि १००) मासिककी महायताके वचन तथा श्रीमान मूलचन्दजी सर्राफसे २०० गजशाही प्राप्त हो चुके थे, परन्तु इतने मात्रसे पाठशाला की स्थिति सम्भव नही थी।

विद्यालयका उद्घाटन हुआ। उस अवसरपर २५) मासिक से०माणिक चन्द जी बम्बई ने और इतना ही बाबू देव कुमार जो आरने देना स्वीकार किया। इसी प्रकार बहुतसे स्थायी द्रव्य तथा मासिक सहायता बनारस वाले पञ्चोने भी दी।

ईशरीके प्रथम सप्तवर्षीय निवासके समय गिरिडीह चातुर्मासमे विद्यालयके लिये ५०००) का दान मिला। ईसरीसे सागर जाते समय मार्गमे बनारस रुका। उस समय स्याद्वाद विद्यालयका उत्सव हुआ। चार हजार रुपयाका चन्दा हो गया। सागर से चलकर जब दमोह आया तो वहां सेठ लाल चन्दकी धर्म पत्नीने १०००) देना स्वीकार किया। [इसके अतिरिक्त बीच-बीचमें भी जहाँ कही जाता रहा या चातुर्मास करता रहा वहां से कुछ न कुछ सहायता प्राप्त होती रही, परन्तु इसका कोई ध्रुव फण्ड न हो सका।]

देहलीमें चातुर्मास था। आसौज वदी ४ सं० २००६ को मेरा जयन्ती उत्सव था। उस अवसर पर श्री शान्ति प्रसाद जी साहूने एक लाख रुपया स्याद्वाद विद्यालयको देकर अमर कीर्तिका अर्जन किया। और बहुत अशोमें विद्यालयकी त्रुटि दूर हो गई।

फीरोजाबाद मेलेके अवसर पर सेठ छदामीलाल जीने स्याद्वाद विद्यालयके घाटका जीर्णोद्धार करानेके लिये १०,०००) का दान घोषित किया।

मधुवनमे आयोजित स्वर्ण जयन्ती महोत्सवमे श्री साहू शान्ति प्रसाद जीने विद्यालयको चिरस्थायी करनेकी अपील की। समाजने हृदय खोल कर विद्यालयको सहायता दी। लगभग डेढ दो लाख की आय विद्यालय को हो गई।

और इस प्रकार विद्यालय अपने पाँव पर खडा हो गया।

३. विकास—

भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तसे छात्र आने लगे। पं०वंशीधर जी इन्दौर,

श्रीमान पं० माणिक चन्दजी न्यायाचार्य सहारनपुर, श्रीमान् पं० देवकी नन्दन जी व्याख्यान वाचस्पति इत्यादि बड़े-बड़े विद्वान् सब इस विद्यालय के छात्र है, जिनसे जैन वाङ्मयका बड़ा उपकार हुआ है।

विद्यालयके अधिष्ठाता पहले पण्डित दीप चन्द जी वर्णी हुए। परन्तु कुछ काल पश्चात् ही मेरी मूर्खता वश रुष्ट होकर विद्यालयको छोड़कर आप अलाहाबाद चले गए। तदनन्तर बाबा भागीरथ दासजी अधिष्ठाता हो गए।

गिरिराजकी पैदल यात्रा करते हुए जब स० २०१०मे बनारस पहुँचा तो यह देखकर प्रसन्नता हुई कि विद्यालयके छात्र व्युत्पन्न ही निकलते है। विनयके भण्डार है। श्रीमान् प० कैलाश चन्दजी, जो कि यहाँके मुख्याध्यापक है बहुत सुयोग्य है। आपका छात्रोंके ऊपर बहुत स्नेह है। परन्तु अब सब छात्रोंकी दृष्टि पाश्चात्य विद्याकी ओर झुक गई है। बाबू हर्षचन्द जी वकील अधिष्ठाता है।

४ स्वर्ण जयन्ती—

अपने जीवनके अन्तिम दिन श्री पार्श्वप्रभुके चरणोंमे बितानेका सकल्प करके स० २०१० मे म जब ईसरी आ गया, तब विद्यालयके अधिकारियोंका यह निश्चय हुआ कि ५० वर्ष हो जानेके कारण इस विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव सम्पन्न कराया जावे। मेरा बनारस पहुँचना अब सम्भव नही था, इसलिये उत्सवका आयोजन मधुवनमे रक्खा गया।

श्री साहू शान्ति प्रसाद जीने कलकत्तासे सपरिवार पधारकर उत्सव को अच्छी तरह सम्पन्न कराया। कलकत्तासे सेठ गजराजजी, श्रीबाबू छोटेलाल जी तथा उनके भाई श्री नन्दलाल जी आदि अनेक महानुभाव पधारे। हजारीबाग, कोडरमा, रांची, गिरिडीह आदिसे अनेक व्यक्ति सपरिवार आये। अन्य जनता भी इतनी अधिक आई कि मधुवनकी तेरहपन्थी, बीसपन्थी, तथा श्वेताम्बर कोठीकी सब धर्मशालाये ठसाठस भर गई। ऊपरसे डेरा तम्बुआका प्रबन्ध करना पड़ा।

विद्वानोंमे श्री प० बंशीधर इन्दौर, प० फूलचन्द जी बनारस, पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य सागर, प० मुन्नालाल जी समगौरिया सागर आदि अनेक विद्वान् आये थे काशीके सब विद्वान् थे ही।

रात्रिमें वर्णी जयन्तीका आयोजन था। दूसरे दिन स्याद्वाद् विद्यालय का स्वर्ण जयन्ती महोत्सव हुआ। साहू जीने अपना भाषण दिया, तथा उसमे विद्यालयको चिरस्थायो करनेकी अपीलकी।

२. गणेश दि० जैन विद्यालय सागर

१ स्थापना—

बुन्देलखण्डी प्रान्तके लोगोंकी रुचि विद्याध्ययनमे प्राय: नही ही थी। यदि किसीके धर्म करनेके भाव हुए भी तो श्रीजीके जलविहारमे द्रव्य लगा दिया, मन्दिर बनवा दिया या पचकल्याणक प्रतिष्ठा करा दी। ऐसे समयमे स्वर्गीय बाबा दोलतराम जीने लोगोका चित्त विद्या-दान की ओर आकर्षित किया। और बण्डा (सागर) मे एक छात्रावास तथा पाठशालाकी स्थापना करा दी। पाठशालाकी पढाई प्रवेशिका तक ही सीमित थी, और ३० छात्रोंके रहने तथा भोजनका उसमे प्रवन्ध था।

प्रति वर्ष जहाँ लाखो रुपया धर्मकार्यमे व्यय होता हो, वहाँके लोग यह भी न जाने कि देव शास्त्र गुरुका क्या स्वरूप है। अष्टमूल-गुण क्या है। अत मुझे इस प्रान्तमे एक विशाल विद्यालय और छात्रावासकी कमी निरन्तर खलती रहती थी।

ललितपुरके विमानोत्सवके अवसरपर मे वहां गया। वहाँ सागरके बहुतसे महानुभाव भी पधारे। मैंने अपना अभिप्राय इनके समक्ष रख दिया। लोग सागर गए और वहाँसे उत्तर आया—'आप आइये, यहाँपर पाठशालाकी व्यवस्था हो जायेगी।' हम 'सहदेव झाँ' नैयायिक जीको साथ लेकर वहाँ पहुँचे। वहाँ अचानक एक धनपति हूमराज जी कण्डिया का स्वर्गवास हो गया। धनका अधिकार उनकी पुत्रीको मिला। समाजके कहनेपर उनके दामादने सहर्ष १०००१) विद्यादानमे दे दिये। उनके भतीजे नन्हे मलजीने भी एक कोठी पाठशालाको लगा दी, जिसका मासिक किराया १००) आता था। अक्षय तृतीयाके दिन बडे गाजेबाजेके साथ पाठशालाका शुभ मुहूर्त श्री शिवप्रसादजीके गृहमे सानन्द हो गया।

पाँच छात्रोंसे पाठशाला चलने लगी। बाहरके लोगोंसे भी सहायता मिलने लगी। पढाई क्वीन्स कालेजके अनुसार होती थी। पहले पहल

बड़ी टीका टिप्पणियाँ हुई। कोई कहता—'आखिर गणेश प्रसाद वैष्णव ही तो हैं, उन्हे जैन धर्मकी पढाईसे क्या, इत्यादि। परन्तु दो वर्षके बाद जब पाठशालाके छात्र प्रवेशिकामे पास होने लगे, तब लोगोंको कुछ सन्तोष होने लगा। और जब वे रत्नकरण्ड-श्रावकाचार आदि सस्कृत ग्रन्थोका अन्वय सहित अभ्यास करने लगे, तब तो उनके हर्षका ठिकाना न रहा।

प० सिद्धामलजी, प० जीवन्धरजी शास्त्री इन्दौर, प० दरबारीलाल जी वरधा, प० दयाचन्दजी शास्त्री, प० माणेक चन्दजी न्यायतीर्थ, व पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य आदि प्रख्यात विद्वान इसी पाठशालाके छात्र रहे है।

इस प्रकार बुन्देलखण्डके केन्द्रस्थान सागरमे श्री सतर्कसुधातरङ्गिणी जैन पाठशालाका पाया कुछ ही समयमें स्थिर हो गया। अब मै पाठशालाकी सहायताके लिये देहातमे जाने लगा। बाबा दौलत रामजीकी पाठशाला वाले पूर्वोक्त बण्डामे भी पर्याप्त सहायता मिली। कुरीपुरके श्री भूरे डेवडियाने अपने आत्मयकारी समाधिमरणके अवसर पर पाठशालाको २००) दान दिये।

२ भवन-निर्माण—

श्री समैया जवाहरलालजी जिनकी कृपासे पाठशालाको चमेली चौकमे विशाल भवन मिला था, न जाने उनके मनमे क्या विचार आया, मुझे बुलाकर कहने लगे कि 'या तो पन्द्रह दिनमे मकान खाली करो या किरायनामा लिख दो।' श्री सिंहई बोले कि आप चिन्ता न करें। श्री स्वर्गीय ढाकनलाल जीका मकान जो कि घटियाके मन्दिरमे लगा हुआ है, उसमें पाठशाला ले चलो। झाड-बुहारकर चार दिनमे मकान दुरुस्त हो गया और पाठशाला उसमें आ भी गई, परन्तु उसमे कई कष्ट थे। एक हजार रुपया मरम्मतमे लगा दिये जावे तो सब कष्ट दूर हो जावे। पर रुपया कहांसे आवे?

श्री बट्टेदाऊ जो कि रेली ब्रादर्सके दलाल थे, हमारे साथ पाठशाला मे आये, और जहाँ श्री ढाकनलाल सिंघईके बैठनेका स्थान था, एक कुदारी मँगाकर वहां उन्होंने खोदा तो ३००) मिल गए। दूसरे दिनसे मरम्मतका काम चालूकर दिया। अब एक कच्ची अटारी थी। हमने

दाऊसे कहा कि इसे गिरवाकर छत बनवा दी जावे। दाऊने कहा कि ठीक है—वहाँपर उन्होंने एक भीत खोदी, जिससे ७००) मिल गया। इस तरह १०००) मे अनायास ही पाठशालाके योग्य मकान बन गया, और आनन्दपूर्वक बालक पढने लगे।

इस मकानमे भी विद्यालयके लिये उपयुक्त स्थान नही था। किसी तरह गुजर होती थी। श्री बिहारीलालजी मोदी और सिंघई रज्जीलाल जी मन्दिरके मुन्तजिम थे। उन्होने एक दिन मुझसे कहा—कि 'यदि विद्यालयको पुष्कल जमीन चाहते हो तो श्री मोराजीकी जगह, जिसमे एक अपूर्व दरवाजा है, जो आज २५०००) मे न बनेगा, तथा मधुर जलमे भरे दो कूप है, पाठशालाके सचालकोको दे सकते है। किन्तु पाठशालावाले यह प्रतिज्ञापत्र लिख देवे कि जब तक पाठशाला चले तब तक हम उसपर काबिज रहे, और यदि दैव प्रकोपसे पाठशाला न चले तो मकानवालोंको सौंप देवेंगे। अधिकारियोंको समझानेपर सब सम्मत हो गए। ५०००) लगाकर श्रीमान करोडीमल्ल जीने तीन मासमे एक मंजिला कच्चा मकान तैयार कर दिया, और पाठशाला श्री ढाकनलाल जीके मकानसे मोराजी भवनमे आ गई। यह बात आश्विन सुदी ९ सं० १९८० की है।

कमरया रज्जीलाल जीके साथ धीरे-धीरे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। एक दिन आप बोले—'वर्णी जी! हमारा दान करनेका भाव है। हम पञ्चकल्याणक करावेंगे। परन्तु जब जमींनदारोने उनसे अपनी जमीन पर मेला भरानेके लिए २०००) माँगे, तो आपका चित्त पञ्चकल्याणकसे विरक्त हो गया। फिर हमसे कहा—'हमारी इच्छा है कि पाठशालाका भवन बनवा देवें'। हमने कहा—'जो आपकी इच्छा।' बस क्या था? ५० छात्रोंके योग्य भवन तथा एक रसोई घर बनवा दिया। साथमे १००) मासिक भी देने लगे। कुछ दिन पश्चात् सदस्योंकी मजूरी लेकर उन्होने पहलेसे भी अच्छा दूसरा भवन बनवा दिया। दोनों भवनोंके बीच एक बडा हाथी दरवाजा बनवाया। दरवाजेके ऊपर चन्द्रप्रभुका चैत्यालय बनवा दिया। श्री मुन्नालालजी कमरयाने अपने काकाके उपदेशानुसार पाठशालाके अन्दर एक धर्मशालाका निर्माण करा दिया, और दोनों कूपोंका भी जीर्णोद्धार करा दिया।

सिंघई कुन्दनलाल जी सागरके सर्वश्रेष्ठ सुहृदय व्यक्ति है। मेरे कहनेसे

उन्होंने सागरमे एक धर्मशाला भी बनवाई है। एक दिन वे पाठशालामे आये। मैंने कहा—'यहाँ और तो सब सुभीता है, परन्तु सरस्वती भवन नहीं है।' कहने की देर थी कि आपने ओराजीकी उत्तरकी श्रेणीमे एक विशाल सरस्वती भवन बनवा दिया। २०००) देकर सीताराम शास्त्री सहारनपुरसे धवल जयधवल ग्रथ लिखवाकर मगवा दिये। मैने दो अलमारी पुस्तके भेट की। प्राय उनमे हस्तलिखित ग्रन्थ बहुत थे। न्याय दीपिका, परीक्षामुख, आप्तपरीक्षा, प्रमेयकमल-मार्तण्ड, अष्टसहस्री, सूत्र जी, सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, जैनेन्द्र व्याकरण, समयसार, प्रवचनसार, आदिपुराण आदि अनेक शास्त्र हस्तलिखित थे।

स्वर्गीय श्री रामकृष्ण रावके द्वारा उद्घाटन हुआ। अन्तमे मैने कहा कि 'उद्घाटन तो हो गया, परन्तु इसकी रक्षाके लिये कुछ द्रव्यकी आवश्यकता है। सिघई जीने २५०१) प्रदान किये। इतने ही उनकी धर्म पत्नीने भी दिये। इस प्रकार ५००२) सरस्वती भवनकी रक्षाके लिये हो गए। यह अब सुन्दर रूपसे चलता है। लगभग ५००० पुस्तकें होगी।

३ द्रव्यकी व्यवस्था—

"पाठशालाका कोष बहुत कम है और व्यय ५००) मासिक है।" यह देखकर अधिकारी वर्ग सदा चिन्तित रहते थे। परन्तु म जब मोराजीके विशाल प्राङ्गणमे बहुतसे छात्रोको आनन्दसे एक साथ खेलते और विद्याध्ययन करते देखता था, तब मेरा हृदय हर्षातिरेकसे भर जाता था।

सबत् १९७२ की बात है कि, सागरमे टीकाराम प्यारेलाल जी मलैयाके यहा कलशोत्सवका आयोजन हुआ। हिन्दूविश्वविद्यालय बनारस मे जो संस्कृत विभागके प्रिंसिपल थ, वे पण्डित अम्बादास जी शास्त्री इस उत्सवमे सम्मिलित हुए। आपका शानदार स्वागत हुआ। उसी समय आयोजित आम सभामे जैनधर्मके अनेकान्तवादपर आपका मार्मिक भाषण हुआ, जिसे सुनकर अच्छे-अच्छे विद्वान् लोग मुग्ध हो गए। इसी अवसर पर प० माणिक चन्द्रजीका जैन धर्मके ऊपर बहुत प्रभावक व्याख्यान हुआ। व्याख्यान वाचस्पति प० देवकीनन्दन जीने तो अपने व्याख्यानके द्वारा जनताको लोट पोट कर दिया। पं० तुलसीराम जी का समाज सुधार पर और प० वशीधर जी का जैन तत्त्वोपर तर्कपूर्ण व्याख्यान हुआ।

तीसरे दिन जल विहार होनेके बाद, श्रीमान् मानिक चौक वालोंने मुझसे कहा कि आप पाठशालाके लिये अपील कीजिये। मैंने उनके कहे अनुसार कहना प्रारम्भ किया—"हमारे कुन्द-कुन्द, समन्तभद्र, अकलङ्क आदि बड़े-बड़े आचार्य जैन धर्मके महान् सिद्धान्तोंको जिन संस्कृत और प्राकृतके ग्रन्थोंमें अङ्कित कर गए है, आज उन्हें पढने वाले तो दूर रहे, उनका नाम तक जानने वाले इस प्रान्तमें नही है। सम्यक् पठन पाठन द्वारा ही उन ग्रन्थोका प्रचार हो सकता है और उसकी व्यवस्था बिना पाठशालाके नही हो सकती। आपके इतने बड़े प्रान्तमें यह एक ही पाठशाला है। धनके बिना उसकी अवस्था अच्छी नही है। अत: मैं प्रार्थना करता हूं कि आप लोग उसे अपना पूरा-पूरा सहयोग देवेंगे।

पन्द्रह मिनट के अन्दर १५०००) का चन्दा हो गया। चन्दा वसूलकर मैं देहातमें भ्रमणके लिये निकल पडा। एक मास तक भ्रमण करता रहा। इसी बीच एक बार गढा-कोटा पहुँचा। यहाँ श्री पन्नालालजी बड़ाखिया बड़े धार्मिक पुरुष थे। आपके १०,०००) का परिग्रह था। उनके समाधिमरणके पश्चात् उनकी धर्मपत्नी मुलाबाई पतिशोक में दुःखित हुई। परन्तु सुबोध थी। अत समस्त पूंजी विद्यालयको दान कर दी और स्वयं सागर आकर बाई जीके पास सुख पूर्वक रहने तथा ज्ञानाभ्यास करने लगी। इस प्रकार सागर विद्यालयके ध्रौव्यफण्डमें २८०००) के लगभग द्रव्य हो गया। श्री सिंघई कुन्दनलाल जीके पिता कारेलालजी ने भी अपने स्वर्गवासके समय ३०००) दिये। १५०००) चन्दे की उपरोक्त व्यवस्था करानेवाले श्री सिंघइ रतनलाल जी गाढ़ा अकस्मात् ज्वरसे पीडित हो गए। आपने बाई जीको बुलाया और कहा कि आयु अवशेष रहती तो थोड़े ही कालमें एक लाख ध्रौव्य फण्ड कर देता, परन्तु अब अपने व्यर्थकी चिन्तासे क्या लाभ। मैं १०,०००) विद्या-दानमें देता हूँ स्वर्गवासके समय पाठशालाके नव-भवन निर्माता श्री कमरिया रज्जीलाल जीनेभी १०,०००) विद्यालयको दान दिये। इस प्रकार कुल मिलकर ५०,०००) के लगभग फण्ड हो गया।

ईशरीसे लौटकर पद यात्रा द्वारा स० २००९में सागर आया। बड़ा समारोह हुआ। बाहरसे अनेक विद्वान महानुभाव तथा जबलपुर आदिसे धनिक वर्ग भी पधारे थे। रात्रिको सभा हुई। आगत विद्वानोंके उत्तमोत्तम भाषण हुए। विद्यालयको अच्छी सहायता हो गई। साठ

हजार संस्कृत विद्यालयको मिल गए।—ग्यारह हजारमें मेरी माला मलैयाजीने ली।

२८ जून सन् १९४६ की रात्रिको मोटरसे श्रीमान सर सेठ हुकमचन्दजी-इन्दौर वहाँ पधारे। उनकी पचहत्तरवीं जन्म गाठ वहाँ ही मनाई गई। उस अवसर पर आपने २५०००) अपनी इच्छानुसार दान करनेके लिये मुझे दिये। मैंने सागर समाजसे कहा कि यदि अपने भी २५०००) मिलाओ तो ये भी सागर विद्यालय को दे दूगा। अन्यथा मैं इसे प्रान्तकी अन्य संस्थाओमे वितरण कर दूंगा। सुनते ही ३/४ रकम उसी समय भरी गई। इस प्रकार लगभग ५०,०००) रु० का फण्ड सागर विद्यालयके पास एक साथ हो गया।

यह चातुर्मास सागरमे ही हुआ। क्षमावनी वाले दिन कलशाभिषेकके बाद सेठ भगवानदासजी की अध्यक्षतामे एक सभा हुई। सिंघैन फूलबाई ने १०००) विद्यालयको दिया। सागरसे प्रस्थान करते समय श्रीभगवान दास जीके यहाँ भोजन था। उस समय आपने १०००) विद्यालयको प्रदान किये।

स० २०१३मे मधुवनमे विद्यालयका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव आयोजित किया गया। उस अवसर पर ५०-६० हजारकी सहायता प्राप्त हो गई। साहू शान्तिप्रसाद किसी कारण वश नही आ सके थे। जब मैं ईसरीसे गिरिडी गया तो मेरे स्वास्थ्यके समाचार सुनकर वहा आये और कहने लगे कि मैं सागर विद्यालयकी जयन्तीके समय सम्मेदशिखर नही आ पाया था, सो अब आज्ञा दीजिये। समीपमे बैठे कुछ लोगोने कह दिया कि वहाँ ५०००) का वार्षिक घाटा रहता है। सुनकर उन्होने कहा कि हम सदाके लिय उसकी पूर्ति कर देंगे।

४ विकास—

अब यह संस्था गणेश दि० जैन संस्कृत विद्यालयके नामसे प्रसिद्ध है। इस संस्थाने बुन्देलखण्ड प्रान्तमें काफी कार्य किया है। ५० वर्ष पूर्व जहाँ मन्दिरोंमे पूजा और विधान बाँचनेवाले विद्वान नही मिलते थे, वहाँ अब धवल महाधवल जैसे ग्रन्थराजोका अनुवाद और प्रवचन करनेवाले विद्वान् विद्यमान है। जहाँ संस्कृतके ग्रन्थ बाँचनेमें लोग दूसरेका मुख देखते थे, वहाँ आज संस्कृतमे गद्य-पद्य रचना करनेवाले विद्वान् तैयार हो गए है।

किसी समय इसमे ५ विद्यार्थी थे, पर अब इसमें २०० छात्र भोजन पाते हुए विद्याध्ययन करते है। इसमें अब संस्कृत विभाग तथा हाई स्कूल इस प्रकार दोनो विभाग अपना कार्य संचालन करते हैं।

५ स्वर्ण जयन्ती—

सं० २०१० मे स्याद्वाद् विद्यालयकी जयन्ती मधुबनमे मनाई गई थी। उस समय प० मुन्नालाल समगोरिया भी आये थे। तब उन्होंने कहा था कि इस वर्ष बडे भैयाकी स्वर्ण जयन्ती हो रही है, और आगामी वर्ष छोटे भैयाकी स्वर्ण जयन्ती मनाई जायगी। वे व प० पन्नालालजी कलकत्ता जाकर मधुबनमे स्वर्ण जयन्ती महोत्सव करनेकी स्वाकृति ले आए। फाल्गुन सुदी १२-१३ स० २०१३ उत्सवके दिन निश्चित किये गए।

इन्ही दिनो श्रीकानजी स्वामीका सघ भी गिरिराजकी बन्दनार्थ आया। जैन सिद्धान्तसंरक्षिणी सभाका भी अधिवेशन था। इसलिये बहुत जनता एकत्रित हुई।

सागर विद्यालयने उत्सवका अध्यक्ष मुझे बना दिया। विद्यालयमे अब तक पढ़कर निकलनेवाले स्नातकोंकी ओरसे ५२ स्वर्ण मुद्राएँ विद्यालयकी सहायताके लिये हमारे सामने रखी गई। ५०-६० हजार रुपयेके बचन मिले। फुटकर सहायता भी लोगोने बहुत दी।

३. महिलाश्रम सागर

सात वर्ष पश्चात् स० २००२ मे ईशरीसे लौटा तो देखा कि सागर समाजने मेरे अभावमे एक महिलाश्रम खोलकर बुन्देलखण्डकी विधवाओका सरक्षण तथा शिक्षणका कार्य आरम्भ किया है। मेरे आनेपर महिलाश्रमका भी उत्सव हुआ। उसमे उसके लिये १५०००) को सहायता मिल गई।

सन् १९४६ क्षमावनी वाले दिन सभाके मध्य सिघैन फूलबाईने १०००) दिये। अपनी सारी सम्पत्ति तथा मकान महिलाश्रमको उसने पहले ही दान कर दिया था। सिघई रेवारामजीने भी महिलाश्रमको ५०००) देना स्वीकार किया। इसके पहले आप अपनी सम्पत्तिका बहु भाग उसके लिये दान कर चुके थे। तथा उसीसे उस सस्थाका जन्म हुआ था।

सागरसे प्रस्थान करनेका विचार हुआ तब श्री भगवानदासजीने कहा कि जो चाहें वह मैं करनेके लिये प्रस्तुत हूँ, पर आपको इस वृद्ध अवस्थामें भ्रमण करना उचित नहीं। उसी दिन आपने २०००) महिला-श्रमको प्रदान किये।

सं० २००९ में पुन सागर जाना हुआ। महिलाश्रम अभी तालाबके मन्दिरके पीछे किरायेके मकानमें है। सिघई कुन्दनलाल जीने कहा कि यदि महिलाश्रमकी कमेटी ११०००) हमारे पहलेवाले भी मिला दे तो ११०००) और देता हूँ। २२०००) मे नाराचन्दजीका मकान खरीद लिया जावे। इस प्रकार उक्त मकान खरीदकर सिघेन दुर्गाबाईके नाममे महिलाश्रमको सौंप दिया गया। इस मकानमें इतनी पुष्कल जगह है कि यदि व्यवस्थित रीतिसे बनाई जावे तो ५०० छात्रायें सानन्द अध्ययन कर सकती हैं।

४. बरुआ सागर विद्यालय

यहाँ श्री स्वर्गीय मूलचन्दजी सर्राफ द्वारा एक पार्श्वनाथ विद्यालय स्थापित हुए १५ वर्ष हो चुके हैं। सुरम्य अटवीके बीचोबीच एक छोटी सी पहाड़ीपर विद्यालय और छात्रावासके सुन्दर भवन बने हुए हैं। विद्यालयके एक कार्यकर्ता श्री गयासीलाल चौधरीने अष्टाह्निका पर्वके उत्सवपर पाठशालाको १०००) स्थायी द्रव्य दिया तथा एक कमरा छात्रावासके लिये भी बनवा दिया।

मैं जब पर्यटन करता हुआ सं० २००७ म बरुआ सागर आया तो खिसनी ग्रामके श्री सिघई छोटेलालजीने १००१) दिया। पहले भी १०००) दिया था। आपने दस रुपया मासिक सदैवके लिए देना स्वीकृत किया। इसी प्रकार मगरपुरके श्री सिघई रामभरोसे लालजीने १००१) दिया।

तत्र पाठशालाके मुख्याध्यापक पं० मनोहर लालजीने अथक परिश्रम कर झाँसीवाले नन्हूमलजी जैन अग्रवाल लाइयासे ५००००) का मकान दिलाकर उसे अमर बना दिया। लाइयाजीने छात्रावासके लिये एक कमरा भी बनवा दिया। मैंने पाठशालाके लिये जो घड़ी दी थी, वह भी इन्होंने ११००) में ली थी। बा० राम स्वरूप जीकी धर्मपत्नी ज्वालादेवी ने भी २००१) विद्यालयको दिये और एक कमरा भी बनवा दिया।

अष्टाह्निका पर्वके समय यहाँ पार्श्वनाथ विद्यालयका वार्षिक अधिवेशन हुआ जिसमें अनेक श्रीमन्तोने दान दिया। सब मिलाकर २५०००) के लगभग विद्यालयका ध्रौव्य फण्ड हो गया।

३. शाहपुर विद्यालय

शाहपुरमे पञ्चकल्याणक थे। अभिषेकके बाद जब भगवानका यथोचित शृङ्गार आदि किया जा चुका, तब मैंने जनतासे अपील की कि जिनका अभिषेक किया उनके उपदेशोका विचार करनेके लिए यहाँ एक विद्याका आयतन स्थापित होना चाहिये। सब लोगोने 'हाँ हाँ' की पर चन्दा न हुआ।

अत जब पञ्चकल्याणक करनेवालेको तिलकदानका अवसर आया तब मैंने श्रीयुत् लोकमणि दाऊसे कहा कि इन्हे सिघई पद दिया जावे, क्योंकि कल्याणपुरा पञ्चकल्याणकमे यह निर्णय हुआ था कि यदि कोई एक मुश्त पाँच हजार विद्यादान दे, तो उसे सिघई पदसे विभूषित किया जाये। उन्होने किसी तरह तीन हजार रुपये तक देना स्वीकार किया, क्योंकि कल्याणकमे भी काफी खर्चा हो गया था।

बहुत वाद-विवादके पश्चात् हलकू लालजीको पञ्चोने सिघई पदकी पगडी बाँध दी। इस प्रकार श्री लोकमन दाऊकी चतुराईसे शाहपुरमे एक विद्यालयकी स्थापना हो गई।

इसी अवसरपर श्री पतासा बाई गयावालीके व्याख्यानसे वहाँ एक चिरंजाबाई कन्या पाठशालाके नामसे महिला पाठशाला भी खुल गई, और उसके लिये कुछ ही समयमे पचास रुपये मासिकका चन्दा हो गया।

स० २००८ मे सागर जाते हुए शाहपुर आना हुआ। रात्रिको पाठशालाका उत्सव हुआ। अपील होने पर १०,०००) का चन्दा हो गया। द्वितीय दिन पुन उत्सव हुआ। श्री हरिश्चन्द्रजी मोदीने ५०००) देना स्वीकृत किया, २०००) उनके भाई टीकमजीने दिये और उनके बडे भाई घप्पेरामजीने २५१) दिये। इसप्रकार लगभग २०,०००) का फण्ड हो गया।

६. द्रोणगिरि विद्यालय

जब पपौराके परवार सभाके अधिवेशनमे गया, तब वहाँ सेंदपा (द्रोणागिरि) निवासी एक भाई भी गया था। उसने मुझसे कहा कि वर्णीजी ! द्रोणगिरिमे पाठशालाकी महती आवश्यकता है। द्रोणगिरिमे क्या धरा था। वहाँ तो जैनियोंके केवल दो तीन घर है, जो कि साधारण परिस्थितिके है।

धुवारामे जलविहार था। वहाँ जानेका अवसर मिला। मैने वहाँ एकत्रित हुए लोगोको समझाया कि आप लोग जलविहारमे सेकडो रुपये खर्च कर देते हो, कुछ विद्यादानमे भी खर्च करो। यदि द्रोणगिरिमे एक पाठशाला हो जावे तो अनायास ही इस प्रान्तके बालक जैन धर्मके विद्वान् हो जावेगे।

बात सबको जँच गई, परन्तु बडा परिश्रम करनेपर भी ५०) मासिक ही चन्दा हो पाया। धुवारामे गज गए। वहाँ २५०) के लगभग चन्दा हुआ। सिघई वृन्दावनदासजी मलहरावालोंने कहा, कि हम यथा शक्ति सहायता करेगे। दूलीचन्दने भो कहा कि 'हम भी प्राणपनसे इसकी सहायता करेगे। पश्चात् द्रोणगिरिके मेलेका सुअवसर आ गया। सिघई कुन्दन लालजीने १००) वर्ष देना स्वीकार किया। वशाख वदि ७ स० १९८५ में पाठशाला स्थापित कर दी गई।

एक वर्षके पश्चात् हम लोग फिर आये। प० जीके कार्यसे प्रसन्न होकर इस वर्ष सिघई जीने बडे आनन्दसे ५०००) देना स्वीकृत कर लिया। सिघई वृन्दावनदास जीने एक सरस्वती भवन बनवा दिया। कई आदमियोने छात्रोके रहनेके लिये छात्रालय बना दिया। एक कूप भी छात्रावासमे बन गया।

छात्रोकी सख्या २० हो गई और पाठशाला अच्छी तरह चलने लगी। इस पाठशालाका नाम श्री गुरुदत्त दि० जैन पाठशाला रक्खा गया।

ईशरीसे सागरकी ओर पैदल यात्रा करते हुए जब स० २००९ मे द्रोणगिरि पहुचा तो मेलेका अवसर था। इसीसे भीड प्राय अच्छी थी। मन्त्री मलैया बालचन्द्र जी बी ए. सी. ने बहुत ही मार्मिक व्याख्यान

दिया। उसे श्रवण कर १०,०००) सिघई वृन्दावनने ५००१) सिघई कुन्दन लालजीने, १०००) स्वयं मलैया बालचन्दजीने, दिया। ३००) के अन्दाज अन्य लोगोंने चन्दा दिया।

पुनः सागरसे मेलेके समय यहाँ आना हुआ। सिंघई कुन्दन लालजी, व बालचन्द्र जी मलैया पहलेसे ही मौजूद थे। सिं० सोने लालजीके सुपुत्र श्री जवाहरलालजी आदि अनेक महानुभाव भी पधारे। जनताकी उपस्थिति अच्छी थी। दूसरे दिन पाठशालाका वार्षिकोत्सव हुआ। दस हजार रुपया श्री सिंघई कुन्दनलालजीने और इतना ही वृन्दावनजीने दिया। सिघई वृन्दावनजीके सुपुत्रने ५००१) की स्वीकारता दे दी। ५०१) सि० दामोदरदासजी घुवारावालोंने दिया और फुटकर चन्दा ३०००) के लगभग हो गया।

७. खुरई गुरुकुल

खुरईमें वहाँकी समाजने श्री पार्श्वनाथ जैन गुरुकुलकी स्थापना की है। उसका उत्सव था। कारञ्जासे श्रीमान् समन्तभद्र जी क्षुल्लकका भी आगमन हुआ था। मैं भी पहुचा। बड़ेही समारोहके साथ गुरुकुलका उद्घाटन हुआ। रुपया भी लोगोंने पुष्कल दिया। विशेष द्रव्य देनेवाले श्री सिघई गणपति लालजी गुरहा है। तथा श्रीमन्त सेठ ऋषभकुमार जीने गुरुकुलकी बिल्डिङ्ग बनवा देनेका वचन दिया। इस अवसर पर भेलसाके प्रसिद्ध दानवीर श्रीमन्त सेठ लक्ष्मी चन्द्रजी पधारे थे। आपने गुरुकुलको अच्छी सहायता दी।

८. जबलपुर गुरुकुल

जबलपुर में सतना वाले धर्म दास जी एक विलक्षण पुरुष थे। आपने मढिया जी के मेलपर प्रस्ताव किया कि यहा पर गुरुकुल होना चाहिये और उसके लिये दस हजार मै स्वय दूगा। फिर क्या था? जबलपुर समाजने एक लाखकी पूर्ति कर दी। तीन सौ रुपया मासिकसे अधिक चन्दा कार्य चालू करने के लिये हो गया।

पचोंने यह स्वीकार किया कि मन्दिरोंके धनसे पचास हजार रुपया देकर गुरुकुलका भवन बनवा दिया जावे। बडे समारोहसे नीव भरनेका

मुहूर्त हुआ। पचहत्तर हजार रुपया तो लग चुके है, पच्चीस हजार और लगेगे।

इस प्रकार जबलपुरमे गुरुकुलका कार्य चलने लगा। उसमे इस समय तैतीस छात्र शिक्षा पा रहे है। तीन पण्डित, एक अंग्रेजी मास्टर, दो रसोइया और एक चपरासी आदि कर्मचारी है। एक हजार रुपया मासिक व्यय हो रहा है। जब मै बाहर मढियामें रहनेको गया, तब गुरुकुल भी वही चला गया। इसके अधिष्ठाता श्रीमान् प० जगन्मोहन लालजी है।

९. ललितपुर इण्टर कालेज

स० २००८ मे ललितपुर चातुर्मास हुआ। यह बुन्देलखण्डका केन्द्र स्थान है। जैनियोकी बस्ती अच्छी है। व्यापार का अच्छा स्थान है। यहा पर शिक्षाका आयतन न होना हृदयमे चोट करता रहता था। एक पाठशाला पहले क्षेत्रपालमे थी। जिसमे प्रान्तके छात्रोका लाभ होता था। परन्तु अब वह बन्द हो चुकी है।

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि प० फूलचन्दजी कि विशिष्ट प्रेरणासे नगरके लोगोमे इण्टर कालेज खोलनेकी चर्चा धीरे-धीरे जोर पकड़ती जाती है। वे इस विषयमे बहुत प्रयत्न कर रहे है। उनके प्रयत्नसे श्री सर्राफ मुन्नालाल भगवानदास जीने १०१०१) और श्री निहालचन्द्रजी हड़ैयाने ७०१०१) देना स्वीकार किया है। अन्य महानुभावों ने भी रकमे लगाई। भादो तक १००,०००) का चन्दा हो जावेगा और कालेज की स्थापना हो जावेगी।

इसी प्रकरणको लेकर कमेटीके सदस्योका का विचार हुआ कि कमेटीको मकानोके किरायेमे जो आमदनी होती है उसे मन्दिर सम्बन्धी कार्योसे बचनेपर कालेजके लिए दे देगे। ज्ञान प्रचारमे सम्पत्तिका व्यय हो, इससे बढकर क्या उपयोग हो सकता है। नवयुवकोको बडा हर्ष हुआ, और वे कालेजके लिये भरसक प्रयत्न करने लगे। पर्यूषणके पश्चात् जयन्ती उत्सवके अवसरमे उसकी घोषणाकर दी गई। कालेजका नाम वर्णी इण्टर कालेज रक्खा गया। उत्सवमें आगत जनताने भी यथायोग्य सहायताके वचन दिये।

१०. इटावा पाठशाला

दिल्लीसे ईसरीकी ओर जाते हुए मार्गमें इटावा ठहरे। सागर व दिल्लीसे भी अनेक महानुभाव आ गए। प्रातःकाल प्रवचन हुआ। स्वर्गीय ज्ञानचन्द्रजी गोलालारेकी धर्मपत्नी धनवन्ती देवीने ७५०००) जैन पाठशालाके अर्थ प्रदान किया। माघ शु० ५ सोमवार दिनाक २३ जनवरी १९५० को उसका मुहूर्त्त था। उद्घाटन मेरे हाथोसे हुआ, पाठशालाका नाम श्री ज्ञानधन जैन संस्कृत पाठशाला रक्खा गया।

कितने लोगोकी भावना थी कि ये रुपये अंग्रेजी स्कूलमे लगाये जावें। मुझे इसमें हर्ष विषाद नही था, परन्तु भावना यह थी कि अंग्रेजी अध्ययनके लिए तो नगरमें अन्य साधन सुलभ हैं। संस्कृत अध्ययनके और खासकर जैन धर्म सहित संस्कृत अध्ययनके साधन नही है। इसलिए इसके अर्थ ही द्रव्य व्यय करना उत्तम है। परन्तु मुझे इस विकल्पमें नही पडना ही श्रेयस्कर है। यह विचार कर मै तटस्थ रह गया।

लोगोने कहा कि यदि आप यहाँ रह जावे तो रुपया संस्कृत विभागमें लगा देवेगे। संस्कृत विभागका नाम सुनकर मेरे मनमे बहुत प्रसन्नता हुई। अनन्तोगत्वा यही निश्चय किया कि रहना चाहिए। चैत्र कृ० ९ सं० २००६ को ही पं० झम्मन लालजी द्वारा संस्कृत विद्यालयका काम शुरु हो गया। मुन्ना लालजीने इटावामे ही चातुर्मास करनेका आग्रह किया। मैंने कहा कि चैत्र सुदी १५ तक यदि विद्यालयके लिए १ लक्ष रुपयेकी रजिस्ट्री हो जावेगी तो रह जावेगे। चातुर्मासकी बात सुन जनताको बडा उल्लास हुआ।

पं० कमल कुमारजी व्याकरण तीर्थ जो पहले इन्दौरमे सेठजीके विद्यालयमे थे इस्तीफा देकर यहाँ आ गए। पाठशालाके लिए सुयोग्य विद्वानकी आवश्यकता थी। सो इनके द्वारा पूर्ण हो गई। ज्येष्ठ शुक्ल ५ को उद्घाटन समारोह हुआ।

११. खतौली विद्यालय

एक बार मै बरुआ सागरसे खतौली गया। वहाँ पर श्रीमान् भगीरथ दासजी मिल गए। वहाँ कुछ लोगोके समक्ष विद्यालय स्थापित करनेकी चर्चा की। दूसरे दिन मैने शास्त्र सभामे कहा। उपस्थित जनताने यह

प्रस्ताव स्वीकार किया, जिससे दस मिनटमे ही पाँच हजार रुपयेका चन्दा भरा गया। और यह निश्चय हुआ कि एक संस्कृत विद्यालय खोला जावे, जिसका नाम कुन्द-कुन्द विद्यालय हो।

दो दिन बाद विद्यालयका मुहूर्त होना निश्चित हुआ। २०) मासिक पर पं० मुन्शी लालजी नियुक्त किये गए। एक बिल्डिंग भी विद्यालयको मिल गई। विद्यालयकी स्थापना ई० सन् १९३५ से हुई थी जो अब कालेजके रूपमें परिणत हो गया है। इसमें लगभग ६०० छात्र अध्ययन करते हैं और ३० अध्यापक हैं।

१२. ग्राम-ग्राममे विद्यालय

द्रोणगिरिसे चलकर सतपारा होते हुए **भगवां** आये। यहा तहसील-दार साहबके प्रभावसे पाठशालाके लिए दो हजार रुपया चन्दा हो गया।

यहाँसे **गोरखपुरा** आये। वहाँ भी एक ग्रामीण पाठशालाके लिए एक सौ रुपयेके करीब चन्दा हो गया। **घुवारा** मे अपील करने पर तीन हजार रुपयाके अन्दाज चन्दा हो गया। तीस रुपया मासिकका पण्डित बुलानेकी व्यवस्था हो गई।

वहाँसे चलकर **हीरापुर** आये। पाँच सौ रुपयेका चन्दा पाठशालाको हुआ। पतासी बाईजीके प्रयत्नसे गिरिडीह जिला हजारीबागकी स्त्री समाजने १०८०) भिजवाए। जिससे चालीस रुपये मासिकका विद्वान् पढानेके लिए आ गया।

तिगोड़ा मे दो हजारसे अधिक चन्दा हो गया। पाठशाला भी प्रारम्भ हो गई। यहाँसे चलकर **भड़देवरा** आये। यहाँ एक पाठशाला है। बाबा विदानन्द जीकी माका यहाँ ही निवास है। वहाँसे **शाहगढ़** आये। यहाँ भी पाठशालाके लिए लगभग दो हजार रुपया चन्दा हो गया। यहाँसे चलकर दलपतपुर आए। यहाँ भी २५००) के अन्दाज चन्दा हो गया।

बुन्देलखण्डका पर्यटन करते हुए पन्ना रियासतकी **बक्स्वाहा** तह-सीलमे आया। २५ घर जैनियोके है। ५०००) पाठशालाके लिए चन्दा हो गया। सैदपुरमे ब्र० चिदानन्दजीके प्रयाससे स्थानीय पाठशालाके लिए १०००) के वचन मिले। **कुरहैड़ो** ग्राममे सेठ बरया जीने अपनी

३ लाखकी सम्पत्तिका चतुर्थ भाग धर्म कार्यके लिए निकाल दिया। जिसमेंसे एक पाठशालाका उद्घाटन हुआ।

अतिशय क्षेत्र **आहार**के मेलेके अवसर पर श्री बा० मिथिला प्रसाद जी शिक्षा मंत्री पधारे थे। उन्होने कहा कि स्कूल खोलनेके लिये यदि यहाँकी जैन समाज आधा व्यय देना स्वीकार करे तो आधा राज्यकी ओरसे दिला दूँगा। यहाँसे ६०००) हो गया। मबई आया तो श्रीनाथूरामजीने भी उसे १०००) दिया। इनके उद्योगसे गाँवमें एक पाठशाला भी स्थापित हो गई।

दिल्लीसे इटावा जाते समय **एटा** आये। बड़े मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्योंके चित्तमें कुछ प्रभाव पडा। यहाँ एक पाठशाला चालू करनेके लिए ६०००) ध्रौव्य फण्ड और ५०) मासिकका चन्दा हो गया।

चातुर्मासके पश्चात् इटावासे मार्गशीर्ष कृ० ५ सं० २००७ को चल कर **भिण्ड** आये। पिछले समय जब यहाँ आए थे तब पाठशाला चालू करनेका प्रयत्न कुछ लोगोने किया था। अब मार्गशीर्ष शु० ९ सं० २००७ को पाठशालाका उद्घाटन श्री पं० झम्मनलाल जीने मङ्गलाष्टक पूर्वक सानन्द कराया।

चैत्र शु० १३ सं० २००८ को बरुआ सागर श्री नाथूरामजी बजाज मबई वाले आए। पपौरा विद्यालयके लिए २५०००) देनेका वचन दिया। झासीसे चलकर **बबीना** ग्राममें आए। वहाँ भी पाठशाला खोलने के लिए ४०) मासिकका चन्दा हो गया।

सं० २००९ में **पपौरा** आया। उत्सवके दिन थे। विद्यालयका उत्सव हुआ, जिसमें बताया गया कि स्वर्गीय मोतीलाल जी वर्णी यहाँ एक विद्यालय खोल गए है। वर्तमानमें उसका कोष बहुत अल्प है। इसका दिग्दर्शन कराया गया। जिससे १०,०००) का चन्दा हो गया।

सागरसे बनारस जाते समय मार्गमें **सतना** रुकना पड़ा। वहाँ एक जैन स्कूल है। प्रवचनके बाद पाठशालाके लिए चन्दा हुआ। लगभग १४०००) आ गए।

१३. बनारस युनिवर्सिटीमें जैन कोर्स

सं० १९६० में जब श्री अम्बानाथ शास्त्री जीके पास पढ़ता था।

उन्हीं दिनों भारत-रत्न श्री मालवीय जी द्वारा हिन्दू यूनिवर्सिटीकी स्थापना हुई। उसमे सर्व दर्शनोके शास्त्रोंके पठन पाठनके लिए बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान रखे गए। शास्त्रीय जी महाराज संस्कृत विभागके प्रिंसिपल हुए। उन्होंने मालवीय जीसे कहा कि एक चेयर जैनागमके प्रचारके लिए भी होनी चाहिए।

सीनेटके दिन मै जैन न्यायकी पुस्तके लेकर शास्त्रीय जीके पीछे-पीछे जा रहा था, कि मार्गमें श्री पं० मोती लालजी नेहरू अकस्मात मिल गए जो मुझे नही जानते थे। तदपि मेरे मुखसे पुस्तकों सहित सीनेटमे जानेका अभिप्राय सुनकर वे बोले कि जैन धर्मके अनुकूल प्राय: बहुत मेम्बर नही है, फिर भी मै कोशिश करूँगा, क्योंकि यह मत अनादि है और इस मतके अनुयायी बहुत सच्चरित्र होते है।

सीनेटकी बैठकके प्रारम्भमे ही उन्होने जैन शास्त्रका निर्णय करनेके लिए सभापतिसे कहा, और केवल ५ मिनटकी बहसके बाद संस्कृतकी प्रथम परीक्षामे न्यायदीपिका पुस्तक स्वीकार कर ली गई। ●

३-विद्वद्द प्रेम

•

(१) खुरईमें विद्वद्परिषद्का प्रथम अधिवेशन हुआ। पं० कैलाश चन्द्र जी शास्त्री, पं० महेन्द्रकुमारजी न्यायाचार्य, पं० राजेन्द्रकुमारजी, पं० फूलचन्दजी सिद्धान्त शास्त्री आदि अनेकों विद्वान आए। मुझे उनके समागमसे बहुत ही शान्ति मिली, और इतना विपुल हर्ष हुआ कि उसकी सीमा नही।

जिस प्रान्तमे सुपाठके लिए दस या बीस ग्राममें कोई एक व्यक्ति मिलता था, आज उन्ही ग्रामोमे राजवार्तिक आदि ग्रन्थोंके विद्वान पाये जाते है। जहाँ गुण-स्थानोंके नाम जानने वाले कठिनतासे पाये जाते थे, आज वहाँ जीवकाण्ड और कर्मकाण्डके विद्वान् पाये जाते हैं। जहाँ पर लोगोंको 'जनी नास्तिक है' यह सुननेको मिलता था, आज वहीं पर यह शब्द लोगोके द्वारा सुननेमें आता है कि जैन धर्मके बिना जीवका कल्याण दुर्लभ है। जहाँ पर जैनी परसे वाद करते हुए भयभीत होते थे, आज वही पर जैनियोंके बालक पण्डितोंसे शास्त्रार्थ करनेके लिए तैयार हैं। इत्यादि व्यवस्था देखकर ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो आनन्द सागरमें मग्न न हो जाव।

आज सभी लोग जैन धर्मका अस्तित्व स्वीकार करने लगे हैं। सभी मतावलम्बी इस धर्मका गौरव स्वीकार करने लगे है। इसका श्रेय इन विद्वानोको ही तो है।

(२) बनारससे गयाकी ओर जाते हुए मार्गमें औरङ्गाबाद ठहरा। यहाँ पर ईसरीसे पं० शिखरचन्दजी आए। आप बहुत ही योग्य तथा शान्त स्वभावी विद्वान है। आर्जीविकासे चिन्तित है। समाजकी दशा क्या कहें। वह व्यर्थ कार्योमें धनका व्यय करनेमें नही चूकती। पर ज्ञान भण्डार आजीविकाके बिना चिन्तातुर रहते है। एक समय तो वह आ गया था कि जब सस्कृत विद्याके जानकार विद्वान् समाजमे बहुत ही विरल हो गए थे, परन्तु आज सौभाग्य मानना चाहिये कि इस विद्याके जानकार विद्वान समाज मे उत्पन्न हुए है। यदि जैन समाज उदारतासे इनकी रक्षा करे, तो वे स्थिर रहकर समाज तथा धर्मका उत्कर्ष बढाने में समर्थ होगे।

३

•

निष्क्रमण

•

ज्ञानकी खोजमें तथा जन-कल्याणकी भावनासे,
संकटोकी चिन्ता न करके ग्राम-ग्राममें
भ्रमण किया और अन्तमे स्वर्गा-
रोहणके लिये महा-
प्रयाण किया

१–ज्ञानकी खोजमें

•

ज्ञान पिपासासे प्रेरित होकर मैने बाईजीसे कहा कि मै जयपुर जाकर विद्याभ्यास करूँगा। उन्होने कहा कि भैया! तुम सरल हो। मार्गमे सावधानीसे जाना। ऐसा न हो कि सब सामान खोकर वापस आ जाओ। मै उनके चरणोंको प्रणाम करके सिमरासे सोनागिरिकी यात्राको चल पड़ा।

१. जयपुरका असफल प्रयास

यहासे १६ मील मऊरानीपुर है, वहाँ तक पैदल आया और वहाँसे आगे रेलगाडीमे बैठकर श्री **सोनागिरि** पहुच गया। वहाँकी वन्दना व परिक्रमा कर टिकिट लेकर **ग्वालियर** पहुँचा और चम्पाबागकी धर्मशालामे ठहर गया। बाईजीका कहना सत्य हुआ। शौचके लिए बाहर गया। आकर देखता हूँ कि कोठरीका ताला टूटा पडा है, और सामान नदारद है। केवल बिस्तर, अटीमे लगे पॉच आने, लोटा, छन्ना, डोरी, छत्री और एक धोती जो बाहर ले गया था, शेष बचा।

पुनः पैदल ही सोनागिरिके लिए प्रस्थान किया। मार्गमें चने चबा कर उदर पूर्ति करता रहा। सोनागिरिकी यात्रा करके दतिया आया। यहाँ एक पैसा भी पास न रहा। एक दुकानदारसे कहा—"भैया! इस

छतरीको ले लो।" उसने कहा "चोरीकी तो नहीं है।" मैं चुप रह गया। आँखोंमें अश्रु आ गए। उसने छह आने दिए। वही लेकर चल पड़ा। दो पैसेके चने लेकर चाबे। दूसरे दिन झाँसी एक आनेके चने चबाये और अगले दिन बरुआसागर पहुच गया। वहाँ भी एक आनेके चने लेकर चाबे और बाई जीके गाँव (सिमरा) की ओर प्रस्थान किया।

चलते-चलते **कटेरा** आया। थक गया। कई दिनसे भोजन नही किया था। पासमें कुल तीन आने ही शेष थे। दो आनेका आटा दाल घी लेकर गाँवके बाहर एक कुएँ पर बाटियें बनाई। इस भोजनमें जो स्वाद आया पहले कभी नही आया था। एक आना शेष रहा। मार्गमे दो पैसेके चने चबा कर **सिमराके** पार वाले गाँव में पहुँच गया, परन्तु लज्जावश वहाँ न जाकर यही पर रहने लगा।

बाई जीने बहुत बुलाया, परन्तु मैं नही गया। स्वरूपचन्द बनपुरिया के साथ उनके गाँव माची चला गया, जो जतारा (टीमगढ) से तीन मील दूर है। इनके यहाँ आनन्दसे दो माह बीते। अनन्तर उन्हे कार्यवश खुरई जाना पडा। मै भी तीन या चार दिनमे इनके साथ **खुरई** पहुंच गया और इनके साथ ही श्रीमन्तके घर पर ठहर गया।

२. मुक्तागिरिकी ओर

दो तीन दिन खुरई रह कर बनपुरिया जीकी इच्छानुसार **मडावरा** अपनी माँके पास चला गया, दो तीन दिन वहाँ रहा और तत्पश्चात् माँकी आज्ञासे **बमराना** चला गया। यहाँ लक्ष्मी चन्द जी सेठ प्रखर बुद्धि थे, परोपकारी तथा धर्मात्मा थे। मेरी प्रार्थना पर उन्होंने धर्मका समीचीन रीतिसे विवेचन करके मेरे चित्तको सन्तोष लाभ कराया। साथ ही सफर खर्चके लिए बिना माँगे १०) रुपये भी दिये।

१०) रुपये लेकर मै बमरानासे **मडावरा** आ गया और वहाँ पाँच दिन रह कर माँ तथा स्त्रीकी अनुमतिके बिना ही **कुण्डलपुरकी** यात्राके लिए पैदल प्रस्थान कर दिया। वहाँसे चल कर चौदह मील दूर **बरायठा** नगरमें आया। यहाँ यद्यपि सेठ कमलापति जीने बहुत आग्रह किया कि मैं वहाँ ठहर जाऊँ और माँ व पत्नीको भी वहाँ

ही बुलालूँ और यह भी कि मेरे सहवाससे तुम्हे जैन धर्मका बोध हो जायेगा, परन्तु उनको धन्यवाद देकर मै सिद्ध क्षेत्र **नैनागिरिके** लिए चल पड़ा। वनमें हिंसक पशुओंका संचार था, परन्तु फिर भी एकाकी व निःसहाय चलता जाता था। रुरावना होता हुआ प्रातः दस बजे नैनागिर पहुंच गया।

यहाँ मैं तीन दिन रहा। जानेको जी न चाहता था। परन्तु साधनोके अभावमें दरिद्रोंके मनोरथोंके समान कुछ न कर सका। तीन दिन चलकर कुण्डलपुर पहुंच गया। कुण्डलपुरसे रामटेकके लिए प्रयाण किया। हिंडोरिया व दमोह होता हुआ चार दिनमें **जबलपुर** पहुँच गया। छः दिनमें सिवनी पहुँचा। वहाँसे चलकर कई दिवसोके पश्चात् **रामटेक** क्षेत्र पर पहुँचा।

चार दिन बाद यहाँसे भी चल दिया, बीचमें **कामठीके** जैन मन्दिरोके दर्शन करता हुआ नागपुर पहुँचा। यहाँ दो या तीन दिन रहकर अमरावतीको प्रस्थान किया। बीचमें वर्धा मिला। कई दिवसके बाद अमरावती पहुचा और यहाँसे सिद्ध क्षेत्र **मुक्तागिरिके** लिये उत्सुकता पूर्वक चल पडा। दूसरे दिन मुक्तागिरि पहुँच गया।

३. गिरिनारका असफल प्रयास

यहाँ आने पर पाँच रुपये मात्र शेष रह गए। कपडे विवर्ण हो गए। शरीरमें खाज हो गई। एक दिन बाद ज्वर आने लगा। सहायी कोई नही। कर्त्तव्य विमूढ हो गया। रात्रिको स्वप्न आया। कोई कहता था कि 'दुःख करनेसे क्या लाभ **गिरिनारको** चले जाओ।' मैने कहा 'साधन कुछ नही।' उत्तर मिला 'नारकी जीवोकी अपेक्षा तो अच्छे हो।'

प्रातः सिद्ध क्षेत्रकी वन्दना कर **बैतूल** नगरके लिए चल दिया [मार्गमे १) के ५) मिलेंगे, इस लोभसे, ३) पत्तेके जूएमें हार गया। शेष केवल दो बचे] किसी तरह कष्टोंको सहते हुए बेतूल पहुँचे। सड़क पर कुली लोग काम करते थे। हमने सोचा कि हम भी इस तरह काम करें, तो कुछ मिल जायेगा। कहने पर मेटने काम दे दिया और एक गेंती हमको दे दी। मिट्टी खोद कर भरने वालेको तीन आने दिवस और

टोकरी उठाने वालेको २ आने दिवस मिलता था। एक टोकरी भर कर तथा एक टोकरी उठाकर ही थक गया। गेती वहीं पटक कर रोता हुआ आगे चल दिया।

मार्गमें दुःस्सह कष्टोका सामना हुआ। जो ज्वर एक दिन बाद आता था वह दो दिन बाद आने लगा। इस ज्वरमें इतनी ठण्ड लगती है, कि अनेक सौडरोंसे भी नहीं जाती। परन्तु पासमें एक भी नहीं। साथमें पखनू खाज हो गई। शरीर कृश हो गया। इतना होने पर भी प्रति दिन २० मील चलना। खानेको मात्र दो पैसेका आटा। वह भी जवारी का। किसी दिन रूखी रोटी बना कर रखी कि तिजारी (उपरोक्त ज्वर) महारानीने दर्शन देकर कहा, 'सो जाओ, पापका उदय है समतासे सहन करो।' एक दिन सघन बनमें वृक्षके नीचे सो गया। निद्रा भग हुई तो भयकर ज्वर आ गया। रात्रिभर वही भयभीत अवस्थामें पडा रहा। इस प्रकार अनेक कष्टोकी अनुभूति करता हुआ **गजपन्था** पहुँच गया।

४. बम्बई प्रयास

वहाँ एक सेठ साहबका सहवास प्राप्त हुआ। उनको मेरे ऊपर अन्तरङ्गसे प्रेम हो गया। उनके आग्रहसे उनके साथ ही बम्बईके लिये प्रस्थान किया। उन्होने मुझे धर्मशालामें ठहरा दिया और आठ आने देकर चले गये। इतनेमे बाबा गुरु दयाल सिंह जो खुरजाके रहनेवाले थे, मेरे पास आये, और मेरा परिचय पूछा। मै कुछ न कह सका प्रत्युत गद्‌गद् हो गया। उनकी अमृत-वाणीसे मेरी तृप्ति हुई। आध घटाके बाद उन्होने दो धोती, दो जोडे दुपट्टे, रसोईके बर्तन, आठ दिनके भोजनका सामान, सिगड़ी, कोयला, और दस रुपये देकर कहा कि चिन्ता न करो, हम तुम्हारी हर तरहसे रक्षा करेगे।

मै भोजन करके आनन्दसे सो गया। तीन घण्टे बाद निद्रा भग हुई। इतनेमें बाबाजी पुनः आये और १०० कापियाँ देकर बोले कि जाओ इन्हें बाजारमें बेच आओ। छ आनेसे कममें न देना। उनकी बिक्रीसे मेरे पास ३१॥) हो गए। अब मै एकदम निश्चिन्त हो गया।

५. जयपुर प्रवेश

साथ ही संस्कृतकी परीक्षामें पास होनेके फलस्वरूप वहाँसे मुझे २५) इनाम भी मिले। गुरु जीने मुझे अजमेरके पास **केकड़ी** भेज दिया। वहाँके औषधालयमें वैद्य दौलत रामजी बहुत सुयोग्य थे। उन्होंने मुझे एक छोटीसे गोली दी। ४ सेर दूधकी खीर खानेको कहा। दिन भर खीर खाई। दवाईके प्रभावसे रातको वमन हुआ। उसी दिन तिजारी वाला ज्वर चला गया। पन्द्रह दिन केकडी रहकर मै **जयपुर** चला गया। ●

२—गोमटेश्वर यात्रा

•

संबत् १९७६ की बात है। अगहनका मास था शरदीका प्रकोप वृद्धि पर था। बाई जी ने मुझसे कहा—'बेटा ! एक बार जैनबिद्रीकी यात्राके लिये चलना चाहिये। मैने कहा बाई जी ७००) व्यय होगा। ललिताको भी साथ ले जाना होगा। उसी समय उन्होंने यह कहते हुए ७००) सामने रख दिये, कि ये रुपये यात्राके निमित्त पहले ही से रक्खे थी। मुला बाई जी ने भी यात्राका पक्का विचार कर लिया। सेठ कमलापतिजी आदि भी साथ हो गए। जब चलने लगा तब स्टेशन तक बहुत जनता आई, और सबने नारियल भेट किये।

हम सागर स्टेशनसे चलकर बीना आये। यहाँ भोजन कर नासिकका टिकट लिया। मार्गमें भेलसा स्टेशनपर बहुतसे सज्जन मिले और श्रीफल भेटमे दे गए। रात्रिके समय नासिक पहुचे। यहाँ से ताँगा कर श्री **गजपन्था** जी पहुच गए। सात बलभद्र और आठ करोड मुनि जहाँसे मुक्तिको प्राप्त हुए उस पर्वतको देख कर चित्तमे बड़ी प्रसन्नता हुई।

यहाँसे चलकर पूना आये। शहरमे भोजन आदि करनेके बाद **बेलगाँव** चले गए। यहाँ दो दिन रहे। किला देखने गए। उसमे कई जिन मन्दिर है। यहाँ पर कई चैत्यालयोंमें ताम्रकी मूर्तियाँ देखनेमें आईं। यहाँसे चलकर आरसीकेरी आए और वहाँसे चलकर मन्दगिरि। यहाँसे नौ मील

श्री गोमट्ट स्वामीका बिम्ब था। उसके मुख भागके दर्शन यही से होने लगे।

भोजन करनेके बाद चार बजे श्री **जैनबिद्री** पहुच गए। प्रातःकाल स्नानादि कार्योंसे निवृत्त होकर श्री गोमट्ट स्वामीकी बन्दनाको चले। बडी भक्तिसे पूजन किया। जो आनन्द आया वह अवर्णनातीन है। एक दिन की बात है कि कूप पर स्नान करने गया, और वहाँ एक हजार रुपया के नोट छोड़ आया। भोजन कर चुका तब स्मरण आया। मै कूप पर गया तो देखता हूँ कि बटुआ जहाँ पर रक्खा था वहीं पर रक्खा है। मैने आश्चर्यसे कहा कि यहाँ पर जो स्त्री पुरुष थे उनमेसे किसीने यह बटुआ नही उठाया। वे बोले—'क्यो उठाते ? क्या हमारा था ?'

यहाँ पर चार दिन रहकर मूड़बिद्रीके लिये प्रस्थान कर दिया। मार्गमे अरण्यकी शोभा देखते हुए श्री **कारकल** पहुचे। बैलकी लात लगने से बाईजीके पाँवकी अगुली फट गई, पर उन्होने चू न की। भोजनके बाद हम लोग श्रीगोमट्टस्वामी की प्रतिमाके दर्शन करनेके लिये गए। बहुत ही मनोज्ञ मूर्ति है। तीस फुट ऊंची होगी। वहाँ दो दिन रहे। पश्चात् मूड़बिद्री को प्रस्थान कर गए।

सबत् १९७६ **मूड़बिद्री** पहुंचे। यहाँके मन्दिरोंकी शोभा अवर्णनीय है। त्रैलोक्य तिलक नाम वाला मन्दिर अत्यन्त विशाल है। सिद्धान्त मन्दिरके दर्शन किये। रत्नमयी बिम्बोंके दर्शन किये। दर्शन कराने वाले ऐसी सुन्दर रचनासे दर्शन कराते है कि समवशरणका बोध परोक्षमे हो जाता है। यही पर ताड़ पत्रो पर लिखे गए सिद्धान्त शास्त्रोंके दर्शन किये।

यहाँसे फिर बेलगाँव होकर पूना आ गए और वहाँसे बम्बई न जाकर मनमाड़ आ गए। यहाँ से **एलोरा** की गुफा देखनेके लिये दौलताबाद चले आए। वहाँके मन्दिरके दर्शन कर गुफा देखने गए। गुफा क्या है, महल है। बीचमे एक मन्दिर और चारो ओर चार बरामदा। तीन बरामदा इतना बडा कि प्रत्येकमे ५०० आदमी आ सके। चतुर्थ बरामदेमें सम्पूर्ण देवताओंकी मूर्तियाँ थी। बीचमें एक बड़ा आगन था। आगनमे एक शिवजीका मन्दिर था। ऊपर जानेके लिये सीढ़ियाँ भी उसी मन्दिरमे हैं, छत है, शिखर है, कलशा भी है, और खूबी यह कि सब एक पत्थर

की रचना। इत्यादि कहाँ तक लिखें? यहाँ से श्री पार्श्वनाथ गुफा देखने गए। और इसके बाद बौद्ध गुफा। यहाँ पर पांचसौ गुफाएं है जो एक से एक बढ़कर है।

दौलताबादका किला देखा। वह भी दर्शनीय वस्तु है। उसमें मीलों लम्बी सुरग है। किला देखकर हम लोग फिर रेलके द्वारा स्टेशन आ गए और वहाँसे गाडीमे बैठकर गिरिनारकी यात्राके लिये चल दिये। प्रातःकाल होते ही सूरतके स्टेशन पर पहुच गए। दर्शन पूजन कर फिर रेलमे सवार हो **गिरिनार** जीके लिये प्रस्थान किया। [गिरिनार यात्राका विवरण पृथक से दिया गया है।

यहाँ दो दिन रहकर पश्चात् बडौदाके लिए प्रयाण किया। वहाँसे चलकर **आबूरोड** पर आए और यहाँसे मोटरमे बैठकर पहाड़के ऊपर गए। ऊपर जाकर दिगम्बर मन्दिरमें ठहर गए। बहुत ही भव्य मूर्ति है। यहाँ पर श्वेताम्बरोके मन्दिर बहुत ही मनोज्ञ है। उन्हे देखनेसे उनकी कारीगिरीका परिचय होता है। कहते है कि उस समय इन मन्दिरोंके निर्माणमे १६ करोड रुपये लगे थे। परन्तु वर्तमानमे तो अरबमे भी वैसी सुन्दरता आना कठिन है। छः मीलकी दूरी पर एक देलवाला है, जहा एक पहाडी पर श्वेताम्बरोंके विशाल मन्दिरमे ऐसी भी (विशाल-काय) प्रतिमा है जिसमें बहुभाग सुवर्णका है।

यहाँ पर दो दिन रहकर पश्चात् **अजमेर** आ गए। यहाँ श्री सोनो भागचन्द जी रहते है। आपके मन्दिर व निशिया जी आदि अपूर्व-अपूर्व स्थान है। उनके दर्शन कर चित्तमे अति शान्ति आई। यहाँ दो दिन रहकर **जयपुर** आ गए और नगरके बाहर नशियाजीमे ठहर गए। यहाँ पर सब मन्दिरोके दर्शन किए। मन्दिरोकी विशालताका वर्णन करना बुद्धि बाह्य है। यहाँ तीन दिन रहकर आगरा आए और यहाँसे सीधे सागर चले आए।

सागरकी जनताने बहुत ही शिष्टताका व्यवहार किया। कोई सौ नारियल भेटमे आए। यह सब होकर भी चित्तमे शान्ति नही है। ●

३–गिरिनार यात्रा

•

[सिद्ध क्षेत्र श्री गिरिनारजी की यात्रा दो बार करनेका अवसर मिला। एक तो सम्वत् १९७६ में बाईजी की साथ श्री मूडबिद्रीसे लौटते समय की। तथा दूसरी बार ई० सन् १९२१ में अहमदाबाद काग्रेसके सम्मेलनके अवसर पर की] राजधर लाल जी वरैया आदिने कहा कि काग्रेस देखनेको चलिये। नेता जनोंके भाषण सुननेकी तो कोई रुचि न थी, हां श्री गिरिनारजी की यात्राके लिये काग्रेस देखने चला गया।

पहली बार तो सूरतसे तथा दूसरी बार अहमदाबादसे टिकट लेकर झूनागढ आ गए। वहाँ पहुँचने पर शहर की धर्मशालामें ठहर गए। बादमें तलहटी पहुँचे और वहाँसे श्री गिरिनार पर्वत पर गए। गिरिनार पर्वत समधरातलसे बहुत ऊँचा है। बड़ी-बड़ी चट्टानोंके मध्य सीढियाँ लगाकर मार्ग सुगम बनाया गया है। कितनी ही चोटियाँ तो इतनी ऊँची हैं कि उनसे मेघ मण्डल नीचे रह जाता है। ऊपर अनन्त आकाश और चारो ओर क्षितिज पर्यन्त फैली हुई वृक्षोंकी हरीतिमा देखकर मन मोहित हो जाता है।

यह वही गिरिनार है, जिसकी उत्तम चोटियोंसे कोटि-कोटि मुनियोंने निर्वाण धाम प्राप्त किया है। यह वही गिरिनार है, जिसकी कन्दराओंमे राजुल जैसी सती आर्यकाओंने घनघोर तपश्चरण किया। यह वही गिरिनार है जहाँ कृष्ण और बलदेव जैसे यदुपुङ्गव भगवान नेमिनाथकी

समवशरण सभामे बड़ी नम्रताके साथ उनके पवित्र उपदेश श्रवण करते थे। यह वही गिरिनार है, जिसकी गुहामें आसीन होकर श्री धरसेन आचार्यने पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्यके लिए षट्खण्डागमका परायण कराया था।

पर्वत पर श्री नेमिनाथ स्वामीका दर्शन कर गद्गद् हो गए। दिगम्बर मन्दिरका दर्शन कर श्वेताम्बर मन्दिरमें गए। यात्रियोंके लिए इस मन्दिरमें सर्व प्रकारकी सुविधा है, भोजन आदिका उत्तम प्रबन्ध है। दिगम्बर मन्दिर रमणीक है, परन्तु ठहरनेका कुछ भी प्रबन्ध नही।

यहाँसे चलकर श्री नेमिनाथ स्वामीके निर्वाण स्थानको जो कि पञ्चम टोक पर है चल दिये। आधा घण्टा बाद पहुँचे। इस स्थानपर एक छोटीसे मढिया बनी हुई है। कोई तो इसे आदम बाबा मानकर पूजते हैं और कोई दत्तात्रेय मानकर इसकी उपासना करते है। जैनी लोग उसीको श्री नेमिनाथ जी मानकर उपासना करते हैं। श्री नेमिनाथ जीकी भावपूर्वक पूजा की।

यहाँसे चलकर बीचमें एक वैष्णव मन्दिर मिलता है, जिसमें साधु लोग रहते है। पचासों गाय आदिका परिग्रह उनके पास है। श्री रामके उपासक है। वहाँसे चलकर सहस्रार बनमें आये। जो पहाडीसे नीचे तलमें है। जहाँ सहस्रों आमके वृक्ष हैं। बहुत ही रम्य और एकान्त स्थान है। आधा घण्टा रहकर भूखकी वेदना होने लगी। वहाँसे चलकर पर्वतके नीचे वाली धर्मशालामे आ गए और भोजन आदिकसे निश्चिन्त हो गए। ●

४–सम्मेदाचल यात्रा

●

१. प्रथम बार

(१) गिरिराज सम्मेदाचलकी यात्रा चार बार करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रथम बारकी एक विचित्र घटना है। खुर्जामें पढता था। एक ज्योतिषीने कहा कि वैसाख सुदी १३ को ९ बजे खुर्जासे बाहर जाना होगा। इस नियतिका कथन पृथक्से किया गया है। मुझे एक भयकर स्वप्न दिखा और निश्चित तिथिको सम्मेदाचलकी यात्राको चल पडा।

इलाहाबाद और पटनाकी वन्दना करते हुए गिरेडी आ गए और वहांसे मधुवन पहुँच गये। गर्मीके दिन थे, परन्तु रात्रिको ही अखण्ड जलधारा बरसी। एक बजे शौचादिसे निवृत्त होकर एक आदमी साथ लिया और गिरिराजकी वन्दनाके लिये प्रस्थान कर दिया। वन्दना निर्विघ्न होनेसे अनुपम आनन्द आया।

एक दिन आराम किया फिर परिक्रमाके लिये चल पडे। नीमिया-घाटसे आगे डेढ मील चलकर मार्ग भूल गये। जेठका महीना, मध्याह्नका समय, मार्गका परिश्रम, नीरस भोजनका प्रभाव आदि कारणोंसे पिपासा बढने लगी। कण्ठ सूखने लगा। बेचैनीमें चित्तमें अनेक प्रकारके विचार आने लगे। इस समय मरण हुआ तो नियमसे नरक गति होगी। 'चौबे छब्बे बननेके लिये गए पर दुबे ही रह गए', यह कहावत चरितार्थ होगी।

तुरत परिणाम बदले। पार्श्वप्रभु का स्मरण करके चले। केवल एक फर्लांग चलनेपर जलका कुण्ड मिला। अगम्य अरण्यकी चिन्ता छोड़कर वहाँ तीन घण्टा सामायिक की। दिन अस्त होने पर चले और केवल डेढ़ घण्टे में मधुवन पहुँच गए।

२. द्वितीय बार

दूसरी बारकी यात्रा (वी० नि० २४६१ में) बाई जोके साथ हुई। माघमास, प्रातः कालका समय, मैंने बाई जीसे कहा—'बाई जी! कटरा से २५ मनुष्य श्री गिरिराज जी जा रहे है। मेरा भी मन व्यग्र हो रहा है।' बाई जीने कहा—'व्यग्रताकी क्या आवश्यकता, हम भी चलेगे, मुला बाई भी चलेगी।'

दूसरे दिन सागरसे कटनी पहुँचे और वहांसे डाक गाड़ीमें बैठकर प्रात काल गया पहुँच गए। भोजन कर दो बजेकी गाडीमे बैठकर शामको श्री पार्श्वनाथ स्टेशन पर पहुच गये। प्रात काल श्री पार्श्वप्रभु की पूजा कर मध्याह्न बाद मोटरमें बैठकर मधुबनकी श्री तेरापन्थी कोठीमें जा पहुचे।

मायकालका समय था। हम लोग चबूतरा पर सामायिक आदि कर तत्त्व चर्चा करने लगे। रह-रह कर यही भाव होता था कि 'हे प्रभो! कब ऐसा सुअवसर आवे कि हम लोग भी दैगम्बरी दीक्षाका आलम्बन कर इस दु खमय जगतसे मुक्त हों।'

बाई जीका स्वास्थ्य श्वास रोगसे व्यथित था। अतः उन्होने कहा, 'भैया आज ही यात्राके लिये चलना है।' आज्ञा प्रमाण स्थान पर आये और सो गये। दो बजे निद्रा भंग हुई। तत्पश्चात् शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर एक डोली मँगाई। बाई जीको उसमे बैठा कर हम सब पार्श्वनाथ स्वामीकी जय बोलते हुये गिरिराजकी वन्दनाके लिये चल पड़े।

गन्धर्व नाला पर पहुचकर सामायिक क्रिया की। वहाँसे चलकर सात बजे श्री कुन्थनाथजीकी वन्दना की। वहाँसे सब टोकोकी यात्रा करते हुए १० बजे श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंक पर पहुच गए। आनन्दसे श्री पार्श्वनाथ स्वामी और गिरिराजकी पूजा की। चित्त प्रसन्नतासे

भर गया। बाईजी तो आनन्दमें इतनी निमग्न हुईं कि पुलकित वदन हो उठीं और अपनी पर्याय तीन महीने शेष जान वहाँ दूसरी प्रतिमाके साथ अनेकानेक व्रत ग्रहण कर लिये, जिनका उल्लेख बाईजीके प्रकरणमें पृथक्से किया गया है। वहाँसे चलकर हम तेरापन्थी कोठीमें आ गए।

दो दिन रहकर गया आए और वहाँसे कटनी। मन्दिरोंके दर्शन कर सागरके लिए रवाना हो गए और वहाँ आकर यथा-स्थान धर्मशालामें रहने लगे।

३. तृतीय बार

यद्यपि रेल व मोटरकी सवारीका त्याग कर चुका था, परन्तु बाईजीके वियोगके कारण सागरमें उपयोगकी स्थिरता न हुई। एक दिन सिंघईजी के घर भोजनके लिये गए। मध्याह्नको सामायिकके पश्चात् बिना कहे पैदल चल दिये और एकाकी चलते-चलते पाच बजे कुर्रापुर पहुँच गए। पाच मिनट बाद सिंघईजी के मुनीम हजारीलाल आ गए। कहने लगे कि सिंघईजी का अभिप्राय है कि मुझसे मिलकर यात्रा करते तो अच्छा होता, क्योंकि मै अपने कल्याणके लिये आपका निमित्त चाहता हूं।

दो दिन रह कर **बण्डा** चला गया। यहाँ पर श्री दौलत रामजी चौधरी ने आग्रह किया—'आप गिरिराजको जाते है तो जाओ, परन्तु नैनागिरिमें रहो तो हमे आपकी वैयावृत्यका अवसर मिलता रहेगा। आपकी वृद्ध अवस्था है। इस समय एकाकी इतनी लम्बी यात्रा करना हानिप्रद हो सकता है।

मै सुनकर कुछ उत्तर न दे सका और दो दिन बाद श्री **नैनागिरिजी** को चला गया। धर्मशाला में ठहरा। साथ मे कमलापति सेठ भी थे। यहाँ पर एक छोटी सी पहाड़ी है। उसपर अनेक जिनालय है। सामने एक सरोवर है। उसके मध्य भागमें एक विशाल जैन मन्दिर है जिसके दर्शनके लिये एक पुल बना हुआ है। सामने एक छोटी सी पहाड़ी पर अनेक जिन-मन्दिर विद्यमान हैं। वहाँ पहुँचनेका मार्ग सरोवर के बाध पर से है। एक पाठशाला है जिसमें २० छात्र अध्ययन करते है। सिंघईजी ने बहुत रोका पर मैने एक न सुनी।

नैनागिरिसे चलकर बमौरी, शाहगढ़, हीरापुर, होते हुए **'बरगुवां'** पहुँचा। यहाँ पर श्रीयुत ब्र० चिदानन्दजी के द्वारा स्थापित एक पाठशाला है। आपने बुन्देलखण्ड प्रान्त में पच्चीस पाठशालायें स्थापित करादी है। गरीबों पर आपकी बडी दया रहती है। निरन्तर विद्याभ्यास करते-रहते है। आपके समागममे दो दिन सानन्द व्यतीत हुए। आपने खूब आतिथ्य सत्कार किया।

यहाँसे सडगाव होते हुए **द्रोणगिरि** पहुँच गए। यहाँ पर सुन्दर धर्म-शाला है। एक गुरुदत्त पाठशाला चल रही है, जिसकी रक्षा श्री सिघई कुन्दनलालजी सागर तथा मल्हारके सिंघई वृन्दावन दासजी डेवडिया करते है। ग्राममे एक मन्दिर है। क्षेत्र बड़ा निर्मल और रम्य है।

पहाडसे नीचेकी ओर देखने पर शिखरजीका दृश्य आँखोके सामने आता है। पर्वतके सामने एक विपुल नदी बह रही है, तो एक पूर्वकी ओर भी बह रही है। दक्षिणकी ओर एक बृहत् कुण्ड भरा हुआ है, जो पहाडकी तलहटीसे निकला है। पहाडपर श्री प्यारकुँवर जी सेठानी (धर्मपत्नी सेठ कल्याणमलजी इन्दौर) ने एक उत्तम कुटी बनवादी है, जिसमे तप करते हुए ऋषियोके चित्र अङ्कित है। इस प्रान्त मे ब्र० चिदानन्दजी ने अधिक जागृति की है।

यहाँसे चलकर गोरखपुर, घुवारा, बडगाँव, पठा, पपौरा व वरमा होते हुए **दिगौड़ा** पहुँचे। यह वही दिगौडा है, जहां कि श्री देवीदासजी कविका जन्म हुआ था, तथा जिनके विषयमे कई किवदन्तियाँ प्रचलित है। आप कपडे का व्यापार करते थे। एक बार ललितपुरसे घोडे पर कपड़ा लेकर घर जा रहे थे। अटवीके बीचमे सामायिकका समय हो गया। साथियोंने कहा कि जल्दी अटवीसे निकल चलो, चोरोका डर है, परन्तु आप बोले कि—'आप लोग जाइये' हम तो सामायिकके बाद ही यहां से चलेगे।' सामायिकके लिये बैठ गए। चोर आये और उनके गट्ठे लेकर चले गए, पर वह टस से मस न हुए। चोर प्रभावित हुए। उनके गट्ठे उन्हे लौटा दिये और आगे जाकर उनके उपरोक्त साथियो को लूट लिया।

दिगौडासे चलकर **बमहुमा** आये। यहाँ पर बाईजीकी सासकी बहनका लडका गुलाब चन्द है। इसने एक बार बातों ही बातोंमें अपने

पितासे सरल भावमें यह कहा कि—'समाधि-मरणके लिये सबसे ममता त्यागो।' बस इतना कहने मात्रसे उन्होने सब कुछ छोड दिया, और बादमें यथासमय परमेष्ठीका स्मरण करते हुये निर्विघ्न रूपसे परलोक-यात्रा की।

इस गाँवसे चलकर **बरुआसागर** आ गये। मूलचन्दजी सर्राफकी दुकानके पास ही एक अट्टालिका पर जिन-चैत्यालय है। यहाँसे आधा फर्लाङ्ग पर एक छोटी-सी पहाडिया है, जिसके ऊपर सर्राफजीने एक पार्श्वनाथ विद्यालय खोल रक्खा है।

पन्द्रह दिन बरुआसागरमे रहकर शुभ मुहूर्त्तमे श्री गिरिराजके लिये प्रस्थान कर दिया। प्रथम दिनकी यात्रा पाँच मीलकी थी। निवारी ग्राममे पहुंचा। साथमें एक ठेला था, जिसमे सब सामान रहता था। उसे दो आदमी ले जाते थे। तीन मील चलकर थक गया और चलनेमें बिल्कुल असमर्थ हो गया। साथ वाले एक जैनी भाईने साम्हर दूर सिमरिया नियरी' की प्रसिद्ध कहावत कहकर ढाढस बँधाई। वाक्यको सुनकर मेरेमें स्फूर्ति आ गई। मैने यह प्रतिज्ञा की—'हे प्रभो पार्श्वनाथ! मै आपकी निर्वाण भूमिके लिये प्रस्थान कर रहा हूँ। जब तक मुझमें एक मील भी चलनेकी सामर्थ्य रहेगी तबतक पैदल चलूँगा, डोलीमे नहीं बैठूंगा। आध घण्टेमे 'निवारी' पहुँच गया।

यहाँसे चलकर मगरपुर और वहाँसे **टेरका** आया। यहाँ दो मन्दिर और पन्द्रह घर जैनियोंके है। यहाँ पर समाज मे वैमनस्य था। वह दूर हो गया। वहाँसे चलकर मउरानीपुर, अलीपुर, नयागाँव और महेवा होता हुआ छतरपुर आ गया।

छतरपुरमें संस्कृत जैन साहित्य भण्डार और प्राचीन प्रतिमाएँ बहुत है। परन्तु वर्तमानमें उनकी व्यवस्था सुन्दर नही। चौधरी हीरालालजी राजमान्य है, प्रतिष्ठित भी है। वह पुरुषार्थ करें तो इस प्रान्तका बहुत कुछ सुधार हो सकता है। गाँवके बाहर एक टेहरी पर पाण्डेय जीका मन्दिर है।

यहाँसे चलकर एक दिन राजधानीमें आया। उसका नाम लिखना नही चाहता। यहाँ 'पाण्डेय' नामके एक भट्टारकके शिष्य थे जो बहुत ही योग्य व परोपकारी थे। आपका राजाके साथ मैत्री भाव था। एक

बार यहाँ वर्षाका अकाल पड़ा। प्रजागणने राजासे कहा कि—'महाराज यह जैन गुरु नास्तिक है। इसीसे वर्षा नहीं होती। इसलिये इसे राज्यसे निकाल दीजिये।' महाराजने बहुत कुछ कहा पर समुदायने एक न सुनी। आखिर आज्ञा देनी पड़ी। आज्ञा पाकर पाण्डेय जीने मन्त्रराजका आराधन किया। अखण्ड मूसलाधार वर्षा होने लगी। महाराज बड़े प्रसन्न हुये और यह आज्ञा की कि 'जैनका जब रथ निकले तब उसे आवश्यक बाह्य सामग्री राज्यसे दी जावे।

यहाँ तीन दिन रहकर **खजराहा** चले गये। यह अतिशय क्षेत्र है। यहाँके मन्दिर बहुत ही विशाल कलापूर्ण और उन्नत शिखर वाले हैं। क्षेत्रकी रक्षाके लिये न तो कोई भृत्य है न मुनीम। छतरपुर वाले चाहें तो प्रबन्ध कर सकते हैं, परन्तु उनकी इस ओर दृष्टि नहीं। यहाँसे चलकर तीन दिन बाद **पन्ना** पहुँच गये। सिघई रामरतनके घर पर ठहरे। आप आतिथ्य सत्कारमे पूर्ण सहयोग देते हैं। हमको पन्द्रह दिन नहीं जाने दिया।

पन्द्रह दिन बाद चलकर दो दिनमें **पड़रिया** आये यहाँ सबसे विलक्षण बात यह हुई कि एक आदमीने यहाँ तक हठ की कि आप हमारे घर भोजन नही करेंगे तो हम अपघात कर लेंगे। अनेक प्रयत्न करनेपर यहाँसे निकल पाये। और तीन दिनमें मलना पहुँच गये। यहाँ पर बड़े सत्कारसे रहे। लोग नही जाने देते थे। अन्त सेठ कमलापति और बा० गोविन्द लालजीको रेलपर भेज दिया और मै सामायिकके मिससे ग्रामके बाहर चला गया। और यहाँसे रीवाके लिये प्रस्थान कर दिया। बादमें ठेला जो कि साथ था वह भी पहुँच गया। पचास आदमी तीन मील तक आये।

तीन दिनमे रीवाँ पहुँचे और वहाँ तीन दिन रहकर बारह दिनमें **मिर्जापुर** पहुँच गये। यहाँके जैन मन्दिर अति सुन्दर है। गंगाजीका घाट बहुत सुन्दर बना हुआ है। उस पर ही विन्ध्यवासिनी देवीका मन्दिर है, जिसके समक्ष यात्रीगण पण्डोकी बदौलत निर्मम छागोंका बलिदान कर देते है।

यहाँसे चलकर चार दिनमें **वाराणसी** पहुँच गये और पार्श्वनाथके मन्दिरमें भेलूपुर ठहर गये। श्वेताम्बरियो व दिगम्बरियोकी साझली होनेके कारण यहाँकी धर्मशालामें कोई सुविधा नही है। मन्दिर दो हैं।

प्रभुघाटके ऊपर श्री बा० देवकुमार जी आरा निवासीका बनवाया हुआ सुन्दर घाट हैं। घाटके ऊपर एक बड़ा सुन्दर मेहल है, जिसकी लागत कई लाख रुपये होगी। इसीमें स्याद्वाद विद्यालय है। विद्यालयके ऊपर ही एक सुन्दर मन्दिर है। थोडी दूर चलकर रानीघाट पर स्वर्गीय छेदी-लालजीके द्वारा निर्मापित एक सुन्दर मन्दिर और है। मैदागिनमें एक अति सुन्दर मन्दिर व धर्मशाला है, जिसमे सब प्रकारकी सुविधा है। एक चैत्यालय है जिसमें हीरेकी प्रतिमा है। यहाँसे थोडे ही अन्तर पर एक पञ्चायती मन्दिर है।

बनारसमे तीन दिन रहा। यहाँसे **सिंहपुरी** (सारनाथ) गया। वहाँ एक विशाल मन्दिर और एक बृहद् धर्मशाला है। जैन मन्दिरसे कुछ ही दूर पर बुद्धदेवका बहुत ही सुन्दर मन्दिर है। यहाँ पर बौद्ध मतानुयायी बहुतसे साधु रहते है। मन्दिरमे दरवाजेके ऊपर एक साधु रहता है, जो बुद्धदेवकी जीवनी बताता है और उनके सिद्धान्त समझाता है। यदि यह व्यवस्था वहाँके जैन मन्दिर भी रहती तो आगत महाशयोंको जैन धर्मका बहुत कुछ परिचय हो जाता।

सिंहपुरीसे चलकर मोगलसराय होते हुये **डालमिया-नगर** पहुँच गये। यहा भारतके गणमान्य व्यापारी श्री रामकृष्ण जी डालमिया रहते है। आपकी सुपुत्री रमा रानी आँगल विद्यामे विदुषी है, दयाकी मूर्ति है, निरन्तर ज्ञानार्जनमे अपना समय लगाती है। आपका सम्बन्ध श्रीमान् साहू शान्ति प्रसादजी नजीबाबाद वालोंके साथ हुआ है। आप पाश्चात्य विद्याके पण्डित ही नही जैन धर्मके महान श्रद्धालू भी है। आपकी माता (मूर्ति देवी) बडी धर्मात्मा है। उनके नामसे आपकी धर्मपत्नीने छ लाख रुपया दानम निकाला है। साहूजीके प्रयत्नसे यहाँ एक जैन मन्दिर स्थापित हो गया है। यहाँ पर आपके कई कारखाने हैं–शक्कर मिल, सिमेन्ट मिल, कागज मिल आदि। आपने छ लाख रुपयेसे अपनी स्वर्गीय माताकी स्मृतिमे 'भारतीय ज्ञान पीठ' सस्था खोली है, जिसका कार्यालय बनारसमें है। आपके द्वारा अनेकों छात्रोको मासिक छात्रवृत्ति मिलती है। भारतीय जैन परिषदकी उन्नति भी आपकी उदारताका फल है। स्वभाव अत्यन्त सरल है।

डालमिया नगरसे चलकर औरगाबाद ठहरा और यहाँसे **चम्पारन** पहुँचे। यहाँके निवासियोमे परस्पर कुछ वैमनस्य था, जो प्रयत्न करनेसे

शान्त हो गया । यहाँसे चलकर दो दिनमें शेरघाटी और वहाँसे चलकर दो दिनमें **गया** आये । बा० कन्हैया लालजीने बहुत आतिथ्य सत्कार किया । यहाँ दो मन्दिर है—एक चौकमे और एक प्राचीन गया मे । एक धर्मशाला मेठ सूरजमल्ल जीकी है । वर्तमानमें दस लाख लागतकी होगी । यहाँसे पाँच मील बौद्ध-गयाका मन्दिर है । यहाँ पर बुद्धदेवने तपश्चर्या कर शान्ति-लाभ किया था । यहाँ बौद्ध लोग तिब्बत, चीन, जापान आदिसे बहुत यात्री आते है । एक वैष्णव मन्दिर है, जहाँ 'श्राद्ध करनेसे बीस पीढियाँ तर जाती है', ऐसी किवदन्ती प्रसिद्ध है ।

यहाँसे चलने पर बीचमे एक निर्मल पानीका झरना मिला, जिसका जल खौलते हुये जलसे भी कही अधिक उष्ण था । लोगोका कहना है कि इसमे स्नान करनेसे सब प्रकारके चर्मरोग दूर हो जाते है । यहाँसे चलकर आठ दिन बाद श्री गिरिराज पहुँच गये ।

पर्वत राजके स्पर्शकर परिणामोमे शान्तिका उदय हुआ । श्री कुन्थुनाथ स्वामीकी टोक पर पूजन की । अनन्तर अन्य टोकोंकी वन्दना करते हुये दस बजे श्री पार्श्वनाथ स्वामीके मन्दिरमें पहुँचे । अष्टाह्निका-पर्व था, इससे बहुत यात्रीगण वहाँ पर थे । एक घण्टा तत्त्व चर्चा होती रही । वही प्रभुके चरणमूलमे सामायिक की । पश्चात् वहाँसे चलकर तीन बजे मधुबन आ गये । सायंकाल मन्दिरमे शास्त्र प्रवचन हुआ । ईशरीमे उदासीन आश्रमकी स्थापना कर दी गई और शान्ति पूर्वक वहा आकर रहने लगा ।

४. चतुर्थ बार

वृद्ध हो जाने पर अपने जीवनका अन्तिम भाग प्रभु पार्श्वके चरणोंमे व्यतीत करनेके लिये विहार करता हुआ मै सागरसे ईशरी आया । १० वर्षके पश्चात् लौटा था । आयु ८० वर्ष हो चली थी । इसलिये श्री गिरिराजकी वन्दना का हृदयमे बहुत अनुराग था । अत अगहन सुदी १० स० २०१० को ईशरीसे मधुवनके लिये प्रस्थान किया । बीचमे मटियो नामक ग्राममे रात्रि व्यतीत की । तदनन्तर प्रातः चलकर मधुवन पहुच गए ।

द्वादशीको प्रात वन्दनार्थ गिरिराज पर गये । साथमें श्री भगत सुमेर

चन्दजी, ब्र० नाथूरामजी तथा ब्र० मगलसेनजी थे। जिस स्थानसे अनन्तानन्त मुनिराज कर्म-बन्धन काटकर निर्वाण धामको प्राप्त हुए उस स्थानपर पहुँचनेसे भावोमें सातिशय विशुद्धता आ जाय, इसमे आश्चर्य नहीं।

क्रम-क्रमसे समस्त टोकों की वन्दना कर १० बजे श्री पार्श्वनाथ भगवानके निर्वाण स्थान पर पहुच गये। वन्दना पूर्ण होने पर हृदयमे अत्यन्त हर्ष हुआ।

तीन चार दिन मधुवनमे रहे। नीचे तेरह पन्थी कोठीमे श्री भगवान पार्श्वनाथकी विशाल प्रतिमा विराजमान है। श्री मोहनलालजी कलकत्ता-वालोके मन्दिरमे श्री चन्द्रप्रभु भगवानकी भी मनोज्ञ प्रतिमा है। यहाँसे चलकर पुन ईशरी वापस आगए।

५ ईशरी निवास

तृतीयवार स० २००० मे सम्मेद शिखरकी यात्राको आया तो ईशरीमे उदासीन आश्रमकी स्थापना हो गयी। मै वहाँ सानन्द रहने लगा। एक बार गयाके श्रीमान् चम्पालाल सेठी और आश्रमके अधिष्ठता श्री खेमचन्दजी दोनोमे परस्पर बहुत कुछ विसवाद हो गया। यदि मै न होता तो सम्भव था कि परस्परमे अत्यन्त कलहाग्नि बढ जाती। इस घटनासे मेरा चित्त बहुत खिन्न हुआ। यहाँ तक कि दूसरे दिनसे मलेरिया आ गया। १०५ डिग्री तापमान हो जाता था। वह मलेरिया पाव वर्ष तक नही गया।

यहाँ पर श्रीमान् बाबा भगीरथ दासजी थे। ज्वरके वेगकी प्रबलतासे खाना पीना सब छूट गया। श्री कृष्णा बाईजी ने उस समय बहुत सहायता की। तथा श्री बा० धन्यकुमारजीने मिट्टीका प्रयोग किया। सागरसे सिंघईजी कविराजको लाये। परन्तु मै न तो औषधि खाना चाहता था न मन्त्रादि विधिका प्रयोग करना चाहता था। अत जो औषधि मेरे रोगके निवारणके लिये दी जाती थी, मै उसे लेकर पश्चात् फेंक देता था। चार चार घण्टा ज्वरसे बेहोश रहता था। कृष्णा बाई और पतासी बाई माताकी तरह गीली पट्टी शिरपर रखती थी।

श्री कन्हैयालालजी गया वालोने सभी दरवाजोंमे खशकी टट्टीयाँ

लगवा दी थी। दिन भर उनपर पानी छिड़काव होता था। श्री बाबाजी महाराज कहते थे कि 'यह सब कर्म-विपाक है। इसे तो ऋणकी तरह अदा करो। यह जो तुम्हारा उपचार है, इस पदके योग्य नहीं है। असंयमी मनुष्योंके योग्य है।'

६. ईशरी के अञ्चलमें

(१) ईशरीमें सात वर्ष आनन्दसे रहा। इस बीच मे बहुत कुछ शान्ति मिली। यहाँसे **गिरिडीह** गए। बाबू राधाकृष्ण जीके बङ्गलामे ठहरा। धर्मशालामें ऊपर चैत्यालय है और नीचे सरस्वती भवन। बाबू रामचन्द्रजी का प्रेम सराहनीय है। खेतसीदासजी ब्रह्मचारी बहुत ही धार्मिक व्यक्ति है। दोनो प्रति दिन सैकडो कगालो को दान देते है। अनेक गरीबोको पक्की खिचडी आदि का भोजन मिलता है। हम चार माह यहाँ रहे। यहाँसे फिर ईशरी आगये और यहाँ आनन्दसे काल जाने लगा।

यहाँसे फिर **हजारीबाग रोड** गया। सेठ भोरीलालजी के यहाँ ठहरा। यहाँसे फिर ईशरी आ गया।

सागर वालोंका तीव्र आग्रह था कि सागर आओ। इसलिये सागरके लिये प्रस्थान कर दिया। इन दिनो मुझे मलेरिया चल रहा था। १२ मील बगोदरा तक ही पहुँच पाए थे, कि बडे वेगसे ज्वर आ गया। **बगोदरा** के बङ्गलामे रात्रि व्यतीतकी। वहाँसे चलकर हजारीबाग रोड आ गये। वही पर श्री रामचन्द्रसेठी गिरिडीह वालोका कुटुम्ब आ गया। बहुत ही आग्रह पूर्वक आपने कहा कि 'क्यो इस पवित्र स्थानको छोडते हो?' परन्तु मैने एक न सुनी, चल दिया।

आठ दिन बाद **गया** पहुंच गया। बाबू कन्हैयालालजी तथा चम्पालालजी सेठी आदिने गया रोकनेका बहुत आग्रह किया। मैंने कहा, 'एक बार सागर जानेका दृढ निश्चय है। मेने कहा—'तीन दिन बाद चला जाऊगा।' (परन्तु नियति बलवान।) तीन दिनके बाद एक दम पैरके अगूठेमे दर्द हो गया। चलनेमे असमर्थ हो गया। अतः लाचार होकर मै स्वय रह गया। एक मासके उपचारसे अंगूठा आराम हो गया। वर्षा काल गयामें सानन्द बीता।

यहाँसे मैंने कार्तिक बदी दोज सं० २००० को लोगोंसे सम्मति लेकर श्री वीर प्रभुकी निर्वाण भूमि (पावापुर) के लिये प्रस्थान किया। दस मील तक जनता गई। कई दिन बाद नवादा पहुँच गये। यहाँसे **श्रीगुनावा** जी गये। यहाँ पर एक मन्दिर बहुत ही सुन्दर है। मन्दिरसे थोड़ी दूर पर एक सरोवर है। उसमें एक जैन मन्दिर है। मन्दिरमें श्री गौतम स्वामीका प्रतिबिम्ब है। यहाँ आकर थक गया था। यह भाव हुआ कि यही निर्वाण लाडूका उत्सव मनाना योग्य है। (परन्तु दो कुष्टी भिखमगोकी बात सुनकर जो कि केवल वीर प्रभुकी कृपाके आश्रयपर वही चले जा रहे थे) मेरा उत्साह पुनः जागृत हो गया और मैंने निश्चय कर लिया कि पावापुर अवश्य पहुचूँगा।

रात्रि गुणावा ही में बिताई। प्रातःकाल होते ही श्री वीर प्रभुका स्मरणकर चल दिया और नव बजे श्री **पावापुर** पहुँच गया। यह वही भूमि है जहाँ पर वीर प्रभुका निर्वाणोत्सव इन्द्रादि देवोंके द्वारा किया गया था। (निर्वाण स्थलपर एक सरोवर है। उसीके बीचमें मन्दिर बना हुआ है। पुल द्वारा जाना होता है। निर्वाणका लड्डू यहाँ ही चढ़ता है।) ठीक स्थान पानेके लिये लोग बहुत पहलेसे जा पहुँचते हैं। और इस तरह सारी रात मन्दिरमे चहल-पहल बनी रहती है। हम लोगोने भी श्री महावीर स्वामीका निर्वाणोत्सव आनन्दसे किया।

पावापुरसे चलकर **राजगृही** आये। पञ्च पहाड़ोंकी वन्दना की। यहाँका चमत्कार विलक्षण है—पर्वत की तलहटीमें कुण्ड है। पानी गरम है। और जिनमें एकही बार स्नान करनेसे सब थकावट निकल जाती है। मै तीन मास यहाँ रहा। प्रातःकाल सामायिक करनेके बाद कुण्डोंपर जाता था, और वही आधा घण्टा तक स्नान करता था। यह वही स्थान है जहाँ महाराज श्रेणिक (विम्बसार) जैसे विवेकी राजा और महारानी चेलना जैसी पतिव्रता रानीने आवास किया था। विपुलाचल पर दृष्टि जाते ही यह भाव सामने आ जाता है कि भगवान् महावीर स्वामीका समवशरण भरा हुआ है, गौतम गणधर विराजमान है, और महाराज श्रेणिक नत मस्तक होकर उनसे विविध प्रश्नोका उत्तर सुन रहे है। यहाँसे पैदल ही **ईशरी** वापस आ गये। ●

५—पुनः नीचेकी ओर

●

१. सागरकी ओर

ईशरीमें बडे आनन्दसे समय बीतता था। श्री धन्य कुमारजीका कहना था कि ईशरी न छोड़ो, अन्यथा पछताओगे। वही हुआ। सात वर्ष ईशरीमे रहा। सागर वालोका तीव्र आग्रह था कि सागर आओ। द्रोणगिरिसे सिंघई वृन्दावनजी ने हीरालाल पुजारीको भेजा। उसने कहा कि अब तो देशका मार्ग लेना चाहिये। मनमे यह विकल्प तो था ही कि एक बार अवश्य सागर जाकर पाठशालाको चिरस्थायी किया जाय। यही बीज मेरे इस स्थानसे पृथक होनेका हुआ। परमार्थसे देखा जाय तो हममे बड़ी गलती हुई कि पार्श्वप्रभुके पादमूलका त्याग कर 'पुनर्मूषको भव' का उपाख्यान चरितार्थ किया।

जब मै चलने लगा तब गिरिडोहकी समाजको बहुत खेद हुआ। खेदका कारण स्नेह ही था। बा० रामचन्द्र जीका कहना था, कि दूसरों के पीछे आप अपना अकल्याण क्यो करते है, पर मनमे एक बार सागर जानेकी प्रबल भावना उत्पन्न हो चुकी थी अत मैंने एक न सुनी।

ईशरीसे प्रस्थान करनेके समय सम्पूर्ण त्यागी वर्ग एक मील तक आया। सबने बहुत ही स्नेह जनाया तथा यहाँ तक कहा—'पछताओगे।' परन्तु मुझ मूढने एक न सुनी। दो दिन बाद हजारीबाग रोड आ गया।

यहाँ पर दो दिन रहा, बाद कोडरमा पहुँच गया। यहाँ पर चार दिन तक नही जाने दिया। यहाँसे चलकर रफीगञ्ज आये। दो दिन ठहरे। यहाँसे चलकर गंगाबाद और वहाँसे डालमिया नगर आ गये।

डालमिया नगरसे साहू शान्ति प्रसाद जीने एक गाड़ी और एक मुनीम साथ कर दिया, जो सागर तक पहुँचा गया था। आपने बहुत कहा—'सागर मत जाओ।' परन्तु उदयके समक्ष कुछ न चली। वहाँसे चलकर दस दिन बाद बनारस आ गया। चालिस मील पहलेसे बा० रामस्वरूपजी बरुआसागरसे आ गये।

मिर्जापुर, रीवाँ, सतना, पडरिया, चन्दननगर, खजराहा, छतरपुर, देवगन, मलहरा, होते हुये द्रौणगिरि पहुँच गये। और यहाँसे चलकर गोरखपुरा होते हुये **घुवारा** आये। गाँव बहुत बडा है। पाँच जिनालय हैं। पचास घर जैनियोंके है। अनेक महानुभाव अच्छी स्थितिमे है। यदि ये लोग पूर्ण शक्तिसे काम लेवे तो एक विद्यालय यहाँ चल सकता है। परन्तु इस ओर अभी दृष्टि नही है।

यहाँसे चलकर **बारा ग्राम** आये। तीन घर जैनियोंके हैं। मन्दिर बना रहे है, परन्तु उत्साह नही। यहाँसे **नीमटेरिया** आये। यहाँ पाँच जिनालय और जैनियोंके २५ घर है। एक पाठशाला भी स्थापित हो गई है। यहाँसे **अदावन** आये। यहाँ पर एक मन्दिर बन रहा है, जो अधूरा पडा था। यहाँके ठाकुर बड सज्जन है। उन्होने सब पञ्चायतको डाँटा और मन्दिरके लिये पर्याप्त चन्दा करवा दिया।

किसनपुरा होते हुये **बरायठा** पहुँचे। सेठ कमला पति जीके मकान पर ठहरे। सेठ दौलत रामजीके यहाँ भोजन हुआ। इनके उद्योगसे यहाँ एक पाठशाला हो गई है। प्रात काल चलकर पाटन आये। बण्डासे यहाँ पच्चीस जैनी आ गये। दूसरे दिन **बण्डा** पहुँचे। सादर स्वागत हुआ। दो दिन रहे। वहाँसे सागर आ गया।

२. सागर चातुर्मास

यहाँसे सागरके लिये प्रस्थान कर दिया। बहेरिया रात्रि बिताई। प्रातःकाल होते-होते गमरिया नाके पर पचास मनुष्य आ गये और कचहरी तक पहुँचते-पहुँचते हजारो नर-नारी आ पहुँचे। बैण्ड बाजा तथा

जलूसका सब सामान साथ था। जलूसके साथ बड़ा बाजार होते हुये मोराजी भवनमें पहुँच गये। मार्गमें पच्चीस स्थानों पर तोरण द्वार तथा वन्दनवार बन्धे थे। मोराजीमे चार हजार मनुष्योंका समुदाय था। आगत जनताको अत्यन्त हर्ष हुआ।

चातुर्मास यहीका हुआ। भाद्रमासमें अच्छे-अच्छे महानुभावोंका संसर्ग रहा। सहारनपुरसे श्री नेमिचन्द वकील, उनके बडे भाई रतनचन्द्रजी मुख्तार, जो कि करणानुयोगका अच्छा ज्ञान रखते है आदि अनेक सज्जन पधारे। तात्त्विक चर्चाका अच्छा आनन्द रहा।

ईशरीसे वापस लौटने पर मैने देखा कि सागर समाजने अपने कार्यों में पर्याप्त प्रगति की है। मेरे अभावमे उन्होंने एक महिलाश्रम खोल दिया है तथा जैन हाई स्कूल खोलकर सार्वजनिक सेवाका केन्द्र बढ़ाया है। संस्कृत विद्यालय भी अधिक उन्नति पर है।

सागर ही नही, उससे सम्बद्ध ग्रामोंमे भी लोगोके हृदयमे शिक्षाके प्रति प्रेम जागृत होने लगा है। खुरईमें गुरुकुलकी स्थापना हो गई है।

३. बुन्देलखण्ड भ्रमण

ईशरीसे सागर तकको सात सौ मीलकी लम्बी पैदल यात्राके बाद निश्चित स्थान पर पहुँच कर मैने आपको भारहीन सा अनुभव किया। खुरई गुरुकुलके उद्घाटनके अवसर पर वहाँसे **खुरई** आया और वहाँसे चलकर ईसरवाराके प्राचीन मन्दिरके दर्शन करनेके लिये गया। वहाँ पर हलाहल ज्वर आ गया। सागरसे सिघई जी आ गये। साथमे ब्र० चिदानन्दजी भी थे। मुझे डोलीमे रखकर सागर ले आये। दस दिन बाद स्वास्थ्य सुधरा।

चातुर्मास सागरमें हुआ। इसके बाद विद्यालयके सुपरिन्टेन्ड **पटना** ग्राम ले गये। यह ग्राम रहली तहसीलमें है। एक पाठशाला है, उसका उत्सव था। २०००) का स्थायी फण्ड पाठशालाको हो गया। मन्दिरोंमें नन्दीश्वर द्वीपकी रचना है। मन्दिरोकी पूजाके लिये एक गाँव लगा हुआ है।

यहाँसे चलकर **हरदी** आया। सिघई श्री लक्ष्मण प्रसादजीके यहाँ ठहरा। आपका स्वास्थ्य एक वर्षसे अच्छा नही था। आपने एक वर्षके

लिये ब्रह्मचर्य व्रतकी प्रतिज्ञा ली तथा मेरी मूँगेकी मालासे णमोकार मंत्रका जाप्य किया। आपका स्वास्थ्य सुधरने लगा।

यहाँसे चलकर **गढ़ाकोटा** आये। यहाँ श्री पन्नालाल वैशखियाकी पत्नी मुलाबाईके पास एक दुकान, मकान, एक आठ तोले सोनेकी टका-वर और एक चाँदीका थाल था। कुछ रुपया सागरमें भी जमा थे। इन्दौरमे उसका स्वर्गवास हो गया। उसने अन्तिम समय श्री भगतजी आदिके समक्ष एक कागजमें यह लिख दिया कि मेरा जो धन है वह वर्णी जीके पास भेज दिया जावे। उनकी इच्छा हो सो करें। परन्तु उसके कुटुम्बियोंने मकान पर कब्जा कर लिया। शेष उसकी सर्व सम्पत्ति मैने वहाँके पाठशालाके मन्त्रीको दे दी।

वहाँसे **नैनागिरिके** मेलामें चला गया। मेला अच्छा हुआ। पाठ-शालाको दस हजारके लगभग रुपया इकट्ठा हो गया। वहाँसे शाहपुर आया। बीचमें **बण्डा** मिला। यहाँ भी पाठशालाके लिये १५००) हो गये। **शाहपुरमें** भी इसी प्रकार पाठशालाके लिये पर्याप्त चन्दा हो गया। वहांसे पटना ग्राम, दमोह व कुण्डलपुर होते हुए **कटनी** आ गया। यहाँ एक माह रहा। विद्वद् परिषद्का प्रथम अधिवेशन भी हुआ।

यहाँसे **जबलपुर** गया। साथमे ब्र० चिदानन्द जी, क्षु०क्षेम सागर जी और ब्र० मनोहर लालजी भी थे। ब्रह्मचारी चम्पा लाल जी भी थे जो पहले इन्दौरके उदासीन आश्रममें थे, फिर कुछ दिन ईसरी भी रहे। ब्र० सुमेरचन्दजी जगाधरी वाले भी साथ थे जो बहुत ही विरक्त है। लाखोंकी सम्पत्ति छोड़ कर वे त्यागी हुये हैं। तीस रुपये भाड़ेका एक मकान और पाँच हजार नकदी ही रक्खे है। ये तीनों ही परोपकारकी भावनासे मुझसे पूछकर सहारनपुर गये और वहाँ एक गुरुकुलकी स्थापना करके लौट आये। शहरका कोलाहल-पूर्ण वायु-मण्डल पसन्द न आनेसे मै मँढिया जीमे सुखपूर्वक रहने लगा।

चित्त ऊब जानेपर वहाँसे फिर कटनी चला गया और १ मास रह कर विलेरी, सिहोरा, गोसलपुर और पनागर होते हुये फिर जबलपुर आ गया। परन्तु उपयोगकी चंचलताने मनको स्थिर नहीं रहने दिया।

यहाँसे चलकर पाटन और फिर **कोनी** आया। यह अतिशय क्षेत्र

है । एक पहाड़की तलहटीमें सुन्दर मन्दिर बने है । पास ही नदी बहती है । यहाँसे चलकर दमोह, पथरिया, शाहपुर, पडरिया होते हुये **सानौदा** आये । यहाँ सात आठ घर जैनियोंके है । मन्दिर खपरैलका है । कहने पर **नवीन** मन्दिर बननेके लिये दो हजार रुपयेका लगभग चन्दा हो गया ।

यहाँसे बहेरिया होते हुये पुनः सागर पहुँच गये । हजारों मनुष्योंकी भीड थी । शहरकी प्रधान सड़कें बन्दन-मालाओ और तोरण-द्वारोंसे सुसज्जितकी गई थी ।

शान्ति-निकुञ्जमे पाँच छ दिन सुखपूर्वक रहकर बरखेरा, बण्डा, दलपतपुर, रुरावन, शाहगढ होते हुये **हीरापुर** आये । यहाँ पर जैनियोंके पन्द्रह घर है । मन्दिर बहुत मनोज्ञ है । दो खण्ड वाली धर्मशाला है । यहाँसे चलकर दुरगाँव, व सड़वा होते हुये द्रोणगिरि आये । मलहराके छात्रोंने स्वागत किया । मेलेके अवसर पर द्रोणगिरि पाठशालाके लिये पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई ।

द्रोणगिरिसे चलकर सतपारा, भगवाँ, गोरखपुरा, घुवारा, हीरापुर, तिगोड़ा, शाहगढ़, रुरावन और दलपतपुर होते हुये सागर लौट आया । प्रायः सभी स्थानो पर छोटी-छोटी पाठशालाओंकी आयोजना हो गइ । सागरमे शिक्षा शिविर था । प० कैलाशचन्दजी आदि बडे-बडे विद्वान पधारे । तत्त्व-चर्चायें व व्याख्यान सभायें हुई । १८ जून सन् १९४६ को सर सेठ हुकमचन्द जीका भी वहा आगमन हुआ । उनकी पचहत्तरवी जन्म गाँठ वहाँ ही मनाई गई ।

स० २००९ का चातुर्मास **सागर** मे ही हुआ । भाद्रपदमे लोगोका समुदाय अच्छा रहता था, क्योंकि चन्दा मागने का प्रयास नही किया । सागरमे बडी ही शान्तिसे दिन गये । परन्तु कुटुम्बवत् स्नेह बढने लगा, जो कि त्यागीके लिये बाधक है । मनमें आई कि अब सागरसे प्रस्थान करना चाहिये । बहुत आदमियोंका विचार था कि वर्णीजी यही रहे । परन्तु मुझे तो शनैश्चर ग्रह लगा था, जिससे मै हजारो नर नारियोको निराशकर आश्विन् सुदी तीज सं० २००९ को सागरसे चल पडा ।

बहेरिया व सनोद होते हुए **पड़रिया** ठहरा । वहाँ एक दस्सा

भाईने मन्दिरके लिये १४००) नकद दिये। यहाँसे चलकर पथरिया, व सदगुआँ होते हुए **दमोह** आया। सेठ लालचन्दजीके घर पर ठहरा। आपने २५०००) रुपया दान किया और यह कहा कि जहाँ मैं अच्छा कार्य देखूंगा वहाँ दे दूंगा। उनकी धर्म पत्नीने भी १०००) स्याद्वाद विद्यालय बनारसको और १०००) वर्णी-चेयर हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसको देना स्वीकार किया। पं० जगन्मोहनलाल, पं० महेन्द्रकुमार, पं० पन्नालाल व पं० फूलचन्दजी निर्वाणोत्सव पर पधारे। आप लोगों के परिश्रमसे वहाँ की सब सस्थाओंका केन्द्रीकरण हो गया, तथा समाजमें परस्पर अति सौमनस्य हो गया। नवयुवक पार्टीने जैन हाई स्कूल खोलनेका दृढ संकल्प किया।

सदगुवाँसे नीरू होता हुआ **किदरय** आया। यहाँ लोगों पर मन्दिरका रुपया आता था। कहा गया तो पाँच मिनटमें ३७५) आ गया। तथा परस्परका वैमनस्य दूर हो गया। यहाँसे चलकर सूखा, सुरई नैनागिरि होते हुये **बमौरी** आये। श्रीमान क्षु० क्षेमसागर जी यहींके हैं। आपका कुटुम्ब सम्पन्न है। एक पाठशाला भी चलती है। **सुनवाहा** मे बीस घर जैनियोंके हैं। एक पाठशाला तीस रुपया मासिकके व्ययसे चला रहे है। पन्ना रियासतकी कक्स्वाहा **तहसीलमें** २५ घर जैनियोंके है। दो मन्दिर है।

यहाँसे चलकर फिर बमौरी, खटौरा, दलपतपुर, बरायठा, हँसेरा होते हुये मडावरा आये। यहाँ पर सागरसे समगौरियाजी और इन्दौरसे पं० वंशीधर जी आ गये। यह इन दोनोकी जन्मभूमि है। इनके अथक परिश्रमसे पाठशालाका जो चन्दा बन्द था वह उग गया और मनुष्योंमें परस्पर जो मनो मालिन्य था, वह दूर हो गया।

स्वर्गीय सेठ चन्द्रभानु जीके सुपुत्रके आग्रहसे **साढूमल** आ गया। सेठजोके समयसे ही यहाँ एक पाठशाला चल रही है। जीर्ण होनेके कारण उसका भवन गिर पडा है। प्रयत्न करने पर ग्रामवासियोसे ४२५०) के लगभग चन्दा हो गया। सैदपुर, नैहरोनी, होता हुआ **कुम्हैड़ा** पहुँचा। यहाँ श्रीमन्त वरमाजीपर बहुत प्रभाव पड़ा। बोले कि—'महाराज! मै बहुत दिनसे उलझनमे पड़ा था कि अपनी सम्पत्तिका कैसे उपयोग करूँ। मेरी सिर्फ दो लडकियाँ है। पुत्र कोई नहीं। आज

उलझन सुलझ गई। दो हिस्से दोनों पुत्रियोंको एक हिस्सा अपना और एक हिस्सा धर्म कार्योंको रखूँगा।

कुम्हेड़ीके बाद गुडा, व नारायणपुर होते हुए **आहार** पहुँचा। अतिशय क्षेत्र है। पहाड़ो आदिका प्राकृतिक सौन्दर्य अवर्णनीय है। मदन-सागर नामक विशाल तालाब है। यहाँ एक प्राचीन मन्दिर है। श्री शान्तिनाथ और कुन्थुनाथकी मूर्तियाँ है। अरहनाथ भगवानकी भी मूर्त्ति रही होगी। पर वह उपद्रवियोंके द्वारा नष्ट कर दी गई। उसका स्थान रिक्त पडा है। प्राचीन मूर्त्तियाँ भी खण्डित दशामें बहुत उपलब्ध है। संग्रहालय बनवाकर उसमें सबका संग्रह किया गया है। मुख्य मन्दिरके सिवाय एक छोटा मन्दिर और भी है। एक पाठशाला भी है। अगहन सुदी १२-१४ तक क्षेत्रका वार्षिकोत्सव मेला था। संस्थाको ६०००) तथा क्षेत्रको ५००) की नवीन आय हुई।

यहाँसे चलकर पठा, पपौराजी, टीकमगढ़ होता हुआ **बानपुर** आया। गाँवके बाहर एक सहस्रकूट चैत्यालय है। गाँवमें बहुत बडे-बड़े मन्दिर हैं। वहाँसे **मुबई** आया। श्री नाथू रामजीने आहार विद्यालयको १०००) प्रदान किया।

वहाँसे **जतारा** आया। यहाँ श्री पं० मोतीलालजी वर्णी पाठशालाके लिये एक मकान दे गये हैं और उसके सदा स्थिर रहनेके लिये द्रव्य भी दे गये है। परन्तु गाँवके पंचोमें परस्पर सौमनस्य न होनेसे पाठशालाका द्वार बन्द है। यहाँसे चलकर धर्म-माता श्री चिरौंजी बाईके गाँव आया। वहाँसे चलकर सतगुवाँ, बमौरी, पृथ्वीपुर होता हुआ बरुआसागर आ गया। इस प्रकार बुन्देलखण्डके इस पैदल पर्यटनसे आत्मामे अपूर्व शान्ति आई।

बरुआसागरके आस-पास ही भ्रमण करना उचित समझा। फलतः मगरपुर, दुमदुमा आदि घूम घामकर पुनः बरुआसागर लौट आया। फाल्गुन शु० वी० नि० २४७४ का अष्टाह्निका पर्व आ गया। धर्मकी महती प्रभावना हुई। त्यागी सम्मेलन हुआ जिसमें ५० त्यागी महाशय पधारे थे। गयासे श्री विदुषी पतासी बाईजीका भी शुभागमन हुआ था। उसी अवसर पर मैंने क्षुल्लकके व्रत लिये।

बरुआसागरसे प्रस्थान करके झाँसोकी ओर चल पड़ा और वहां से

सोनागिरि आ गया। यहाँ एक पाठशाला है, परन्तु समाजका इस ओर कोई लक्ष्य नही है। पर्वतके ऊपर अनेक मन्दिर है। सब पर नम्बर पड़े हैं। क्षेत्र अत्यन्त रम्य और वैराग्यका उत्पादक है। पर्वतके ऊपर जाकर चन्द्रप्रभुका विशाल मन्दिर है। उसके सामने सङ्गमर्मरके फर्शसे जड़ा हुआ एक बहुत बड़ा रमणीय चबूतरा है। सामने सुन्दर मान-स्तम्भ है। चबूतरा इतना बड़ा है कि ५ सहस्र मनुष्य सानन्द धर्म श्रवण कर सकते हैं। अनेक धर्मशालायें है, जिनमें ५००० व्यक्ति एक साथ ठहर सकते हैं। पूजन आदिकी सुन्दर व्यवस्था है। किन्तु यह सब होते हुये भी तीर्थ क्षेत्रोपर ज्ञानार्जनका कोई साधन नही।

४. दिल्लीकी ओर

भावना थी कि स्वर्णगिरिमें ही चातुर्मास करूँ परन्तु पं० चन्द्रमौलिजी दिल्लीसे एक डेप्युटेशन लाये, जिसमें राय सा० उलफत राय, ला० जुगल किशोर कागजी, ला० रघुवीर सिंह बिजली वाले, राजकृष्ण जी कोयले वाले आदि थे। बनारस से पं० महेन्द्र कुमार व पं० फूलचन्द जी आदि भी आ गये। सबने हार्दिक अनुरोध किया, जिससे मैने देहली चलनेकी स्वीकृति दे दी।

वैशाख वदी ४ सं० २००६ को प्रातःकाल सोनागिरिसे चल कर चान्दपुर आये। एक स्कूलके मास्टर बड़े शिष्ट थे। गर्मीके प्रकोपके कारण उन्होंने हमें तो अपने मकानमें ठहरा दिया और आप स्वयं गर्मीमे ऊपर ही ठहर गये। उन्होने ब्रह्मचर्यका व्रत भी लिया।

वहाँसे चलकर डबरा आए। श्री माणिकचन्द हजारीलालजीकी दुकानपर ठहर गए। यहाँ मन्दिर नही है। वैशाख वदी ५ को यहाँ सभा हुई, जिसमे आपने मन्दिर जीके लिये १०००) दान दिये। परन्तु बात आगे न चली। वैशाख वदी ७ को पुनः सभा हुई। श्री चिदानन्द ब्रह्मचारीका प्रभावक भाषण हुआ। यह विचार हुआ कि श्री लालाजी सेठ जैसवालका मकान ३५००) मे लिया जावे। बगलमे ला० रामनाथ रामजोने अपनी जमीन दे दी जो ७० फुट लम्बी और ५५ फुट चौडी थी। परन्तु पुनः कुछ मनोमालिन्य हो गया। इसके कारण भोजनमे उपयोग नही लगा। पानी लेकर ही सन्तोष किया। उसका प्रभाव

अच्छा पड़ा। श्री लालजी आदि रात्रिके आठ बजे आये और बिश्वास दिलाया कि भाद्रमास तक नियमसे मन्दिर बन जावेगा।

डबरासे चलकर बीचमें कई स्थानों पर ठहरे। पं० चन्द्र मौलिजी मार्गमें सर्वत्र सब प्रकारकी व्यवस्था तथा सभा आदिका आयोजन करते जाते थे। क्रमशः **लशकर** पहुँचे। यहाँ पर कई मन्दिर है। सर्राफाका बडा मन्दिर वर्णनीय है। स्फटिक मणिके बिम्ब है। एक सुवर्ण का चित्राम है जिसमे ५२ सेर सोना लगा था।

यहाँसे चलकर वैशाख सुदि ५ को **गोपाचल** (गवालियर) के दर्शन करनेके लिये गया। दिगम्बर जैन संस्कृति का द्योतक सबसे महत्त्व-पूर्ण स्थान है। पर्वतकी भित्तियोमे विशालकाय जिन-बिम्ब कुशल कारीगरोंके द्वारा महाराज डूँगर सिहके समयमे निर्मित किये गये थे, पर मुगल साम्राज्य कालमे वे सब प्रतिमायें टाकीसे खण्डित कर दी गयी है।

वहाँसे ढाई मील चलकर स्वर्गीय गुलाब चन्दजी सेठके बागमे ठहर गये। श्री पूर्ण सागरजी क्षुल्लक भी साथ थे। मुरारसमाजके आग्रहसे सं० २००५ का चतुर्मास वही करनेका निश्चय करना पडा। भाद्रपद मासमे पं० शीतल चन्द्रजी, प० रतनचन्दजी मुख्तार आदि भी आ गये, और खतौलीसे खिचौडी मलजी साहब भी बराबर दो मास रहे। एक वेदान्ती महानुभाव व साधू प्राय. प्रतिदिन आया करते थे। उनके आनेसे तात्त्विक चर्चा हो जाती थी।

कार्तिकमे दीपावलीका उत्सव सानन्द हुआ। अष्टाह्निका पर्वमे श्री दीनानाथजीने श्री सिद्ध चक्र विधान करवाया, जिसमे पुष्कल द्रव्य व्यय किया। दस हजार मनुष्योंको भोजन कराया। ५०००) विद्या दानमें दिये। ११००) गवालियरकी पाठशालाको और १०१) श्री गोपाचलके जीर्णोद्धारमे प्रदान किये। इसी उत्सवमें एक दिन सर्व धर्म सम्मेलन हुआ। महाराजा गवालियरकी महारानी भी आई थी। आपने महिलाओं को बहुत रोचक व्याख्यान दिया।

श्री कुन्दनलालजीने एक दिन भोजन कराया। २५०००) बोर्डिंग बनानेके लिये दिये। १००००) श्री पप्पू लालजी और ७०००) श्री फूल-चन्द बुद्धूमल्ल सेठसे भी मिले। श्रीयुत सेठ बैजनाथजी सरावगी भी

कलकत्तासे यहाँ पधारे। उन्होंने भी बोर्डिंग बनवानेके लिये २५००) स्थायी फण्डमें तथा ५००) गोपाचलकी मूर्तियोंके उद्धार कार्यमें प्रदान किये।

मुरारसे अगहन बदी ४ वी० नि० सं० २४७५ को देहलीकी ओर प्रस्थान किया। ग्वालियर आये। श्री क्षु० पूर्णसागरके प्रयत्नसे यहाँकी पाठशालाको ५०००) नकद, १५०००) की कीमतका एक मकान और एक दुकान प्राप्त हो गई। मुरारसे आगराकी ओर प्रस्थान किया।

ग्वालियर आया। यहाँ भट्टारकके मन्दिरमें प्राचीन शास्त्र भण्डार है। अगहन बदी ८ वि० संवत् २००५ को वहाँसे चलकर ४ मील पर आँगले साहबकी कोठीमें ठहर गये। फिर बमौरा, नूराबाद होते हुये मोरेना पहुचे। यहाँ पहुचने पर स्वर्गीय पं० गोपालदास जीका स्मरण आ गया। इनके द्वारा स्थापित सिद्धान्त-विद्यालय वहाँकी एक प्राचीन सस्था है, जिसने बहुतसे निष्णात विद्वानोंको जन्म दिया है।

तीन दिनके पश्चात् धौलपुरकी ओर चले। मार्गमें अनेक ग्राम पड़े। अनेक अन्य मतावलम्बियोने अत्यन्त शिष्ट व्यवहार किया तथा ठहरने आदि की व्यवस्था की। धौलपुरसे विरौदा, व मागरौल होते हुये अगहन सुदी ८ को **राजाखेड़ा** पहुँच गये। यहाँ पर श्री भगत प्यारेलाल जीके द्वारा स्थापित एक जैन विद्यालय है। भगत जीके सत्प्रयत्नसे इस विद्यालयका दो लाखका फण्ड है।

आगरा से बहुतसे मनुष्य आ गये। दो मील जानेके पश्चात् सहस्रों मनुष्योका समुदाय गाजे-बाजेके साथ छीपी-टोलाके लिये चला। वहाँकी धर्मशालामे दो दिन ठहरे। तीसरे दिन श्री महावीर-इन्टरकालेजका उत्सव हुआ। यहाँ एक छात्रावास व एक सुन्दर मन्दिर भी है। फिर बेलनगञ्जकी धर्मशालामे आये। इसके ऊपर भी एक मन्दिर है। आगरा बहुत भारी नगर है। यहाँ पर बहुत मन्दिर हैं। हम लोग सब मन्दिरोंमें नही जा सके।

आगरासे चलकर सिकन्दराबाद आये। वहाँ बादशाहका मकबरा देखा। वहाँसे चलकर श्री जम्बू-स्वामीकी निर्वाण भूमि (**मथुरा-चौरासी**) पहुँच गये। आजकल दि० जैन-संघका कार्यालय यही पर है। अनेक सुन्दर भवन संघके है, एक सरस्वती भवन भी है। एक दि० जैन गुरुकुल भी है, जिसमें इन्टर तक पढ़ाई होती है।

संघका वार्षिकोत्सव था, जिसके सभापति श्रीमान् सर सेठ हुकम-चन्द्रजी साहब इन्दौर वाले थे। जैन संघकी रक्षाके लिये आपने २५०००) दान किया। उपस्थित जनताने भी यथा शक्ति दान दिया।

मथुरासे चलकर वसुगाँवमें ठहरे और वहाँसे क्रमशः हाथरस पहुँचे। यहाँ पर छः मन्दिर है। एक मन्दिर बहुत बड़ा है। नये मन्दिरमें सभा हुई। हाथरससे सासनी ७ मील है। लगातार चलनेसे थक गये। ज्वर आ गया। छेदीलाल जीके पिता सासनी ले गये।

माघ वदी ९ वि० सं० २००५ को अलीगढ़के महानुभाव आ गये, जिससे वहाँके लिये प्रस्थान कर दिया। गाजे-बाजेके साथ खिरनी सरायके मन्दिरमे गये। बागके मन्दिरमें सार्वजनिक सभा हुई। मेरा भी व्याख्यान हुआ। बिजली वालोंने बहुत रोका, पर हम नही रुके। मेरठकी ओर प्रयाण किया।

अलीगढसे चलकर भाकुरी, नगरिया, गुहाना, दमारा आदिकी ग्रामीण धर्मशालाओंमें ठहरते हुये वि० सं० २००५ माघ सुदी ३ को प्रातः १० बजे खुरजा पहुँच गये। यहाँ आते ही पिछले दिन स्मृति पटलमे अङ्कित हो गये। यहाँ ही पहले पहल पं० चण्डी-प्रसादजीसे न्याय पढ़ना प्रारम्भ किया था। यहाँ ज्योतिषीने 'वैशाखके बाद खुर्जा न रहोगे' ऐसी भविष्य वाणी की थी। यहाँ तीन दिन रहकर बुलन्दशहर आ गए।

बुलन्दशहरसे चलकर गुलावटी आदि ग्रामोंमें वहाँकी ग्रामीण धर्मशालाओमे रात्रि व्यतीत करते हुये हापुड़ आ गये। यह बहुत भारी मण्डी है। एक वर्षमें करोडों रुपयेका सट्टा हो जाता है। यहाँ पर मन्दिर बहुत सुन्दर है। शहरसे आधा मील दूर एक खण्डेलवाल भाईके बागमें ठहर गये। दो दिन मन्दिरमें प्रवचन हुआ। मनुष्य-संख्या अच्छी उपस्थित होती थी।

हापुड़से चलकर कौली, खरखोदा होते हुये माघ सुदी पूर्णिमाको प्रातः मेरठ आये। दो मील इधर ही एक बागमें ठहर गए। देहलीसे राजकृष्णके भाई आये। उनके यहाँ भोजन हुआ। १॥ बजते-बजते बहुत जन-संख्या एकत्र हो गई और गाजे-बाजेके साथ मेरठ ले आई। शहरमें १ मन्दिर है, सदरमें दो हैं और तोप खानेमे एक।

फाल्गुन बदी ६ वि० सं० २००५ को मेरठसे चलकर शिवाया, दौराला, सकौती होते हुये खतौली आये। यहाँ पर वर्तमानमें कई सज्जन ऐसे हैं, जो धवलाकी स्वाध्याय करते हैं। प्रातः ८॥ से ९॥ बजे तक प्रवचन किया। वहाँसे प्रात॰ ७॥ बजे चल कर गंधारी, तिसना, बटावली, बैसूमा, होते हुये फाल्गुन सुदी ५ वि० सं० २००५ को दिनके ३ बजते-बजते हस्तनागपुर आ गये।

यह वही **हस्तनागपुर** है जहाँ शान्ति, कुन्थु और अरनाथ भगवानके गर्भ जन्म तथा तप कल्याणक हुये थे। कौरव पाण्डवोकी राजधानी यही थी। अकम्पनाचार्य आदि ७०० मुनियोकी भी रक्षा यही हुई थी, तथा रक्षा-बन्धनका पुण्य पर्व भी यहीसे प्रचलित हुआ था। वर्त्तमानमे यहाँ एक विशाल मन्दिर है जो देहलीके लाला हरमुखरायजीका बनवाया हुआ है। इस मन्दिरका निर्माण किस स्थितिमे किस प्रकार हुआ यह इसके इतिहाससे प्रसिद्ध है। यहाँ व्रति-सम्मेलन तथा गुरुकुलका उत्सव हुआ। एक दिन प्रात नसिया जीके दर्शन किये।

चैत्र बदी ३ वि० सं० २००५ को हस्तनागपुरसे चलकर गणेशपुर, मवाना, बैसूमा, मीरापुर, ककरौली, तिस्सा, कवालु, मंमूरपुर, व वल्हना होते हुये **मुजफ्फरनगर** पहुँच गये। २००० आदमियोंका जलूस निकला। यहाँ ६-७ दिन रुकना पडा।

चैत्र सुदी ६ सं० २००६ को मुजफ्फरनगरसे ५ मील चलकर जङ्गलमे ठहरे। फिर रोहाना आदि होते हुये **सहारनपुर** आ गये। टपरी स्टेशनसे ही मनुष्योंका सम्पर्क होने लगा और सहारनपुरके बाहर तो हजारो मनुष्योंका जमाव हो गया। बड़ी सज धजके साथ जलूस निकला। यहां १०-११ दिन रहे।

वैशाख बदी ९ को यहाँसे चलकर **सरसावा** आये। पं० जुगलकिशोर-जीके यहाँ भोजन हुआ। आपका त्याग और जिनवाणी सेवा प्रसिद्ध है। आपका सरस्वती भवन दर्शनीय है। वैशाख बदी १२ को वीर सेवा मन्दिरका १३ वाँ वार्षिकोत्सव हुआ। श्री जय भगवानजी वकील (पानीपत वालो) ने प्राचीन धर्मोंमें जैन धर्मकी विशेषता बतलाई। आपका तुलनात्मक अध्ययन प्रशंसनीय है। रिपोर्ट सुननेके बाद ४०००) का चन्दा हुआ। विशेष ध्यान नही दिया, अन्यथा १००००) हो जाते।

वैसाख बदी १३ वि० सं० २००६ को प्रात:काल ५।। **बजे सरसावासे चल पड़े।** १।। मील तक २०० मनुष्य और स्त्री समाज पहुँचानेके लिये आया, जिसे बड़े आग्रहसे लौटा पाया। आगामी दिन जगाधरी आ गये। प्रवचनमें बहुत मनुष्य आये। ब्राह्मण भी बहुत आये। **जैन** धर्मकी प्रणालीसे सभी प्रभावित हुये। वहाँसे रत्नपुर आ गये। यहाँसे अम्बडा, इसलामपुर, रामनगर होते हुये **नानौता** आये। बडे मन्दिरमे प्रवचन हुआ।

यहाँसे चलकर तीतरो, कच्ची गढ़ी, पक्की गढी व भैसवाल होते हुये जेठ बदी ४ वि० सं० २००६ को **शामली** आ गये। १०० घर जैनियोंके है। नगरमें सट्टेकी प्रचुरता है। २ मन्दिर है, किन्तु पूजन और स्वाध्यायका प्रचार नही।

शामलीसे काँदला आये, ओर वहाँसे गंगेरू, किट्ठल, छपरौली व नगला होते हुये **बड़ौत** आये। यह नगर अच्छा है। व्यापारका केन्द्र है। ५०० घर दिगम्बर जैनोंके हैं। २ मन्दिर है। बडी शानसे स्वागत किया। कालेजकी बिल्डिग बहुत बडी है। आषाढ बदी ११ वि० स० २००६ को प्रात:काल ५ बजे यहाँसे चलकर बडौली, मसूरपुर, बागपन, टटीरी-मण्डी, खेखडा, वडे-गाँव, होते हुये आषाढ़ सुदी ४ वि० सं० २००६ को ला० उलफत राय जीके बागमें निवास किया।

पञ्चमीको प्रात काल ५ मील चलकर शाहदरा और वहाँसे तीन मील चलकर राजकृष्णके बागमे ठहर गये। यहाँसे आषाढ सुदी ८ को ३ मील चलकर यमुना पुलके १ फर्लाङ्ग बाद लोगोने विश्राम कराया। तदनन्तर एक विशाल जलूसके साथ १ मील चलकर लाल-मन्दिर आये। वहाँ पञ्चायतने अभिनन्दन पत्र दिया। यहाँसे १ मील चलकर अनाथा-श्रमके भवनमें ठहर गया।

५. दिल्ली चातुर्मास

भारतीय इतिहासमे दिल्ली महत्वपूर्ण स्थान है। जन-सख्या २२ लाखसे कम नही, जिसमें जैनियोंकी जन-संख्या पच्चीस हजारसे कम नही ज्ञात होती। वर्तमानमें जैनियोके २९ मन्दिर और ४-५ चैत्यालय है। ३-४ मन्दिरोंमें अच्छे विशाल शास्त्र भण्डार हैं। चान्दनी चौकके

नुक्कड़ पर बने लाल मन्दिरका निर्माण शाहजहाँके राज्यकालमें हुआ था। दूसरा राजा हरसुखदास जीका नया मन्दिर है, जिसमें पच्चीकारी का बहुत बड़ा अनूठा काम है, जो कि ताज महलमें भी उपलब्ध नही है। विदेशी-जन दिल्लीके पुरातन स्थानोके साथ इस मन्दिरकी पच्ची-कारीको भी देखनेके लिये आते है। हरसुखदासजी दिल्लीके बादशाहके खजाञ्ची थे, बादशाहने इन्हे 'राजा' पदसे अलकृत कर दिया था। उस समय सात लाख रुपयेकी लागतसे मन्दिर बनवा कर राजा साहबने उसे अपनी पगडी उतार पञ्चोंके सपुर्द कर दिया था। इसलिये वह पञ्चायती मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है। इसके सरस्वती भवनमें १८०० के लगभग हस्तलिखित ग्रन्थ है। ५०० से अधिक मुद्रित ग्रन्थ भी सगृहीत है। लाला हरसुखदास तथा उनके सुपुत्र लाला सुगनचन्दजीके समयसे ही यहाँ नित्य शास्त्र सभा होती है।

अनाथालय नामकी दूसरी प्रसिद्ध सस्था है, जिसका दरयागंजमे विशाल भवन है, तथा साथमे स्कूल है। मै यही ठहरा था। साथमें क्षु० पूर्णसागर जी, क्षु० चिदानन्द जी, ब्र० सुमेर चन्दजी तथा ब्र० निजानन्द जी थे। ये पहले आर्य समाजके प्रधान प्रवक्ता थे। परन्तु बादमें आप जैन सिद्धान्तसे प्रभावित होकर जैन हो गये थे। श्रावण सुदी पूर्णिमा, वि० सं० २००६ रक्षा बन्धनके दिन, मेरे समक्ष ही, ७००० मनुष्योंके समुदायमें बड़े समारोहके साथ आपकी क्षुल्लक दीक्षा हुई थी। लोकेषणाकी चाह न हो तो आदमी अच्छा है। उदयपुरसे ब्रह्मचारी चान्दमलजी भी आ गये थे।

मेरी प्रवचन शक्ति क्षीण हो गई थी। अत. इन सबके प्रवचनों व भाषणोंसे जनताको लाभ मिलता रहता था। प्रवचनके बाद मै भी जो बनता था कह देना था। [चित्त-वृत्ति भी क्योंकि इन प्रपञ्चोंसे विरक्त होती जा रही थी, इसलिये बोलनेकी कुछ रुचि भी नही होती थी।)

आषाढ सुदी १३ को श्री प० जुगल किशोरजी मुख्तारने जैन सिद्धान्तपर अच्छा प्रकाश डाला, और यह भाव प्रदर्शित किया कि हम जैन धर्मके प्राचीन ग्रन्थ जनताके सामने लावें। आपका वीर सेवामन्दिर सरसावामें है। लोगोंने प्रेरणा दी कि राजधानी में ही उसका सचालन होना चाहिये, और उसके स्थानकी व्यवस्था करनेका आश्वासन दिया।

बैजवाड़ा, पहाड़ी-धीरज, डिपटीगंज व नई दिल्लीके मन्दिरोमें भी प्रवचन व व्याख्यान सभाएं हुईं परन्तु सार कुछ न निकला।

दश लक्षण पर्व आ गया। कटनीसे पं० जगन्मोहन लाल जी शास्त्री आ गये। लाल मन्दिरमे मण्डपका आयोजन हुआ। प्रति दिन १ बजेसे मण्डपमें पं० जगन्मोहन लालजीका प्रवचन होता था। अनन्तर कुछ हम भी कह देते थे। पर्वका अर्थ तो यह है कि इस समय आत्मामें समाई हुई कलुषित परिणतिको दूर कर उसे निर्मल बनाया जाय, पर लोग इस ओर ध्यान नही देते। बाह्य प्रभावनामे ही अपनी सारी शक्ति व्यय कर देते हैं।

चतुर्दशीके दिन नगरमे गाजे बाजे के साथ सर्व समूह का विशाल जलूस निकला। तदन्तर श्री जिनेन्द्रदेवका कलशाभिषेक हुआ। आश्विन कृष्ण प्रतिपदाके दिन क्षमावनीका आयोजन हुआ। कलशाभिषेकके बाद सबका सम्मेलन हुआ।

आसौज बदी ४ स० २००६ को मेरा जयन्ती उत्सव था जिसमे उद्योग मन्त्री भी पधारे थे। अनेक लोगोंने श्रद्धाञ्जलियाँ दी, जिन्हे सुनकर मुझे बहुत संकोच हुआ।

हम दिल्लीमे आनन्दसे ३ माह २४ दिन रहे। सर्वप्रकार की सुविधा रही। दस लक्षण पर्वके ६ दिन बडी शान्तिसे बीते। ६ वे दिन न जाने हरिजन मन्दिर प्रवेशकी चर्चाने कहाँसे प्रवेश किया जो सर्व गुड मिट्टी हो गया, और मेरे मत्थे यह टीका मढा गया कि वर्णीजी हरिजन प्रवेशके पक्षपाती है। यद्यपि मै न तो पक्षपाती हूँ, और न विरोधी हूँ, किन्तु आत्माने यह साक्षी दी कि जो मनमे हो सो बचनोसे कहो, अन्यथा तुमने अब तक धर्मका मर्म ही नही समझा।

फलतः कार्तिक सुदी २ सं० २००६ को दिनके २ बजे दिल्लीसे शाहदराके लिये प्रस्थानकर दिया। सहस्रो स्त्री पुरुषोके अश्रुपात आ गया। मनुष्योंका कहना था कि आप दिल्ली लौट चलो, जो कहो सो कर देवे। पर हमको तो कुछ करवाना नही। भूल भुलैया में फस कर क्या करता?

६. इटावाकी ओर

दिल्लीसे प्रस्थान करके शाहदरा और वहाँसे **गाजियाबाद** आये। यहाँ पर एक वर्णी शिक्षा मन्दिरकी स्थापना हुई। वहाँ से चलकर

मुरादनगर, मोदीनगर होते हुए **मेरठ** पहुंच गये। बोर्डिंगमें निवास हुआ। अनेक नर नारी स्वागतके लिये आए। कार्तिक सुदी ८ सं० २००६ को वहाँ से चलकर तोपखाने आये और वहाँसे मुहाना, मवाना होते हुए श्री **हस्तनागपुर** आ गया। स्थान शान्तिका रत्नाकर हैं, परन्तु मेलेकी भीड़ भाडके कारण उस समय शान्ति दृष्टिगोचर नहीं हो रही थी। पूर्णिमा को प्रातःकाल मण्डपमें प्रवचन हुआ। ९ बजेके बाद कमैटीके मेम्बरोमें कुछ वैमनस्य था, वह दूर हो गया।

मगसिर बदी ३ को ३ मील चल कर गणेशपुर, आ गये। यहाँसे मवाना, छोटा मुहाना, फफूंदा, खरखोंदा, कौनी, हापुड, हाफिजाबाद, गुलावटी, बुलन्दशहर, मामन, मीरपुर, नगली, गवाना होते हुए अलीगढ आ गए।

मामन ग्राममे दिल्लोसे जैनेन्द्र किशोरजी, ला० उलफत रायजी आदि अनेक लोग आये। सबका आग्रह यही था कि दिल्ली लौट चलो, पर मैं तो गिरिराज जानेका निश्चय कर चुका था। अत दिल्ली जानेके लिये तैयार नही हुआ। सब लोग निराश होकर लौट गए।

अलीगढसे खिरनी सहाय, शासनी, पहाडी, सिकन्दर राऊ, रतवानपुर, भदरवाम व पिलुआ होते हुए पौष बदी ७ सं० २००६ को **एटा** आगए। बड़े मन्दिरमे प्रवचन हुआ, लोग प्रभावित हुए।

यहाँसे चलकर छिछौना, मलावन, टटऊ, कुरावली होते हुए **मैनपुरी** आये। बहुत विशाल मन्दिर है। संस्कृत शास्त्रोंका भण्डार भी विपुल है। २०० के लगभग सब होंगे। यहाँसे चलकर **अण्डसी** आये। यहाँ लमेचू जैनियोंके २०० घर है। ४ मन्दिर और २ चैत्यालय है। १ हाईस्कूल, एक औषधालय, तथा प्राचीन ग्रन्थ भण्डार भी हैं।

पौष सुदी ५ सं० २००६ को जसवन्त नगर आने पर बडे वेगसे ज्वर आ गया। दोनों पैर भी सूज गए। जितना-जितना उपचार होता उतना-उतना वेग बढ़ता। इसलिये लोग पाटे पर बैठाकर **इटावा** ले आये। यहाँ आने पर असाताका उदय धीरे-धीरे कम हुआ। तथा उपचार भी अनुकूल हुआ। इसलिये आरोग्य लाभ हो गया। सागरसे श्री बालचन्द्रजी मलैया, पं० पन्नालालजी तथा दिल्लीसे श्री जैनेन्द्र किशोरजी सकुटुम्ब आये। एक संस्कृत विद्यालयकी स्थापना हुई।

गिरिडीहसे श्रीयुत कालरामजी और श्री रामचन्द्र बाबू आये। आपका अभिप्राय है कि मै श्री पार्श्व-प्रभुके चरण कमलोंमें रहकर अपनी अन्तिम अवस्था शान्तिसे यापन करूं। सेठी चम्पालाल जी गया वालोंने भी यही भाव प्रगट किया।

फाल्गुन मास लग गया। **भिण्ड** वालोंका आग्रह हुआ। अतः कुछ दिनों को उस दिशामें भ्रमणको चला गया। भिण्ड जैनियोकी प्राचीन बस्ती है। जन-संख्या अच्छी है। ९-१० दिन यहाँ रहकर फाल्गुन शुक्लाको चलकर पुन **इटावा** लौट आया।

चैत्र कृष्णा ३ सवत् २००६ को प्रात:काल यहाँ एक उदासीन आश्रमकी स्थापना हो गई। श्री लक्ष्मण प्रसाद जीने १००) मासिक और कई महाशयोंने मिलकर १५०) मासिक रुपये दिये। ४ उदासीन भाई आश्रममे प्रवृष्ट हुए। पसारी-टोलाके मन्दिरमें प्राचीन साहित्यभण्डार है। ग्रन्थोको दीमक और चूहो ने बहुत नुकसान पहुँचाया है। श्री मुन्नालालजीने इटावामे ही चातुर्मास करनेका आग्रह किया। मै ने यह बात समक्ष रखी कि यदि चैत्र शु० १५ तक सस्कृत विद्यालयके लिये १ लक्षकी रजिस्ट्री हो जायेगी तो कार्तिक सुदी २ तक रह जावेगे। चातुर्मासकी बात सुनकर जनता को बड़ा उल्लास हुआ।

७. इटावा चातुर्मास

ईसरी से लौटकर सागर गया था, तब वहाँकी समाजने 'वर्णी-अभिनन्दन ग्रन्थ' समर्पण के साथ-साथ हीरक जयन्ती महोत्सव करनेका निश्चय किया था। अब तक अभिनन्दन ग्रन्थ तैयार होने की दशामे आ गया था। सबने यह निश्चय किया कि दीपावलीके बाद इस उत्सवका आयोजन किया जावे।

चातुर्मास का समय निकट आ रहा था। कई स्थानोंसे लोग अपने अपने यहाँ चातुर्मास करने की प्रेरणा करते थे। अन्तमें समाजकी अत्यधिक प्रेरणासे इटावामे ही चातुर्मास करनेका निश्चय कर लिया।

सोचा चार मासमे सानन्द अध्यात्म शास्त्रका अध्ययन करो, फपोड़ावादसे बचो, केवल स्वात्म चिन्तनामे काल लगाओ।

आषाढ़ शु० ८ सं० २००७ से सिद्धचक्र विधानका पाठ हुआ।

परन्तु परिणामोंमें शान्ति किसीको नही। केवल गल्पवाद में ही सर्व परिणमन हो जाता है। [रक्षाबन्धन व पर्यूषण पर्व भी आये और चले गए] आश्विन कृष्ण ४ सं० २००७ को मेरे जन्म दिनका उत्सव था। अनेक धीमान व श्रीमान बाहर से आये। जयन्ती उत्सवोंमें जो होता है, वही हुआ। सबने प्रशंसामे चार शब्द कहे, और हमने नीची गर्दन करके उन्हे सुना।

८. फीरोजाबाद की ओर

फीरोजाबादसे छदामीलालजी आये। आग्रह किया कि आप फीरोजाबाद आवे। हम कुछ करना चाहते है और अच्छा कार्य करेंगे। हम वहाँ एक सुन्दर मन्दिर और एक उद्योग विद्यालय खोलना चाहते है। मैने कहा कि मेरे पहुँचनेमें वह फलीभूत होता है तो दीपावली बाद मै चलूगा। मेरा उत्तर सुनकर उन्हे प्रसन्नता हुई।

कार्तिक शु० ६ सं २००७ को जबलपुरसे बहुतसे मानव आ गए। सबने आग्रह किया कि जबलपुर चलिये। मनमें यह बात आई कि उस देशमे जानेसे अच्छा होगा तथा संस्थायें स्थिर हो जावेगी।

मार्गशीर्ष शु० ११ जब मै इटावासे चलकर भिण्ड आगया था, तब वहाँ भी पं० पन्नालाल साहित्याचार्य आये। यह निश्चय हुआ कि अभिनन्दन ग्रन्थका समारोह फीरोजाबादमे हो। हमने यह निश्चय कर लिया कि फीरोजाबादमें उत्सव होनेके बाद सागर जावेंगे।

अतः भिण्ड से चलकर माघ शु० ४ सं २००७ को फीरोजाबाद पहुँच गया। यहाँ पर आ० श्री सूर्य सागरजी महाराजका दर्शन हुआ। आप बहुत ही शान्त तथा उपदेष्टा है।

छदामीलालजी ने फीरोजाबादमें बहुत भारी उत्सवका आयोजन किया। क्या त्यागी, क्या व्रती, क्या विद्वान, क्या सेठ, क्या राजनीतिज्ञ, सब लोगोंको मेलेमें एकत्रित करनेका प्रयास किया था। मेले का बहुत अधिक विस्तार था।

आ० सूर्य सागरजी तथा हम लोगोंका नगर प्रवेशका उत्सव माघ शु० ५ सं० २००७ को सम्पन्न हुआ था। दिनको १ बजे आचार्य श्री की

अध्यक्षता में असी सम्मेलन हुआ। दूसरे दिन श्री भैया साहब राजकुमार सिंह इन्दौर वालोंकी अध्यक्षता मे जैन-संघ मथुराका वार्षिक अधिवेशन हुआ। इसके बाद एक दिन श्री काका कालेलकर जीकी अध्यक्षता में हीरक जयन्ती समारोह तथा अभिनन्दन ग्रन्थ समर्पणका समारोह हुआ। उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ। सेठ छदामीलालने १०,००० स्याद्वाद विद्यालय को दिये।

फाल्गुन कृष्ण १ सं० २००७ को आपके यहाँ हमारा आहार हुआ। पं० कैलाश चन्दजी, पं० फूलचन्दजी, आदि अनेकों विद्वान् इस मेलेमें आये थे। श्रीमन्त वर्ग भी पुष्कल था। द्वितीया के दिन प्रस्थानके पूर्व श्री आचार्य महाराजके पास गया तो उन्होने आशीर्वाद देते हुये कहा कि तेरा अवश्य कल्याण होगा। तू भोला है, तुझसे प्रत्येक मनुष्य अनुचित लाभ उठाना चाहता है, तेरी अवस्था वृद्ध है, अत अब एक स्थान पर रहकर धर्म साधन कर। ईसरीमें तेरा कल्याण है। धर्म निःस्पृहता में है।

९. ललितपुर की ओर

इटावामें रहते हुए जबलपुर वालोंकी प्रेरणा हुई थी। फीरोजाबादके मेलेमें भी जबलपुरसे तथा सागरसे सेठ भगवान दासजी आदि अनेक महानुभाव पधारे थे, और सबने सागर चलनेकी प्रेरणा की थी। इसलिये मनमे एक बार सागर पहुंचनेका निश्चय कर लिया।

फीरोजाबादसे फाल्गुन कृष्ण २ सं० २००७ को ९ मील चलकर शिकोहाबाद ठहर गए। फिर बटेश्वर और वहाँसे बाह आये। अच्छा ग्राम है। प्रवचन हुआ। इस बात पर बल दिया कि यदि इस प्रान्तमें एक छात्रावास हो जावे तो छात्रोंका महोपकार हो। १२००) रुपयाके लगभग चन्दा हो गया। श्री श्याली रामजी आगरा वालोंने कहा कि यदि तुम लोग ७०००) इकट्ठा करलो तो शेष रुपया हम आगरासे आपको दे देवेंगे। किन्तु यहाँकी जनता अभी उसकी पूर्ति नही कर सकती। विश्वास होता है कि यह छात्रावास पूर्ण हो जावेगा।

फाल्गुन कृष्ण ९ को २ बजे १५ युवक वाहसे सामरमऊ तक

पहुंचाने आये। यहाँसे ५ मील चलकर नदगुवाँ आ गए। इस प्रान्तमें भट्टारकोंने प्रायः प्रत्येक ग्राममें मन्दिर बनवाए हैं। बड़े-बड़े विशाल मन्दिर हैं। वहाँसे चलकर अटेर, परतापपुर, पुरा, लावन, वरासो, छेँकुरी, भों, असौना, वस्मी, नहला, रामपुरा, सेंतरी, इन्द्रगढ़, भड़ौल, कैती तथा जुजारपुर ठहरते हुए चैत्र कृष्ण १ सं० २००७ को सोनागिरि आ गए।

चैत्र कृष्ण २ को आ० विमल सागरजी आये। श्री ब्र० छोटे लालजी तथा भगत सुमेरचन्दजी भी यहाँ आ गए जिससे मुझे परम हर्ष हुआ। चतुर्थीको सानन्द वन्दना की। पञ्चमीके दिन पुनः पर्वत पर जानेका भाव हुआ परन्तु शारीरिक शक्तिकी शिथिलतासे सब मन्दिरोंके दर्शन नही कर सका। केवल चन्द्रप्रभु स्वामीके दर्शन कर सुखका अनुभव किया। पश्चात १/२ घण्टा वही प्रवचन हुआ। सोनागिरिमे आठ दिन ठहरा।

चैत्र कृष्ण ९ स० २००७ को १ बजे दतियाके लिये प्रस्थान किया। डाक बङ्गला, महादेवजीका मन्दिर, करारी गाँवका वन, नत्थू मदारी का बङ्गला, ठहरते हुए झाँसी आ गए। चैत्र कृष्ण १२ को सीपरी गए। वहाँ ही प्रवचन हुआ। अगले दिन सदर बाजार आ गए। जिनालयके दर्शन किये। एक दिन गुदरी मन्दिरमें भी प्रवचन हुआ।

चैत्र कृ० अमावस्या सं० २००७ के दिन प्रातः झाँसीसे चलकर श्री परशुराम जीके बागमें ठहरे और वहाँसे वेत्रवती नदीको नाव द्वारा पार करके बरुआसागर आ गए। दर्शन व प्रवचनके अनन्तर आहारको निकले। हृदयमें अनायास कल्पना आई कि आज स्व० प० देवकीनन्दन जीके घर आहार होना चाहिये। उनके गृह पर कपाट बन्द थे। वहाँसे अन्यत्र गए। वहाँ पर कोई न था। उसके बाद तीसरे घर गए, तब वहाँ स्व० पडितजीकी धर्म पत्नी द्वारा आहार दिया गया। इससे सिद्ध होता है कि शुद्ध परिणाममे जो कल्पनाकी जाती है, उसकी सिद्धि अनायास हो जाती है।

श्री नाथूरामजी बजाज मबई वाले आये। आपने अपने यहाँ सिद्ध-चक्र विधानका आयोजन किया है। उसी समय पपौरा विद्यालयके लिये २५०००) देनेका वचन दिया है। मुझे आमन्त्रण देने आये थे।

नरेन्द्र कुमार भी आया था। अभी आयु विशेष नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि काल पाकर यह बालक विशेष कार्य करेगा।

आषाढ़ शु० १० सं० २००८ के दिन मध्यान्हकी सामायिकके बाद ज्यों ही प्रस्थान करनेको उद्यत हुआ कि बहुतसे स्त्री पुरुष आ गए। लोगों के अश्रुपात होने लगा। आज बरुआसागर से चलकर नदीपर विश्राम किया। आषाढ कृष्ण १२ को झासी पहुँच गए।

त्रयोदशीको १ बजे झासीसे निकलकर विजौली और फिर **बबीना** ग्राममें आये। यहाँ २५ घर जैनियोंके हैं, ५ स्थानों पर दर्शन है। पाठशालाके लिये ४०) मासिक चन्दा हो गया। १ मनुष्यको पञ्चायतने १२ माससे जाति च्युत कर दिया था। उसने जो अपराध किया था उसकी क्षमा मागी। लोगोने क्षमा दी।

वहाँसे चलकर घिमौली, कडेसरा, होते हुए **पवाक्षेत्र** में आये। पृथिवीके १० फुट नीचे जिन मन्दिर है। ४ मूर्त्तियाँ हैं। १ नया मन्दिर नये गावकी सिंघेनने बनवाया है। पूर्व दिशामें यात्रियोंके निवासके लिये दरवाजेके दोनों ओर कोठा बने हुए है। मन्दिरके चारो ओर रमणीय अटवी है। प्रातःकाल प्रवचन हुआ। २५ मनुष्य थे।

पवाक्षेत्रसे कडेसरा आये और वहाँसे आषाढ शु० ९ सं० २००८ को चलकर बीचमे जमालपुर ठहरते हुए बासी आ गए। ४ घर जैनोके है। दो मन्दिर विशाल है। एक मन्दिर की शिखर जोर्ण है। उसकी मरम्मतके लिये एक जैनी भाईने १००) और ५ बोरी सिमेंट दी और भी कई लोगोने यथा शक्य दान दिया। २१) सि० कुन्दनलालजी सागर वालों ने दिये।

यहाँसे बीच में देवराना ठहरते हुए ललितपुरके निकट एक ग्राममें **ललितपुर** से करीब २०० पुरुष आ गए। आषाढ शुदि १२ स० २००८ को संध्या समय ललितपुर में आकर चार माहके लिये भ्रमण सम्बन्धी खेद से मुक्त हो गए। ललितपुर बुन्देलखण्डका केन्द्र स्थान है। जैनियो की अच्छी बस्ती है, और व्यापार का अच्छा स्थान है यहाँ पर शिक्षाका आयतन न होना हृदयमें चोट करता रहता है। एक पाठशाला पहले क्षेत्रपाल में थी, जिससे प्रान्तके छात्रोंका लाभ होता था, परन्तु अब वह बन्द हो चुकी है।

१०. ललितपुर चातुर्मास

आषाढ शु० १२ वि० सं० २००८ को ललितपुर पहुंचे। अगले दिन प्रातः मन्दिरके चौकमें प्रवचन हुआ। ४ बजे शामको समारोहके साथ चलकर क्षेत्रपाल आये। १००० के लगभग आदमी थे।

क्षेत्रपाल ललितपुर का सर्वाधिक मनोरम स्थान है। आहातेके अन्दर भव्य मन्दिर है। मन्दिरोंके साथ एक धर्मशाला तथा एक विशाल बाग भी संलग्न है। यह स्थान शहरसे १ मील दूर स्टेशनके करीब है। इतना होने पर भी प्रातः कालके प्रवचनमें अधिक संख्यामें जनता दौड़ी आती है।

समाजके निमन्त्रण पर पं० फूलचन्दजी शास्त्री बनारससे यहाँ आ चुके थे। अन्यान्य विद्वानोंका समागम भी यहाँ होता रहा। विद्वानोंने अपने प्रवचनोंके द्वारा यहाँ की समाजको यथा-शक्य लाभान्वित किया।

शान्तिसे पर्यूषण पर्वके दिन व्यतीत हुए। पर्वके अनन्तर जयन्ती-उत्सवका आयोजन हुआ। मैने सिर झुकाकर श्रद्धाञ्जलिके शब्द सुने। अन्तमे जब मेरे कहनेका अवसर आया तब मैने कहा कि—"कमलने देखा कि मेरे पास लक्ष्मी तो है नही, लोग मुझे व्यर्थ ही लक्ष्मीका निवास कहते है। मै द्विजराज चन्द्रमाको क्या दे दूँ? इस सकोचके कारण ही मानो कमल चन्द्रोदय होने पर बन्द हो जाता है। आप लोग बढा-चढा कर गुणगान करते है, मेरेमें वे गुण अश मात्र भी नही है। अत नीचा मुख कर बैठ जाता हूँ।"

कार्तिक कृ० ७ स० २००८ से श्री नये मन्दिरमें सिद्ध चक्र विधान का पाठ हुआ। कार्तिक कृष्ण ११ को शारीरिक अवस्था यथोचित नही रही। एक फोड़ा उठनेके कारण कष्ट रहा। फिर भी स्वाध्याय (प्रवचन) किया। अत्यन्त प्राचीन मलेरिया मित्रने भी दर्शन दिये। दोनो की तीव्र वेदनासे चित्तमें बहुत खिन्नता हुई। आप्रेशन की तैयारी हुई। डाक्टर बोला कि आप्रेशनमे समय लगेगा। बिना कुछ सुंघाये आप्रेशन कैसे होगा? मैने कहा आप निश्चिन्ततासे आप्रेशन कीजिये, सुँघानेकी चिन्ता न करें। यह कहकर मै निश्चल पड़ा रहा। १५ मिनट में आप्रेशन हो गया।

घाव भरनेमे एक मास लग गया। धीरे-धीरे मार्गशीर्ष मास आ गया। उसके अन्तमें यहाँसे चलनेका निश्चय कर लिया। ५॥ माहके करीब एकत्र वास करनेसे लोगोंका स्नेह बढ गया। इसलिये जाते समय उन्हें दुःख होने लगा। वहुत जनता भेजनेको आई, पर क्रम-क्रमसे निवृत्त हो गई।

११. सागरकी ओर

मार्गशीर्ष ३० वि० सं० २००८ को ललितपुरसे चलकर कचरोदा, बानपुर, व टीकमगढ होते हुये मार्गशीर्ष शु० ५ को **पपौरा** गये। यह क्षेत्र अति उत्तम है। ७५ गगनचुम्बी मन्दिर है। मेलेका उत्सव था। अतः बाहरसे जनता बहुत आई थी। सभापति महोदयने १०) जीर्णोद्धारको दिया। अन्य लोगोने भी दिया। जिससे चन्दा अच्छा हो गया। ८-५ दिन पपौरा निवास किया। परिणाम अति उज्ज्वल रहे।

मार्गशीर्ष शु० १३ स० २००८ को २ बजे चलकर टीकमगढ पहुच गये। आज यहाँके कालेजमे प्रवचन था। कालेजका भव्य भवन ५ खण्डों से शोभित है। इसम २००० छात्र अध्ययन कर सकते है। यहाँसे पौष कृ० ६ को चलकर आहार क्षेत्र होते हुए **बलार** आ गये। श्री शान्तिनाथ भगवानकी सं० १८७२ की प्रतिमा बहुत मनोहर है। मन्दिर भी वहुत विस्तारसे है। २० घर जैनियोके है। २ धर्मशाला है।

लारसे चलकर बड़ेगॉव आये। यहाँ औषधालयकी स्थापनाके लिए ३००) का चन्दा हो गया। वहाँसे घबुरा होते हुए भोंहरे ग्राम आ गए। ८ घर जैनियोके हैं। १ मन्दिर है। मन्दिरमे अन्धकार था। अत. उसके सुधारके लिए ४००) का चन्दा हो गया। प्रवचनमें ग्रामके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी लोग आए। सुनकर प्रसन्न हुए। भोजनोपरान्त यहाँसे चलकर गोरखपुर आये। यहाँ एक मन्दिर और एक छोटी सी पाठशाला है। नरेन्द्रकुमार (विद्यार्थी) बी० ए० जो एक निर्भीक वक्ता व लेखक है, यहीके है।

यहाँसे पौष शु० ५ सं० २००८ को द्रोणगिरि सिद्ध क्षेत्रकी वन्दना की और वहाँसे शु० १४ को ४ मील चलकर मलहरा आ गए। गुरुकुलमें ठहर गये। यहाँ १६ दिन रहे। माघ शु० ४ को **दुरगुवाँ** आए, और

वहाँसे हीरापुर, शाहगढ़, बरखेरी होते हुए नैनागिरि (रेशन्दीगिरि) आ गए। फाल्गुन कृ० ३ वि० सं० २००८ से पञ्चकल्याणकका मेला था। विद्वद् परिषद्की कार्यकारणीकी बैठक थी। अतः विद्वद्-मण्डली उपस्थित थी। व्रती सम्मेलन होनेसे मेलामें अनेक व्रती भी पधारे थे। मेलेमें लगभग १५-२० हजार जैन जनता आई होगी। किसीकी कुछ हानि नही हुई।

यहाँसे चलकर दलपतपुर, बण्डा, व भड़राना होते हुए शाहपुर पहुँच गए। कलशारोहणका उत्सव था। पाठशालाका भी उत्सव हुआ। सतरह अठारह हजार चन्दा हो गया। हम शान्त भावसे १६-१७ दिन यहाँ रहे।

चैत्र कृ० प्रतिपदा स० २००८ के दिन सागरसे सिंघई जी आदि आये और सागर चलनेकी प्रेरणा करने लगे। हमने मना किया, परन्तु अन्तमें मोहकी विजय हुई, हम पराजित हुए। सागर जाना स्वीकृत करना पडा।

चैत्र कृ० ३ सं० २००८ को शाहपुरसे चलकर सानोधा होते हुए गोपालगज (सागर) पहुच गए। ३ बजे प्रचुर जनताके साथ यहाँसे चलकर ४ बजे कटरा बाजार पहुँचे। श्री गुलाब चन्द्र जौहरीके बागमें निवास किया। आपने यह बाग उदासीन आश्रमके लिए प्रदान किया है। उदासीन आश्रम सस्था इसीमें है।

१२. सागर चातुर्मास

सागर बड़ी बस्ती है। जैनियोंके हजारसे ऊपर घर है। बड़े-बड़े १६ मन्दिर है। विद्यालय और महिलाश्रम दो संस्थाये है। सबकी व्यवस्थापक समितियाँ जुदा-जुदा है। इसलिये अपनी-अपनी ओर लोगोका खिंचाव रहता है। एक प्रतिनिधि-सभाके निर्माणकी आयोजनाकी, पर सफलता न मिली। तारण समाजका भी एक चैत्यालय है।

चैत्र शु० १३ वि० सं २००९ को वर्णी भवन (मोराजी भवन) में महावीर जयन्तीका उत्सव था। दूसरे दिन सर्वधर्म सम्मेलनका आयोजन हुआ। श्री १०८ मुनि आनन्द सागरजी भी विहार करते हुए सागर पधारे। आप आ० सूर्य सागरजीके शिष्य है। निःस्पृह व्यक्ति है।

आपकी शान्त मुद्रा देखकर वन्य जन्तु भी शान्त भावको धारण कर मोक्षमार्गके पात्र हो सकते हैं।

महिलाश्रमके लिये एक मकान खरीद दिया गया। ज्येष्ठ शु० ५ को श्रुत पञ्चमीका उत्सव था। आषाढ शु० १४ के दिन हमने सागरमे चातुर्मासका नियम ग्रहण किया। तथा कार्तिक सुदी २ तक दुग्ध, घृत, नमक तथा बादाम रोगन मात्र इतने रस लेनेका नियम किया।

आषाढ शु० पूर्णिमाको विद्यालयमें गुरु पूर्णिमाका उत्सव हुआ। श्रावण कृ० १० को समाचार मिला कि डालमिया नगरमें आ० सूर्य सागरजी महाराजका समाधि पूर्वक देहावसान हो गया है। मुनि श्री आनन्द सागरजी तथा हमने आज उपवास किया। कटरामें मन्दिरके सामने शोक सभा हुई। विद्वानोने उनका गुणगान कर उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

पर्यूषण पर्व आनेवाला था। चौधरन बाईके मन्दिरमे पुष्कल स्थान है। इसलिए प्रातःकालके प्रवचनकी व्यवस्था इसी मन्दिरमें रहती थी। प्रातः ८॥ बजे श्री मुनि आनन्द सागरजीका प्रवचन, उसके बाद पण्डित जी द्वारा तत्त्वार्थसूत्रका मूल पाठ और उसके वाद धर्मपर हमारा प्रवचन होता था। ●

६—अन्तिम बार

●

१. संकल्प

सागरमे चातुर्मास था, पौष कृ० अमावस्या वि० सं० २००९ की रात्रि थी। अचानक वर्षा शुरू होनेसे निद्रा भंग हो गई। मनमें नाना प्रकारके विकल्प उठने लगे। विचार आया कि तेरी आयु ७९ वर्षकी हो गई, फिर भी इस चक्रमें पडा है। कभी ललितपुर, कभी सागर, कभी जबलपुर, कभी सागर विद्यालय, कभी बनारस विद्यालय। शरीरकी शक्ति दिन प्रति दिन क्षीण होती जाती है।

भाग्य वश एक बार श्री पार्श्वप्रभुके पादमूलमें पहुँच गया था। परन्तु मोहके जालमें पड वहाँसे वापस आ गया। पक्वपान वत् शरीरकी अवस्था है। न जाने कब डालसे नीचे झड़ जाय। इसलिये जब तक चलनेकी सामर्थ्य है तब तक पुन श्री पार्श्वनाथ भगवानके पदमूलमें पहुँचनेका विचार कर। उस स्थानसे बढ़कर समाधिके लिए अन्य कौन स्थान उपयुक्त है?

[वि० सं० २००६ दिल्ली चतुर्मासके पश्चात् ऐसे विचार पहले भी कई बार आ चुके थे। बाबा भागीरथ दासजीकी भी स्वप्नमे अनेक बार प्रेरणा हो चुकी थी, कि इस प्रपञ्चको छोड़कर आत्म-कल्याण कर। फिरोजाबादमें आ० सूर्य सागरजी महाराजने भी आशीर्वाद देते हुए यही सकेत किया था कि मेरा कल्याण ईशरी जानेमें ही है। जैसा कि

आगे वैराग्य वाले प्रकरणमें बताया जानेवाला है, संसर्गसे चित्त ऊब चुका था। उपदेश देना मात्र आडम्बर लगने लगा था। जो पदार्थ पहले साधक लगते थे, अब बाधक प्रतीत होने लग गए थे।]

अतः मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि गिरिराज अवश्य जाना है। यद्यपि शरीर शक्तिहीन है, तथापि श्री पार्श्वप्रभुमे इतना अनुराग है कि वे पूर्ण बल प्रदान करनेमें निमित्त होंगे। पौष शु० ११ स० २००९ को भोजनके उपरान्त मैने लोगोके समक्ष अपना विचार प्रगट कर दिया कि मैं आज गिरिराजके लिये १ बजे प्रस्थान करूँगा। यह खबर सारे शहर (सागर) में बिजलीकी भाँति फैल गई। बहुतसे लोग एकत्रित हो गये और रोकनेका प्रयत्न करने लगे। परन्तु मै विचारसे विचलित नही हुआ। और ३ बजे प्रस्थान कर चल दिया।

सेठ भगवानदास व बालचन्द्रजी मलैया आदि अनेक पुरुष आये, पर मै किसीके चक्करमे नही आया। इसी प्रकार कटनीमे पुनः जबलपुरसे बहुत अधिक मनुष्य आये। सबका अत्यन्त आग्रह था कि जबलपुर चलिए, परन्तु हम अपने निश्चयसे विचलित न हुए।

२. बनारसकी ओर

चातुर्मासके पश्चात् पौष शु० ११ वि० सं० २००९ को ३ बजे सागरसे चल दिया। मार्गमें बहुत भीड हो गई। गोपालगञ्जके बाहर जो कमरे हैं उनमें ठहर गया। प्रातःकाल शास्त्र प्रवचन हुआ।

तदनन्तर १ बजे चलकर गमीरिया, बमोरी, सानोधा, पड़रिया, मोरा, सासा, शाहपुर, टड़ा आदि स्थानोंमें ठहरता हुआ माघ शु० ११ को **दमोह** आ गया। लोगोंने सम्यक् स्वागत किया। प्रातःकाल धर्मशालाके विशाल भवनमे प्रवचन हुआ। एक सहस्र संख्या एकत्रित हो गई।

दमोहसे हिडोरिया, पदेरा, ठहरते हुए अतिशय क्षेत्र **कुण्डलपुर** जी पहुँच गया। बड़ा रमणीय क्षेत्र है। कुण्डलाकार पर्वत पर सुन्दर मन्दिर बने है। नीचे तालाब है। इसके समीप भी अनेक मन्दिर बने है। ऊपर श्री महावीर स्वामीकी सातिशय विशाल प्रतिमा है। मेलेका समय था। लगभग ४ सहस्र आदमी थे।

यहाँसे कई स्थान ठहरते हुए फाल्गुन कृ० १० को **कटनी** आ गए।

जनताने स्वागत किया। दूसरे दिन प्रातः काल मन्दिरमें प्रवचन हुआ। पं० जगन्मोहन लालजीने यहाँकी संस्थाओंका संक्षिप्त विवरण सुनाया। यहाँ ५ दिन रहना पड़ा।

श्री चम्पालाल जी सेठी, गयावाले मोटर लेकर पहले ही आ गये थे। मोटरमे साथके लोगोंका सामान जाता था। तथा उसके द्वारा आगामी निवासकी व्यवस्था हो जाती थी। फाल्गुन कृ० १४ को संध्या-काल कटनीमे ४ मील चलकर चाकामें ठहर गये। वहाँसे प्रात चलकर कैलवार, टिकरवारा, झकोही, सवागाँव, अमदरा, घुनवारा, मदनपुर, पौड़ी, मैहर, नरौरा, बरइया ग्रामोके स्कूलो व धर्मशालाओ आदिमें ठहरते हुए **अमरपाटन** आये। यहाँ २० घर जैनियो के है। २ मन्दिर है। १ प्राचीन मूर्ति बहुत ही मनोज्ञ है। १ पाठशाला भी है, जिसमें जैन अजैन सब मिलकर १०० छात्र है।

यहाँसे चलकर कतपारी होते हुए इटवा नदीके तीर धर्मशालामें ठहर गये। १ बजे श्री नीरजजीने खबर दी कि मोटर उलट जानेसे चम्पालालजी सेठी आदिको चोट लग गई। सुनकर चित्तमें बड़ा खेद हुआ। प्रात: ६॥ बजे चलकर **सतना** आये। चम्पालालजी आदिको देखा बहुत चोट लगी थी। उपयोगमे यह आया कि इस सर्व उपद्रवके निमित्त कारण तुम थे। न तुम होते न यह सर्व समुदाय एकत्रीभूत होता। तू आगमकी अवहेलना कर इस परिकरके साथ भ्रमण कर रहा है। यह सब उसीका फल है। सतना अच्छा शहर है। जैनियोकी संख्या अच्छी है। प्राय सम्पन्न है। एक मन्दिर है। पास ही धर्मशाला है। एक जैन स्कूल भी है। प्रात काल समयसार पर प्रवचन हुआ। खजराहा क्षेत्रकी व्यवस्थापक समितिका निर्माण हुआ। फाल्गुन कृ० १३ को सतना आये और चैत्र कृ० ६ को यहाँसे निकल पडे।

सतनासे चलकर माधवगढ, समवन, बकना, कुरही, बेलापुर होते हुए **रीवाँ** आ गए। कही स्कूलमें ठहरे, कहीं बागमे, कहीं किसी कुटियामें, कहीं शिवालयमें, और कहीं धर्मशालामें। रीवाँ विन्ध्यप्रदेशकी राज-धानी है। जैनियोके घर भी अच्छे है। प्रातः काल बाजारके मन्दिरमें प्रवचन हुआ।

यहाँसे ३ बजे चलकर रामऊन, बिलवा होते हुए मनगुवाँ ग्राममें आए। एक बाबाकी कुटियामें ठहर गये। विचारमें आया कि गिरिराज

पहुँचकर धर्म साधन करना। यहाँसे चलकर मऊगञ्ज, हनुमान, भैसोड, लुहस्थिहर, द्रासिलगञ्ज, बरौधा, तुलसीग्राम आदिमे ठहरते हुए चैत्र शु० १२ सं० २०१० को **मिर्जापुर** आ गया। लोगोने उत्साहसे स्वागत किया। दूसरे दिन महावीर जयन्तीका उत्सव था। बनारससे प० महेन्द्र कुमारजी व पं० कैलाश चन्द्रजी आ गए। रात्रिको आम सभा हुई। हमने भी कुछ कहा। एक दिन प्रात काल बडे मन्दिरमे प्रवचन हुआ। उपस्थिति अच्छी थी। वैशाख वदी १ को यहाँसे चलना था, परन्तु मोटर द्वारा दुर्घटना हो गई जिससे दो दिन और रुकना पडा।

वैशाख बदी ३ वि० स० २०१० को यहाँसे चलकर चिलीके उपवनमे ठहर गए। दूसरे दिन प्रात काल चलकर महाराजगञ्जकी संस्कृत पाठशालामें निवास किया। दूसरे दिन रूपापुरकी शिशु पाठशालामे, फिर राजा तालाब पर, फिर भास्करके उपवनमे, और फिर बनारसी दासजीके उपवनमे ठहर गए। यहाँसे बनारस केवल ३ मील दूर है।

३. बनारसके अञ्चलमें

वैशाख कृ० ९ वि० स० २०१० को प्रात काल ३ मील चलकर भेलूपुर आ गए, और दूसरे दिन स्याद्वाद् विद्यालय। विद्यालयके बालकोंने बहुत भक्तिके साथ भोजन कराया। सायंकाल ५ बजे चलकर सन्मति निकेतन आ गए। यहाँ श्री सेठ हुकमचन्दजी इन्दौर वालो का एक छात्रालय है, जिसमे वे छात्र रहते है जो युनिवर्सिटीमे अध्ययन करते हैं। एक सीधी-साधी वेदी पर भगवान महावीर स्वामीकी विशालकाय शुभ्रमूर्ति विराजमान की गई है।

वैशाख कृ० १४ स० २०१० को स्याद्वाद विद्यालयका वार्षिक उत्सव हुआ। जनता अच्छी आयी। ४ बजे श्री आनन्दमयी माता भी पधारी। आप शान्तिमूर्ति है। सचमुच ही आनन्दमयी है। इनका आश्रम भी विद्यालयके समीम ही गङ्गाके तटपर है। मुझे वहाँ बुलाया गया, अत. मै भी आमावस्याके दिन वहाँ गया। माता ने कहा कि अपना पराया मतभेद छोडो। आप बङ्गाली है।

एक दिन मैदागिन मन्दिरमें गए। वैसाख शु० ३ को सिहपुरी (सारनाथ) आ गए। कोलाहलसे परे शान्ति पूर्ण स्थान है, अतः १५ दिन यहीं रहनेका विचार हुआ। द्वि० वैसाख कृ० २ को मैदागिन आ गए।

४. गयाकी ओर

वैसाख कृ० ४ वि० सं० २०१० को बनारससे चलकर मोगल सराय आये ओर वहाँ से चलकर एक बाबाकी कुटियामें और फिर चन्दौली, संय्यदराजा, कर्मनाशा होकर दुर्गावतीके तट पर डाक बङ्गलामे निवास किया। प्रात ५ मील चलकर एक बाबाजीकी कुटिया पर विश्राम किया, फिर पुसौली, जहानाबाद, शिवसागर, ससराम होते हुए डालमियानगर आ गए। लोगोंने अच्छा स्वागत किया। मन्दिरमें प्रवचन हुआ। प० युगलजीके मागने पर साहू शान्ति प्रसादजीने बनारस सन्मति निकेतन छात्रालयमे १३ कमरे दुहरे करवा देनेका वचन दिया। और १००) मासिक छात्रावास चलानेके लिये कहा। यहाँ आठ दिन रहे।

यहाँसे वैसाख शु० ११ को पार्श्वप्रभु की ओर बढ़े। शोणभद्र नदाको नाव द्वारा पार कर औरङ्गाबाद, औरा, शिवगञ्ज, चित्रशाली, होते हुए ज्येष्ठ कृष्ण ५ स० २०१० को प्रात काल ८ बजे रफीगञ्ज आ गए। मन्दिरमे प्रवचन हुआ। यहां ५ दिन लग गए।

एकादशीको प्रात काल ४॥ बजे चलकर डबुहा, गुण्डू, सलेमपुर, परैया, होते हुए ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्याको ७॥ बजे गया आ गए। बड़े ठाट बाटके साथ स्वागत हुआ। अन्त मे जैन भवन मे ठहर गए। मन्दिरमे शास्त्रका प्रवचन हुआ। दूसरे दिन ईसरी से ब्र० सुरेन्द्र नाथ जी व भगत प्यारेलाल जी भी आ गए।

५. गया चातुर्मास

पन्द्रह दिन रहनेके बाद आषाढ कृ० १ को विचार किया कि पार्श्व-प्रभुकी निर्वाण भूमि पर पहुचनेके सकल्प से तूने ग्रीष्म कालमें भी प्रयाण किया। अब यहाँ निकटमे आकर उलझ जाना उत्तम नही। ईशरीसे पं० शिखरचन्दजी तथा ब्र० सोहनलालजी भी आ गए। गया वाले चौमासेकी प्रेरणा करने लगे परन्तु हमने यह निश्चय प्रगट किया कि अब तो पार्श्वप्रभुकी शरणमे जाना चाहते है। मेरा उत्तर श्रवण कर लोग निराश हो गए।

आषाढ कृ० २ सं० २०१० के दिन २ बजे ४ मील चलकर एक क्षत्रियके बङ्गले पर ठहर गए। दूसरे दिन प्रातः काल बङ्गलासे

१ मील चले परन्तु मार्गमें शुष्क प्रदेश नही मिला। सब ओर हरी-हरी घास तथा मार्गमें जन्तुओंकी प्रबलता दिखाई दी। ऐसे मार्गपर चलना हृदयमें अरुचिकर हुआ। जिससे लौटकर उसी बङ्गलामें आ गए। यहाँसे प्रस्थान कर वापस गया पहुँच गए। और ४ मास वही रहनेका निश्चय कर लिया। गयाके लोग प्रसन्न हो गए।

पर्यूषण पर्वमें तत्त्वार्थसूत्रका प्रवचन करनेके लिये बनारससे श्री पं० कैलाशचन्द्रजी साहब पधारे। त्याग धर्मके दिन स्याद्वाद विद्यालय को अच्छा दान मिला। भाद्रपद शु० १४ के दिन पुराने गयामें श्रीपार्श्व-नाथ स्वामीके दर्शन किये। १ बजे दिन से ३ बजे दिन तक श्री पतासी बाईके जन्म दिवसका उत्सव था।

पर्वके बाद आश्विन कृ० ४ को वर्णी जयन्तीका उत्सव था। बाहरसे अनेक महानुभाव आए थे। द्वितीय दिन टाउनहालमे व्याख्यान सभाका आयोजन था। आश्विन कृ० १० को मन्नू लाइब्रेरीमें गांधी जयन्तीका उत्सव था। कोई ५०० महिलाये यहाँ पर थी। हम लोगोका भी निमन्त्रण था, अत: गए थे।

६. ईशरीकी ओर

गयामें चातुर्मास व्यतीत हुआ। हृदयमे गिरिराजके दर्शन करनेकी उत्सुकता थी। कलकत्तामे श्री प्यारेलाल जी भगत तथा ईशरीसे ब्रह्म-चारी सोहनलाल जी व सेठ भँवरी लालजी आ गए। कार्तिक सुदी २ सं० २०१० रविवारको १ बजे गयासे प्रस्थान कर दिया। ५०० नरनारी भेजने आये।

गयासे चलकर हरिओ, मुस्करा, जिन्दापुर कर्मणी, डोभी, कादुदाग, भलुआ होते हुये **चौपारन** पहुच गये। गयाके बाद यही पर जिन-मन्दिर मिला। श्री जिनेन्द्र देवके दर्शन कर हृदयमें अपार आनन्द हुआ। दूसरे दिन प्रातः काल प्रवचन हुआ। तीसरे दिन आहार कर २ बजे आगेके लिये प्रस्थान कर दिया।

रामपुर, भेंडी, विन्दा, होते हुये झूमरी-तलैया आ गये। लोगोंने उत्साहसे स्वागत कर धर्मशालामें ठहरा दिया। झूमरी-तलैया ग्रामका नाम है और स्टेशनका नाम **कोडरमा है**। यहाँ जैनियोके अच्छे घर है। मन्दिर अच्छा है। लोगोमें धार्मिक भावना उत्तम है। श्री जगन्नाथजी

पाण्डेयने आहार होनेके उपलक्ष्यमें पाठशाला, औषघालय तथा चैत्यालय बनवानेके लिये अच्छा दान किया। बनारससे पं० कैलाश चन्दजी भी आ गये। यहाँ १५ दिन लग गये।

अगहन बदी ११ वि० सं० २०१० को १ बजे प्रस्थान कर चिगलावर, जयनगर तथा फरसाबादमें क्रमश ठहरते हुये त्रयोदशीके दिन **सरिया** (**हजारीबाग रोड**) आ गये। यहाँ स्टेशनके पास एक सुन्दर मन्दिर है। ग्राममें एक चैत्यालय है। सेठ भँवरी लालके यहाँ आहार हुआ। आरासे ब्र० चन्दा बाई भी आ गईं।

यहाँसे मंसुरिया तथा चौधरी-वांदमें विश्राम करके अगहन सुदी ३ सं० २०१० को ८॥ बजे ईशरी पहुँच गये। चित्तमें बडा हर्ष हुआ। एक बार यहाँ आकार पुन परिवर्तन करनेके लिये निकल पडा था, और उस चक्रमे फँस कर १० वर्ष यत्र-तत्र भटकता रहा। आज पुन पार्श्व-प्रभुकी निर्वाणभूमिके समीप आ जानेसे हृदयमे जो आनन्द हुआ वह शब्दोंके गोचर नहीं। यहाँके समस्त त्यागीगण तथा परिकरके अन्य लोगोंको भी महान् हर्ष हुआ।

७. ईशरी निबास

श्री गिरिराजकी वन्दना का हृदयमे बहुत अनुराग था। अत अगहन सुदी १०को मधुवन चला गया। वन्दना पूर्ण होने पर हृदयमें अत्यन्त हर्ष हुआ। इसी अवसर पर वर्णी जयन्ती महोत्सवके साथ साथ स्याद्वाद् विद्यालय बनारसका स्वर्ण जयन्ती महोत्सव भी मधुवनमे ही आयोजित किया।

उत्सव समाप्त होने पर मै प्रात काल पुन श्री पार्श्वप्रभुकी वन्दना करनेके लिये गया था। उसी समय किन्ही लोगो ने परिषद्के द्वारा प्रकाशित हरिजन मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी पुस्तिकाये जनतामें वितरण करदी। फिर क्या था ? कुछ लोगोंने इसकी खबर उस समय मधुवनमें विद्यमान श्री मुनि महावीर कीर्ति जी को दे दी। खबर पाते ही आपका पारा गरम हो गया, और इतना गरम हो गया कि आपने जनतामे एक-दम उत्तेजना फैला दी।

जब मै गिरिराजसे लौटकर २ बजे आया तब यहाँ रंग दूसरा देखा। मै चुपकेसे जहाँ महाराज भाषण कर रहे थे पहुचा और मैंने

कहा कि भाइयो ! मै तो रात्रिके ४ बजेसे श्री पार्श्वप्रभुकी वन्दनाके लिये गया था। ये पुस्तकें जो वितरणकी गई है, उसकी जानकारी मुझे न पहले थी, और न अब भी है, कि पुस्तके कहाँसे आईं और किसने वितरण की। हरिजनोके विषयमे महाराज जी कहे सो आप लोग मानो, मुझे कोई आपत्ति नही है। अनन्तर वातावरण शान्त हो गया। हम सायकाल मधुवनसे ईसरी आ गये।

ग्रीष्मकी बाधा समझो या अन्तरंग की प्रेरणा, या वहाँके लोगोंका आग्रह, मै (सन् १९५७ मे) **हजारीबाग** चला गया। बसन्ती लालजीने अपने उद्यानमे ठहराया। सागरसे तार आये कि यहाँ सिघई कुन्दन लालजी का स्वास्थ्य अत्यन्त खराब है। आप सागर पधारनेकी कृपा करें। उनके सम्पर्कमें हमारा बहुत समय बीता है, इसलिये मनमे विकल्प उत्पन्न हुआ कि यदि हमारे द्वारा उनके परिणामोका सुधार होता है, तो पहुचनेमे क्या हानि है।

लोगोको पता चला तो सबमे व्यग्रता फैलगई। इधर सागरके महाशय आ गए। हजारीबागसे चलकर ईशरी आये तो यहाँ भी बहुत से लोगोका जमाव देखा। अन्तरग विचारोका सघर्ष चल रहा था कि सागरसे दूसरा समाचार आ गया, कि सिघईजीका स्वास्थ्य सुधर रहा है। हृदय की व्यग्रता कम हुई। मनमे यह लगा कि मेरा हृदय बहुत निर्बल है। जरा-जरा सी बातोको लेकर उलझनमे पड जाता हूँ।

वृद्धावस्थाके कारण शरीर की जर्जरता तो बढ रही थी। उस पर भी यदा कदा वात रोगका प्रकोप व्यग्रताको बढा देता था। इसलिये एक दिन निश्चय किया कि राजगृही रहा जावे। वहाँका वायुमण्डल शरीरके अनुकूल बैठ सकता है। श्री राजकृष्णजीने इसके लिये एक विशिष्ट प्रकार की कुर्सी का निर्माण कराया, जिसमें पहिये लगाये गए और एक आदमी जिसे अच्छी तरह चला सकता था।

ईसरी जाते समय मनमें विकल्प आया कि पार्श्वप्रभुके पादमूलमे हटकर जा रहा हूँ, फिर लौटकर आ सकूँगा या नही, एक बार गिरिराज पर जाकर उनके दर्शन अवश्य करना चाहिये। निश्चयानुसार मधुवन के लिये प्रस्थान कर दिया।

मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है। शीतकी प्रकोपतासे पावोंमे सूजन आ गई। वातका दर्द भी अधिक बढ गया। इसलिये

राजगृही जाना कठिन हो गया। गिरिडीहके महानुभावोने आग्रह किया। हम सन् १९५८ में गिरिडीह चले गए। नाना उपचार किये। स्वास्थ्य की खराबी के समाचार जहाँ तहाँ पहुच गए।

क्षुल्लक मनोहर लालजी आ पहुँचे। आपके प्रवचनोंसे जनताको लाभ मिलने लगा। साहू शान्ति प्रसादजी भी आये। उन्होंने आग्रह किया कि आपका शरीर अत्यन्त जर्जर है। न जाने कब क्या हो जाये। इसलिये आप सम्मेदशिखरजीसे दूर न जावे। राजगृही जाना स्थगित हो गया, तथा कुछ स्वस्थ्य होने पर ईसरी आ गया। ईसरीमे दिन चर्या पूर्ववत् चलने लगी।

८. समाधि मरण

(गणेश वर्णीसे गणेश कीर्ति)

७९ वर्षकी वृद्धावस्थामें सागरसे ईशरी तककी लम्बी पदयात्राके कारण ही शरीर काफी कृश हो चुका था। वृद्धावस्थाके कारण उसमें दिन प्रति दिन क्षति ही होती गई। ता० ६–७–६१ (वि० स० २०१८) को जो ज्वर प्रारम्भ हुआ उसने पीछा न छोडा। इन लक्षणोंको देखते हुए, बाहरमे किसी भी बातकी घोषणा किये बिना, आपने १७–७–६१ से अन्नाहारका त्याग कर दिया। दूध व अल्प फल मात्र पर निर्वाह किया। पश्चात् दूध भी छोड दिया। केवल फलोके रस पर रहे, जिसकी मात्रा भी धीरे-धीरे घटती हुई तोलो तक आ गई। स्वर्गारोहणके चार दिन पूर्व इसका भी निषेध कर दिया, केवल जल रखा। परन्तु शारीरिक शक्ति अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी, इसलिये यथायोग्य विधिका पालन सम्भव न होनेसे वह भी न ले सके।

ज्वरका प्रकोप तथा आहार जलका अभाव हो जानेसे काय बल नाम मात्रको ही शेष था, फिर भी ज्ञान चेतना यथावत् अपना कार्य करनेमे पूर्ण समर्थ थी। अवसर देख विद्वानोने निवेदन किया कि महाव्रती होनेका समय आ गया है। कहने की देर थी, कि लंगोटी शरीरसे पृथक हो गई और अगले ही क्षण गणेश-वर्णीके स्थान पर गणेश-कीर्ति की कृशकाय सौम्य दिगम्बर मुद्राके दर्शन होने लगे। सकल उपस्थित जनोके मस्तक चरणोंमे नत हो गए।

अपनी शारीरिक दशाको देखकर कुछ दिन पूर्व आपने सकल त्यागी वर्गको सम्बोधन करते हुए अपनी मृदु भाषामें निम्न भाव व्यक्त किये थे।

"हमारा आपका सम्बन्ध दीर्घ कालसे चला आया, परन्तु उसमें अल्प भी शान्तिका आस्वाद न था। कहनेमें जो आता है, उसे हम और आप दोनों जानते हैं। मेरा तो दृढ विश्वास है कि यह पर-सम्बन्ध ही संसारका विधाता है। अब हमारा शरीर हमसे त्याग करनेके सम्मुख है। अत: हमारा आपसे यह अन्तिम निवेदन है कि आप भी इस सम्बन्धको त्यागो। अब तकके इस मेलमें यदि हमारे विभाव परिणामोंके द्वारा आपको कुछ हर्ष विषाद हुआ हो, तो उसमें मेरी और अपनी परिणतिकी स्वतन्त्रता देखकर मध्यस्थ रहना, तथा उभय-पक्षीय क्षमा-शील आत्माओंको विभावके जालमें न फँसाना।

शरीर हड्डियोंका ढाँचा मात्र शेष रह गया था। जिसके कारण पाटे पर लेटनेसे शरीरमें बड़े-बड़े घाव (Bed Sore) हो गए थे। बेचैनीके कारण पुन पुनः संकेत करके करवट बदलवाते थे। परन्तु दिगम्बर मुद्रा धारण कर लेनेके पश्चात् आप काष्ठवत् एक करवट पर ही लेट गये। संकेत देना बन्द कर दिया। घाव पर रूई तकका स्पर्श होनेकी आज्ञा न दी। सर्व उपचारोंका त्याग कर दिया। २६ घण्टे इसी प्रकार अत्यन्त शान्त भावसे धर्म-ध्यान पूर्वक व्यतीत हुए।

सारा जीवन जिसने लोक कल्याणार्थ भ्रमण करनेमें तथा यात्राओंमे बिताया, वह जीवनके उपरान्त भला निश्चल कैसे रह सकता है। और भाद्रपद ११ वि० सं० २०१८ तदनुसार ५–९–६१ की रात्रिके १.१५ बजे हमारे हृदय मन्दिरके इस देवताके शरीरमेंसे विर्निगत ज्योति, यह देखो आकाश मार्गसे अब किसके कल्याणार्थ किस धामको यात्राके लिए चली जा रही है, हम नहीं जानते।

चला जा हे वर्णी! चला जा, शरीरके बन्धनको तुड़ाकर चला जा, सर्व ससर्गोंको तिलाञ्जलि देकर चला जा, परन्तु हार्दिक बन्धनको तुड़ाकर जावे तो तब जानें।

हे महा पथिक! शत-शत प्रणाम, शत-शत प्रणाम। ●



समाधि संस्तर पर आरूढ़ पूज्य वर्णी जी

एक बार फिर आना होगा

•

बाढ़ आँसुओकी आई है, बान्ध धैर्यका टूट चुका।
अहमिन्द्रोका भाग्य जगा है, किन्तु हमारा फूट चुका।

(१)

मर्त्यलोकमें धर्मराज्यके, झडे अपने आप झुके।
स्वर्गलोकमें वर्णी अभिनन्दनके, झण्डे फहर चुके॥
मर्त्यलोकमे धर्मपिताकी, देह चिता पर जलती है।
स्वर्गलोकमे अमर आत्मा, वर्णीजीकी पलती है॥
मर्त्यलोकमे हाहाकारोकी, छाई घनघोर घटा।
स्वर्गलोकमे छिटक रही है, वर्णीजीकी दिव्य छटा॥

(२)

किन्तु नही है स्वर्गलोकमे, मोक्षधाम सम्मेदशिखर।
जैसा है वह मर्त्यलोकमे, उसकी पावन धरती पर॥
पार्श्वनाथकी चरण वन्दना, कैसे वहाँ करेंगे आप?
णमोकारकी या सोऽहम्‌की, कैसे वहाँ करेंगे जाप?
वहाँ नही बुन्देलखण्ड है, नही चिरोंजा बाई जी।
वहाँ नही विद्यालय कोई, होती नही पढ़ाई भी॥

(३)

वहाँ न 'भैया' बोला जाता,[1] वहाँ नही मुनि हो सकते ।
बीज भव्यताका तुम हममे, नही वहाँसे बो सकते ॥
फिर कैसे अपने स्वभावमे, सहज रूपसे ठहरोगे ?
तो क्या सचमुच एक बार फिर, नर भव धारण कर लोगे ?
स्वर्गलोकमे मिला न करता, मोक्ष नगरका टिकट प्रभो ।
मर्त्यलोकका बुकिंग खुला है, मोक्ष यहाँसे निकट प्रभो ॥

फूलचन्द पुष्पेन्दु—खुरई

१ वर्णीजी सबको भैया भैया कहकर बोलते थे ।

४

सुधार आन्दोलन

धर्मान्ध रूढियोंका तथा जातिगत घृणाका बहिष्कार करके बहिष्कृतोंको तथा शूद्रों तकको गलेसे लगाया। समाजोपयोगी व्रत परिग्रह-परिमाण तथा स्त्रीशिक्षा आदि विषयक उपदेशोंके द्वारा समाज व देशकी समस्याओंको हल करनेका उपाय सुझाया

१–रूढ़ि निरसन

•

१. पूज्य पर्वतोंपर निवास न करने विषयक

(१) श्री गिरनारजीकी यात्राके अवसर पर पर्वतके ऊपर श्वेताम्बर मन्दिरमे गए। यात्रियोंके लिये इस मन्दिरमें सब प्रकारकी सुविधा है। भोजनादिका उत्तम प्रबन्ध है। यदि कोई वास्तविक विरक्त हो और यहाँ रहकर धर्म साधनको इच्छा रखता हो तो इस मन्दिरमें बाह्य साधनोंकी सुलभता है। दिगम्बरोका मन्दिर रमणीक है, और श्री नेमिनाथकी मूर्ति भी अत्यन्त मनोज्ञ है, परन्तु यदि कोई यहाँ रहकर धर्म साधन करना चाहे तो कुछ भी प्रबन्ध नहीं; क्योंकि यहाँ तो पर्वतके ऊपर रहना महान् अविनयका कारण समझते है।

क्या कहे लोगोंने धर्मका रहस्य बाह्य कारणों पर मान रक्खा है, और इसी पर बल देते है। पर वास्तविक बात यह है कि जहाँ बाह्य पदार्थोंकी मुख्यताका आश्रय लिया जाता है, वहाँ अन्तरंग धर्मकी उद्भूति नही होती। निमित्त कारणोंकी विनय उतनी ही योग्य है जो अभ्यन्तर मे सहायक हो। जैसे कि द्रव्यागमकी हम विनय इस लिये करते है कि उससे हमको अर्थागम और ज्ञानगमकी प्राप्ति होती है। केवल पुस्तककी विनय करनेसे तो उनका लाभ न होगा। पर्वत परम पूज्य है, परन्तु क्या इसका यह अर्थ है कि पर्वत पर जाना ही नही चाहिये ? जहाँ पद तलोंका सम्बन्ध होगा वहाँ यदि अविनय मान ली जावे तो यात्रा ही

निषिद्ध हो जावेगी। इसी प्रकार पर्वतों पर रहनेसे जो शारीरिक क्रियायें आहार निहारकी है वे तो करनी ही पड़ेगी। वहाँ रहकर मानसिक परिणामोकी निर्मलता करनी चाहिये।

२. शास्त्र प्रकाशनके निषेध विषयक

श्रुत-पञ्चमीके दिन हम लोग शास्त्रोंकी सम्भाल करते है। पर झाड पोछकर या धूप दिखाकर अलमारीमे रख देना ही उनकी सम्भाल नही है। आज जैन मन्दिरोंमे लाखोकी सम्पत्ति रुकी पडी है। जिसका कोई उपयोग नही। यदि एक एक मन्दिर एक एक ग्रन्थके प्रकाशनका भार उठा ले तो समस्त उपलब्ध शास्त्र एक वर्षमे प्रकाशित हो जावे। यदि आपकी अरहन्त देवमे भक्ति है, तो उनकी वाणीरूप जो शास्त्र हैं उनमे भी भक्ति होनी चाहिये। और उनकी भक्तिका रूप यही हो कि वे अच्छेसे अच्छे रूपमे प्रकाशित हो और ससारके सामने लाये जावे।

शास्त्र सग्रह करनेकी प्रवृत्ति आप लोगोंमे क्यों नही जागृत होती ? एक एक महिलाकी पेटीमे २०-२५ साड़ियाँ निकलेगी। पुरुष-वर्ग भी अपनी शान शौकतका नाना सामान एकत्रित करता है। पर मैने देखा कि अच्छे-अच्छे लखपतियोंके घरमे दस-बीस रुपयेके भी शास्त्र नही निकलते। जहाँ सालमे हजारो खर्च करते है वहाँ सौ पचास खर्च करना कठिन नही। गृहस्थ लोग शास्त्र खरीदकर संग्रह करने लगे तो छापनेवाले आप सामने आ जावे।

३. कृषि उद्योगके निषेध विषयक

वैश्य जाति स्वभावमे भीरू है। ये द्रव्य उपार्जन करना जानते है, परन्तु अन्य गुणोसे भयभीत रहते हैं। व्यापार इनकी आयका साधारण निमित्त है। कृषि करनेको हेय मानते है। यद्यपि वैश्यका कृषि-कर्म आगम-विहित है, परन्तु उसे हिंसाका कार्य बताकर दयाका पालन करते है। परन्तु ऐसे ऐसे व्यापार करेगे। जिनमें हजारो मन चर्बीका उपयोग होता है। उससे नही डरते। अस्तु संसार स्वार्थी है। ●

२–विवाह प्रथा सुधार

•

१. दहेज प्रथा निषेध

समयकी बलवत्ता देखो कि लोग लडकी वालेसे ठहराव कर रुपया माँगने लगे है। लोभको कितनी सीमा बढ़ गई है ?

२. बाल विवाह निषेध

माँ बाप आत्मीय बालकोंकी उन्नतिके शत्रु बनते है। उनके पढानेमें एक पैसा व्यय करना पाप समझते है। भाग्यसे स्कूल हुआ तो बालक किसी तरह चार क्लास तक हिन्दी पढ लेते है, बारह वर्षमें गृहस्थ बन जाते हे, छोटी सी बहू घरमे आ जाती है। सासू आनन्दमे डूब जाती है।

पश्चात् जब बाल-विवाहके दोषसे वह कमजोर हो जाती है, और काम काजमे आलस्य करती है, तब वही सास उसे नाना अवाच्योसे कसती है, नाना मारती है और शारीरिक वेदना देती है। फल यहाँ तक देखा गया है कि कई अबलाये वेदना और वचनोंकी यातना न सह सकने के कारण कूपमे डूबकर मर जाती है। इन रूढियोंका मूल कारण स्त्री-समाजमे योग्य शिक्षाको न्यूनता है।

३. विधवा विवाह निषेध

बनारससे मुझे तार मिला कि महाराजपुरमे परवार सभाका अधि-

वेशन है, जिसमें ब्र० शीतल प्रसादजी विधवा विवाहका प्रस्ताव रखने वाले हैं। मै वहाँ गया और ब्रह्मचारीजीको बहुत समझाया कि आपने यह कार्य हाथमें लेकर जैन समाजको अधःपतनकी ओर ले जानेका प्रयास किया है, क्योंकि लोगोके हृदयमें आप जिस पापकी प्रवृत्ति करना चाहते हैं, अभी उसकी वासना तक नही है। ब्रह्मचारीजी बोले—'तुमने देश कालपर ध्यान नही दिया। आदमी ७० वर्ष की अवस्थामें भी विवाह करनेसे नहीं चूकते। ऐसे ऐसे मूढ़ लोग भी है जो धनके लालचसे कन्या को उन बुड्ढोंके हाथ बेच देते है। बेचारी विधवाकी जो दशा हो जाती है, वह समाजसे छिपी नही है। अनेक विधवायें गर्भपात करती है, और अनेक विधर्मियोके घर चली आती है। एतदपेक्षा यदि विधवाका विवाह कर दिया जावे तो कौन सी हानि है। मैने कहा कि 'मै शास्त्रार्थ करना उचित नही समझता। इसका पक्ष लेना केवल पापका पोषक होगा। आशा है कि आप इस दुराग्रहको छोड़ आर्ष वाक्योंकी अवहेलना न करेंगे। आर्षमें कन्यादानको ही विवाहका लक्षण कहा है। परन्तु ब्रह्मचारीजी नही माने।

यद्यपि विधवा विवाहके पोषक बहुतसे सज्जन आ गये थे, परन्तु साधारण जनतामें उसकी चर्चाका प्रभाव विरुद्ध रूपमे पड़ा। रातको सब्जैक्ट कमैटीकी बैठक होने वाली थी। मेरा भी नाम उसमें था पर मे नही गया। सभापति महोदयने बैठक स्थगित कर दी। दूसरे दिन स्वागताध्यक्षका प्रारम्भिक भाषण होने वाला था। परन्तु सभाके न होने से उसका भाषण भी रह गया।

मध्याह्नके समय विधवा विवाह पोषक व्याख्यान हुये। मनुष्योंका जमाव भी पुष्कल होता रहा। रात्रिके समय श्री पं० मुन्नालालजी, प० मौजी लालजी व लोकमणि दाऊके 'विधवा विवाह आगमानुकूल नही' इस विषय पर सार-गर्भित व्याख्यान हुए। दूसरे दिन आम सभा हुई। जनताकी सम्मति विधवा-विवाहके निषेध पक्षमें थी। प्रस्ताव आता तो लडाई होनेकी सम्भावना थी। केवल ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजीका विधि पक्षमें व्याख्यान हुआ। जनताको व्याख्यान सुनकर बहुत दुःख हुआ। रात्रिको सात बजे लोगोंने ब्रह्मचारीजीको बहिष्कृत करनेका प्रस्ताव पास कर डाला।

यहाँसे चलकर हम सागर आ गये। यहाँ पर ब्रह्मचारीजीका विधवा

विवाह पोषक व्याख्यान एक बङ्गाली वकीलके सभापतित्वमें हुआ। हम लोग भी उसमें गये, परन्तु सभापतिने बोलनेका अवसर न दिया। ब्रह्मचारीजीने एक विवाह भी कराया।

इसके बाद सागरमें एक सभा हुई, जिसमे यह तय हुआ कि जो विधवा विवाहमें भाग ले उसके साथ सम्पर्क न रक्खा जावे। यहाँसे हम जबलपुर गये। वहाँ हनुमानतालपर सभा हुई। उसमें भी यही निश्चय हुआ कि परवार सभामें जो विधवा विवाहकी चर्चा हुई वह सर्वथा हमारे कुलके विरुद्ध है, तथा धर्मशास्त्रके प्रतिकूल है।

४. स्त्रियोंको बारातमें जानेका निषेध

एक बार हम और कमलापति सेठ बरायठामें परस्पर बातचीत कर रहे थे, कि क्या कोई उपाय है कि हमारे यहाँ (बुन्देलखण्डमें) विवाहमें स्त्रियोंका जाना बन्द हो जाये, क्योंकि वहाँ अनेक प्रकारके भण्डवचन उनके श्रीमुखसे निकते है। रात्रिको शास्त्र प्रवचनके बाद इसकी चर्चा छेडी, और फलस्वरूप बहुत कुछ विवादके बाद सबने विवाहमे स्त्री समाजका न जाना स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन हम दोनो निमटोरिया आये। इस ग्राममें भी यह निश्चय हो गया कि हमलोग विवाहमें स्त्री समुदाय न ले जावेंगे। ●

३–जाति भेद निवारण

•

१. जाति भेद धर्म विरुद्ध है

द्रोणगिरिके अधिकतर लोग जैन धर्मके श्रद्धालू है, परन्तु लोग उन्हे अपनाते नही हैं। न जाने लोगोने जैनधर्मको क्या समझ रखा है। जैसे सूर्यका विकास किसी जातिकी अपेक्षा प्रकाश नही करता, एवं धर्म किसी जाति विशेषकी पैतृक सम्पत्ति नही। जो भी आत्मा विपरीत अभिप्रायकी मलिनतासे कलङ्कित न हो उसी आत्मामे इस धर्मकी उत्पत्ति हो जाती है। हम लोगोने जैनधर्मकी व्यापकताका घात कर रक्खा है।

२. बहिष्करण-बहिष्कार

(१) प० मोतीलालजी वर्णीके साथ उनके ग्राम जनारा पहुँचे। यहाँ पर एक जैनी ऐसे थे जो २५ वर्षसे जैन समाजके द्वारा बहिष्कृत थे। उन्होने एक गुहाई औरत रख ली थी। उसके एक कन्या हुई। उसका विवाह उन्होने विनैकावालके यहाँ कर दिया था। मन्दिरमे दूरसे भी देव दर्शन करनेकी उन्हे आज्ञा न थी। तब भी अष्ट मूल-गुण पालते थे। अनछना पानी नही पीते थे। रात्रिको भोजन नही करते थे। किसी कुदेवको नही मानते थे।

मैने घर-घर जाकर सम्पूर्ण पञ्च महाशयोको बुलाया। उसके द्वारा

१०००) लागतकी संगमरकी वेदी मन्दिरमें जडवानेकी आज्ञा ली। उसीके द्रव्यसे उसकी प्रतिष्ठा हुई। फिर कहने व समझानेसे उन लोगोंके परिणामोमे न जाने कहाँसे निर्मलता आ गई कि सबने उसे श्री जिनेन्द्रदेवके दर्शनकी आज्ञा प्रदान कर दी। और कुछ वाद विवादके पश्चात् यह भी निर्णय हो गया कि दो पंगत पक्की और एक पगत कच्ची रसोईकी देवे, और २५०) पपौरा विद्यालयको और २५०) जतारा मन्दिरको देवे तो जातिमें मिला लिया जावे।

उसने सानन्द पक्ति भोज कराया। ५००) दण्डके दिये और पञ्चोकी चरणरज शिरपर लगाई, सहस्त्रो धन्यवाद दिये, और सहस्त्रोंकी सम्पत्ति जो उसके पास थी एक जैनीका बालक गोद लेकर उसके सपुर्द कर दी।

(२) नीमटोरियासे तीन मील दूर हलवानी ग्राम है, यहाँ पर एक प्रतिष्ठित जैनी श्री रघुनाथ मोदी रहता था। उसे लोग विवाहमे नही बुलाते थे। उसकी भी पञ्चायत की। किसी एक व्यक्तिको एकान्तमे बुलाकर पूछा कि इसका क्या दोष है, तो उसने बताया कि "इसके लडकेकी औरत अत्यन्त सुन्दरी है, बस यही इसका अपराध है। क्योंकि, जब वह मन्दिरमे कुयें पर या अन्य कही जाती है, तो उसके पैरोंकी आहट सुनकर लोग उसके मुखकी ओर ताकने लगते है।" मैंने पूछा कि क्या कभी उसने किसी पर-पुरुषके साथ अनाचार भी किया है, तो उसने उत्तर दिया कि 'सो तो सुननेमे नही आया।'

पञ्चोके समक्ष मैंने उनकी अविवेकता पर आध घण्टा व्याख्यान दिया। तथा सेठजीसे कहा कि हम ऐसे पञ्चोके साथ सम्भाषण करना महान पाप समझते है। इस ग्राममे मै पानी न पीऊगा, तथा ऐसे विवाह आदि कार्योमे जो भोजन करेगा वह महान् पातकी होगा। सुनते ही जितने नवयुवक थे सबने विवाहकी पगत मे जानेसे इन्कार कर दिया और जो पगतमे पहुँच चुके थे वे सब पत्तरीसे उठने लगे।

लडकी वाला दौड़ा आया और बड़ी नम्रतासे कहने लगा—'मैने कौनसा अपराध किया है? मै उसे बुलानेको तैयार हूँ।' पञ्च लोगोंने अपने अपराधका प्रायश्चित किया, और वे पक्ति भोजनमें सम्मिलित हुए। साथ ही एक प्रस्ताव यह भी पास हो गया कि जो आदमी दोषका प्रायश्चित् लेकर शुद्ध हो जावेगा, उसे विवाह आदि कार्योंके समय बुलानेमे बाधा न होगी।

(३) एक बार हम लोग (मैं और सेठ कमलापति) सागरसे हरदीके पंचकल्याणकमें गए। यहाँ पर रथोत्सवमें श्री रघुनाथजी मोदी बड़गाँव वाले आए थे। ये जातिके गोलालार थे। जहाँ ये रहते थे। वहाँ २०० गोलालारे और थे। इन लोगोंका गोलारोंमे ५० वर्षसे सम्पर्क छुटा हुआ था। गोलालारे न तो इन्हे अपनी कन्या देते थे, और न ही इनकी कन्या लेते थे। ये लोग परस्परमें ही अपना निर्वाह करते थे।

शास्त्र-प्रवचनके बाद सागर दमोह शाहपुर आदि प्रान्त भरके समग्र पंचोके समक्ष रघुनाथ मोदीने अपनी दुर्दशाका चित्र रक्खा जो बहुत ही करुणोत्पादक था। उन्होंने कहा कि हम लोगोंका तो कोई अपराध नही, जो भी कुछ हो पूर्वजोंका है। हम बराबर देव दर्शन, स्वाध्याय, तीर्थयात्रा भोजन-शुद्धि, रात्रि-भोजन-त्याग, अनगलित जलका त्याग आदि करते आ रहे है। एक लडके की शादी पचबिसे गोलाकारकी कन्यासे अवश्य हो गई और इसी प्रकार एक लडकी परवारको दे दी। सो यह भी कार्य हम लोगोकी सख्या बहुत अल्प रह जानेके कारण करना पडा। हम लोगोके घर मुश्किलसे २५ या तीस होगे। या तो निर्णयकर हमें जातिमें सम्मिलित कीजिये, या आज्ञा दीजिये कि हम स्वेच्छाचारी होकर जहाँ तहाँ विचरे। अन्तमे आपकी ही क्षति होगी। पहले चौरासी जातिके वैश्य जैन थे पर अब आधे भी देखनेमे नही आते। आप शारीरिक अथवा आर्थिक जो भी दण्ड देवेंगे उसे हम सहन करेंगे। इतना कहते कहते उनका गला रुन्ध गया और आखोंसे अश्रु छलक पडे।

थोड़ी देर बाद मुख्य मुख्य पञ्चोने एकान्तमें परामर्श किया। इनसे १०,०००) कुण्डलपुर क्षेत्रको और तीन पगत प्रान्त भरके पञ्चोको लेना चाहिये, यह निर्णय कर पञ्च लोगोंने आम जनताके समक्ष अपना मन्तव्य प्रकाशित कर दिया। एक वृद्ध पञ्चने अन्य पञ्च महाशयोसे कहा—'आपने जो निर्णय किया है वह ठीक है, परन्तु यह पञ्चायत गोलालारे पञ्चोंके समक्ष होनी चाहिये, अन्यथा उनके १०,०००) भी जावेंगे और जातिमे भी न मिल सकेंगे।

मैने उन सबको समझाया कि बुड्ढे पञ्चने जो कहा है, वह बिल्कुल ठीक है। आठ दिन बाद हम तुम्हारे ग्राममें आकर इस बातकी

मीमांसा करेंगे। पञ्चकल्याणक 'देखकर वे अपने घर चले गए और मै कुण्डलपुर चला गया।

(इन्दौर उदासीन आश्रमके संस्थापक तथा मुझे सप्तम प्रतिमाके व्रत देने वाले) बाबा गोकुलचन्दजीको साथ लेकर मै बड़गाँव पहुँच गया। सागरसे पं मूलचन्द, कटनीसे पं बाबूलाल, रीठीसे श्री सिंघई लक्ष्मणदासजी आदि बहुतसे सज्जन-गण भी आ पहुँचे। सिंघई प्यारेलाल व कुन्दनलालजी वहाँ पर थे ही। रघुनाथ नारायणदास मोदीसे हमने कहा कि सायंकाल पञ्चायत बुलानेका आयोजन करो। उन्होंने वैसा किया।

उस प्रान्तके मुख्य पञ्च बोले कि आप लोग हम लोगों को भ्रष्ट करनेके लिये आये हैं। जिन कुटुम्बोंको आप मिलाना चाहते हैं, उनकी जाति का पता नही। इसके अनन्तर सब पंचों में कानाफूसी होने लगी। तथा कई पञ्च उठने लगे। मैने कहा—महानुभावों! ऐसी उतावल करना उत्तम नहीं, निर्णय कीजिये। इसके बाद मैने उन्हीमे से एक ८० वर्ष के बुड्ढेसे कहा कि बाबा! आपकी आयु ८० वर्षकी है और यह घटना ५० वर्षकी है। अतः आपको तो सब कुछ पता होगा। कृपाकर कहिये कि क्या बात है।

उसने बताया—"५० वर्ष पहलेकी बात है। रघुनाथके पिताने एक बार जाति भोज्य किया था। वहाँ उन्होंने पञ्च लोगोंमे यह भावना प्रगट की कि यहाँ यदि मन्दिर बन जावे तो अच्छा है। सबने स्वीकार किया। चन्दा लिखना आरम्भ हुआ। एक ग्रामीण मनुष्यने चन्दा नही लिखाया। उसपर इनके पिता बोले—'खानेको तो शूर है पर चन्दा देनेमें आनाकानी'। इस पर पञ्चलोग कुपित होकर उठने लगे। जैसे तैसे अन्तमें यह पञ्चायत हुई कि क्योंकि रघुनाथके पिताने एक गरीब की तौहीन की, अत दो सौ रुपया मन्दिर को और एक पक्का भोजन पञ्चोको देवे, नही तो जातिमें इन्हे न बुलाया जावे। ये अपनी अकडमें आ गए और न दण्ड दिया न पंगत ही। पनागर, जो कि जबलपुरके पास है, वहाँ पर प्रतिष्ठा थी। वहाँ भी इन्होने पञ्चोसे कहा। पञ्चायतने आज्ञा दी कि २००) के स्थान में ५००) दण्ड और १ पंगतके स्थान में २ पगत पक्की हों, यही तुम्हारा दण्ड है। इन्होंने स्वीकार किया। वहाँ तो कह आए, पर आकर धनके नशामें मस्त हो गए,

और पंगत तथा दण्ड कुछ भी नहीं दिया। उनका पुत्र यह रघुनाथदास नारायणदास मोदी है, वह भद्र प्रकृति है, कई ग्रामका जमींदार होकर भी दौड़ धूप द्वारा इन सब लोगों को जातिमें मिलाने की चेष्टा कर रहा है।

सबके लिये वृद्ध बाबाकी कथामें सत्यताका परिचय हुआ। परन्तु प्यारेलाल सिंघई टससे मस नहीं हुए। यहाँ पर एक गोलालारे बैठे थे। उन्होंने कहा कि मै जल-विहार करता हूँ, उसमे प्रान्त भरके सब गोलालारे बुलाये जावें। परन्तु वह बहुत गरीब था। मैंने रघुनाथ मोदीसे कहा कि 'आप इसे ३००) दे देवें। तुम भी दो पंगतोंका कच्चा सामान तैयार रखना। सम्भव है तुम्हारी कामना सफल हो जावे।'

चार दिन बाद चिट्ठी आ गई कि अमुक दिन बडगाँवमें जल-विहार है। दो पगतें होंगी। आप लोग गोट सहित पधारें। इसमें रघुनाथ मोदीकी पञ्चायत भी होगी। खेद है कि हमें चिट्ठी एक दिन बादमें मिली जिसके कारण हम समयपर नहीं पहुच सके। जब हम पहुँचे तो जल-विहार समाप्त हो चुका था। उस समय विमान मण्डपमें जा रहा था। उस समय मेरे मनमें एक अनोखी सूझ उठी। मैंने गाने वाले से कहा कि 'तू पेटके दर्दका बहाना कर डेरे पर चला जा।' मैंने झट शास्त्र-प्रवचनका प्रबन्ध कर प० मूलचन्द्रजी को बिठा दिया। रघुनाथ मोदीको कह दिया कि कुटुम्ब सहित मण्डपके सामने खड़े हो जाओ। मेरे कहे अनुसार उसने बड़ी विनयके साथ प्रार्थना की, जिससे सब लोग रुक गए। सबने यह प्रतिज्ञा की कि रघुनाथ मोदीका निर्णय करके ही आज मण्डप त्यागेंगे।

पञ्चायत प्रारम्भ हो गयी। उस वृद्ध पञ्चकी बात सबने मान्य की। परन्तु प्यारेलाल सिंघईको वृद्ध का कहना रुचिकर न हुआ। वे उठकर घर चले गए। प० बाबूलालजी कटनी बोल उठे कि पहले पटिया बुलाया जाय और उसके द्वारा इनके गोलोकी परीक्षा की जाय। मड़िय गाँवसे पटिया बुलाया गया। उसने कण्ठस्थके साथ इनकी वंशावली बता दी। तब एक महाशय बोले कि सिंघई प्यारे लाल को बुलाया जावे।' मैं बड़ा चिन्तित हुआ कि हे भगवान्, क्या होने वाला है। अन्तमें जो व्यक्ति बुलानेके लिये भेजा गया उसके साथ मेरा परिचय

था। मेरे इशारे पर उसने झूठ मूठ आकर कह दिया कि प्यारे लाल सिंघईने यह कहा है कि 'हम ऐसी अन्यायकी पञ्चायतमे शामिल होना नही चाहते'। यह सुनकर पञ्च लोगोकी तेवरी बदल गई। और सब एक मुखमे कहने लगे कि 'प्यारेलालके साथ व्यवहार करना उचित नही।' मैने कहा 'आवेगमे आकर उसने कह दिया होगा माफ किया जावे। अथवा एक बार फिरसे बुलाया जावे। यदि इस बार न आवे तो आपको जो उचित मालूम हो करना।'

फिर आदमी भेजा गया। मैने बाहर जाकर उससे कह दिया कि जाकर सिघई जीसे बोलो—'यदि पञ्चोमे शामिल न होओगे तो जाति च्युत कर दिये जाओगे। प्यारेलालजी आ गए। पचोने कहा 'रघुनाथ मोदीके विषयमे आपकी क्या सम्मति है। उन्होने ने कहा कि पच-लोग जो फैसला देवेगे वह हमे शिरसा मान्य है। यदि पचलोग कल ही उनके यहा भोजन करनेके लिये प्रस्तुत हो तो मै भी आप लोगोमे सम्मिलित रहूँगा।

पचोने मिलकर यह फैसला कर दिया कि २५०) परवार सभाको, २५०) नेनागिरि क्षेत्रको, १००००) विद्यालय को, तथा दो पगत यदि रघुनाथ मोदी स्वीकार करे तो कल ही पंगत लेकर जातिमे मिला लिया जावे। उन्होने उसी समय ११००) लाकर पचोके समक्ष रख दिये। पंचोने मिलकर रघुनाथ मोदीको सब कुटुम्ब गले लगाया और आज्ञा दी कि प्रात काल ही सहभोज है। इस प्रकार ५० वर्षसे च्युत एक कुटुम्बका उद्धार हुआ।

३. अस्पृश्यता एक अन्याय

(१) राजगृहीमे पैदल ईसरी लौटते समय जब हजारीबाग आया तब ग्रामके बाहर चार मील पर रात्रि हो गई। सडक पर ठहरनेके लिये कोई स्थान नही था केवल एक धर्मशाला थी जो कि कलकत्तामे रहनेवाले एक मेहतर ने बनवाई थी। साथके लोगोने उसमें ठहरनेसे ऐतराज किया।

मैने कहा—भाईयो! धर्मशाला तो ईंट चूनाकी है। इसमें ठहरनेसे क्या हानि है? इतनी घृणा क्यों? आखिर वे भी तो मनुष्य हैं और उसने परोपकारकी दृष्टिसे बनवाई है। क्या उसको पुण्य बन्ध नहीं

होगा ? एक बोला—'यह हम कुछ नहीं जानते, किन्तु-लोक व्यवहार ऐसा नही है, कि भंगीकी धर्मशालामें ठहरा जाय।' मैंने कहा कि— किसी भंगीने चार आमके पेड़ मार्गमें लगवा दिये। हम लोग घामसे पीड़ित होते हुए उस मार्गसे निकलें, तो क्या हम उनकी छायाको त्याग देंगे ?'

हमारे साथके आदमी बोले—'वर्णीजी ! लोक-मर्यादाका लोप मत करो।' मैने कहा—'भैया ! लोक-मर्यादा क्या इसीको कहते हैं कि हम अस्पतालोंकी दवाइयाँ खावें जहाँ प्रत्येक कार्य करने वाले यही भंगी होते है, होटलोंमे खावें जहाँ कि उच्छिष्टका कोई विचार नहीं रहता ? इन सब कार्योंमें लोक-मर्यादा बनी रहती है, पर एक भंगोके पैसेसे बनी हुई धर्मशालामे ठहरनेसे लोक-मर्यादा नष्ट हो जाती है ? यानी यहाँ की पृथिवी ही अशुद्ध हो गई है ? बहुत कहाँ तक कहें उस धर्मशालामे ठहरना किसीने स्वीकार न किया।

(२) वि० सं० २००८ की सागर यात्राके मध्य कडेसरा ग्राम आये। यहाँ एक रामस्वरूप योगी अच्छे विद्वान् है। आप योगी है अत. ब्राह्मण लोग इनसे वह प्रेम नही रखते जो सजातीय ब्राह्मणसे रखते है। एक संस्कृत पाठशाला प्राइवेट चलाते है। उसमें कई हरिजनोको विशारद मध्यमा तक परीक्षा उत्तीर्ण करा चुके है। आपका यह सब काम उच्चवर्ण वालोको अप्रिय प्रतीत होता है। न जाने लोगोने इतनी सकीर्णता क्यो अपनाई है ? 'स्त्रीशूद्रोनाधीयेताम्', अर्थात् स्त्री और शूद्रको नही पढाना चाहिये। यह अन्याय नहीं तो क्या है।

अस्पृशताको चर्चा लोग करते है, पर जैनधर्म कब कहता है कि तुम अस्पृश्योंको नीच समझो।

आप लोग अपनी त्रुटिको नही देखते। जब तुम्हारे यहाँ पंक्ति भोजन होता है, तब अच्छा-अच्छा माल तो तुम उदरमें स्वाहा कर लेते हो, और उच्छिष्ट पानीसे सिंचित पत्तलें उनके हवाले करते हो। अच्छे-अच्छे फल तो आप खा गये और काने काने बचे सो इन बेचारोको सौप दिये। फिर इस पर कहते हो, हम आर्ष पद्धतिकी रक्षा करने वाले है।

जिस प्रकार आप उनका बहिष्कार करते हैं, यदि वे भी सर्व सम्मति कर आपके साथ कोई व्यवहार न करें तो आप क्या करेंगे ? धोबी यदि

वस्त्र प्रक्षालन छोड़ दे, चर्मकार मृत पशु न हटावे, वसौरिन सौरिका काम न करे, और भङ्गिन शौच गृह शुद्ध न करे तो संसारमे हाहाकार मच जावे। हाहाकारको तो कोई बात नही, हैजा, प्लेग, चेचक और क्षय जैसे अनेक भयकर रोगोंका आश्रय हो जावे। अतः बुद्धिसे काम लो।

आपका जो उपकार इन शूद्रोंसे होता है, वह अन्यसे नही होता। वे तुम्हारे उन कामोंको करते हैं, जिनको तुम घृणा करते हो, पर तुम उसका यह (उपरोक्त) प्रतीकार करते हो ?

[उन्हे अपवित्र या अस्पृश्य कहना कहाँका न्याय है] क्योंकि यहाँ यह प्रश्न होता है कि आखिर वे अस्पृश्य क्यो है ? ये मदिरापान करनेसे अस्पृश्य है, या हम लोगोंके द्वाराकी हुई गन्दगीको स्वच्छ करनेसे अस्पृश्य है, या शरीरसे मलिन रहनेसे अस्पृश्य है, या परम्परासे हम उन्हे अस्पृश्य मानते आ रहे हैं इसलिये अस्पृश्य है ?

यदि मदिरापानसे अस्पृश्य हैं तो लोकमे बहुतसे उच्च कुलीन आदि भी मदिरापान आदि करते है, उन्हे भी अस्पृश्य होना चाहिये। यदि गन्दगीको स्वच्छ करनेसे अस्पृश्य है, तो प्रत्येक मनुष्य (शौचादि क्रियाके रूपमे) गन्दगी साफ करता है, वह भी अस्पृश्य हो जायेगा। यदि शरीरकी मलिनता अस्पृशताका कारण है, तो बहुतसे उत्तम कुल वाले भी शरीरकी मलिनतासे अस्पृश्य हो जावेंगे। यदि मलिन आचार की बहुलता उनकी अस्पृशतामे साधक है, तो यह बहुतसे उत्तम कुलोमें भी पाई जाती है। बिरले बिरले उत्तम कुलवाले तो इतना पापाचार करते है, जितना नीच कुलवाले भी नही कर सकते।

[वर्ण व्यवस्थाके कारण भी आप उन्हे नीच गोत्री नही कह सकते] क्योकि शास्त्रके अनुसार भगवान आदिनाथके समयमे तीन वर्ण थे। भरतने ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की। इससे यह सिद्ध हुआ कि इन तीन वर्णोंसे ही ब्राह्मण हुए। मूलमे तीन वर्ण कहाँसे आए ? विशेष ऊहा-पोहसे न तो आप ही अपनेको वैश्य सिद्ध कर सकते है और न मै ही।

(३) फीरोजाबाद माघ शु० १३ सं० २००७ श्री काका कालेलकर जीको अध्यक्षतामे हीरक जयन्ती समारोह हुआ। हरिजन समस्या पर बोलते हुए आपने कहा कि स्पर्शका रोग जैनधर्मका नही, हिन्दूधर्ममे से आया है। यदि जैनियोंकी ऐसी ही प्रवृत्ति रही तो मुझे कहना पड़ेगा

कि आप लोग नामसे नही किन्तु परिणामसे हिन्दू बन जावेंगे। जैन धर्म अत्यन्त विशाल है। जहाँ सभी पंचेन्द्रिय संज्ञी-जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकते हैं। धर्म किसी जाति विशेषका नही। चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे वैश्य हो और चाहे शूद्र हो, शूद्रमे भी चाहे चाण्डाल हो, चाहे भगी हो, सम्यग्दर्शनके होते ही, यह जिस किसी भी जातिका हो पुण्यात्मा जोव कहलाता है। अत किसीको हीन मानना सर्वथा अनुचित है।

४. हरिजन मन्दिर प्रवेशकी आगमानुकूलता

(१) देहलीमे चातुर्मास था, उस समय समाजमे हरिजन मन्दिर प्रवेश आन्दोलन जोर पकड रहा था। बम्बई प्रान्त सरकारने एक कानून ऐसा बनाया कि जिससे अस्पृश्य लोग भी मन्दिरोंमे जानेसे न रोके जायें। लोगोमे दो पक्ष थे कुछ लोग तो यह कहने लगे कि हरिजनोको मन्दिर प्रवेशकी आज्ञा मिलनेसे धर्म विरुद्ध काम हो जायेगा, और कुछ लोगोका यह कहना रहा कि यदि हरिजन शुद्ध और स्वच्छ होकर धार्मिक भावनासे मन्दिर आना चाहते है तो उन्हे बाधा नही होना चाहिये।

इस चर्चाको लेकर एक दिन मैने कह दिया कि हरिजन संज्ञी-पचेन्द्रिय-पर्याप्त-मनुष्य है। यदि कदाचित् काललब्धि वश उन्हे सम्यग्दर्शन या व्रतकी प्राप्ति हो जावे, तब भी क्या वे भगवानके दर्शनसे वञ्चित रहे जावेगे ?

मेरे इस वक्तव्यको लेकर समाचार पत्रोंमे लेख प्रति लेख लिखे गए। अनेकोको हमारा वक्तव्य पसन्द आया, और अनेकोकी समालोचनाका पात्र हुआ। पर अपने हृदयका अभिप्राय मैने प्रगट कर दिया। सम्यग्दर्शनके होनेमे वर्ण और जाति-विशेषकी आवश्यकता नही। यथार्थमे जो प्रतिमा है वह केवल स्थापना है। [जिसकी वह स्थापना है] उस देव पर किसी जाति-विशेषका अधिकार नही। यदि श्रद्धा हो तो प्रत्येक मनुष्य उसकी आराधना कर सकता है। केवल उच्चगोत्र वाले ही उसके आराधक हो सकते है, यह नियम नही। जैसे आपको श्री तीर्थंकर देवकी मूर्ति बनानेका अधिकार है वैसे यदि अन्य भी बनावें और पूजे तो आप रोकने वाले कौन ?

देखो विचारो, जो मनुष्य संज्ञी है, यदि उसे संसारसे अरुचि हो तथा धर्म साधन करनेकी उसकी भावना जागृत हो तो उसे कोई मार्ग भी तो होना चाहिये। मन्दिर एक आलम्बन है। उससे तो वञ्चित रहा। आप स्वयं उससे बोलना नही चाहते। वाङ्मय आगम है उसे पढनेका अधिकार नहीं, अतः स्वाध्याय नही कर सकता। आप सुनाना नही चाहते। तब वह तत्त्वज्ञानसे वञ्चित रहेगा। तत्त्वज्ञानके बिना सयमका पात्र कैसे होगा, और सयमके बिना आत्माका कल्याण कैसे कर सकेगा? इस तरह आपने भगवानका जो सार्वधर्म है, उसकी अवहेलना की।

आपको यदि धर्मका रहस्य मिला है, तो पक्षपातको तिलाञ्जलि दो, और उस धर्मका विकास करो। अन्यथा उसका लोप करोगे तो तुम स्वयं ऐसे कर्मचक्रमे आओगे और अनन्त काल तक भव भ्रमणके पात्र होओगे। अत जाति-अभिमानका परित्याग कर प्राणीमात्र पर दया करो। जिनके आचार मलिन है, उन्हे सदाचारकी शिक्षा दो। वे भी तो मनुष्य हैं।

इस प्रकार हमने अपना भाव प्रकट कर दिया। अभिप्रायके विरुद्ध बात कहना और करना दम्भ है। यह लिखकर मै निर्द्वन्द हो गया।

भादो सुदी पूर्णिमाके दिन दिल्लीसे निकलने वाले हिन्दुस्तान दैनिक पत्रम यह लेख छपा हुआ दृष्टिगोचर हुआ कि वर्णी गणेशप्रसाद शूद्र-लोगोंके मन्दिर प्रवेशके पक्षमें है इत्यादि।

(२) श्रीमान आचार्य शान्ति सागरजी महाराज वर्तमान कालमे अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति है। आपने हरिजन-मन्दिर-प्रवेश-बिलके कारण आजीवन अन्न त्याग दिया। इससे सम्पूर्ण समाज बहुत खिन्न है, और होना ही चाहिये।

मने इस अवसर पर महाराजसे निम्नाङ्कि निवेदन किया कि महाराज! जब मनुष्य और तिर्यञ्च गतिमे जन्म लेने वाले पञ्चम गुणस्थान वर्ती भी होते है, तब क्या हरिजन इस गुणस्थानके पात्र नही हो सकते? यह तो करणानुयोगकी कथा रही, परन्तु व्यवहारमे चरणानुयोगके अनुसार मनुष्य पर्यायमें जिसे देव गुरु और शास्त्रकी श्रद्धा हो, उसे सम्यग्दृष्टि कहते है। जब यह व्यवस्था है, तब हरिजन भी देवदर्शनके अधिकारी क्यो नही हो सकते, क्योकि वे भी सम्यग्दर्शनके पात्र हैं? और यदि ऐसा है तो हरिजन-मन्दिर-प्रवेश-बिल पर आपत्ति क्यों?

शूद्र भी सदाचारका पात्र है। हाँ यह अन्य बात है, कि आप लोगोंके द्वारा जो मन्दिर निर्माण किये गये हैं उनमें मत आने दो, गवर्नमेण्ट भी ऐसा कानून आपके अनुकूल बना देवे, परन्तु जो सिद्ध क्षेत्र हैं, कोई आपको अधिकार नही जो उन्हें वहाँ जाने पर रोक लगा सको। जो आपके मन्दिरमें शास्त्र हैं, उन्हें न बाँचने दो, किन्तु जो पब्लिक वाचनालय हैं उनमें आप उन्हे नहीं मना कर सकते। यदि वे श्रद्धालु जहाँ पर आप तत्त्वोपदेश कर रहे हैं, आकर उपदेशको श्रवण करें, तथा आपकी वन्दना करें तो क्या नही आने देंगे ? अतः यह सिद्ध होता है कि हरिजन भी देवदर्शनके पात्र हो सकते है।

'हरिजनोंमें उत्पत्ति होनेसे अथवा निन्द्य कार्य करनेसे वे सम्यग्दर्शनके पात्र नही हैं,' यह कोई नियामक कारण नही। क्योंकि उच्चगोत्रवाले भी प्रात· काल शौचादि करते है। यदि कहो कि उनके कार्यमे हिंसा बहुत होती है, तो मिल वालोके जो हिंसा होती है—हजारो मन चमड़ा और चर्बीका उपयोग होता है, तदपेक्षा तो उनकी हिंसा अल्प ही है। अत· इस कारणसे भी उन्हे सम्यग्दर्शनके अपात्र कहना उचित नही है।

यदि यह कहा जाय कि भोजनादिकी अशुद्धताके कारण वे देवदर्शनके पात्र नही है, तो प्राय इस समय बहुत ही कम मनुष्य एेसे मिलेंगे जो शुद्ध भोजन करते है। अत यह निर्णय समुचित प्रतीत होता है, कि जो मनुष्य धर्मकी श्रद्धा रखता हो वह भी जिनदेवके दर्शनका पात्र हो सकता है। यह ठीक है कि उसके व्यवहारमे शुद्ध वस्त्रादि होने चाहिये तथा मद्य मांस मधुका त्यागी होना चाहिये। व्यवहार धर्मकी यह बात है। निश्चय धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है। उसका यहाँ पर विवाद ही नही है, क्योंकि उसके पालनमें प्रत्येक सञ्ज्ञी जीव पात्र हो सकते है।

इसके सिवाय जब उनके वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन हो सकता है, और वे सप्तम नरकमे जानेका पापोपार्जन कर सकते है, तब उत्तम पुण्य उपार्जन करलें, इसमे क्या क्षति है ? यह पक्ष तन्दुल मत्स्यके दृष्टान्तसे बाधित नही होता है, क्योंकि मनुष्य पर्याय तिर्यच पर्यायसे भिन्न है।

जैसे आप पच-पाप त्यागकर व्रती बनते हो, यदि वह भी पञ्च-पाप त्यागें तो इसका कौन विरोध कर सकता है। [अनेक ऐसे उदाहरण आगे प्रस्तुत किये गए हैं कि यदि उनके साथ मानवीयताका व्यवहार किया जाय तो ये लोग भी बड़े-बडे व्रत धारण कर लेते हैं]

यदि शान्त भावसे विचार करो तो पता लगेगा कि उन्हें मन्दिर प्रवेशकी आज्ञा देनेसे हानि नही लाभ ही होगा। प्रथम तो जो हिंसादि पाप ससारमें होते हैं, यदि अस्पृश्य शूद्र जैनधर्मको अङ्गीकार करेंगे, तो वे महापाप अनायास कम हो जायेंगे।

समाचार पत्रोंमें वहुत विवाद चला। पदार्थका स्वरूप जैसा है, वैसा है। लोग अपनी-अपनी कषायसे प्रेरित हो उसे विवादकी भूमि बनाकर दु खी होते हैं।

५. सत्यकी निर्भीक गर्जना

यद्यपि मैं न हरिजन प्रवेशका पक्षपाती हूँ और न विरोधी। हा आत्माने यह साक्षी अवश्य दी कि जो मनमें हो सो वचनोसे कहो अन्यथा धर्म का मर्म नही समझा।

आसौज सुदी ८ का दिन था। दरयागञ्ज (दिल्ली) में एक प्रतिष्ठित व्यक्तिने सुनाया कि आ० शान्ति सागरजीने कहा है कि यदि वर्णीका मत हमारे मन्तव्यानुकूल नही, तब वे इसमें मौन धारण करें। यदि कुछ बोलेंगे तो उनके हकमें अच्छा न होगा। अर्थात् उनको दिगम्बर जैन मतानुयायी अपने साम्प्रादायिक बलसे पृथक कर देंगे, अथवा दिगम्बर जैन उन्हे आदरकी दृष्टिसे न देखेंगे।

मैने यह विचार किया कि मनुष्योंकी दृष्टिमे कुछ कल्याण तो होता नही, और न मनुष्योंकी दृष्टिमे आदर पानेके लिये मैने वीतराग जिनेन्द्र का धर्म स्वीकार किया है। जैनधर्म किसीकी पैतृक सम्पत्ति नही। धर्म तो आत्माकी परिणति है। एक दो नही सब मिलकर भी मेरी वीतराग धर्मसे श्रद्धाको दूर नही कर सकते। लौकेषणकी मुझे अभिलाषा नही। मैने विचार किया, अच्छा हुआ एक अभ्यन्तर परिग्रहसे मुक्त हुआ।

कुछ लोगोने अपनी स्वार्थ साधनाके लिये यद्वा तद्वा आगम प्रमाण उपस्थित करते हुए मेरे प्रति जो कुछ मनमे आया ऊत-पटाग कह डाला। इससे मुझे जरा भी रोष नही परन्तु उन सम्भ्रान्त जनोका निराकरण करनेके लिये कुछ लिखना आवश्यक है।

एक महाशयने तो जैन मित्रमें यहाँ तक लिख दिया कि तुम्हारा क्षुल्लक पद छीन लिया जावेगा, मानो धर्मकी सत्ता आपके हाथोंमे

आ गई हो। यह षट्-खण्डागमके ९३ वें सूत्रका 'संजद' पद नहीं जो हटा दिया जावे।

मुझे धमकी दी गई कि पीछी कमण्डलु छीन लेवेंगे। छीन लो सर्व अनुयायी मिल जाओ। चर्चा बन्द कर दो। परन्तु जो हमारी श्रद्धा धर्ममें है, उसे भी छीन लोगे? मेरा हृदय किसीकी बन्दर-घुड़कीसे नही डरता। पीछी कमण्डलु तो बाह्य चिह्न है। इनके कार्य तो कोमल वस्त्र तथा अन्य किसी पात्रसे भी हो सकते है।

आपने लिखा कि आचार्य महाराज दयालु हैं, तब क्यो उन बेचारो पर दया नही करते। वे शूद्र तुम्हारा इतना उपकार करते हैं, और आपने उनके साथ जो व्यवहार किया, यदि उसका वर्णन किया जावे तो अश्रुपात होने लगे। बलिहारी इस दयाकी। आपकी दया तो प्रसिद्ध है, रहो, हमे इसमे आपत्ति नही। आप सप्रमाण यह लिखिये कि अस्पृश्य शूद्रोको चरणानुयोगकी आज्ञामे धर्म करनेका कितना अधिकार है? तब हम लोगोका यह वाद जो आपको अरुचिकर है शान्त हो जायेगा। केवल समालोचनामे कुछ नही।

४—व्रत दान द्वारा जनकल्याण

•

(१) सागरके पास पडरिया ग्राममे तीन वर्ष पहले हमने एक चर्मकारसे कहा था कि 'भाई मास खाना छोड दो।' उसने छोड दिया और शाहपुरके सम्पूर्ण चर्मकारोमें इस बातका प्रचार कर दिया कि मृत-पशुका मास नही खाना चाहिये। बहुतोने जीव हिसाका भी त्याग कर दिया।

(२) हस्तनागपुरमे व्रतिसम्मेलन हुआ। लगभग बीस आदमियोने ब्रह्मचर्य व्रत लिया। छोटे-छोटे बालकोने रात्रि-भोजन-त्याग किया। हस्तनागपुरसे चलकर 'तिस्सा' आया तो वहाँ एक ब्राह्मणने जो कि मद्यपान करता था, जीवन पर्यन्तके लिए मद्यपान छोड दिया। एक मुसलमानने भी जीवघात छोड दिया तथा एक चमारने मदिरा छोड दी।

(३) जगाधरीमे प्रवचनके पश्चात् कई मानवोंने ब्रह्मचर्य व्रत लिए तथा स्त्री-समाजने महीन वस्त्रोंके परिधानका त्याग किया। रत्नपुर में जो ठाकुर राणा थे, आपने शिकार छोड दिया तथा मदिराका भी त्याग कर दिया। ग्रामके अन्य प्रतिष्ठित लोगोने भी मांस मदिराका त्याग किया। अम्बडामे भी धर्मशालामें कई महाशयोंने जो कि हरिजनोमे से थे, मदिराका त्याग किया। कई महाशयोंने मांसका त्याग किया।

(४) दिल्लीसे इटावाकी ओर जाते हुए मार्गमे सासनीके पास पहाडी नामक ग्राममे ८ औरतें आईं। उन्होंने रविवार और एकादशीका ब्रह्मचर्य व्रत लिया।

(५) एटामें एक सिविल सर्जन सपत्नीक आये। मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। आपने मंगलवारको ब्रह्मचर्य व्रत लिया।

(६) इटावासे भिण्ड जाते समय मार्गमें चम्बल नदी पर ठहरे। आगत जनतासे मैंने कहा कि आप बीडी पीना छोड़ दें, तथा पर-स्त्रीका त्याग भी कर दें। सुनकर आम जनता प्रसन्न हुई। तथा अधिकांशने प्रतिज्ञा ली।

(७) मै मुरारमें था। एक भंगी प्रतिदिन शास्त्र श्रवण करता था। सुनकर कुछ भयभीत भी होता था। मांसादिका त्यागी था। एक दिन वह अपने मुखियाको लाया। उसके हाथ मैने उनके साधुको जयरामजी कहला भेजा। दूसरे दिन वह अपने साधुका सन्देशा लाया कि जो वर्णी जी कहे सो अपनेको करना चाहिये। मैने कहा—जो तुम्हारे भोज होने वाला है, उसमे मास न बनाना। 'जो आज्ञा', कहता हुआ वह चला गया। फिर २ दिन बाद आया और कहने लगा कि हमारे जो भोज था उसमे मांस नही बनाया गया।

(८) फीरोजाबदसे सागर जाते हुए मार्गमे परतापपुर गाँव पडा। यहाँ कई मनुष्योंने अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टाह्निका, तथा दशलक्षणके दिनोंमे ब्रह्मचर्यका नियम लिया। वहाँसे पुरा आये। यहाँ ४ घर जैनीके है। सबने अष्टमी चतुर्दशीको ब्रह्मचर्यका नियम लिया। कई ब्राह्मणोंने भी रविवार तथा एकदशीको ब्रह्मचर्य रखनेका प्रण किया।

वि० स० २००८ के ललितपुर चातुर्मासमें मन्दिरके चौकमें प्रवचन हुआ। ४ आदमियोंने चार मास तक (चौमासे भरके लिए) ब्रह्मचर्यका नियम लिया। अष्टमी चतुर्दशी व अष्टाह्निका पर्वके लिये तो प्रायः सबने नियम लिया।

(९) ललितपुरमे फोडा हो गया। डाक्टरने जब सुना कि मैं माम-भोजीसे आप्रेशन कराना नही चाहता तो उसने बडी प्रसन्नतासे कहा कि मै जीवन पर्यन्तके लिए मासका त्याग करता हूँ। ●

५—देश-प्रेम

•

१. परिग्रह परिमाण बनाम साम्यवाद

परिग्रह सबसे बड़ा पाप है। आज इसके कारण ही संसारमें त्राहि-त्राहि मच रही है। जिनके पास है वे उसे अपने पास से अन्यत्र नही जाने देना चाहते, और जिनके पास नही है, वे उसे प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिये ससारमे संघर्ष मचा हुआ है।

यदि लोगोकी दृष्टिमे इतनी बात आ जाय कि परिग्रह निर्वाहका साधन है। जिस प्रकार हमे भोजन, वस्त्र और निवासके लिये परिग्रह की आवश्यकता है, उसी प्रकार दूसरेको भी उसकी आवश्यकता है। अतः हमे आवश्यकतासे अधिक अपने पास नही रोकना चाहिये। ऐसा भाव हो जाय तो संसारका कल्याण हो जाय। यदि परिग्रहका कुछ भाग एक जगह अनावश्यक रुक जाता है तो दूसरी जगह उसके बिना कमी होनेसे सकट उत्पन्न हो जाता है। जहाँ रक्त रुक जाता है, वहाँ पीडा पैदा हो जाती है।

इसलिये जैनागममे यह कहा गया है कि गृहस्थ अपनी आवश्यकताओंके अनुसार परिग्रहका परिमाण करे और मुनि सर्वथा ही उसका परित्याग करे।

कितने ही लोग ऐसा सोचते हैं कि अभी परिग्रहका अर्जन करो, पीछे दान आदि कार्योंमें व्यय कर पुण्यका सचय कर लेंगे। परन्तु

आचार्य कहते है कि कीचड़ लगाकर धोनेकी अपेक्षा दूरसे ही उसका स्पर्श न करना अच्छा है। लक्ष्मीको अङ्गीकार करके उसका त्याग करना कहांकी बुद्धिमत्ता है ?

२. देशकी पुष्कलताका उपाय स्त्री-शिक्षा

पुरुषवर्गने स्त्री-समाजपर ऐसे प्रतिबन्ध लगा रखे है कि उन्हे मुखको निरावरण करनेमें भी संकोचका अनुभव होता है। मुखपर वस्त्रका आवरण रहनेसे वे पूर्णरूपसे देव-दर्शनका लाभ नही ले सकती। शास्त्र प्रवचनमं पहुँच गई तो कर्णोपर वस्त्रका आवरण रहता है। पुरुषोसे दूरवर्ती उनका क्षेत्र रहता है। दैवयोगसे किसीकी गोदमे बालक हुआ और उसने क्षुधातुर हो रोना प्रारम्भ कर दिया तो मनुष्योके वाग्वाणोका प्रहार होने लगता है।—'चुप नही करती बच्चेको ? ...... क्यो लेकर आती है ? ...... बाहर क्यो नही चली जाती ?......' इत्यादि। इससे उनमे शास्त्र-श्रवणकी जिज्ञासा विलीन हो जाती है।

अतः पुरुषवर्गको चाहिये कि वह जिसमे जन्मा है, वह स्त्री ही तो है। उसके प्रति इतना अन्याय न करे, प्रत्युत सबसे उत्तम स्थान उनके लिये शास्त्र-प्रवचनमे सुरक्षित रखे। उनकी अशिक्षा उन्हे सदा अपमानित करती है।

मेरा तो ख्याल है कि यदि स्त्रीवर्ग शिक्षित होकर सदाचारी हो जावे तो आज भारत क्या जितना जगत मनुष्यके गम्य है वह सभ्य हो सकता है। 'जन-संख्याकी वृद्धि किस उपायसे रोकी जाय', शिक्षित स्त्रीवर्ग इस समस्याको अनायास हलकर सकता है। वह अपने पतियोको यह उपदेश देकर सुमार्ग पर ला सकती है कि जब बालक गर्भमें आ जावे तबसे आप और हमारा कर्त्तव्य है कि यह बालक उत्पन्न होकर जब तक ५ वर्षका न हो जावे तब तक विषय-वासनाको त्याग देवें। इसीका विस्तार आगे ब्रह्मचर्य धर्म वाले प्रकरणमें किया जाने वाला है।

इसके हो जानेसे जो टी० बी० के चिकित्सागृह है वे स्वयमेव धरा-शाही हो जायेंगे। अन्नकी जो त्रुटि है वह भी न होगी। दुग्ध पुष्कल

मिलने लगेगा। गृहवासकी पुष्कलता हो जावेगी। अन. स्त्री-समाजको सभ्य बनानेकी आवश्यकता है।

पञ्चमकालमे चतुर्थकालका दृश्य यदि देखना है, तो स्त्री समाजकी उपेक्षा न करो, उसे सुशिक्षित बनाओ। सुशिक्षितमे तात्पर्य उस शिक्षासे है जिससे वे अपने कर्त्तव्यका निर्णय स्वय कर सकें।

३. आजादहिन्द फौजके लिये अनौखा दान

प० द्वारिका प्रसादजी मिश्र एक राजनैतिक विद्वान थे। एक बार आप जबलपुर आये। उनके सभापतित्वमे आजादहिन्द फौजवालोंकी सहायता करनेके बाबत सभा हुई। मुझे भी व्याख्यानका अवसर मिला। उस समय मै दसवी प्रतिमामे था। मैने कहा, 'मै राजकीय विषयमे कुछ जानता नही, फिर भी यह भावना है कि जिन लोगोने देश-हितके लिये अपना सर्वस्व न्योछावर किया उनके प्राण सकटसे बचे। मेरे पास त्याग करनेको कुछ द्रव्य तो है नही, केवल दो चादरे है, इनमेंसे एक चादर मुकदमेकी पैरवीके लिये देता हूँ।' वह चादर तीन हजारमे नीलाम हुई।

४. शरणार्थियोंको अपनाओ

पुष्कल द्रव्य वालोंको चाहिये कि आगे आकर बङ्गाल तथा पञ्जाब आदिके जो मनुष्य गृहविहीन होकर दुखी हो रहे है, उन्हे सहायता पहुँचावे। जिनके पास पुष्कल भूमि है उसमे गृहविहीन मनुष्योंको बसावे तथा कृषि करनेको देवे। जिनके पास मर्यादासे अधिक वस्त्रादि है वे दूसरोको देवे। मै तो यहाँ तक कहता हूँ कि आप जो भोजन ग्रहण करते है, उसमेसे भी कुछ अंश निकालकर शरणागत लोगोकी रक्षामें लगा दो।

यदि इस पद्धतिको अपनाया जावेगा, तो जनता क्रान्तिसे स्वतः दूर रहेगी, अन्यथा वह दिन शीघ्र आनेवाला है, जिस दिन लोग, किसीकी अनावश्यक सम्पत्तिको सहन नही करेगे। उसे बलात् छीनकर जनताके उपयोगमे लावेगे।

५. स्वराज्य नहीं सुराज्य चाहिये

लिखना सरल है—'स्वराज्य मिल गया', परन्तु मानवोंको शान्ती नही। अन्नादि खाद्य सामग्रीकी न्यूनता हो रही है। अनेक मनुष्य बेकार हैं। यन्त्र-विद्याकी प्रचुरता होनेसे अनेक कार्य करनेवाले बेकार हो गए हैं। लोगोंके हृदयमें स्वकीय कार्य करनेके प्रति निष्ठा नही। नौकरीकी टोहमें प्राय सब घूमते हैं।

दैवी विपत्ति निरन्तर आती रहती है। पशुधनकी हानि हो रही है। राज्यने पशुओंके लिये चारे तकका स्थान नही रहने दिया। सब पर अपना अधिकार कर लिया। इसलिये पशुधनको चारा तक नही मिलता। शुद्ध घी-दूध भक्षणमे नहीं आता। मनुष्यके स्वार्थके लिये अन्य सर्व बध्य हो रहे है, जैसे मानो उनमें जीव ही न हो।

मनुष्योंका नैतिक बल उत्तरोत्तर घटता जा रहा है। घूसखोरीका जोर बढ रहा है। प्राय अधिकाश लोग पदलिप्साकी दौडमे एक दूसरेको पीछे छोड स्वय आगे बढ जाना चाहते है। न्यायालयोका न्याय समय-साध्य तथा द्रव्य-सापेक्ष हो गया है।

जनताके हृदयमे स्वराज्यके लिये जो उत्साह था वह निराशामें परिणत हो रहा है। देशकी जनता करोंके भारसे त्रस्त है और ऋणके भारसे दब रही है। इन सब कारणोंको देखते हुए हृदयसे निकलने लगता है, कि स्वराज्य तो मिला पर सुराज्य नही। स्वराज्य तो अग्रेजोने दिया, पर सुराज्य देनेवाला कोई नही। यह तो स्वय अपने आपमे लेना है।

देशकी जनता देशके प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ हो, अपने स्वार्थमे कमी करे, बढती हुई तृष्णाओको नियन्त्रित करे, गान्धीजीके सिद्धान्तानुसार यान्त्रिक विद्याकी प्रचुरताको कमकर हस्तोद्योगको बढावा दे, परिश्रमकी प्रतिष्ठा करे और अहिंसाको केवल वाचनिक रूप न दे प्रयोगमे लावे, तो सुराज्य प्राप्त हो सकता है।

६. महात्मा गान्धीके प्रति उद्गार

गान्धीजी एक त्यागी पुरुष थे। जो काम वह करते थे, निष्कपट

भावसे करते थे। इसीसे उनका प्रभाव पूर्ण जनताके हृदयंगम था। यही कारण था कि इतना प्रभावशाली ब्रिटेन भी उनके प्रभावमें आगया, तथा बिना किसी शर्तके भारतको त्यागकर स्वदेश चला गया। इतना त्याग जगतकी एक अपूर्व घटना है।

७. श्रीविनोबासे भेंट

गयामें चतुर्मास था। श्रावण शु० १० वि० सं० २०१० को प्रातःकाल ५ बजे विनोबाजी-भावे आए। १५ मिनट ठहरे। आप बहुत ही शान्त स्वभावके है। आपका भाव अत्यन्त निर्मल है। सर्व प्राणी सुखके पात्र है, तथा कोई दुःखका अनुभव न करे, यह मैत्री भावना आपमें पाई जाती है।

देहातमे गरीब जनता खेती योग्य भूमिसे रहित न रहे, इस भावनासे प्रेरित होकर आप परिकरके साथ भ्रमण करते हैं, और सम्पन्न मनुष्योंसे भूमि मांगकर गरीबोके लिये वितरण करते है। उत्तम कार्य है।

यदि जनतामें ऐसी उदारता आ जावे कि हम आवश्यकतासे अधिक भूमिके स्वामी न बनें, तथा वह अतिरिक्त भूमि भूमिहीन मनुष्योंके लिये दे दें, तो देशका कल्याण अनायास हो जाये।

भाद्रपद शुक्ल ३ को टाउनहालमे विनोबाभावेकी जयन्ती थी। हम भी गए।

८. राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसादजीसे भेंट

ईशरीमें वि० सं० २०१२ सन् १०५५ के अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें विहार-राज्य-ग्राम्य-पञ्चायतका चतुर्थ अधिवेशन था। जिसके उद्‌घाटनके लिये भारतवर्षके राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादजी आए थे। जैन हाई स्कूलके मैदानमें आपका भाषण हुआ था। आप प्रकृतिके सरल तथा श्रद्धालू व्यक्ति हैं।

मुझे भी साक्षात्कारका अवसर मिला। आपने बहुत ही शिष्टता दिखाई। मैने आपसे कहा कि विहार आपका प्रान्त है, और इसी प्रान्तमें मद्यके सेवनकी प्रचुरता देखी जाती है। इसलिये ऐसा प्रयत्न

कीजिये कि जिससे यहाँके निवासी इस दुर्व्यसनसे बचकर अपना भला कर सकें। आप जैसे आस्थावान् राष्ट्रपतिको पाकर भारतवर्ष गौरवको प्राप्त हुआ है।

उत्तरमें उन्होंने कहा कि हम प्रयत्न ऐसा कर रहे हैं, कि बिहार ही क्यों भारतके किसी भी प्रदेशमें मद्यपान न हो। पूज्य गान्धी-जीने मद्य निषेधका प्रारम्भ किया है, और हम उनके पदानुयायी है, परन्तु खेद इस बातका है, कि हम द्रुतगतिसे उनके पीछे नहीं चल पाते हैं।

५

•

प्रवचन सार

•

तत्वोंका सम्यक् अवलोकन करके संसार- बन्धन
का उच्छेद करना ही मनुष्य-जन्मकी
सार्थकता है। क्षमा व मृदुता आदि
ही धर्मका निज रूप है।

१–विवेक योग

●

१. पूज्य कौन (आगरा प्रवचन-अगहन वि० सं० २००५)

मनुष्यजन्म पाना अति दुर्लभ है, इसका सदुपयोग यही है कि निजको जानकर परका त्याग कर, इस संसार बन्धनसे छूटनेका उपाय करना चाहिये।

इसका मूल कारण संयम भाव है। इसका यही तात्पर्य है कि सब ओरसे अपनेको हटाकर अपनेमें लीन हो जाना। यही संसारके विनाशका मूल है। अत: सबसे मोह त्यागो। हम तो कोई वस्तु नही, महापुरुषोने भी तो यही मार्ग दिखाया है। महापुरुष वही है, जो मोह रागद्वेषको निर्मूल करनेका प्रयत्न करता है। रागद्वेषके अभावमें मूल कारण मोहका अन्त है। उसका अन्त करने वाला ही सर्वपूज्य हो जाता है।

पूज्यता अपूज्यता स्वाभाविक पर्याय नही किन्तु निमित्त पाकर आविर्भूत होती है। जहाँ मोहादिरूप आत्मपरिणति होती है, वही अपूज्यताका व्यवहार होने लगता है, और जहाँ इनका नाश होता है वही पूज्यताका व्यवहार होने लगता है। पूज्यता अपूज्यता किसी जाति-विशेष वाले व्यक्तिकी नहीं होती। जहाँ पापोंकी निवृत्ति होकर आत्म-श्रद्धा हो जाती है वही पूज्यता आ जाती है, और जहाँ पापोंकी प्रवृत्ति होने लगती है वही अपूज्यताका व्यवहार होने लगता है।

२. शत्रु कौन (बरुआ सागर प्रवचन-आषाढ शु० वि० सं० २००८)

संसार एक विशाल कारागृह है। इसका सरक्षक कौन है? यह दृष्टिगोचर तो नही, फिर भी अन्तरङ्गसे सहज ही यह पता चल जाता है कि वास्तवमे इसका सरक्षक मोह है। इसके दो मंत्री है—राग और द्वेष। इनके द्वारा आत्मामे क्रोध मान माया और लोभका प्रकोप होता है। क्रोधादि के आवेगमे यह जीव नाना प्रकारके अनर्थ करता है।

जब क्रोधका आवेग आता है तब परको नाना प्रकारके कष्ट देता है। स्वय अनिष्ट करता है तथा परसे भी कराता है, अथवा उसका स्वय अनिष्ट होता हो तो हर्षका अनुभव करता है। यद्यपि परके अनिष्टसे इसका कुछ भी लाभ नही, पर क्या करे, लाचार है। यदि परका पुण्योदय हो और इसके अभिप्रायके अनुकूल उसका कुछ भी बांका न हो तो यह दाहमे दु खी होता रहता है।

मानके उदयमे अपनी प्रतिष्ठाके लिये, परकी निन्दा और अपनी प्रशसा करता है। यदि कोई ने जैसी आपने इच्छाकी थी वैसा ही मान लिया तो फूलकर कुप्पा हो जाता है। कहता है हमारा मान रह गया। पर मूर्ख यह विचार नही करता कि हमार मान नष्ट हो गया। यदि नष्ट न होता तो वह भाव सर्वदा बना रहता। उसके जानेसे ही तो आनन्द आया, परन्तु विपरीत श्रद्धा मे यह मानता है, कि मानकी रक्षासे आनन्द आ गया।

माया कपाय भी जीवको इतने प्रपञ्चोमे फसा देता है कि मनमे तो और है, वचनसे कुछ कहता है, और कामके द्वारा अन्य ही कुछ करता है। मायावी आदमी ऊपरसे तो सरल दीखता है और भीतर अत्यन्त वक्र परिणामी होता है। मायाचारीके वशीभूत होकर जो न करे सो अल्प है।

इसी तरह लोभके वशीभूत होनेसे ससारमे जो जो अनर्थ होते है, वे किसीसे अविदित नही। आज सहस्रावधि मनुष्योका सहार हो रहा है, वह लोभ की ही बदौलत तो है। वर्षोसे शान्ति परिषद् हो रही है, परन्तु टससे मस नही हुआ। लोभ कषायको प्रबलता कुछ नही

होने देती। राजओंसे प्रजाका पिण्ड छुडाया परन्तु अधिकारी वर्ग ऐसा मिला कि उनसे बदतर दशा मनुष्योंकी हो गई। लोभ की महिमा अपरम्पार है।

अत जहाँ तक बने लोभ को कृश करो। क्रोध मान माया और लोभ ये चार कषाय ही आत्माके सबसे प्रबल शत्रु है।

३. मोह बनाम मिथ्यादर्शन (ललितपुर प्रवचन-भाद्रपद वि० स० २००८)

यह आत्मा स्वभावतः शुद्ध व निरञ्जन होने पर भी मोहके द्वारा विडम्बनाको प्राप्त हो रहा है। अनादि कालसे जो पर्याय पाई उसीमे अपनत्वकी कल्पना कर ली। यद्यपि यह मनुष्य-पर्याय आसमान-जातीय पुद्गल और जीवके सम्बन्धसे उत्पन्न हुई है, तो भी मोहजन्य बिडम्बनाके कारण यह अपने स्वरूपको न जान इस सयोगज पर्यायको अपनी मानता रहा है। कभी अपनेको ब्राह्मणादि माना, कभी आश्रमवासी माना, कभी किसी रूप माना और कभी किसी रूप। परन्तु इन सबसे परे जो आत्माका शुद्ध विविक्त जात्यजम्बूनदवत् उज्ज्वल स्वरूप है, उसकी ओर दृष्टि नहीं दी।

वास्तवमे विचार कर देखा जावे तो आत्मा न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है, न शूद्र है और न किसी ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासी आश्रमका धारक है। ये सब तो शरीरके धर्म है—शरीरकी अवस्थाये है। इन रूप आत्माको मानना मोहका विलास है। 'यह मैं हूँ' इत्यादि अहकार ममकारके द्वारा उठाया गया चेतनाके विलाससे परिपूर्ण जो आत्मा उसके व्यवहारसे च्युत होकर अन्य कार्योंमे उलझ रहा है।

४. चार संज्ञायें (ललितपुर प्रवचन-आषाढ शु० वि० सं० २००८)

अनादिसे यह जीव शरीरको निज मानता आता है। आहार भय मैथुन और परिग्रह इन चार सज्ञाओमें ही इस जीवका समग्र समय निकल जाता है। आत्म-हितकी ओर इसका लक्ष्य ही नही जाता। सज्ञाओंकी परिपाटीसे निकल जाना किसी बिरले निकट-भव्यका कार्य है।

ससारके यावन्मात्र प्राणी आहारकी अभिलाषासे सत्रस्त है। आहार के अर्थ ही उसके समस्त उपाय है। यदि आहार प्राप्तिकी आकांक्षा मुनिके हृदयमें न होती तो वन छोड़कर शहरके दूषित वातावरणमें क्यो आते ?

भय होने पर जीव भागनेकी इच्छा करते हैं। वृद्धावस्थासे शरीर जर्जर है। अनेक रोगोकी असह्य वेदना भी उठा रहा है, फिर भी इस जीवको भय लगा रहता है, कि मर न जाऊँ, यह पर्याय छूट न जाय।

मैथुन सज्ञामे विषय-रमणकी इच्छा होती है। विषयेच्छासे जो अनर्थ होते है वे किसीसे गुप्त नही है। इसका लोभी मनुष्य निन्द्यसे निन्द्य कार्य करनेमे भी सकोच नही करता। यहाँ तक देखा गया है कि पिता का सम्बन्ध साक्षात् पुत्रीसे हो गया। उत्तमसे उत्तम राजपत्नी नीचोके साथ संसर्ग करनेमे संकोच नही करती। जिसने इस सज्ञा पर विजय प्राप्त कर ली वही महापुरुष है।

परिग्रहकी सज्ञा भी इस जीवको उन्मत्त बना रही है। आजकल तो मनुष्य इसीके पीछे पागल होकर पडा है। त्यागी, व्रती, विद्वान्, अविद्वान् जो देखो वही इसके पीछे चक्र लगा रहा है।

सागार धर्मामृतमे प० आशाधर जीने सागारका लक्षण लिखते हुए कहा है, कि जो उक्त चार सज्ञाओं रूपी ज्वरसे आतुर है, और इनसे दुःखी होनेके कारण जो निरन्तर स्वज्ञान (आत्मज्ञान) से विमुख रहते है, इन सज्ञाओंकी चपेटसे जो यह विचार भी नही कर पाते कि मेरा स्व क्या है, उसका स्वरूप क्या है, और इसी कारण जो विषयोमें उन्मुख रहते है, उन्हे ही सुखका कारण मान रात दिन उनके एकत्रित करनेमें लीन रहते है, वे सागार कहलाते हैं।

इन सज्ञाओका कारण भी पण्डित जीने उसी श्लोकमे बता दिया है। जिस प्रकार 'ज्वर' वात पित्त कफ इन तीन दोषोसे उत्पन्न होता है। उसी प्रकार चार सज्ञारूपी ज्वर मिथ्याज्ञानरूपी दोषसे उत्पन्न होता है। इस श्लोकमे वास्तवमें मोही मिथ्यादृष्टि गृहस्थका लक्षण बताया है।

(सम्यग्दर्शनके होनेसे जिसे आत्माका भान तो हो गया है, परन्तु चारित्रमोहके उदयसे जो परिग्रह-सज्ञाका परित्याग करनेमे समर्थ नही है, और उसी कारण जो प्राय. विषयोंमे मूर्छित रहता है [उसमें और मिथ्यादृष्टि गृहस्थोंमें बहुत अन्तर है]। मिथ्यादृष्टि गृहस्थ तो निरन्तर विषयोन्मुख रहते हैं, पर सम्यग्दृष्टि गृहस्थ मिथ्यात्व रूपी तिमिरके दूर हो जानेसे इतना समझने लगता है कि विषयप्राप्ति हमारे जीवनका लक्ष्य नही है। चारित्रमोहके उदयका त्याग नही कर पाता इसलिए प्राय: उनमें मूर्छित रहता है।

देखो मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी महिमा, मिथ्यात्वके उदयमे तो यह मनुष्य विषयोंको सुखका कारण मान अहर्निश उन्हीमे उन्मुख रहता है, पर सम्यक्त्वके होने पर इसकी दृष्टिमें यह बात आ जाती है कि विषय सुखके कारण नही, अत· उनमें उसकी मूर्छा पूर्ववत् नही रहती।) ●

२–सम्यग्दर्शन

१. **सम्यग्दर्शन** (सागर प्रवचन-पर्यूषण वि० सं० २००९)

सम्यग्दर्शनका अर्थ आत्मलब्धि है। आत्मस्वरूपका ठीक-ठीक बोध हो जाना आत्मलब्धि कहलाती है। सम्यग्दर्शनसे विवेकशक्ति जागृत हो जाती है। श्रद्धाके न होनेसे ही प्रत्येक बातमे कुतर्क उठता है। हर-एक बातमे कुतर्कसे काम नही चलता। युक्तिके बलसे सभी बातोंका निर्णय नही किया जा सकता। कितनी ही बातें ऐसी है, जिनका आगमसे निर्णय होता है और कितनी ही बातें ऐसी है, जिनका युक्तिसे निर्णय होता है। यदि आपकी धर्ममें श्रद्धा न होती तो हजारोकी सख्यामे यहां क्यो आते ?

हनुमान आदिने रामचन्द्रजीको खबर दी कि रावण जिनमन्दिरमें बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा है। आज्ञा दीजिये कि जिसमे हमलोग उसकी विद्या सिद्धिमे विघ्न करे, अन्यथा सीता फिर दुर्लभ हो जायेगी। रामचन्द्रजीने जोरदार शब्दोमे उत्तर दिया—हो जाय, एक सीता नही दशो सीतायें दुर्लभ हो जायें, पर मै अन्याय करनेकी आज्ञा नही दे सकता। रामचन्द्रजीमे जो इतना विवेक था, उसका कारण क्या था ? कारण था उनका सम्यग्दर्शन—विशुद्ध क्षायिक सम्यग्दर्शन।

भारापगमके बाद जो दशा भारवाहीकी होती है, वही मिथ्या-अभिप्राय जाननेके बाद आत्माकी हो जाती है। सम्यग्दर्शनका विकास होते

ही हमारी प्रवृत्ति एकदम पूर्वसे पश्चिमकी ओर हो जाती है। आत्मामें प्रशम संवेग अनुकम्पा और आस्तिक्य गुण प्रगट होते हैं, जो सम्यग्दर्शनके अविनाभावी हैं। यदि आपमें ये गुण प्रगट हुए हैं, तो समझ लो कि हम सम्यग्दृष्टि हैं। कोई क्या बतलायेगा कि तुम सम्यग्दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि ?

कषायके असंख्यातलोक प्रमाण स्थान है। उनमें मनका स्वरूपसे ही शिथिल हो जाना 'प्रशम' गुण है। यह दूसरी बात है कि चारित्रमोहके उदयसे यह उसे (सर्वथा) छोड़ नहीं सकता, पर उसकी प्रवृत्तिमें शैथिल्य अवश्य आ जाता है। ससारसे भय उत्पन्न होना 'सवेग' है। विवेकी मनुष्य जब चतुर्गतिरूप संसारके दुःखोंका चिन्तन करता है, तब उसकी आत्मा भयभीत हो जाती है।

दुःखी मनुष्यको देखकर हृदयमें कम्पन हो जाना 'अनुकम्पा' है। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिकी अनुकम्पामे अन्तर है। सम्यग्दृष्टि मनुष्य जब किसी आत्माको क्रोधादि कषायोंसे अभिभूत तथा भोगासक्त देखता है, तब उसके मनमे करुणा भाव उत्पन्न होता है कि देखो बेचारा कषायके भारसे कितना दब रहा है ? इसका कल्याण किस प्रकार हो सकेगा, आप्त, व्रत, श्रुत, व तत्त्व पर तथा लोक आदि पर श्रद्धापूर्ण भावका होना 'आस्तिक्य' भाव है।

ये गुण सम्यग्दर्शनके अविनाभावी है। यद्यपि मिथ्यात्वकी मन्दतामे भी ये हो जाते हैं, तथापि वे यथार्थ गुण नही, किन्तु गुणाभास कहलाते है।

यद्यपि अन्य ग्रन्थोंमे तत्त्वार्थ-श्रद्धानको सम्यग्दर्शनका लक्षण कहा है, परन्तु पञ्चाध्यायी-कारके अनुसार वह सब ज्ञानकी पर्याय है। [उन सात तत्त्वोंका कथन भी आगे क्रमसे किया गया है। उन सबके कथन परसे भी यही भाव विदित होता है कि उनका शाब्दिक ज्ञान व श्रद्धा अभिप्रेत नही है, किन्तु हेय-भावका त्याग करके उपादेय-भावको अपने भीतर जागृत करना ही प्रयोजनीय है।]

[सम्यग्दर्शनके आठ अग प्रसिद्ध है—निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य व प्रभावना। पूर्वोक्त प्रशमादिकी भाँति ये भी सम्यग्दर्शनके अविनाभावी गुण है। इनमे से तर्क-विहीन श्रद्धाके रूपमें निःशंकितका कथन पहले किया गया है।

इसी प्रकार अमूढदृष्टिका कथन स्व-पर भेद ज्ञानकी दृढ़ताके रूपमें आगे सम्यग्ज्ञान अधिकारमें किया गया है। दीन हीन निर्धनोंकी सहायताके रूपमें स्थितिकरणका कथन यथास्थान किया जानेवाला है। शेष गुणोंका कथन आगे क्रमसे किया जाता है।।

२. सम्यग्दर्शनके अंग

१ नि काक्षित अंग (निष्कामता)—

१. पावापुरकी यात्राके मध्य जब नवादा ठहरा हुआ था, तब दो भिखमंगे मांगनेके लिये आए। मै अन्दर जाकर लाडू लाया और दोनोको दे दिये। मैने उनसे पूछा 'कहाँ जाते हो'। उन्होंने कहा कि श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणोत्सवके लिए पावापुर जाते है। मैने कहा कि 'तुम्हारे पैर तो कुष्टसे गलित हैं, कैसे पहुँचोगे'? उन्होने कहा, 'श्री वीरप्रभुकी कृपासे पहुच जावेंगे। उनकी महिमा अचिन्त्य है, उन्हीके प्रतापसे हमे वहाँ एक वर्षका भोजन मिल जाता है।

'ससार महा भयानक है। धर्मका यथार्थ स्वरूप कहनेवाले वीनराग सर्वज्ञ हैं····'इत्यादि। भिखमगेके मुखसे इतनी ज्ञानपूर्ण बात सुनकर मैने कहा—'भाई! तुम्हे इतना बोध कहाँसे आया।' वे बोले—'आप जैन होकर इतना आश्चर्य क्यो करते हो। जो आपका आत्मा है, वही तो मेरा है। आप उत्कृष्ट और हम जघन्य हो, ऐसा कोई नियम नहीं है। उत्सव द्वारा आपकी यही तो भावना है कि हम संसार-बन्धनसे छूटे। नाम-स्मरणसे हमारी भी यही मनोऽभिलाषा है कि 'हे प्रभो! इस वर्ष भोजनके सकटसे बचे। आखिर दु खकी मूल जननी आकांक्षा जिस प्रकार मेरे भीतर है, उसी प्रकार आपके भीतर भी है। वह निरपेक्षता कि जो वास्तवमें आत्माको बन्धनसे छुडानेवाली है, न आपके है और न हमारे। वचनकी कुशलतासे चाहे आप भले ही मनुष्योंमे निरपेक्ष बननेका प्रयत्न करे, परन्तु भीतरसे जैसे हो, आप स्वय जानते हो।

६ C२ आत्माका गुणानुरागी कभी पुण्य नही चाहता, क्योंकि [वह जानना है कि] पुण्यबन्ध संसारका ही तो कारण है? अत ज्ञानी जीव संसारका कारण जो भाव है, उसे उपादेय नहीं मानता। चारित्रमोहके उदयमें ज्ञानी-जीवके रागादि भाव होते हैं, परन्तु उनमें कर्तृत्व बुद्धि नहीं

होती। अभिप्रायके बिना जो क्रिया होती है, वह बन्धकी जनक नहीं होती D

२ निर्विचिकित्सा अंग (समता)—

(१) हम दूसरे पदार्थों को तुच्छ देखते हैं, उनसे घृणा करते है। इसका मूल कारण यही है कि हमने अपने स्वरूपको नहीं जाना। परमार्थसे कोई पदार्थ न बुरा है और न अच्छा है। हम अपनी रुचिके अनुसार ही उनके विभाग करते हैं।

(२) रफीगञ्जके मन्दिरमें प्रवचन हुआ। प्रकरण था कि (जो इस जीवको ससारमें फंसाते है ऐसे कुटुम्बीजन परमार्थसे इसके (आत्माके) शत्रु हैं, और जो हितका ध्यान रखते है ऐसे योगी इसके बन्धु है। परन्तु इस जीवकी अनादि कालसे विषय वासनामे ही प्रीति हो रही है। इसलिये इसमें सहायक लोगोको यह मित्र मानता है और जो इसमें बाधक है उन्हे शत्रु समझता है।

वास्तवमे विचार किया जाय तो यह सब कथन व्यवहारकी मुख्यतासे है। निश्चयमें न तो जीवका कोई शत्रु है और न मित्र है। इसके जो रागादि परिणाम हैं वही इसके शत्रु है, और जो वीतराग भाव है वही हमारे मित्र है। मोहके उदयमे अनेक कल्पनायें होती है।)

उपादेयता और हेयता यह दोनो भी मोही जीवोके ही होते हैं। परमार्थत न कोई उपादेय है और न हेय है, किन्तु उपेक्षणीय व्यवहार भी औपचारिक होता है। मोहके रहते हुए जिन पदार्थोंमें उपादेयता और हेयताका व्यवहार था मोह जानेके बाद वे पदार्थ उपेक्षणीय सुतरां हो जाते है।

३ वात्सल्य अंग (निरीह मानव सेवा) इटावा प्रवचन-स० २००७—

इटावामे चातुर्मास था। श्रावण शुक्ल पूर्णिमा वि० स० २००७ को रक्षाबन्धनका पर्व आया। यह पर्व सम्यग्दर्शनके वात्सल्य अगका महत्त्व दिखाने वाला है (सम्यग्दृष्टिका स्नेह धर्मसे होता है और धर्म बिना धर्मीके रह नही सकता, इसलिए धर्मीके साथ उसका स्नेह होता है। उसमें गौके बछडेका दृष्टान्त है। माता अपने शिशुसे स्नेह इसलिये करती है कि यह वृद्धावस्थामे हमारी रक्षा करेगा, पर गौमें ऐसी कोई इच्छा नहीं रहती।

धर्मका अंश तो निरीह होकर सेवा करनेका भाव है। विष्णुकुमार मुनिने ७०० मुनियोंकी रक्षा करनेके लिए अपने आपको एकदम समर्पित कर दिया। उन्होने जो कार्य किया था, वह मुनिपदके योग्य नही था, तथापि सहधर्मी मुनियोकी उन्होने उपेक्षा नही की।

किसी सहधर्मी भाईको भोजन वस्त्रादिकी कमी हो तो उसकी पूर्ति हो जाय ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। महलनमें रहने वालोको पासमे बनी झोपडियोकी भी रक्षा करनी होती है, अन्यथा उनमे लगी आग उनके महलको भी भस्मसात कर देती है। यह पर्व हमे सदा यही शिक्षा देता है कि 'सर्वे भवन्तु सुखिन', अर्थात् सब सुखी हो।

४. प्रभावना अंग (शुद्धाचरण)—

(१) तीर्थक्षेत्रों पर यात्रियोको सर्व सुविधाओकी व्यवस्था होने पर भी आत्मलाभके लिये वहाँ कोई साधन नही है। ऐसे (रामटेक जैसे) क्षेत्रों पर आवश्यकता एक विद्वान की थी, जिसके प्रवचनोसे जनताको जैन धर्मका बोध हो जाता।

हम लोग बाह्य कायोमें द्रव्यका व्यय कर ही अपनेको कृतार्थ मान लेते है। मन्दिरमें चान्दीके किवाड़, चान्दीकी चौकी, चान्दीका रथ, स्वर्णके चमर, चान्दीकी पालकी आदिको देख कर अन्य लोग यही अनुमान लगाते है कि जैन बड़े धनाढ्य है, परन्तु यह नही समझते कि जिस धर्मके ये अनुयायी है, उसका क्या मर्म है।

वास्तविक प्रभावना तो यह है कि, अनादि कालमे परको आत्मीय मान अपनी परिणति जो कलुषित हो रही है, उसे आत्मीय श्रद्धान ज्ञान व चारित्रके द्वारा ऐसी निर्मल बनानेका प्रयत्न किया जाय, जिससे कि इतर धर्मावलम्बियोंके हृदयमे स्वयमेव समा जावे कि धर्म तो यह वस्तु है। इसीको निश्चय प्रभावना कहते है।

आप लोगोंने मेरे आनेपर बाजा बजवाकर बाह्य प्रभावना की। बहुत ही सुन्दर दृश्य दिखाया। पर आभ्यन्तर प्रभावना की ओर प्रयास नही हुआ। अपनी ओर किसीका लक्ष्य नही। प्राय. सर्वत्र यही दृश्य देखा जाता है। हमारी प्रभावनासे अन्य लोग लाभ उठा लेते है, पर हम तो दर्शक मात्र ही रहनेका प्रयास करते है। अन्यको धर्मका स्वरूप आ जावे, यही चेष्टा हमारी रहती है।

(२) [प्रभावना ऐसी होनी चाहिये जिससे दूसरेके हृदय पर सीधा प्रभाव पडे] ऐसा दान दो जिससे साधारण लोगोका भी उपकार हो। ऐसा तप करो जिसे देखकर कट्टरसे कट्टर विरोधियोकी भी तपमें श्रद्धा हो जाय। जिनेन्द्रदेवको ऐसो ठाट बाटसे पूजन करो कि नास्तिकके चित्तमें भी आस्तिकताका संचार हो जाय।

३. [एक बार एक परोपकारी ईसाईने जैनियोकी नाममात्र अहिंसाकी खरी आलोचनाकी। अगले अधिकारमे उसका कथन किया गया है।] सुनकर हम बहुत प्रसन्न हुए। वास्तवमे धर्मकी प्रभावना आचरणसे होती है। यदि हमारी प्रवृत्ति परोपकाररूप है, तो लोक अनायास ही हमारे धर्मकी प्रशसा करेगे, और यदि हमारी प्रवृत्ति तथा आचार मलिन है तो किसीकी श्रद्धा हमारे धर्म पर नही हो सकती। यदि वास्तवमे धर्मकी प्रभावना करना चाहते है तो जाति-पक्षको छोडकर प्राणिमात्रका उपकार करो।

भूखे मनुष्यको आभूषण देना उतना तृप्ति जनक नही, जितना कि उसे दो रोटियाँ देना है। इस पञ्चम कालमे प्राय· दु·खी प्राणी बहुत है। अत· अपनी सामर्थ्यके अनुकूल उनके दु·ख दूर करनेका प्रयास करो। वे आपसे आप धर्ममे प्रेम करने लगेगे।

४. पर वास्तवमे लिखनेवाले बहुत है और करनेवाले बिरले। जब कि लिखनेवालेको यह निश्चय हो गया कि इसप्रकार धर्मकी प्रभावना होती है, तब स्वयं उसे उस रूप बन जाना चाहिये। पर देखा यह जाता है कि लेखक स्वयं वैसा बननेकी चेष्टा नही करते, वक्ता बनकर मनुष्योंके बीच उसका उपदेश सुना देते है, तथा लोगों द्वारा 'धन्य हो, धन्य हो' यह कहलाकर अपनेको कृत-कृत्य समझ लेते है। क्या इसे वास्तविक प्रभावना कहा जाय? वास्तविक प्रभावना यही है कि आत्मामें सम्यग्दर्शनादि गुणोंका विकास (या आचरण) किया जाय। ●

३—नव तत्त्व विवेचन

•

१. जीव अजीव तत्त्व (सागर प्रवचन-पर्यूषण वि० स० २००९)

पञ्चम अध्यायमे षड्द्रव्योका वर्णन आपने सुना। उसमे प्रमुख जीव द्रव्य है। उसीका सब खेल है, वैभव है। 'मै सुखी हूँ, मै दुखी हूँ' इत्यादि प्रत्ययमे जीवके अस्तित्वका साक्षात्कार होता है। तथा अन्वयसे भी इसका प्रत्यय होता है। यह वही देवदत्त है जिसे मैने मथुरामे देखा था, अब यहाँ देख रहा हूँ, इस प्रत्ययमे भी आत्माके अस्तित्व का निर्णय होता है।

जीव नाम का जो पदार्थ है वह स्वय सिद्ध है, तथा पर-निरपेक्ष अपने आप अतिशयकर चकचकायमान हो रहा है। कैसा है ? अनादि है। कोई इसका उत्पादक नही, अतएव अनादि है, अतएव अकारण है। जो वस्तु अनादि व अकारण है वह अनन्त (स्वरूप) भी है, तथा अचल है ऐसे ही अनादि अनन्त तथा अचल अजीव द्रव्य भी है। इससे इसका लक्षण स्वसवेद्य भी है यह स्पष्ट है। जीव नामक पदार्थमे अन्य अजीवो की अपेक्षा चेतना गुण ही भेद करने वाला है। वही गुण इसमे ऐसा विशद है कि सर्व पदार्थोंकी तथा निजकी व्यवस्था करता है।

केवल चेतना ही आत्मा का लक्षण है। यही अबाधित त्रिकालमें रहता है। इसी भाव को पुष्ट करने वाला श्लोक अष्टावक्र गीतामें

अष्टावक्र ऋषिने लिखा है—"मैं देह नहीं हूँ, और न मेरा देह है, न मै जीव हूँ मैं चिन् हूँ, । चैतन्य गुणवाला हूँ ।"

(दिल्ली प्रवचन-आषाढ सुदी २००६)

चेतना यद्यपि एकरूप है । फिर भी सामान्य विशेषके भेदसे दर्शन और ज्ञान रूप हो जाती है । जब कि सामान्य और विशेष पदार्थ-मात्रका स्वरूप है, तब चेतना उसका त्याग कैसे कर सकती है ? यदि वह उसे छोड दे तो अपना अस्तित्व ही खो बैठे, और इस रूपमे वह (चेतना) जड़ रूप होकर आत्माका भी अन्त कर सकती है । इसलिये चेतनाका द्विविध परिणाम होता ही है ।

हाँ चेतनाके अतिरिक्त अन्यभाव आत्माके नही है । इसका यह अर्थ नही समझने लगना कि आत्मामे सुख वीर्य आदि गुण नही है । उसमे तो अनन्त गुण विद्यमान है, और हमेशा रहेंगे, परन्तु अपना और उन सबका परिचायक होनेसे मुख्यता चेतनाको ही दी जाती है । जिसप्रकार पुद्गलमे रूप रस आदि गुण अपनी अपनी सत्ता लिये हुए विद्यमान रहते है, उसीप्रकार आत्मामें भी ज्ञान दर्शन आदि अनेक गुण अपनी-अपनी सत्ता लिये हुए विद्यमान रहते है ।

यहाँ प्रश्न होता है कि यदि वस्तुका स्वतन्त्र निज-स्वरूप है तो आत्माको बन्ध क्यो होता है । इसका आगे पृथकसे उत्तर दिया गया है कि कर्मके सम्बन्धसे तथा अज्ञानके हेतुसे ऐसा होता है ।

२. **आस्रव तत्त्व** (सागर प्रवचन-पर्यूषण वि० स० २००९)

आस्रवतत्त्वका वर्णन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । हम कर्म-बन्धसे बचना चाहते है, पर कर्म किन कारणोंसे बँधते है, यह न जाने तो कैसे बच सकते है । बुद्धि पूर्वक या अबुद्धि पूर्वक ऐसे बहुतसे कार्य हम लोगोसे नित्य होते रहते है, जिनमे कर्मका बन्ध जारी रहता है ।

किसीके घरमें चोर आया और चोरी कर गया, पर उस मूर्खको यह पता नहीं चला कि चोर किस रास्ते से आया था । अत वह मुहरी (पानी आने जाने के मार्ग) को मूंदता फिरता है । दूसरी रात फिर चोर आते है । यही दशा संसारी प्राणी की है ।

जिन भावोंसे कर्मोंका आस्रव होता है, कर्म रूपी चोर आत्मामें घुसते है, उन भावोंका उसे पता नही रहता, इसलिये अन्य प्रयत्न कर्मोंका अस्रव रोकनेके लिये करता है। आत्माकी विकृत परिणतिसे होने वाले आस्रवको उसने केवल शरीराश्रित क्रियाकाण्ड से रोकना चाहा, सो कैसे रुक सकता था? तालेकी जो कुजी है उसीसे तो वह खुलेगा। जो कर्म जिस भावसे आता है, उस भावके विरुद्ध भाव यदि आत्मामें उत्पन्न किया जाय तब उस कर्मका आस्रव रुक सकता है [अन्यथा नही]।

वह आस्रव दो प्रकार का है—साम्परायिक और ईर्यापथ। जिस आस्रवका प्रयोजन ससार है उसे साम्परायिक आस्रव कहते है; और जिसमे स्थिति तथा अनुभाग बन्ध नही पडता उसे ईर्यापथ आस्रव कहते है। साम्परायिक आस्रव आत्माका अत्यन्त अहित करनेवाला है। यह कषाय सहित जीवके ही होता है। परन्तु कषाय रहित जीवके होने वाला ईर्यापथ आस्रव नाम-मात्र होता है। अर्थात् समय-मात्र स्थित रह कर निर्जीर्ण हो जाने वाले कर्म-प्रदेशोंका आस्रव उसके होता है।

इस तरह आत्माकी सकषाय अवस्था ही वास्तवमें आस्रव है—बन्ध का कारण है। अतः उससे बचना चाहिये। जिस प्रकार फिटकली आदिके संसर्गसे जो वस्त्र सकषाय हो गया है उस पर रगका सम्बन्ध अच्छा होता है, परन्तु जो वस्त्र फिटकली आदिके ससर्गसे रहित होनेके कारण अकषाय है, उसपर रङ्गका सम्बन्ध स्थायी नही होता। उसी प्रकार प्रकृतमें भी समझना चाहिये।

साम्परायिक आस्रव भी दो प्रकार का होता है—शुभ व अशुभ। शुभसे पुण्य बन्ध होता है और अशुभसे पाप बन्ध।

२. पुण्य व पाप (बरुआ सागर प्रवचन-चैत्र शु० २००८)

श्री कुन्द-कुन्द देवका कहना है कि शुभोपयोगसे पुण्य बन्ध होता है, और उससे आत्माको देवादि सम्यक् पदकी प्राप्ति होती है, जो तृष्णाका आयतन है। अतः शुभोपयोग और अशुभोपयोगको भिन्न समझना, शुद्धोपयोगकी दृष्टिमे कुछ विशेषता नही रखता। दोनो ही बन्धके कारण है।

लौकिक जन शुभ कर्मको सुशील और अशुभ कर्मको कुशील मानते है, परन्तु कुन्द-कुन्द महाराज कहते हैं कि शुभ कर्म सुशील कैसे हो सकता है। वह भी तो आत्माका ससारमे पात करता है। जिसप्रकार लोहेकी बेड़ी पुरुषको बन्धनमें डालती है, उसी प्रकार सुवर्णकी बेडी भी पुरुषको बन्धनमें डालती है, एतावता इन दोनोंमे कोई भिन्नता नही है।

लोकमें कोई पुरुष जब किसीकी प्रवृत्तिको स्व-विरोधिनी समझ लेता है, तो उसके सम्पर्कसे यथा-शीघ्र दूर हो जाता है इसी तरह जब कर्म प्रकृति आत्माको ससार बन्धनमे डालती है तब ज्ञानी वीतराग उदयागत शुभाशुभ प्रकृतिके साथ (पुण्य पापके साथ) राग नही करता।

सम्यग्दृष्टि मनुष्यके भी शुभाशुभ या प्रशस्ताप्रस्त भाव मोहोदयमें होते है, विषयोंमे अणुमात्र भी विरक्ति नही तथा मन्द कपायमे दानादि कार्य भी शुभोपयोगमे करता है परन्तु उसके परिणाममे अनुराग नही। जिसप्रकार रोगी मनुष्य न चाहता हुआ भी औषध सेवन करता है, उसीप्रकार सम्यग्दृष्टि भी पुण्य पापादि कार्योंको करता है, परमार्थसे दोनोंको हेय समझता है। ●

४–बन्ध तत्त्व

•

१ सामान्य निर्देश (सागर प्रवचन-पर्यूषण सं० २००९)

बन्ध तत्त्वका वर्णन सुना है। उसका प्रमुख कारण मोह जन्य विकार है। मिथ्यादर्शन अविरति प्रमाद कषाय व योग इन पाँचको सूत्रकारने बन्धके हेतु बतलाया है। कुन्दकुन्द स्वामीने भी समयसारमे कहा है—"रागी प्राणी कर्मोंको बान्धता है और राग रहित प्राणी कर्मोंको छोडता है। बन्धके विषयमे जिनेन्द्र भगवानका यही उपदेश है। अत. कर्मोंमें राग न करो।"

पञ्चास्तिकायामें श्री कुन्दकुन्दने लिखा है—"जो ससारमें रहनेवाले जीव है उनके स्निग्ध (राग) परिणाम होता है, परिणामोसे कर्मका बन्ध होता है, कर्म से जीव एक गतिसे अन्य गतिमें जाता है, जहाँ जाता है वहाँ देह ग्रहण करता है, देहसे इन्द्रियोंका उत्पाद होता है, इन्द्रियोके द्वारा विषय ग्रहण करता है, विषयग्रहणसे रागादि परिणामोंकी उत्पत्ति होती है। फिर रागादिकसे कर्म और कर्मसे गत्यन्तरगमन, फिर गत्यन्तरगमनसे देह, देहसे इन्द्रियाँ, इन्द्रियोसे विषयग्रहण, विषयोंसे स्निग्ध (राग) परिणाम, स्निग्ध परिणामोसे कर्म और कर्मसे वही प्रक्रिया। इस तरह यह संसार चक्र बराबर चला जाता है।

आज ससारमे धर्मके जितने आयतन व दृष्टि पथ है वे इसी चक्रसे बचनेके साधन है। किन्तु अन्तरङ्ग दृष्टि डालो तो ये सर्व उपाय पराश्रित

हैं। केवल स्वाश्रित उपाय ही स्व द्वारा अर्जित संसारके विध्वंसका कारण हो सकता है।

यदि हमें संसार-बन्धनसे मुक्त होनेकी अभिलाषा है, तो सबसे प्रथम हम कौन हैं ? क्या हमारा स्वरूप है ? वर्तमानमें कैसा है ? तथा संसार क्यों अनिष्ट है ? यह जाननेका प्रयास करें, क्योंकि इन सब बातोंका निर्णय न हो जावे तबतक उसके अभावका प्रयत्न हो ही नहीं सकता।

इच्छा करने मात्रसे मुक्तिके पात्र हम नही हो सकते। आत्मामे जो रागादि विभाव परिणाम है, उनके दूर करनेके अर्थ 'श्री वीतरागाय नमः' यह जाप असंख्य कल्प भी जपा जावे तो भी आत्मामें वीत-रागता न आवेगी, किन्तु रागादिकी निवृत्तिसे अनायास वीतरागता आ जावेगी।

(आत्मामे जो रागादि होते है, उनका मूल कारण मोहनीय कर्म है। उसके दो भेद है—दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय। इनके उदयसे ही मिथ्यात्व व राग द्वेष होता है। उपयोग आत्माका ऐसा है कि उसके सामने जो आता है, उसीका उसमे प्रतिभास होने लगता है। जैसे नेत्रके समक्ष जो पदार्थ आता है, वह उसका ज्ञान करा देता है। यहाँ तक तो कोई आपत्ति नही, परन्तु जो पदार्थ ज्ञानमें आवे उसे आत्मीय मान लेना आपत्ति जनक है, क्योकि वह मिथ्या अभिप्राय है।

परमार्थसे आत्म-शान्तिका उपाय यही है कि परसे सम्बन्ध छोड़ा जाय और आत्म परिणतिका विचार किया जाय। अत रागादि दोषोंको जानों, उनकी पारमार्थिक दशासे परिचय करो। रागादि दोषोंका त्याग ही ससार बन्धनसे मुक्तिका उपाय है। रागादिकोंका यथार्थ स्वरूप जान लेना ही उनसे विरक्त होनेका मूल उपाय है।)

२. कषायका हेतु मोह (बरुआ सागर प्रवचन-चैत्र शु० सं० २००८)

आत्मीय परिणतिको कलुषित न होने दो। कलुषित परिणामोंका अन्तरङ्ग कारण मोह-राग-द्वेष है, तथा बाह्य कारण पंचेन्द्रियोंके विषय है। विषय निमित्त कारण है, परन्तु ऐसी व्याप्ति नही जो परिणतिको बलात् कलुषित बना ही देवे। विषय तो इन्द्रियोके द्वारा जाने जाते हैं। उनमें जो इष्टनिष्ट कल्पना होती है वह कषायसे होती है।

कषाय क्या है ? जो आत्माको कलुषित करता है। यह स्वयं होती है। अनादिसे आत्मामें इसका परिणमन चला आ रहा है। हम निरन्तर इसका प्रयास करते है कि आत्मामे स्वच्छ परिणाम हो, परन्तु न जाने कौन-सी ऐसी शक्ति आत्मामें है कि जिससे जो भाव आत्माको इष्ट नहीं वे ही आते है।

इससे यही निश्चय होता है कि आत्मामे अनादिसे ऐसे संस्कार आ रहे हैं कि जिनसे उसे अनन्त वेदनाओका पात्र बनना पड़ता है। यदि हमने आत्माको पहचानकर विकारोपर विजय प्राप्त कर ली तो हमारा महावीर जयन्ती उत्सव मनाना सार्थक है।

३. बन्धका हेतु मोह (दिल्ली प्रवचन-आषाढ शु० १२ सं० २००६)

वास्तवमें ज्ञाता दृष्टा होना ही आत्माका स्वभाव है, पर इसके साथ जो मोहकी पुट लग जाती है, वही समस्त दुःखोका मूल है। अन्य ज्ञानावरण आदि कर्मके उदयसे आत्माका गुण रुक जाता है, पर मोहका उदय उसे विपरीत परिमाण देता है।

आत्माका गुण रुक जाय इसमें हानि नही पर मिथ्या रूप हो जानेमे महती हानि है। एक आदमीको पश्चिमकी ओर जाना था। कुछ दूर चलनेपर उसे दिशा भ्रान्ति हो गई। वह पूर्वको पश्चिम समझ कर चलता जा रहा है। उसके चलने मे बाधा नही आई, पर ज्यो-ज्यो चलता जाता है, त्यो-त्यों अपने लक्ष्यमे दूर होता जाता है। दूसरे आदमीको दिशा भ्रान्ति तो नही हुई पर पैरमे लकवा मार गया, इससे चलते नही बनता। यह अचल होकर एक स्थान पर बैठा रहता है, पर अपने लक्ष्यका बोध होनेसे वह उससे दूर तो नही हुआ। कालान्तरमे ठीक होनेसे शीघ्र ही ठिकानेपर पहुंच जायेगा।

एकको आँखमें कमला रोग हो गया जिससे उसका देखना बन्द तो नहीं हुआ, देखता है, पर सभी वस्तुये पीली-पीली दिखाती है। जब वह परदेशसे लौटा और घर आया तो उसे अपनी स्त्री-पीली दिखी। उसने उसे भगा दिया। कहा कि मेरी स्त्री तो काली थी, तू यहाँ कहाँसे आई। वह कामला रोग होनेसे अपनी ही स्त्रीको पराई समझने लगा।

इसी प्रकार मोहके उदयमे यह जीव कभी-कभी अपनी चीजको पराई समझने लगता है, और कभी-कभी पराईको अपनी। यही विभ्रम संसारका कारण है। इसलिए ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे पापका बाप यह मोह आत्मासे निकल जाय।

हिंसादिक पाँच पाप है अवश्य, पर ये मोहके समान अहितकर नही है। पापका बाप यही मोह कर्म है। यही दुनियाको नाच नचाता है। मोह दूर हो जाय और आत्माके परिणाम निर्मल हो जाँय तो संसारसे आज छुट्टी मिल जाय। पर हों तब न? संस्कार तो अनादि कालसे इस जातिके बना रक्खे है कि जिससे इसका छूटना कठिन दिखने लगता है।

ज्ञानके भीतर जो अनेक विकल्प उठते है उसका कारण भी मोह ही है। किसी व्यक्तिको आपने देखा, यदि आपके हृदयमे उसके प्रति मोह नही है तो कुछभी विकल्प उठनेका नही। आपको उसका ज्ञान भर हो जायेगा। पर जिसके हृदयमे उसके प्रति मोह है तो उसके प्रति अनेक विकल्प उठते है—'यह विद्वान है, यह अमुक कार्य करता है, इसने अभी भोजन किया है या नही?' इत्यादि। बिना मोहके कौन पूछने चला कि इसने अभी खाया है या नही।

मोहके निमित्तसे ही आत्मामे एक पदार्थको जानकर दूसरा पदार्थ जाननेकी इच्छा होती है। जिसके मोह निकल जाता है, उसे एक आत्मा ही आत्माका बोध होने लगता है। उसकी दृष्टि बाह्य ज्ञेयकी ओर जाती नही है। ऐसी दशामे आत्मा आत्माके द्वारा आत्माके लिए आत्मासे आत्माको आत्मामे ही जानने लगता है। एक आत्मा ही षट्कारक रूप हो जाता है। सीधी बात यह है कि उसके सामनेसे कर्ता, कर्म, करणादिका विकल्प हट जाता है।

४. बन्धका हेतु अज्ञान (फीरोजाबाद प्रवचन माघ सं० २००७)

मिथ्यात्व, अज्ञान तथा अविरति रूप जो त्रिविध भाव है, यही शुभ अशुभ कर्म-बन्धके निमित्त है, क्योंकि ये स्वयं अज्ञानादि रूप है। यही दिखाते है।

जैसे जब यह अध्यवसान-भाव होता है कि 'इदं हिनस्मि' मैं इसे मारता हूँ तब यह अध्यवसान-भाव अज्ञानमय भाव है, क्योंकि जो आत्मा

सत् है, अहेतुक है तथा ज्ञप्तिरूप एक क्रियावाला है, उसका और रागद्वेषके विपाकसे जायमान हननादि क्रियाओंका विशेष भेदज्ञान न होनेसे भिन्न आत्माका ज्ञान नही होता है, अतः अज्ञान ही रहता है। इसी तरह भिन्न आत्मदर्शन न होनेसे मिथ्यादर्शन ही रहता है और भिन्न आत्माका चारित्र न होनेसे मिथ्या-चारित्रका ही सद्भाव रहता है। इस तरह मोह-कर्मके निमित्तसे मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्या-चारित्रका सद्भाव आत्मामें है। इन्हीके कारण कर्मरूप पुद्गल-द्रव्यका आत्माके साथ एक क्षेत्रावगाहरूप बन्ध होता है।

यदि परमार्थसे विचारा जावे तो आत्मा स्वतंत्र द्रव्य है, और यह जो स्पर्श रस गन्ध वार्ण वाला पुद्गल-द्रव्य है वह स्वतंत्र है। इन दोनोंके परिणमन भी अनादि कालसे स्वतंत्र है, परन्तु इन दोनोंमे जीव-द्रव्य चेतन गुणवाला है और उसमे यह शक्ति है कि जो पदार्थ उसके सामने आता है, वह उसमे झलकता है—प्रतिभासित होता है। पुद्गलमें भी एक परिणमन इस तरहका है कि जिससे उसमे भी रूपी-पदार्थ झलकता है पर 'मेरेमे यह प्रतिभासित है' ऐसा उसे ज्ञान नही। इसके विपरीत आत्मामे जो पदार्थ प्रतिभासित होता है उसे यह भान होता है, कि ये पदार्थ मेरे ज्ञानमे आये।

यही आपत्तिका मूल है, क्योंकि इस ज्ञानके साथमे जब मोहका सम्बन्ध रहता है, तब यह जीव उन प्रतिभासित पदार्थो को अपनानेका प्रयास करने लगता है। यही कारण अनन्त ससारका है। प्रत्येक मनुष्य यह मानता है कि पर-पदार्थका एक अश भी ज्ञानमे नही आता, फिर न जाने क्यों उसे अपनाता है। यही महती अज्ञानता है। अत. जहाँ तक सम्भव हो आत्म-द्रव्यको आत्म-द्रव्य ही रहने दो। उसे अन्य रूप करनेका जो प्रयास है, वही अनन्त ससारका कारण है।

ऐसा कौन बुद्धिवान होगा, जो पर-द्रव्यको आत्मीय-द्रव्य कहेगा? ऐसा सिद्धान्त है कि, जो जिसका भाव होता है वह उसका स्व-धन है। जिसका जो स्व है वह उसका स्वामी है। अतः यह निष्कर्ष निकला कि अन्य द्रव्य अन्यका स्व नही, तब अन्य द्रव्य अन्यका स्वामी कैसे हो सकता है।

यही कारण है कि ज्ञानी जीव परको नही ग्रहण करता। मै भी ज्ञानी हूँ अत. मै भी परको ग्रहण नही करूँगा। यदि मै पर-द्रव्यको

ग्रहण करूँ तो यह अजीव-तत्त्व (शरीरादि) मेरा स्व हो जावे और मै अजीवका स्वामी हो जाऊँगा। अजीवका स्वामी अजीव ही होगा। अतः हमें बलात्कार अजीव होना पडेगा। परन्तु ऐसा नहीं है। मै तो ज्ञाता दृष्टा हूँ, अतः पर-द्रव्यको ग्रहण नहीं करूँगा।

जब पर-द्रव्य (शरीरादि पुद्गल) मेरा नही, तब वह छिद जावे, भिद जावे, कोई ले जावे, अथवा जिस किस अवस्थाको प्राप्त हो जावे, पर मै उसे ग्रहण नही करूँगा। यही कारण है कि सम्यग्ज्ञान धर्म अधर्मको (पुण्य पापको) तथा अशन पान आदिको नही चाहता।

ज्ञानमय ज्ञायक भावके सद्भावसे वह धर्म (पुण्य) का केवल ज्ञाता दृष्टा रहता है। जब ज्ञानी-जीवके धर्मका ही परिग्रह नहीं तब अधर्म (पाप)का परिग्रह तो सर्वथा असम्भव है। इसी तरहसे न अशनका परिग्रह है, और न पानका परिग्रह है, क्योंकि इच्छा परिग्रह है, और ज्ञानी जीवको इच्छाका परिग्रह नही। इनको आदि देकर जितने प्रकारके पर-द्रव्यके भाव है, तथा पर-द्रव्यके निमित्तसे आत्माम जो भाव (इच्छा आदि) होते हैं उन सबको ज्ञानी-जीव नही चाहता।

इस पद्धतिसे जिसने सर्व अज्ञान-भावोंका वमन कर दिया है, तथा सर्व पदार्थोंके आलम्बनको त्याग दिया है, केवल टकोत्कीर्ण एक ज्ञायक-भावका अनुभव करता है, उसके बन्ध नही होता है।

योगके निमित्तसे भी यद्यपि बन्ध होता है, पर वह स्थिति और अनुभागसे रहित होनेके कारण अकिंचित्कर है। जिस प्रकार चूना आदिके श्लेषके बिना केवल ईंटोके समुदायसे महल नही बनता। उसी प्रकार रागादि परिणामके बिना केवल मन वचन कायके व्यापारसे बन्ध नही होता। अत. प्रयत्न कर इन रागादि विकारोके जालसे बचना चाहिये।

मै शरीरादिसे भिन्न ज्ञाता दृष्टा लक्षणवाला स्वतत्र द्रव्य हूँ। मेरी जीवनमें जो स्पृहा है वही बन्धका कारण है। यह जो इन्द्रिय मन वचन काय श्वासोच्छवास तथा आयु व प्राण वाले पुतलेमे हमारी स्पृहा है, यही तो बन्धका मूल कारण है। हम जिस पर्यायमे जाते है उसीको निज मान बैठते हैं। उसके अस्तित्वसे अपना अस्तित्व मानकर पर्याय-बुद्धि हो पर्यायके अनुरूप ही समस्त व्यवहार कर पर्यायान्तरको प्राप्त

होते हैं। इससे यह अर्थ ही तो निकला कि हम पर्याय बुद्धिसे अपनी जीवनलीला पूर्ण करते है ?

५. संवर निर्जरा तत्त्व (सागर प्रवचन-पर्यूषण वि० सं० २००९)

नवम अध्यायमें सवर और निर्जरा तत्त्वका वर्णन है। मोक्षके साधकमे दो ही तत्त्व है। नवीन कर्मोंका आस्रव रुक जाय, यही संवर है और पूर्वबद्ध कर्मोंका क्रम क्रमसे खिर जाना निर्जरा है।

'संवर' गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह-जय और चारित्रके द्वारा होता है। यहाँ आचार्यने सबसे प्रथम गुप्तिका उल्लेख किया है। समस्त आस्रवोंका मूल कारण (मन वचन व काय रूप त्रिविध) योग है। यदि योगों पर नियंत्रण हो गया तो आस्रव अपने आप रुक जावेगे। इस तरह गुप्ति ही यहाँ सवर है।

परन्तु गुप्ति प्राप्त होना सहज नही। गुप्तिरूप अवस्था सतत नही रह सकती, अत. उसके अभावमें प्रवृत्ति करनी पडती है। तब आचार्यने आदेश दिया कि भाई ! यदि प्रवृत्ति ही करना है तो प्रमाद रहित प्रवृत्ति करो। प्रमाद रहित प्रवृत्तिका नाम समिति है। मनुष्य चलता है, बोलता है, खाता है, किसी वस्तुको उठाता धरता है और मल मूत्रादिका त्याग करता है। इनके सिवाय यदि अन्य कर्म करता हो तो बताओ ? उसके समस्त कार्य इन पाँच कर्मोंमे अन्तर्गत हो जाते है। आचार्य महाराजने पाँच समितियो द्वारा इन पाँचो कर्मों पर पहरा बैठा दिया है। अनीतिमे प्रवृत्ति हो तो कैसे हो ?

[धर्म व चारित्रका कथन आगे पृथक अधिकारमें विस्तारके साथ किया गया है। अनुप्रेक्षा व परीषह-जयका कथन यद्यपि पृथकसे नही किया है, तथापि प्रसंग पाकर उनका भी कथन यत्र तत्र हो ही गया है]

[निर्जरा-तत्त्वका कथन अगले अधिकारमे तप-धर्मके अन्तर्गत किया जानेवाला है]

६. मोक्ष तत्त्व (सागर प्रवचन-पर्यूषण वि० सं० २००९)

बन्धके कारणोंका अभाव और पूर्वबद्ध कर्मोंकी निर्जरा होनेसे जो समस्त कर्मोंका आत्यन्तिक क्षय हो जाता है, वह मोक्ष कहलाता है।

निश्चय से तो सब द्रव्य स्वतन्त्र हैं। जीव स्वतन्त्र है, और कर्मरूप पुद्गलद्रव्य भी स्वतन्त्र है। इनका बन्ध नही। जब बन्ध नही तब मोक्ष किसका ?

इस तरह निश्चयकी दृष्टिसे तो बन्ध और मोक्षका व्यवहार बनता नही है, परन्तु व्यवहारकी दृष्टिसे जीव और कर्मरूप पुद्गल-द्रव्यका एक-क्षेत्रावगाह हो रहा है। इसलिये दोनोका बन्ध कहा जाता है, और जब दोनोंका एक-क्षेत्रवगाह मिट जाता है, तब मोक्ष कहलाने लगता है।

इसप्रकार परपदार्थोंसे भिन्न आत्माकी जो परिणति है, वही मोक्ष है। इस परिणतिके प्रगट होनेमें सबसे अधिक बाधक मोह-कर्मका उदय होता है। इसलिये आचार्य महाराजने आज्ञा की है कि सर्वप्रथम मोह-कर्मका क्षय कर तथा उसके बाद शेष तीन घातिया कर्मोंका क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करो। उसके बाद ही अन्य अघातिया कर्मोंका क्षय होनेसे मोक्ष प्राप्त हो सकेगा।

मोहका अभाव होते ही ज्ञानावरण दर्शनावरण तथा अन्तराय ये तीन कर्म रक्षकके अभावमे अनन्य शरण हो अन्तर्मुहूर्तमे नष्ट हो जाते है। इनका नाश होते ही ज्ञान गुणका शुद्ध परिणमन हो जाता है। जो ज्ञान पहले पराश्रित था वही अब केवलज्ञान पर्याय पाकर आदित्य-प्रकाशवत् स्वय प्रकाशमान होना हुआ समस्त पदार्थोंका ज्ञाता हो जाता है और कभी स्वरूपसे च्युत नही होता।

मोह-प्रकृतिके निकल जानेपर जो अघातियाकी ८५ प्रकृतियाँ शेष रहती है, यद्यपि उन्हे जली हुई रस्सीके समान निर्बल कहा गया है, परन्तु ऐसी निर्बल नही समझ लेना कि कुछ कर ही नही सकती हों। निर्बल होनेपर भी उनमें इतनी शक्ति है कि वे देशोन-कोटि-पूर्व तक इस आत्माको केवलज्ञान हो जाने पर भी मनुष्य शरीरमें रोके रखती है। फिर निर्बल कहनेका तात्पर्य यही है कि वे इस जीवको आगेके लिये बन्धन युक्त नही कर सकती।

इनका लय हो जानेपर यह जीव सदाके लिये मुक्त हो जाता है। तथा उर्ध्वगमन स्वभावके कारण एक समयमे सिद्धालयमें पहुँच कर विराजमान हो जाता है। यही जैनागममे मोक्षकी व्यवस्था है। ●

५—सम्यक्ज्ञान

•

१. **सम्यक् पुरुषार्थ** (अलीगढ प्रवचन माघ वि० सं० २००५)

आत्मा अपने ही अपराधसे संसारी बना है, और अपने ही प्रयत्नसे मुक्त हो जाता है। जब यह आत्मा मोही रागी द्वेषी होता है तब स्वयं संसारी हो जाता है तथा जब राग द्वेष मोहको त्याग देता है, तब स्वयं मुक्त हो जाता है। अतः जिन्हे संसार बन्धनसे छूटना है, उन्हें उचित है कि राग द्वेष मोह छोडें।

आत्म-परिणतिको निर्मल बनाने का जो उपाय है, उनमें सर्वश्रेष्ठ आत्मावबोध है। परसे भिन्न अपनेको मानो। भेद-विज्ञान ही ऐसी वस्तु है जो आत्माका बोध कराता है। स्वात्मबोधके बिना रागद्वेषका अभाव होना अति कठिन क्या असम्भव है। अतः आवश्यकता इस बातकी है कि तत्त्वज्ञान सम्पादन किया जाय।

हेयोपादेय तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान आगमके अभ्याससे होता है, परन्तु हम लोग उस ओरसे विमुख हो रहे है। श्री कुन्द-कुन्द स्वामीने तो यहाँ तक लिखा है कि—

"साधुका चक्षु आगम है, ससारके समस्त प्राणियोंका चक्षु इन्द्रिय है, देवोंका चक्षु अवधिज्ञान हे, और सिद्ध परमेष्ठीका चक्षु सर्वदर्शी केवलज्ञान है। इसलिये अवसर (मनुष्यभव) पाया है, तो अहर्निश आगमका अभ्यास करो।

२. स्वाध्याय

आगमाभ्यास ही जीवादिक तत्त्वोको जाननेमें मुख्य कारण है। जिनको आत्म-कल्याणकी लालसा है, वे आप्त-कथित आगमका अभ्यास करो।

छह आभ्यन्तर तपोमे स्वाध्याय सर्व-प्रधान तप बतलाया गया है। कारण यह कि इससे आत्मा और अनात्माका बोध होता है। आचार्यकी बुद्धि देखो, उन्होने शास्त्र पढनेके लिये 'स्वाध्याय' यह कितना सुन्दर शब्द चुना है। अरे! शास्त्र पढते हो उसके लिये 'शास्त्राध्याय' शब्द चुनते पर उन्होंने स्वाध्याय शब्द चुना है। इसका तात्पर्य यह है कि शास्त्र पढ़कर स्व को पढ़ो—अपने आत्माको पहचानो।

यदि ग्यारह अग और नौ पूर्व पढकर भी पढ़नेके बाद स्व को न पढ़ सके तो उस भारभूत ज्ञानसे कौन-सा लाभ होने वाला है? जैन-सिद्धान्तमे अनेक शास्त्रोंको जाननेकी प्रतिष्ठा नही है, किन्तु सम्यग्ज्ञान की प्रतिष्ठा है। यहाँ तो मात्र तुषमाषको भिन्न-भिन्न जानने वाले मुनिको केवलज्ञानकी प्राप्ति बताकर मोक्ष पहुँचनेकी बात लिखी है। अतः ज्ञान थोड़ा भी हो तो हानि नही, परन्तु मिथ्या न हो इस बातका ध्यान रक्खो।

मुझे ऐसा लगने लगा है कि बहुत बोलना जिस प्रकार आत्म-शक्तिको दुर्बल करनेका कारण है, उसीप्रकार बहुत सुनना भी आत्म-शक्तिके ह्रासका कारण है। आगमाभ्यास भी उतना ही सुखद है जितना कि आत्मा धारण कर सके। बहुत अभ्यास यदि धारणासे रिक्त है, तो जैसे उदराग्निके बिना गरिष्ठ भोजन लाभदायक नही, वैसे ही वेदाभ्यास (शास्त्राभ्यास) भी लाभदायक नही, प्रत्युत हानिकारक है।

३. स्व-पर-भेद विज्ञान

ज्ञाता दृष्टा आत्मा स्व-द्रव्य है और कर्म नोकर्म पर-द्रव्य है। अनादि कालसे जीव पर-द्रव्यका ग्रहणकर इसका स्वामी बन रहा है। पर-द्रव्यको स्व माननेमे अज्ञान (मिथ्यात्व) ही मूल कारण है। अन्यथा ऐसा कौन विवेकी होगा जो परको जानता हुआ भी उसे ग्रहण करे।

एक धोबीके यहाँ किसीकी चद्दर बदली गई। उसने धोबीसे कहा। धोबी उस दूसरे व्यक्तिके घर गया। वह चद्दर ओढ़कर सूता था। धोबीके जगाने और बताने पर कुछ लज्जित हुआ तथा तुरत चद्दर लौटा दी।

जिस प्रकार स्व-पर-द्रव्यकी बात कही उसीप्रकार स्व-पर-भावकी भी जानना। जिसका जो भाव (या गुण) होता है वही उसका स्व है और वही उसका स्वामी है। जिसका जो भाव नही होता है वह उसका स्वामी भी नही होता है। चेतना ही आत्माका स्व-भाव है इसलिये आत्मा उसका ही स्वामी है। रागादि भाव आत्माके स्व-भाव नही है इसलिये वह उसका स्वामी भी नही है। तब ज्ञानी मनुष्य परका (रागादिका) ग्रहण कैसे कर सकता है।

(दिल्ली प्रवचन आषाढ सुदी २ वि० स० २००६)

८ आत्मा मोहोदयके कारण पर पदार्थोमें आत्मबुद्धि कर दुःखी हो रहा है। एक प्रज्ञा ही ऐसी प्रबल छैनी है कि जिसके पडते ही बन्ध और आत्मा जुदे-जुदे हो जाते है। आत्मा और अनात्माका ज्ञान कराना प्रज्ञाके आधीन है। जब आत्मा और अनात्माका ज्ञान होगा तब ही तो मोक्ष हो सकेगा। परन्तु इस ज्ञान रूपी छैनीका प्रयोग बड़ी सावधानीसे करना चाहिये। बुद्धिमे निजका अंश छूटकर परमे न मिलजाय और परका अंश निजमे न रह जाय, यही सावधानीका मतलब है ॥

धन धान्यादि जुदे है, स्त्री पुत्रादि जुदे है, शरीर जुदा है, रागादि भाव जुदे है, द्रव्य-कर्म जुदे है, मतिज्ञान आदि क्षायोपशमिक ज्ञान जुदे है, यहाँ तक कि ज्ञानमे प्रतिबिम्बित होनेवाले ज्ञेयके आकार भी जुदे है। इसप्रकार स्वलक्षणके बलसे भेद करते-करते अन्तमें जो शुद्ध चैतन्य भाव बाकी रह जाता है, वही निजका अश है। वही उपदेय है। उसीमे स्थिर हो जाना मोक्ष है। प्रज्ञाके द्वारा जिसका ग्रहण होता है, वही चैतन्य रूप मै हूँ।

इसप्रकार चेतनातिरिक्त पदार्थोको पर-रूप जानता हुआ, ऐसा कौन बुद्धिमान है जो कहे कि ये मेरे है। शुद्ध-आत्माको जाननेवालोंके ये भाव कदापि नही हो सकते।

जो चोरी आदि अपराध करता है, वह शंकित हो कर घूमता है, कि कोई मुझे चोर जानकर बान्ध न ले। पर जो अपराध नहीं करता है वह सर्वत्र निःशङ्क होकर घूमता है। 'मैं बान्धा न जाऊँ' इसप्रकार की चिन्ता ही उसे उत्पन्न नहीं होती। इसी प्रकार जो आत्मा पर-भावों को ग्रहण कर चोर बनता है। वह हमेशा शङ्कित ही रहेगा और संसारके बन्धनमें बन्धेगा। सिद्धिका न होना ही अपराध है। अपराधी मनुष्य सदा शङ्कित रहता है। अतः यदि निरपराधी बनना है तो आत्माकी सिद्धि करो। आत्मासे पर-भावोंको जुदे करो।

अमृतचन्द्र स्वामी कहते हैं कि मोक्षार्थी पुरुषोंको सदा इस सिद्धान्त-की सेवा करना चाहिये, कि मै शुद्ध चैतन्यज्योति-स्वरूप हूँ और जो ये अनेक भाव प्रतिक्षण उल्लसित होते हैं, वे सब मेरे नही है, स्पष्ट पर-द्रव्य हैं। ●

६–समयसार रहस्य

१. सामान्य परिचय (कटनी प्रवचन फाल्गुन कृ० १० सं० २००९)

श्री कुन्द-कुन्द भगवानने ८४ प्राभृत बनाये है। उनमें कतिपय अब भी प्रसिद्ध हैं। उन प्रसिद्ध प्राभृतोमे समयसारकी बहुत प्रसिद्धि है।

सिद्ध भगवानको नमस्कार करनेके पश्चात् कुन्द-कुन्द भगवान कहते है कि श्रुतकेवलीने जैसा कहा वैसा कहूँगा। इससे यह द्योतित होता है कि परम्परासे यह उपदेश चला आया है। मै वैसा ही कहूँगा। इससे यह ध्वनि निकलती है, कि मेरे अनुभवमे भी आ गया है।

तथा इसी बातको आगे एक गाथामे स्पष्ट रूपसे कह भी दिया है, कि जो आत्मा आज तक न सुननेमे आई है, न परिचयमे और न अनुभवमे, परसे भिन्न उस आत्माके एकत्वका मै अपने विभवके अनुसार निरूपण करूँगा। साथमे यह भी बताया कि मेरा विभव यह है कि मैने स्याद्वाद-पद-विभूषित शब्द-ब्रह्मका अच्छा अभ्यास किया है। एकान्त-वाद द्वारा जो उसकी बाधक युक्तियाँ है, उनको निरस्त करनेमें समर्थ युक्तियोकी पूर्णता प्राप्त की है। परपर गुरुओंका उपदेश भी मुझे प्राप्त है, तथा वैसा अनुभव भी है। इतने पर निर्णय करना। छल ग्रहण कर अमार्गका अवलम्बन मत करना।

इस ग्रन्थराजमे स्वामीने यह प्रतिज्ञा की है कि मै समय-प्राभृत कहूँगा। यहाँ आशंका होती है कि 'समय' क्या पदार्थ है? इस आश-

ङ्काका स्वयं स्वामी उत्तर देते हैं कि जो सम्यग्दर्शन ज्ञान तथा चारित्रमें स्थित है उसे स्व समय और जो इससे भिन्न पुद्गल-कर्म-प्रदेशमें स्थित है उसे पर समय कहते है। यह दोनो जिसमें पाये जायें उसीका नाम जीव जानो, चाहे समय जानो।

इसके बाद स्वामीने इस समय या जीवके स्वरूपमें द्वैविध्यको आपत्ति-जनक बताया है, अर्थात् यह द्वैविध्य शोभनीक नही है। एकत्व-प्राप्त जो समय है वही सुन्दर है। जहाँ द्वैविध्य हुआ वहाँ ही बन्ध है, संसार है। जैसे माँके पुत्र पैदा होता है, तो स्वतंत्र होता है। जहाँ उसका विवाह हुआ, परको अपनाया—ब्रह्मचारीसे गृहस्थ हुआ, वहाँ उसकी स्वतन्त्रताका हरण हो गया, वह ससारी बन गया। इसी तरह आत्माने जहाँ परको (कर्म व रागादिको) अपनाया वही उसका एकत्व चला गया।

इस '*समय*' *या जीवकी प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है, क्योंकि अनादिसे* काम-भोगकी कथा सुनी, वही परिचयमे आई और वही अनुभवमे आई। आत्माका जो एकत्व (परसे भिन्नत्व) था उसे कषाय चक्रके साथ एकमेक होनेसे न तो सुना, न परिचयमे लाया और न अनु-भवमे लाया।

वह शुद्ध-आत्मा वास्तवमे न तो प्रमत्त कही जा सकती है न अप्रमत्त। वह तो केवलज्ञान वाली है, और उसीको शुद्ध कहते है। वही ज्ञाता है अर्थात् आत्माकी कोई भी अवस्था हो वह ज्ञायकभावसे शून्य नही होती। जैसे मनुष्यकी बाल्यादि अनेक अवस्थाये होती हैं, परन्तु वे ज्ञायकभावसे शून्य नही होती। यही कारण है कि आत्माका लक्षण अन्यत्र चेतना कहा है।

२. पर्यायकी कथञ्चित सत्यता

श्री स्वामीने प्रथम गाथामें सिद्ध-भगवानको नमस्कार कर यह प्रतिज्ञा की कि मै समय-प्राभृतका परिभाषण करूँगा और यह भी लिखा कि श्रुतकेवली भगवान्ने जैसा कहा वैसा करूँगा। इससे यह द्योतित होता है कि वर्तमानमें हमारी आत्मामे सिद्ध पर्याय नही है, अर्थात् संसार पर्याय है।

जीवकी दो प्रकारकी पर्यायें होती है—एक संसार और दूसरी मोक्ष। हम दोनों पर्यायोंको सत्य मानते हैं। जब कि ये अपने-अपने कारणोंसे होती हैं, तब एकको सत्य और दूसरीको असत्य मानना, यह हमारे ज्ञानमें नही आता। हाँ यह अवश्य है कि एक पर्याय अनादि सान्त है और दूसरी सादि अनन्त है। इन दोनो पर्यायोंका आधार आत्मा है।

एक पर्याय आकुलतामय है क्योकि उसमें पर-पदार्थोंका सपर्क है और दूसरी आकुलतासे रहित है, क्योंकि उसमेंसे पर-पदार्थोंका संपर्क दूर हो गया है। जहाँ पर-पदार्थोंके सपर्कको जीव निज मानता हैं, और जहाँ परमे निजत्वकी कल्पना करता है, वही आपत्तियोकी उत्पत्ति होने लगती है।

४. कर्ता-कर्म विचार

[आज कुन्दकुन्द भगवानके समयसार ग्रन्थकी बडी प्रसिद्धि है। इसमें कर्ता-कर्म अधिकार बडा रहस्यमयी है। पर-भावोंसे सर्वथा भिन्न तथा एकत्वको प्राप्त ऐसे शुद्धात्मामें] कर्तृत्व तथा कर्मत्व हो सकता है या नही? इस पर विचार किया है। यह विचार दो दृष्टियोसे हो सकता है—एक तो शुद्ध दृष्टिसे तथा दूसरा अशुद्ध दृष्टिसे।

कर्ता किसे कहते है? जो परिणमन करता है वह कर्ता है। कर्म किसे कहते है? उसमे जो परिणमन होता है वह उसका कर्म है। यह कथन (वास्तवमें) निमित्तकी गौणता कर दिखाया है। उसे लोक सर्वथा मान लेते हैं। यही परस्पर विवादका स्थल बन जाता है।

अमृतचन्द्र स्वामीने मङ्गलाचरणमें लिखा है कि 'मै एक कर्ता हूँ ये जो क्रोधादि भाव है ये मेरे कर्म है', ऐसी अज्ञानी-जनोंकी अनादि कालसे कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति चली आती है। परन्तु जब सब द्रव्योको भिन्न-भिन्न दर्शानेवाली ज्ञान-ज्योति उदयको प्राप्त होती है, तब यह सब नाटक शान्त हो जाता है। इससे यह निश्चय हुआ कि यह नाटक, जब तक इसकी विरोधी ज्ञान-ज्योति उदित नही हुई तब तक सत्य है। आपकी इच्छा, चाहे इसे व्यवहार कहो या अशुद्ध दशा कहो।

कर्तृ-कर्माधिकारमे स्वामीने यही तो लिखा है कि जब तक 'आत्मा' आस्रव और आत्माके विशेष अन्तरको नही जानता तब तक यह

अज्ञानी है, और इसी अवस्थामें क्रोधादिमें प्रवृत्ति करता है। यहाँ क्रोध उपलक्षण है अतः मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योगका ग्रहण समझना चाहिये। क्रोधादि कषायोंमें प्रवर्त्तमान जीवके बन्ध होता है, यह बतलाया है।

आत्माका ज्ञानके साथ तादात्म्य-सिद्ध सम्बन्ध है, अर्थात् वह सम्बन्ध कृत्रिम नही, किन्तु अनादिकालसे चला आया है। यही कारण है कि आत्मा निःशंक होकर ज्ञानमे प्रवृत्ति करता है। करता क्या है ? स्वाभाविक यह प्रवाह चला आ रहा है और चलता रहेगा। इसीप्रकार यह जीव संयोग-सम्बन्ध-युक्त जो क्रोधादिक भाव है, उनके विशेषको न जानता हुआ अज्ञानके वशीभूत हो उनमें प्रवृत्ति करता है।

यह जीव जिस कालमे क्रोधादिको निज मानता है उस कालमे, क्रोधादिक भावरूप क्रिया परभाव होनेसे यद्यपि त्याग-योग्य है तो भी उस क्रियामें स्वभाव-रूपका निश्चय होनेसे यह उन्हे उपादेय मानता है, जिससे कभी क्रोध करता है, कभी राग करता है और कभी मोह करता है।

यहाँ पर आत्मा अपनी उदासीन अवस्थाका त्याग कर देती है। अतएव इन क्रोधादि भावोंका कर्ता बन जाती है। और ये क्रोधादि उसके कर्म होते है। इस प्रकारसे यह अनादिजन्य कर्ता-कर्मकी प्रवृत्ति धारावाही रूपमे चली आ रही है। अतएव अन्योन्याश्रित दोषको यहाँ अवकाश नही।

शंका—यहाँ पर क्रोधादिके साथ जो (तादात्म्य न कह कर) संयोग-सम्बन्ध कहा गया है। उसका क्या तात्पर्य है ? क्रोधादि तो आत्माके विकृत भाव है और ऐसा नियम है कि द्रव्य जिस कालमें जिस रूप परिणमता है उस कालमे तन्मय हो जाता है। जैसे लौहका पिण्ड जिस समय अग्निसे तपाया जाता है, उस समय अग्निमय हो जाता है। एव आत्मा जिस समय क्रोधादि रूप परिणमता है उस कालमे वह उनके साथ तन्मय हो जाता है, फिर क्रोधादिकोंके साथ उसका (दण्ड दण्डी वत्) संयोग-सम्बन्ध कहना संगत कैसे हुआ ?

उत्तर—यह आपका प्रश्न ठीक है किन्तु यहाँ जो वर्णन है, वह निमित्तकी प्रधानतासे है। औपाधिक भावोंको निमित्त-जन्य होनेसे

निमित्तकी मुख्यता कर निमित्तके कह दिये हैं, ऐसा समझना चाहिये। क्रोधादि भाव चारित्र-मोहके उदयसे होते हैं और चारित्रमोह पुद्गल-द्रव्य है। उसका आत्माके साथ सयोग-सम्बन्ध है, अतः उसके उदयमें होनेवाले क्रोधादिका भी संयोग-सम्बन्ध कह दिया है।

मेरी तो यह श्रद्धा है कि रागादिक तो दूर रहो मतिज्ञानादिक भी क्षयोपशम-जन्य होनेसे निवृत्त हो जाते है। अपनी परिणति अपने आधीन है, उसे पराधीन मानना ही अनर्थकी जड़ है और अनर्थ ही ससारका मूल है। ●

७–उपादान-निमित्त चर्चा

•

१. एकान्त उपादान पक्षका निराकरण (सागर प्रवचन पर्यूषण सं० २००९)

(१) आश्विन कृष्ण ८ वि० सं० २००७ को राजकोटसे डाक्टर और मोहन भाई इटावा आये थे। निमित्त-उपादानकी चर्चामे विशेष आनन्द नही, फिर भी लोग यही करते है। आत्माका कल्याण हो, यह मुख्य प्रयोजन है। वह उपादानकी प्रधानतासे हो या निमित्तकी प्रधानतासे हो, पर हो, यही मुख्य उद्देश्य है।

उपादानको मुख्य मानने वालोका कहना है कि जब मृत्तिकामें घट पर्यायकी उत्पत्ति होती है, तब वहां कुम्भकारकी उपस्थिति स्वयमेव हो जाती है। यहाँ पर यह कहना कि घटोत्पत्ति स्वयमेव मृत्तिकामे होती है, इसका क्या अर्थ है? जिस काल मृत्तिकामे घट होता है, उस कालमे क्या कुम्भकारादि से निरपेक्ष घट होता है या सापेक्ष होता है?

यदि निरपेक्ष घटोत्पत्ति होती है तो एक भी उदाहरण ऐसा बताओ कि मृत्तिकामे कुम्भकारके बिना घट हुआ। सो तो देखा नही जाता। यदि सापेक्ष पक्षको अङ्गीकार करोगे तो स्वयमेव यह अर्थ आ गया कि कुम्भकारके व्यापारके बिना घटकी उत्पत्ति नही होती। इसका अर्थ यह है कि कुम्भकार घटोत्पत्तिमे सहकारी निमित्त है।

जैसे आत्मामें रागादि परिणाम होते हैं तहाँ यद्यपि आत्मा ही उनका उपादान कर्ता है, परन्तु चारित्र-मोहके उदय बिना रागादि नही होते। यह बात पहले 'बन्ध' वाले प्रकरणमे सिद्ध की जा चुकी है।

(२) दिल्लीसे इटावा जाते हुए मार्गमें कुरावली आये थे। यहाँ पर जो पण्डित है वे उपादानको ही मुख्य मानते है। निमित्त हाजिर हो जाता है। हाजिर शब्दका अर्थ क्या ? शून्य। कहाँ तक कहा जावे। विवादके सिवाय कुछ नही। हठवादका उत्तर यथार्थ होना कठिन है। यदि मनुष्योको हठ न होती तो ३६३ मत न चलते। आत्माके अभिप्राय असख्यात है। अत उतने ही विकल्प मतोके हो सकते है। संग्रहसे ३६३ बतला दिये। तात्त्विक दृष्टि जब आती है, तब सर्व पक्षपात विलय जाते है।

२. उपादान निमित्त समन्वय

(१) कोई किसीको न तो बनाने वाला है, और न कोई किसीका विनाश करनेवाला है। पदार्थोंमे परिणमन स्वयमेव हो रहा है। कुम्भ-कारका निमित्त पाकर घट बन जाता अवश्य है, पर न तो कुम्भकार मिट्टीमें कुछ अतिशय कर कर देता है, और न मिट्टी कुम्भकारमे कुछ अतिशय पैदा कर देती है। कुम्भकारका व्यापार कुम्भकारमे होता है और मिट्टीका व्यापार मिट्टीमे। फिर भी लौकिक व्यवहार ऐसा होना है कि कुम्भकार घटका कर्ता है। यह भी निर्मूल कथन नही। इसे सर्वथा न मानना भी युक्ति संगत नही।

(२) श्री पार्श्वनाथकी प्रतिमा तो चित्तको शान्त करनेमें अद्वितीय निमित्त है। यद्यपि उपादानमे कार्य होता है, परन्तु निमित्त भी कोई वस्तु है। मोक्षका कारण रत्नत्रयकी पूर्णता है, परन्तु कर्मभूमि, चरम शरीर आदि भी सहकारी कारण है।

(३) हे प्रभु ! आप किसीको कुछ नही देते, तब भी आपके गुणोके अनुरागमे रत् प्राणी तज्जन्य पुण्यके हेतु मे स्वतः शान्तिलाभ करते है। फिर भी व्यवहारमे ऐसा कथन होता है कि आप पतित-पावन है। यह कथन निमित्त-कारणकी अपेक्षा है, और वह भी उदासीन, प्रेरक नही है, जैसे मछलीके गमनमे जल। यदि जीव शुभ परिणाम करे तो

भगवान निमित्त हैं, यदि न करे तो वे निमित्त नही। वस्तुकी मर्यादा ऐसी ही है। परन्तु उपचारसे कथन शैली नाना प्रकारकी है।

(४) इटावामे एक महाशय कुरावलीसे भी आये। उनकी यह श्रद्धा है कि उपादानसे ही कार्य होता है। उपादानमे कार्य होता है, इसमें किसीको विवाद नही परन्तु उपादानसे ही होता है, यह कुछ सगत नही। क्योंकि कार्यकी उत्पत्ति पूर्ण सामग्रीसे होती है। न केवल उपादानसे और न केवल निमित्त से ही। शास्त्रमे लिखा है 'सामग्री जनिका कार्यस्य।' अतः अनेकान्त दृष्टिसे पदार्थका विवेचन हो तो अच्छा है।

(५) मेरी समझके अनुसार जब दोनोकी अनुकूलता होती है तभी कार्यकी सिद्धि होती है। कुम्भकारके व्यापारसे निरपेक्ष केवल मृत्तिकासे घटकी उत्पत्ति नही हो सकती, और मृत्तिकासे निरपेक्ष केवल कुम्भ-कारके व्यापारसे भी घटकी रचना नही हो सकती। दोनो सापेक्ष रहकर ही कार्य उत्पन्न कर सकते है।

(६) पदार्थोकी उत्पत्ति उपादान कारण और सहकारी कारणोंसे होती है। उपादान एक और सहकारी अनेक होते है। जैसे घटकी उत्पत्तिमे एक मृत्तिका तो उपादान कारण है, और कुलाल [चक्र चीवर] आदि अनेक सहकारी कारण है। इसीलिये प्राचीन आचार्योने जहाँ कारणके स्वरूपका निर्वचन किया है वहाँ 'सामग्री जनिका कार्यस्य, नैक कारण', अर्थात् सामग्री ही कार्यकी जनिका है, एक कारण नही, यही तो लिखा है। अत इस विषयमे कुतर्क करना विद्वानोको उचित नही है।

(७) यहा पर मुख्य गौण न्यायकी आवश्यकता नही। वस्तु-स्वरूप जाननेकी आवश्यकता है। 'अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्यकारण भाव.', अर्थात् कार्यकारणभाव अन्वय और व्यतिरेक दोनोमे जाना जाता है, अत दोनो ही मुख्य है। जब उपादानकी अपेक्षा कथन करते है तब 'घटका कारण मिट्टी है', और निमित्तकी अपेक्षा किया जावे तो 'कुलालादि कारण है'। यदि इस प्रक्रियाको स्वीकार न करोगे तो कदापि कार्यकी सत्ता न बनेगी। इस विषयमे वाद-विवाद करना मस्तिष्कको उन्मत्त बनानेकी पद्धति है।

इसी प्रकार जो भी कार्य हो उसमे उपादान और निमित्त दोनो कारण देखो, व्यर्थके विवादमें न पडो। "निमित्तमें ही यह प्राणी न उलझ जाय, कुछ मूल तत्त्व की ओर भी दृष्टि करे', इस भावनासे प्रेरित होकर कह दिया जाता है कि सिद्धि उपादानसे होती है। जब तक उपादानकी ओर दृष्टिपात न होगा तब तक केवल निमित्तोमे उलझे रहनेसे काम नही होता। और जब कोई उपादान को ही सब कुछ मान निमित्तका उपयोग करनेमे अकर्मण्य हो जाता है, तब निमित्तकी प्रधानतासे कथन होता है, और कहा जाता है कि बिना निमित्त जुटाए कार्य नही होता।

३. आत्माके विभावका सहेतुकत्व

(१) कोई तो श्रीमान देखा जाता है और कोई दरिद्र देखा जाता है। इस विभिन्नतामे भी कोई कारण होना चाहिये। यह विभिन्नता (विषमता) निर्हेतुक नही। जो हेतु है उसीको 'कर्म' नामसे कहा गया है और यही प्रधान अजीव-तत्त्व है। नाममे विवाद नही—चाहे कर्म कहो, अदृष्ट कहो, ईश्वर कहो, खुदा कहो, विधाता कहो, जो आपको रुचिकर हो, परन्तु यह अवश्य मानना कि यह विभिन्नता निर्मूल नही।

साथ ही यह मानना पडेगा कि जो यह दृश्यमान जगत है वह केवल एक जीवका ही परिणाम नही है। केवल एक पदार्थ हो ता उसमें नानात्व कहाँसे आया ? नानात्वका नियामक द्रव्यान्तर होना चाहिये। केवल पुद्गलमे शब्द आदि पर्यायें नही होती। जब पुद्गल-परमाणुओं की बन्धावस्था हो जाती है तभी ये पर्याये होती है। उस अवस्थामे पुद्गल-परमाणुओंकी सत्ता द्रव्यरूपसे अबाधित रहती है। एतावता शब्दादि पर्याये केवल परमाणुओंकी नही किन्तु स्कन्ध-पर्यायापन्न परमाणुओंकी है।

इसी तरह जीव द्रव्यकी जो रागादि पर्याये है वे उदयावस्थापन्न कर्मोके सद्भावमे ही जीवके होती है। यदि ऐसा न माना जाय तो रागादि परिणाम जीवका पारिणामिक भाव हो जायेगा और ऐसा होनेसे समारका अभाव हो जावेगा, जो कि किसीको इष्ट नही।

रागादि भावोका प्रत्यक्षमे सद्भाव देखा जाता है, इससे यही तत्त्व निर्गत होता है कि रागादि भाव औपाधिक है। जैसे स्फटिक-मणि

स्वच्छ है, किन्तु जब उसके साथ जपा-पुष्पका सम्बन्ध होता है तब उसमे लालिमा प्रतीत होती है। यद्यपि स्फटिक-मणि स्वयं रक्त नही किन्तु निमित्तको पाकर रक्तिमामय प्रत्ययका विषय होती है।

(२) श्री कुन्द-कुन्द स्वामीने स्वयं प्रवचनसारमें लिखा है। कि आत्मा जिस समय रागादिरूप परिणमेगा, उस समय नियमसे उसी रूप होगा, तथा पर्याय दृष्टिमें उन्ही रागादिकका उस कालमे अस्तित्व रहेगा। जो भाव करेगा उसीका वर्तमानमे अनुभव होगा।

जल शीत है, परन्तु अग्निके सम्बन्धसे उष्ण पर्यायको प्राप्त करता है। यद्यपि उसमे शक्तिकी अपेक्षा शीत होनेकी योग्यता है, तथापि वर्तमानमे शीत नही है। यदि कोई उसे शीत मानकर पान करे तो दग्ध ही होगा। इसी प्रकार आत्मा यदि वर्तमानमे रागरूप है, तो रागी ही है। इस अवस्थामे वीतरागका अनुभव होना असम्भव है। अतः इस अवस्थामें उसे रागादि रहित मानना मिथ्या है।

एक मनुष्यने मद्यपान किया और उसके नशासे वह उन्मत्त हो गया। हम पूछते है, कि क्या वह वर्तमानमे उन्मत्त नही ? अवश्य उन्मत्त है। किन्तु किसीसे आप प्रश्न करें कि मनुष्यका क्या लक्षण है ? इसके उत्तरमे क्या वह यह कह सकता है कि उन्मत्तता मनुष्यका लक्षण है ? इसी तरह आत्मामे रागादि भाव होने पर भी आत्माका लक्षण रागादि नही हो सकता। लक्षण वह होता है जो सर्व अवस्थाओमें पाया जावे। उसका ऐसा लक्षण तो चेतना ही है।

अनादि कालसे जीव और पुद्गलका सम्बन्ध हो रहा है, उससे दोनों ही अपने अपने स्वरूपसे च्युत हो अन्य अवस्थाको धारण कर रहे है। यद्यपि बिना परिणामके परिणमनका नियामक अन्य कोई नही है। हाँ यह अवश्य है कि, आत्माके चेतना व सुख, वीर्य आदि गुण सदा परिणमनशील होते है। तो भी क्योकि अनादि कालसे आत्मा कर्मोंसे सम्बद्ध है, इसलिये उनका विकास निमित्त कारणोके सहकार से होता है, स्वत निष्कारण नही।

यद्यपि होता उसीमे है परन्तु कर्म रूप निमित्त कारणके बिना नही होता, जैसे कि घटोत्पत्तिकी योग्यता मृत्तिकामे ही होती है, किन्तु कुम्भकारके बिना घट नही बनता। यदि इसे निर्निमित्तक मान

लिया जाय तब तो यह आत्माका त्रिकाल अबाधित स्वभाव हो जावे। सो ऐसा यह भाव (क्षायोपशमिक विकास) नही है। इसका विनाश हो जाता है।

अत यह मानना पडेगा कि यह (ज्ञानादि गुणोका विकास) आत्माका निज भाव नही। इसका यह अर्थ नही कि यह भाव आत्मामे होता ही नही। होता तो है, परन्तु निमित्त कारण की अपेक्षासे होता हैं।

यदि यह कहो कि ऐसा मानने पर मतिज्ञानादि चार ज्ञान भी आत्माके नही हो सकेगे, क्योकि वे भी नैमित्तिक है, तो यह भी हमें इष्ट है। हम तो यहाँ तक माननेको प्रस्तुत है कि क्षयोपशमिक, औदयिक और औपशमिक जितने भी भाव है वे आत्माके अस्तित्वमे सर्वदा नही होते। उनकी तो कथा छोड़ो, क्षायिक भाव भी तो कर्मोके क्षयसे होते है, वे भी अबाधित रूपसे त्रिकालमे नही रहते, इसलिये वे भी आत्माके लक्षण नही है। केवल चेतना ही आत्माका लक्षण है।

ललितपुर प्रवचन (कार्तिक कृ० ११ वि० सं० २००८)—

आत्मा तो ज्ञाता दृष्टा है। उसे रागी द्वेषी मोही बनाया, यह कार्य आत्मासे सर्वथा स्वयमेव नही होता। यदि परकी निमित्तता इसमे न मानी जावे तो आत्मा ही उपादान हुआ और आत्मा ही निमित्त। इस दशामें ये सतत होते रहेगे। कभी भी आत्मा इनसे अलिप्त न होगी। अत किसी भी आत्मामे जो रागादि भाव हैं, वे विकारी भाव है।

जो विकारी भाव होता है वह निमित्तके दूर होने पर स्वयमेव पृथक हो जाता है जैसे अग्निका सम्बन्ध पाकर जलमें जो उष्णता आ जाती है वह उसका स्वाभाविक भाव नही किन्तु औपाधिक भाव है, अत अग्निका सम्बन्ध दूर होनेपर स्वयमेव विलीन हो जाती है। इसी प्रकार मोह दूर होने पर आत्मसे रागादि भाव स्वयमेव विलीन हो जाते है, दूर हो जाते है। ●

८—नियति व भवितव्य

(१) खुरजामे पढता था, तब मैने एक ज्योतिषीसे पूछा कि मैने न्याय-मध्यमाकी जो परीक्षा दी है, क्या उसमे पास हो जाऊँगा ? ज्योतिषीने उत्तर दिया कि पास तो हो जाओगे पर यह निश्चित है कि तुम वैशाख सुदी १३ को ९ बजेके बाद खुरजा नहीं रह सकोगे—चले जाओगे। मैने हँसकर कहा कि मै आपके निर्णयको मिथ्या कर दूँगा।

यद्यपि ज्योतिषीके निर्णयको मिथ्या करनेकी निरन्तर चिन्ता रहती थी, परन्तु वैशाख सुदी १२ को दोपहरके समय मै कमरेके भीतर सो रहा था। अचानक बहुत ही भयानक स्वप्न आया। निद्रा भग होते ही मनमें चिन्ता हुई कि यदि असमयमे मरण हो जावेगा, तो शिखर-जीकी यात्रा रह जावेगी।

[सेठ मेवा रामजीके मना करनेपर भी उन्हीकी सहायता से] गाडीमे बैठ गया। ९ बजे गाडी छूटने लगी तो ज्योतिषीकी बात याद आई। वही वैसाख सुदी १३ के ९ बजे थे। मनमे बड़ा हर्ष हुआ कि अब भी ऐसे निमित्त ज्ञानी है।

(२) एक दिनकी बात है, सब लोग नैनागिरिमें धर्म चर्चा कर रहे थे। मैना-सुन्दरी आदिकी कथा भी प्रकरणमें आ गई। एक बोला—'वर्णी जीका पुण्य अच्छा है।' एक बोला—'मै तो आपको पुण्यात्मा तब मानूँगा जब आज आपको अभी अँगूर मिल जावेंगे। मैने कहा कि यदि मेरे पल्ले पुण्य है तो कौन-सी बड़ी बात है ?'

हँसते-हँसते सब लोग भोजनके लिये बैठे ही थे कि इतनेमें दिल्लीसे अयोध्या प्रमादजी दल्लाल सागर होते हुए नैनागिरि आ पहुँचे और आते ही कहने लगे—'वर्णी जी ! भोजन तो नही कर लिये। मैं ताजा अँगूर लाया हूँ। सब हँसने लगे। भवितव्य दुर्निवार है। ●

९–दशधा धर्म

(सागर प्रवचन-पर्यूषण वि० स० २००९)

●

१. सामान्य निर्देश

वास्तवमे पूछा जाय तो अभिप्रायकी निर्मलता ही धर्म है। कषायोको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। क्रोध मान माया और लोभ चार कषाय है। इनमे क्रोधसे क्षमा, मानमे मार्दव, मायासे आर्जव और लोभसे शौच गुण तिरोहित होते है। ये चार कषाय निकल जावें तो आत्माका उद्धार हो जावे। क्योकि मुख्यमे ये चार गुण ही धर्म है। आगे जो 'सत्य' आदि छ धर्म कहे गए है वे इन्हीके विस्तार है—इन्हीके अङ्ग है।

हमने किसीसे कोई बात कही, उसने नही मानी, हमे क्रोध आ गया। इस प्रकार देखते है कि हमारे जीवनमे जो क्रोध उत्पन्न होता है, उसमे मान प्राय कारण होता है। इसी प्रकार मायाकी उत्पत्ति लोभ से होती है। हमे आपसे किसी वस्तुकी आकाक्षा है, तो उसे पानेके लिये हम इच्छा न रहते हुए भी आपके प्रति ऐसी चेष्टा दिखलावेगे, कि जिससे आपके हृदयमे यह प्रत्यय हो जावे कि यह हमारे अनुकूल है।

जब आत्मासे क्रोध लोभ भीरुत्व तथा हास्यकी परिणति दूर हो जाती है, तो सत्य वचनमे प्रवृत्ति अपने आप होने लगती है। असत्य

बोलनेके कारण दो है—अज्ञान और कषाय। इनमें अज्ञान-मूलक असत्य आत्माका घातक नही, क्योंकि उसमें परिणाम मलिन नही रहते परन्तु कषाय-मूलक असत्य आत्माका घातक है, क्योकि उसमें परिणाम मलिन रहते है।

इन्द्रियोंकी विषयोसे निवृत्ति हो गई, यही सयम है, और यह निवृत्ति तभी हो सकती है, जब लोभ कषायकी निवृत्ति हो जाय। इच्छाओं (लोभ) पर नियंत्रण हो जाना सो तप है। जब इच्छायें घट जावेंगी तब उसके फलस्वरूप त्याग स्वत हो जायेगा। भोजन करते-करते जब भोजन विषयक इच्छा दूर हो जाती है, तब भोजनके त्याग करनेमे देर नही लगती। त्यागके बाद आकिञ्चन्य दशाका होना स्वाभाविक है। जब अपने पास आत्मातिरिक्त किसी पदार्थका अस्तित्व नही रहा तब आत्माका उपयोग आत्मामे ही लीन होगा। यही ब्रह्मचर्य है।

इस प्रकार यह दश धर्मोंका क्रम है।

२. क्षमा धर्म

दस धर्मोंमे क्षमा सर्वोत्तम धर्म है। जिसके क्षमा धर्म प्रगट हो गया उसके मार्दव, आर्जव और शौच धर्म भी अवश्यमेव प्रगट हो जावेगे।

वैसे तो आत्मामे शान्ति सदा विद्यमान रहती है, परन्तु निमित्त मिलनेपर वह कुछ समयके लिये तिरोहित हो जाती है। अग्निका संसर्ग पा कर जल उष्ण हो जाता है, पर वह उसका स्वभाव तो नही कहलाता। जहाँ अग्निका सम्बन्ध दूर हुआ, कि फिर शीतलका शीतल। क्या बतलावे, पदार्थका स्वरूप इतना स्पष्ट और सरल है, परन्तु अनादि कालीन मोहके कारण वह दुरूह हो रहा है।

क्रोधके निमित्तसे आदमी पागल हो जाता है। वस्तुकी यथार्थता उसकी दृष्टिसे लुप्त हो जाती है। वह कुक्कर-वृत्ति पर उतारू हो जाता है। कोई मनुष्य कुत्तेको लाठी मारता है, तो वह लाठीको दान्तोंसे चबाने लगता है, पर सिंह बन्दूकको ओर न झपट कर बन्दूक मारने वालेकी ओर झपटता है। विवेकी मनुष्यकी दृष्टि सिंहकी तरह होती है। वह मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न करता है।

क्रोधका मूल कारण घूसा मारनेवाला व्यक्ति नहीं है, किन्तु क्रोध करने वालेका अपना अज्ञान या मोह ही उसका कारण है। अनादि कालसे पर पदार्थको अपना समझ कर व्यर्थ ही सुखी होता है। उसकी रक्षा आदिमें व्यग्र रहता है। पर ज्यो ही उसे परमे परकीय बुद्धि हो जाती है, उसका त्याग करनेमें उसे देर नही लगती। यही जीवको वह अनादि कालीन भूल है, जिससे वह व्यर्थ ही सुखी दुखी होता है।

क्रोधसे आत्माके संयम गुणका घात होता है। उसके अभावमे प्रगट होने वाला गुण संयम है, चारित्र है। राग और द्वेषके अभावको ही तो चारित्र कहते है। और वह राग द्वेष उपरोक्त अज्ञानमे उत्पन्न होते है। वही घूंसा मारनेमें निमित्त है। अत उसे दूर करना था। घूसा मारने वालेको काटनेसे क्या होगा ?

क्षमाके अभावमे अच्छे-अच्छे आदमी बरबाद हो जाते है। और क्षमाके समक्ष अच्छे-अच्छे मनुष्योका मान नष्ट हो जाता है। मे नदियामे दुलारझाके पास न्याय पढता था। उन्होने अपने जीवनमे २५ वर्ष न्याय ही न्याय पढा था। वे व्याकरण प्राय नही जानते थे। एक दिन उन्होने किसी प्रकरणमें अपने गुरुजीसे कहा कि जैसा 'व्यक्ति' होता है वैसा 'ब्रीति' क्यो नही होता। उनके गुरु उनकी मूर्खता पर बड़े क्रुद्ध हुए और बोल कि तू बैल है, भाग जा यहा से।

वहाँसे जाकर उन्होने अपने एक साथीसे एक सालमे ही तमाम व्याकरण पढ डाला, और एक साल बाद अपने गुरुके पास आकर क्रोधमे कहा कि तुम्हारे बापको धूल दी है, पूछ ले व्याकरण कहाँ पूछना है। गुरुने हँसकर कहा—आओ बेटा! मै यही तो चाहता था। कि तुम इसी तरह निर्भीक बनो। दुलार झा अपने गुरुकी क्षमाको देख-कर नत मस्तक हो गए।

आजके दिन जिसने क्षमा धारण नही की वह पर्वोके अन्तिम दिन क्षमावणी क्या करेगा ? 'मै तो आज क्षमा चाहता हूँ।' ऐसी वाचनिक क्षमाकी आवश्यकता नही। हार्दिक क्षमासे ही आत्माका कल्याण हो सकता है। सबसे क्षमा मॉगनेकी अपेक्षा अन्तरग क्रोध पर विजय प्राप्त करो। ऐसा वचन मत बोलो, जिससे किसीको अन्तरङ्ग कष्ट पहुँचे।

(२) परमार्थसे अन्तरंगमें शान्ति भावकी प्राप्ति हो जाना यही क्षमा है। सो इस ओर तो लोगोकी दृष्टि है नही, केवल ऊपरी भावसे क्षमा माँगते है। एक दूसरेके गले लगते हैं। इससे क्या होने वाला है? और खासकर जिससे बुराई होती है, उसके पास भी नही जाते, उससे बोलते भी नही। इसके विपरीत जिसके प्रति बुराई नही उसके पास जाते है, उसके गले लगते है, उसे क्षमावणी पत्र लिखते है, आदि। यह सब क्या क्षमावणी उत्सवका प्राण शून्य ढाचा नही है?

आप लोग इस पर्यूषण-पर्वमे क्षमा धारण करे, चाहे उपवास एकाशन आदि न करे। क्षमा ही धर्म है, और धर्म ही चारित्र है। जिस प्रकार वातकी व्याधिसे मनुष्यके अङ्ग-अङ्ग दुखने लगते है, उसी प्रकार कषायमे (विषयेच्छासे) आत्माका प्रत्येक प्रदेश दुखी हो रहा है। स्व-पर-स्वरूप के उपादान व अपोहके द्वारा अपनेको अपना समझो, और परको पर। फिर कल्याण तुम्हारा निश्चित है।

३. मार्दव धर्म

मार्दवका अर्थ कोमलता है। कोमलता (विनय) से अनेक गुण वृद्धि पाते है। यदि कठोर जमीनमे बीज डाला जाय तो व्यर्थ चला जाता है। विद्या विनयको देती है, विनयसे पात्रता आती है, पात्रतासे धन मिलता है, धनसे धर्म और धर्मसे सुख प्राप्त होता है। जिसने अपने हृदयमें विनय धारण नही किया, वह धर्मका अधिकारी कैसे हो सकता है।

दिल्लीमे पञ्च-कल्याणक हुआ था। लाला हरसुखदास जीने नौकरके हाथ सबके घर लाडू भेजा। लोगोने सानन्द लाडू ले लिया, पर एक गरीब आदमीने जो चना गुड आदिकी दुकान किये था, यह विचार कर लाडू लेना अस्वीकृत कर दिया कि मै कभी लालाजीको पानी नही पिला सकता, तब उनके लाडूका व्यवहार कैसे पूर्ण करूँगा?

लालाजीको पता चला, तो दूसरे दिन वे स्वय उसकी दुकान पर पहुँचे और बडी विनयसे दुकान पर बैठकर उसकी डालीमे से कुछ चने और गुड़ उठाकर खाने लगे। खानेके बाद बोले लाओ पानी

पिलाओ। पानी पिया, तदनन्तर बोले कि भाई अब तो मैं तुम्हारा पानी पी चुका, अब तो तुम्हें हमारा लाडू लेना अस्वीकृत नहीं करना चाहिये। दुकानदार अपने व्यवहार और लालाजीकी सौजन्य-पूर्ण प्रवृत्तिसे दङ्ग रह गया। लाडू लिया और आँखोंसे आँसू गिराने लगा। आजका बड़ा आदमी क्या कभी किसी गरीबका इस प्रकार ध्यान रख सकता है ?

ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीरकी सुन्दरता इन आठ बातोंको लेकर मनुष्य गर्व करता है, पर जिनका वह गर्व करता है, क्या वे इसकी है ? सदा इसके पास रहने वाली है ?

क्षायोपशमिक ज्ञान आज है, कल इन्द्रियोंमें विकार आ जानेसे नष्ट हो जाता है। जहाँ चक्रवर्तीकी पूजा स्थिर नही रह सकती, वहाँ अन्य लोगोंकी पूजा स्थिर रह सकेगी यह सम्भव नही। कुल और जातिका अहकार क्या है ? सबकी खान (जाति) निगोद राशि है। बलका अहकार क्या ? आज शरीर तगडा है, पर जोरका मलेरिया आ जाय तो सूरत बदल जाय, उठते न बने। धन सम्पदाका अभिमान थोना है। मनुष्यकी सम्पत्ति जाते देर नही लगती। इसी प्रकार तप और शरीरके सौन्दर्यका अभिमान करना भी व्यर्थ है।

४. आर्जव धर्म

आर्जवका अर्थ सरलता है और सरलताका अर्थ मन वचन कायकी एकता है। मनमें जो विचार आया हो उसे वचनसे कहा जाय और जो वचनमे कहा जाय उसीके अनुसार कायसे प्रवृत्ति की जाय। जब इन तीनो योगोकी प्रवृत्तिमे विषमता आ जाती है तब माया कहलाने लगती है। इसके रहते हुए मनुष्यके हृदयमे स्थिरता नही रहती और स्थिरताके अभावमे उसका कोई भी कार्य यथार्थ रूपमे स्थिर नही हो पाता।

मान और लोभके बीचमें मायाका पाठ आया है। सो उसका कारण यह है कि 'माया' मान और लोभ दोनोंके साथ सम्पर्क रखती है। दोनोंसे उसकी उत्पत्ति होती है। मानके निमित्तसे मनुष्यको यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मेरे बड़प्पनमे कोई प्रकारकी कमी न आ

जाय परन्तु शक्तिकी न्यूनतासे बड़प्पनका कार्य करनेमे असमर्थ रहता है। इसलिये मायाचार रूपी प्रवृत्ति कर अपनी हार्दिक कमजोरीको छिपाये रखता है। मनुष्य जिस रूपमे वस्तुतः है, उसी रूपमें उसे अपने आपको प्रगट करना चाहिये। परन्तु वह ऐसा नही करता है। यही दम्भ है, माया है। आगम यह कहता है कि जितनी शक्ति हो उतना कार्य करो और अपने असली रूपमें प्रगट रहो। [व्रतीके लक्षणमे जो 'निःशल्यो व्रती' कहा गया है, उसका भी यही तात्पर्य है। इसी दम्भाचरणके कारण पूर्वोक्त व्रती वास्तवमे व्रती नही है, ऐसा आगे त्याग धर्ममें बताया जाने वाला है।]

लोभके वशीभूत होकर जीव इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिये निरन्तर अध्यवसाय करता है। वह तरह-तरहकी छल क्षुद्रताओंको करता है। (यह लोभ भी केवल धन विषयक ही नहीं होता, अपितु लोक प्रतिष्ठा का लोभ सबसे बड़ा है। इसीके कारण दम्भाचरणमे प्रवृत्ति होती है यह बात आगे शौच-धर्म वाले प्रकरणमे बताई जाने वाली है)।

(इस दम्भाचरणके द्वारा) मनुष्य अपने पापको छिपानेका प्रयत्न करता है, पर वह रूईमे लपेटी आगके समान स्वयमेव प्रगट हो जाता है। किसीका जल्दी प्रगट हो जाता है, और किसीका विलम्बसे, पर यह निश्चित है कि प्रगट अवश्य होता है। मायावी मनुष्य ऐसी मुद्रा बनाता है कि देखनेमें बड़ा भद्र मालूम होता है, पर उसका अन्तःकरण अत्यन्त कलुषित रहता है।

जहाँ पर स्वभावरूप परिणमन है, वहां पर कपट रूप व्यवहार नही, और जहाँ कपट व्यवहार है वहाँ स्वभाव-परिणमनमें विकार है। प्रत्येक मनुष्यकी यह अभिलाषा रहती है कि मै लोगोंके द्वारा प्रशंसा पाऊं, लोग मुझे अच्छा समझे। यह भाव जीवके दुःखका कारण है। यह भाव जिनके नही होते वे सुजन है। उनकी जो परिणति है, वही सुजनता है। यहां तक उनकी निर्मल परिणति हो जाती है कि वे परोपकार आदि करके भी अपनी प्रशंसा नही चाहते, किसी कार्यके कर्ता नहीं बनते।

वे कर्मोदयमे विषयादि कार्य भी बलात करते है, परन्तु उसमे विरक्त रहते है। सुजन मनुष्यकी चेष्टा अगम्य है। उनका जो भी कार्य है वह

कर्तृत्वसे शून्य है। वे जो दानादि करते है उसमें भी उनके प्रशंसादिके भाव नही होते।

मेरा तो विश्वास है कि (अन्तरङ्ग परिग्रह रागादि तथा बाह्य परिग्रह धन धान्यादि, इन दोनों प्रकारके) परिग्रहके पिशाचसे पीडित आत्मायें कितनी ही ज्ञानी क्यों न हो उनके द्वारा जो भी कार्य किया जावेगा उससे मनुष्यको कदापि लाभ नही पहुँच सकता क्योकि वे स्वयं परिग्रहसे पीडित है।

सुजनका अर्थ है भले मनुष्य। भले मनुष्यका अर्थ है जिनका आचार निर्मल हो। निर्मल आचारके द्वारा वे आत्मकल्याण भी कर सकते है और उनके आचारको देखकर ससारी मनुष्य स्वयं कल्याण कर सकता है। इसलिये निर्मल आचारके धारक सुजन बनो और निश्छल प्रवृत्ति करो।

५. शौच धर्म

शौचका अर्थ पवित्रता है। यह पवित्रता लोभ कषायके अभावमें प्रगट होती है। लोभके कारण ही ससारके यावन्मात्र प्राणी दु.खी हो रहे है। आचार्य गुणभद्रने आत्मानुशासनमें लिखा है कि—यह आशा रूपी गर्त प्रत्येक प्राणीके सामने खुदा है। ऐसा गर्त कि जिसमे समस्त संसारका वैभव परमाणुके समान है। इसको जैसे-जैसे (विषयोसे) भरा जाता है, वैसे-वैसे ही यह गहरा होता जाता है।

तृष्णाके वशीभूत हुआ प्राणी क्या-क्या नही करता है ? वह इष्टसे इष्ट व्यक्तिका प्राणान्त करनेमे भी पीछे नही हटता। आजका मानव निरन्तर 'और और' चिल्लाता रहता है। उसके मुखमें कभी 'बस' नही निकलता। बिना सन्तोषके बस कैसे निकले ?

लोभ मीठा शत्रु है। अन्य सर्व कषाये यद्यपि नवे गुणस्थानमें नष्ट हो जाती है, परन्तु यह दशवे गुणस्थानके अन्त तक चली जाती है। लोभके निमित्तसे आत्मामे अपवित्रता आती है। लोभसे ही समस्त पापोमे इस प्राणीकी प्रवृत्ति होती है। आचार्योंने लोभको ही पापका बाप बतलाया है।

ब्राह्मण पुत्रकी कथा प्रसिद्ध है। किस प्रकार उसने लोभ वश वेश्याके हाथसे भोजन करना स्वीकार कर लिया और उसके हाथसे गालपर तमाचा खाकर 'लोभ पापका बाप है' यह पाठ पढ़ लिया। यह सब महिमा लोभकी है। मोहरोके लोभने आपको धर्म कर्मसे भ्रष्ट कर दिया है।

शौच पवित्रताको कहते है। वह बाह्य व आभ्यान्तरके भेदसे दो प्रकारकी होती है। अपने अपने पदके अनुसार लौकिक शुद्धिका विचार रखना बाह्य शुद्धि है और अन्तरङ्गमें लोभादि कषायोंका कम करना आभ्यान्तर शुद्धि है। 'गङ्गास्नान्मुक्ति' इसे जिन-शासन नही मानता। उससे शरीरकी लौकिक शुद्धि हो पर वास्तविक शुद्धि तो आत्मामें लोभादि कषायोंके कृश करनेसे ही होती है।

अर्जुनके प्रति ऐसा उपदेश दिया गया है कि—'संयम ही जिसका पवित्र घाट है, सत्य ही जिसमें पानी भरा है, शील ही जिसके तट है और दयारूप भँवरें जिसमें उठ रही है, ऐसी आत्मारूपी नदीमें हे अर्जुन! अभिषेक करो, क्योंकि पानी मात्रसे अन्तरात्मा शुद्ध नही होती।

लोभ केवल रुपया पैसाका ही हो सो बात नही है। मान प्रतिष्ठा आदिकी आकाक्षा रखना भी लोभका ही रूप है। हम लोभको छोड़नेका प्रयत्न करते है। घर गृहस्थी बाल बच्चे छोड़कर जङ्गलमे जाते है, पर वहाँ शिष्य-सग्रह, धर्मप्रचार आदिका लोभ सामने आ जाता है। लोभ नष्ट कहाँ हुआ? वह तो वेष बदलकर आपके सामने आ गया है। यदि वास्तवमे लोभ नष्ट हो जाता तो इस परिकरकी क्या आवश्यकता थी? 'इसका कल्याण करूँ, उसका कल्याण करूँ' यह विकल्पजाल निरन्तर आत्मामे क्यों उठते? अत प्रयत्न ऐसा करो जिससे यह लोभ समूल नष्ट हो जाय। एक रोग छूटनेके बाद यदि दूसरा रोग दवाईसे होता है, तो वह दवाई दवाई नही।

जिस प्रकार घृतकी आहुतिसे अग्निको ज्वाला शान्त होनेके बदले प्रज्वलित ही होती है, उसी प्रकार विषय सामग्रिसे तृष्णा रूपी ज्वाला शान्त होनेके बदले प्रज्वलित ही अधिक होती है। ऊपर-ऊपरके देवोंमें सुखकी मात्रा तो अधिक है परन्तु परिग्रहकी अल्पता है। इससे सिद्ध

होता है कि परिग्रह सुखका कारण नही है किन्तु परिग्रहकी आकाक्षाका न होना ही सुखका कारण है।

[प्रवचन आदि देनेका व्यापार भी वास्तवमें लोकेपणा रञ्जित होनेके कारण एक विडम्बना तथा परोपकारका स्वाग मात्र है। यह बात आगे अष्टम अधिकारमे बताई जाने वाली है।]

६. सत्य धर्म

जो पदार्थ जैसा है उसका उसी रूप कथन करना सत्य है। इसके चार भेद है—

(१) जो वस्तु अपने द्रव्यादि चतुष्टय कर है उसका अपलाप करना, यह प्रथम असत्य है, जैसे देवदत्तके रहने पर भी यह कहना कि यहाँ पर देवदत्त नही है।

(२) जो वस्तु अपने चतुष्टय कर नही है वहाँ उसका सद्भाव स्थापना द्वितीय असत्य है, जैसे जहाँ पर घट नही है वहाँ पर यह कहना कि घट है।

(३) जो वस्तु अपनेसे है, उसे पर रूपसे कहना यह तृतीय असत्य है। जैसे गौको अश्व कहना।

(४) पैशून्य, हास्य, कर्कश, असमजस, प्रलाप तथा उत्सूत्र रूप जो वचन है वह चतुर्थ असत्य है।

इन चार भेदोमे ही सब प्रकारके असत्य आ जाते है। इनके विपरीत जो वचन है वे चार प्रकारके सत्य है।

असत्य भाषणके प्रमुख कारण दो है—एक अज्ञान और दूसरा कषाय। अज्ञानके कारण मनुष्य असत्य बोलता है और कषायके वशीभूत होकर कुछका कुछ बोलता है। यदि अज्ञान जन्य असत्यके साथ कषायकी पुट नही है तो उससे आत्माका अहित नही होता, क्योकि वहाँ वक्ता अज्ञानसे विवश है। जहाँ कषायकी पुट रहती है वह असत्य आत्माके लिये अहितकारक है। संसारमे राजा वसु असत्यवादियोमे प्रसिद्ध हो गया है, उसका खास कारण यही था कि उसके द्वारा किया गया 'अजैर्यष्टव्यम्' का अर्थ कषाय-जन्य था। इसलिये उसका तत्काल पतन हो गया।

कषायवान् मनुष्य अपने स्वार्थके कारण पदार्थका स्वरूप उस रीतिसे कहनेका प्रयत्न करते है, जिसमे उनके स्वार्थमे बाधा न पड़ जाये। इसी विषयमें महाभारतम एक गृद्ध और गोमुख शृगालका सवाद आया है। अपने मृत पुत्रको लेकर परिवारके लोग श्मशानमे आये। गृद्ध रातमें नही खाता इसलिये उसकी इच्छा थी कि ये लोग इस बालकको यहॉ छोडकर जल्दी चले जायँ, अन्यथा रात हो जायेगी और मै इसे खा न सकूँगा। अतः वह उन्हे उपदेश देता है कि हे लोगो! तुम शीघ्र यहॉसे चले जाओ, क्योकि भय उत्पन्न करने वाले इस श्मशानमें ठहरना व्यर्थ है। गीदड रातको भी खाता है, इसलिये गोमुख चाहता था कि ये लोग रात होने तक यहाँ ही रहे, ताकि रात्रि हो जाने पर इसे मै ही खाऊँ। इसलिये वह उन्हे उपदेश देता है कि अरे मूर्खो! अभी तो सूर्य विद्यमान है। तुम लोग इस बालकको छोडकर क्यों जाते हो। कदाचित् तुम्हारा बालक जीवित हो जाय। इसी प्रकार मनुष्य अभिप्रायके अनुसार पदार्थके यथार्थ स्वरूपको कैसा छिन्न भिन्न कर देता है।

मै आज तक नही समझा कि असत्य भी कुछ है, क्योकि जिसे आप असत्य कहते है, वह वस्तु भी तो आत्मीय स्वरूपमे सत् है। तब मेरी बुद्धिमे तो यह आता है कि जो पदार्थ आत्माको दु खकर हो, उसको त्यागना ही सत्य है। जैसे शरीरको आत्मा मानना असत्य है। शरीर असत्य नही है, किन्तु जिस रूपसे वह है, उसमे अन्य रूप मानना असत्य है। यह विपरीत मान्यता मिथ्यात्वके कारण उत्पन्न होती है। इसलिये सर्व प्रथम उसे ही त्यागना चाहिये।

७. संयम धर्म

(१) स्पर्शनादि पॉच इन्द्रियो तथा मनके विषयोसे और षटकायिक जीवोंकी हिसामे विरत होना सयम कहलाता है। इन्द्रिय–विषयोके आधीन हुआ प्राणी तदात्व सुखमे निमग्न हो आत्महितसे वञ्चित हो जाता है। पञ्चेन्द्रियोंमे एक-एक इन्द्रियके आधीन रहनेवाले जीवोके दृष्टान्त प्रसिद्ध है। हाथी स्पर्शनेन्द्रियके आधीन होकर मछली रसने-न्द्रियके वश होकर, भ्रमर नासिका इन्द्रियके आधीन होकर, पतंग नेत्रेन्द्रियके कारण और हरिण कर्णेन्द्रियके आधीन होकर अपने प्राण

गंवा देते हैं। तब जो पाँचों ही इन्द्रियोंके वशीभूत है, उनकी तो कथा ही क्या है।

पंचेन्द्रियोंमें रसना और स्पर्शन ये दो इन्द्रियाँ अधिक प्रबल है। हरिहर हलधर चक्रधर तथा देवेन्द्र आदि भी इन्द्रियोंकी विषयदाहको न सहकर उनमें झम्पापात करते है। आत्मामे अचिन्त्य शक्ति है। यह प्राणी उसे भूलकर पर–पदार्थका आलम्बन ग्रहण करता फिरता है, परन्तु यह निश्चित है, कि जब तक यह परका आलम्बन छोड़ अपनी स्वतन्त्र शक्तिकी ओर दृष्टिपात न करेगा तब तक इसका कल्याण नही होगा।

स्त्री पुरुषोंकी वेष भूषा ऐसी हो गई है, कि जिससे कुलीन और अकुलीनका अन्तर ही नही मालूम होता है। जिह्वा इन्द्रियके इतने दास हो गए है कि उन्हे भक्ष्य अभक्ष्यका कुछ भी विचार नही रह गया है।

(१) वि० स० २०१० की बनारस-यात्रा मे सिंहपुरी (सारनाथ) आकर १५ दिन रहा। अष्टमी का दिन था। मध्याह्नके बाद विचार आया, कि चित्तकी स्थिरताके लिये क्या करना चाहिये। संयम धारण करना चाहिये। सयम तो बहुत समयसे धारण किये हूँ, फिर चित्तकी स्थिरता क्यो नही है। तब सयम शब्दके अर्थ की ओर दृष्टि गई। 'संयमनं संयमः' अर्थात् सम्यक् प्रकारसे रुक जाना।

पञ्चेन्द्रियोके विषयोमे जो प्रवृत्ति हो रही है उसका भले प्रकारसे रुक जाना सयम है। जब तक इन्द्रियोके विषयोसे यथार्थ निवृत्ति नही होतो, तब तक नाम निक्षेपके सयमसे क्या लाभ होने वाला है? निवृत्तिका अर्थ तटस्थ रहना है, तथा मनो-निग्रहका अर्थ कषायकी कृशता है।

इन्द्रिय-दमनका अर्थ इन्द्रियो द्वारा विषय जाननेका अभाव नही। उनमे लोलुपता न होना चाहिये। शरीर-दमन न कोई कर सकता है और न उसका दमन होता ही है। जो केवल कायक्लेश करते हैं वे शान्तिके पात्र नही।

(२) [यहाँ तक इन्द्रिय संयमकी बात हुई। षट् कायकी अहिंसा से विरत होना, ऐसा द्वितीय प्राणी-संयम है। वही अहिंसा नामसे प्रसिद्ध

है। इस अहिंसाके विषयमें भी बडी भ्रान्ति है। आजकी अहिंसा केवल चीटी आदि क्षुद्र जीवों की रक्षा तक ही सीमित होकर रह गई है। सर्व-प्रधान जीव तो मनुष्य है। उसकी रक्षा तथा उसके दु:ख की निवृत्ति का उपाय कौन करता है? मनुष्यके प्रति ही अहिंसा का सर्व प्रथम उपयोग किया जाना चाहिये, हम यह भूल ही गए है। इसीलिये आज जैनियों की अहिंसा उपहास बनकर रह गई है। सौहार्दय पूर्ण मानवीयता के अभावमे अहिंसा वास्तवमे दम्भ है।]

[जाति-पातिके भेद भावसे निरपेक्ष सभी का समान रूपसे सत्कार करना। चाहे स्वमातावलम्बी हो या अन्यमतावलम्बी, चाहे गृहस्थ हो या साधु, चाहे इस देश या वेशका हो या उस देश या वेशका, सबके साथ शिष्ट व्यवहार करना। मिथ्यादृष्टि कह कर किसी के साथ घृणा या उपेक्षा न करना, अनेकान्त सिद्धान्तकी व्यापकता द्वारा सभी धर्मोमे सामञ्जस्यके दर्शन करना, यह बात पहले दर्शायी जा चुकी है। तथा दानके सदुपयोग द्वारा दीन हीनो की सहायता करना यह बात आगे कही जाने वाली है।]

[आहार-चर्या भी सयमका एक अग माना जाता है। साधुकी आहार-चर्याके विषयमे अनेको रूढिगत विडम्बनाओंका प्रचार बढता जा रहा है, जिससे साधु गृहस्थके ऊपर भार बन बैठा है। इस प्रकार की आहार चर्या सयम नही सयमाभास है। यह बात भी आगे यथा-स्थान कही जाने वाली है।]

८. तप धर्म

तपके द्वारा संवर तथा निर्जरा दोनो ही होते है। सात तत्त्वोंमें मोक्ष उपादेय तत्त्व है और सवर तथा निर्जरा उसके साधक हैं। इनके बिना मोक्ष होना सम्भव नही। तप चारित्र का ही विशेष रूप है। विरक्त रूप अवस्थामे इच्छाओंका निरोध सुतरा हो जाता है, इसलिये 'इच्छा निरोधस्तप' यह तपका लक्षण प्रसिद्ध हो गया है। रागके उदयमे यह जीव बाह्य वैभवको पकडे रहता है, पर जब अन्तरङ्गमें राग छूट जाता है, तब उस वैभवको छोड़ते उसे देर नही लगती।

बाह्य और आभ्यन्तरके भेदसे तप दो प्रकारका है। अनशन आदि छह बाह्य तप है और प्रायश्चित्त आदि छह आभ्यन्तर तप हैं। इन सभी तपोमे इच्छाका न्यूनाधिक रूपसे नियन्त्रण किया जाता है, इसी लिये इनसे नवीन कर्मोका बन्ध रुकता है और पूर्वके बन्धे कर्म निर्जीर्ण हो जाते है।

अन्तरंग तपोमे स्वाध्याय सर्व प्रधान तप बतलाया है। कारण यह कि उससे आत्मा और अनात्माका बोध होता है, इसलिये प्रमाद छोड़कर स्वाध्यायमे प्रवृत्ति करना चाहिये।

९. त्याग धर्म

(१) त्यागका अर्थ छोडना है, पर जब ग्रहण हो तभी न छोड़ना बने ? आपकी सम्पत्ति आपके घर है, आप यहाँ बैठे हैं, आपने सम्पत्तिको क्या ग्रहण कर लिया ? जब ग्रहण ही नही किया तब त्यागना कैसा ? बाह्यमे तो ऐसा ही है, परन्तु मोहके कारण यह जीव उन पदार्थोमें 'ये मेरे है', 'मै इनका स्वामी हूँ', इस प्रकारका मूर्च्छा भाव लिये बैठा है। वही मूर्च्छा-भाव छोडनेका नाम त्याग है। जिसका यह मूर्च्छाभाव छूट गया उसकी आत्मा नि:शल्य हो गई।

(२) घरका त्याग कोई कठिन वस्तु नही, परन्तु आभ्यन्तर मूर्च्छा त्यागना कोई सरल भी नही। त्याग तो आभ्यन्तर ही है। आभ्यन्तर कषायके त्याग बिना बाह्य वेषका कोई महत्व नही। बाह्य त्यागके बिना आभ्यन्तर त्याग नही होता, और यह भी नही कि बाह्य त्याग होने पर आभ्यन्तर त्याग हो हो जावे। हा इतना अवश्य है कि बाह्य त्याग होनेसे अन्तरङ्ग त्याग हो सकता है। साधुता तो संसार दु:ख हरनेके लिये रामबाण औषधि है। परन्तु नाम-साधुतासे कुछ तत्त्व नही निकलता। 'आँखोके अन्धे नाम नैन सुख।'

(३) आजकल व्यवहार धर्मकी प्रभुता है। अन्तरङ्गकी ओर अणु मात्र भी दृष्टि नही, अन्यथा उस ओर लक्ष्य अवश्य जाता। बाह्य-द्रव्यसे आज तक किसीका कल्याण न हुआ और न होगा। जब तक हमारी निर्बलता है तबतक यह पर-द्रव्य हमारे लिये जो जो अनर्थ न करे अल्प है।

(४) स्वप्नमें बाबा भागीरथ दासजीके दर्शन हुए। आपने कहा— "क्या चक्करमें फँसे अपनी शक्तिका दुरुपयोग कर रहे हो ? त्याग वह वस्तु है, जो त्यक्त पदार्थका विकल्प न हो, तथा त्यक्त पदार्थके अभावमें अन्य वस्तुकी इच्छा न हो। नमकका त्याग मधुरकी इच्छा बिना ही सुन्दर है।"

(५) सब पापोंका मूल कारण परिग्रह ही है। 'मूर्च्छा परिग्रहः', 'ममेदंबुद्धिलक्षणम्', यही परिग्रह का स्वरूप है, वास्तव में देखा जाय तो हमने परिग्रह त्यागा ही नहीं। जिनकोंहमत्यागा है वे परिग्रह ही नही हैं। वे तो पर पदार्थ है। उनको त्यागना ही भूल है, क्योंकि उनका आत्मासे सम्बन्ध ही नहीं। आत्माकी विरुद्ध परिणति है उसे ही त्यागना चाहिये। उसका त्याग यही है, कि वह (पदार्थ तो) होवे परन्तु उसका विषाद न होवे, तथा उसमे निजत्व कल्पना न होवे।

(६) शान्तिके बाधक जो रागादि दोष हैं, उनको हम त्यागते नहीं। रागादिकके उत्पादक जो निमित्त है सिर्फ उन्हें त्यागते हैं। परन्तु उनके त्यागसे रागादिक नही जाते। उनका अभाव तो उनकी उपेक्षासे ही हो सकता है।

(७) शान्तिका मूल कारण अन्तरङ्ग अभिप्रायकी पवित्रता है। हमलोग बाह्य त्यागसे ही अपनी परिणतिको उत्तम मानते है, यह सर्वथा अनुचित है। जो केवल कायक्लेश करते हैं वे शान्तिके पात्र नही।

(बरुआ सागर प्रवचन-चैत्र शु० २००८) —

(८) उपादेयता और हेयता ये दोनों मोही जीवोके होते है। परमार्थमे न कोई उपादेय है और न हेय है, किन्तु उपेक्षणीय है। उपेक्षणीय व्यवहार भी औपचारिक होता है। मोहके रहते हुए जिन पदार्थोंमे उपादेयता और हेयता का व्यवहार था, मोह जानेके बाद वे पदार्थ उपेक्षणीय मुतरा हो जाते हैं। फिर यह विकल्प ही नही उठता कि वे पदार्थ अमुक रूपसे हमारे ज्ञानमे आते हैं। मोहके बाद ज्ञान जिस पदार्थको विषय करता है वही उसका विषय रह जाता है। [उपादेयता व हेयता उसके विषय नही हो पाते।]

१०. दान-धर्म

(१) बहिरगमें आहार, औषधि, ज्ञान तथा अभय ये त्यागके चार भेद है। दाताको हृदयसे जब तक लोभ कषायकी निवृत्ति नही होती, तब तक वह किसीके लिये एक कपर्दिका भी देनेके लिये तैयार नही होता, पर जब अन्तरंगसे लोभ निकल जाता है, छह् खण्डका वैभव भी दूसरेके लिये सौपनेमे देर नही लगती।

दानमें स्व व पर दोनोका कल्याण होना इष्ट है। मुनिने श्रावकसे आहार लिया, श्रावकने भक्तिपूर्वक दिया। दोनोंका कल्याण हुआ। दाताका तो इसलिये हुआ कि उसकी आत्मासे लोभ कषायकी निवृत्ति हुई [और भक्ति भावके द्वारा सातिशय पुण्यका लाभ हुआ]। मुनिका इसलिये हुआ कि आहार पाकर उसके शरीरमे स्थिरता आई जिससे वह रत्नत्रयकी वृद्धि करनेमे समर्थ हुआ।

त्यागसे ही संसारमे सब काम चलते है। यदि नावमे पानी बढ रहा है तो दोनो हाथोंसे उलीचकर उसे बाहर करना ही बुद्धिमत्ता है। इसी प्रकार यदि घरमे सम्पत्ति बढ रही है, तो उसे दानके द्वारा उत्तम कार्यमें खर्च करना ही उसकी रक्षाका उपाय है। [सामाजिक व राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी त्यागका बड़ा महत्व है, जिसका कथन पहले समाज सुधार वाले प्रकरणमे किया जा चुका है।]

११. आकिञ्चन्य धर्म

त्याग करते करते अन्तमे आपके पास क्या बचेगा? कुछ नही। जिसके पास कुछ नही बचा वह अकिञ्चन कहलाता है और उसका जो भाव है वही आकिञ्चन्य कहलाता है। परिग्रहका त्याग हो जाने पर ही पूर्ण आकिञ्चन्य धर्म प्रगट होता है।

परिग्रह ही इस जीवको समन्तात् अर्थात् सब ओरसे जकड़े हुए है। आचार्य स्वामी महाराजने परिग्रहका लक्षण मूर्च्छा रखा है। 'मैं इसका स्वामी हूँ, ये मेरे स्व हैं', इस प्रकारका भाव ही मूर्च्छा है। इस मूर्च्छाके रहते हुए पासमें कुछ भी न हो तब भी यह जीव परिग्रही कहलाता है। और मूर्च्छाके अभावमे समवशरण रूप विभूतिके रहते हुए भी अपरिग्रही कहलाता है।

[सामाजिक व राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे भी परिग्रहका त्याग अत्यन्त आवश्यक है। वह ही समस्त संघर्षोंका मूल है, और उसका सम्यक् विभाजन ही उस संघर्षको रोकनेका उपाय है। ऐसा पहले कहा जा चुका है।]

१२. ब्रह्मचर्य धर्म

(१) परिग्रह-त्याग रूप आकिञ्चन्यके पश्चात् अन्तमें ब्रह्मचर्य कहा गया है। परिग्रहके कारण ही उपयोगमें सदा चञ्चलता आती रहती है। आकिञ्चन्य धर्ममें उसका त्याग हो जानेसे आत्माका उपयोग अन्यत्र न जाकर ब्रह्म अर्थात् आत्मामे ही लीन होने लगता है। यथार्थमें यही ब्रह्मचर्य है। बाह्य ज्ञेयसे उपयोग हटकर आत्मरूपमें ही लीन हो जाय, तो इससे बढकर धर्म क्या होगा ? इसीलिये ब्रह्मचर्यको सबसे बडा धर्म माना है।

व्यवहारसे स्त्री त्यागको ब्रह्मचर्य कहते है। स्वकीय तथा परकीय दोनों प्रकारकी स्त्रियोका त्याग हो जाना पूर्ण ब्रह्मचर्य है, और परकीय स्त्रीका त्याग कर स्वकीय स्त्रीमे सन्तोष रखना अथवा स्त्रीकी अपेक्षा स्व-पुरुषमे सन्तोष रखना एक देश ब्रह्मचर्य है।

कीडे मकोड़ोकी तरह मनुष्य-संख्यामे वृद्धि होती जा रही है। बल-वीर्यका अभाव शरीरमे होता जा रहा है। फिर भी ध्यान इस ओर नही जाता। एक बच्चा माँके पेटमे है, और एक अञ्चलके नीचे है, फिर भी मनुष्य विषयसे तृप्त नही होता। पशुमें तो कम-से-कम इतना विवेक होता है कि वह गर्भवती स्त्रीसे दूर रहता है, पर हाय रे मनुष्य ? तू तो पशुसे भी अधम दशाको पहुँच रहा है। तुझे गर्भवती स्त्रीसे भी समागममे सकोच नही रहा।

इस स्थितिमें जो तेरे सन्तान उत्पन्न होती है, उसकी अवस्था पर भी थोडा विचार करो। किसीको लीवर बढ रहा है और किसीको पक्षपात हो रहा है। जिस भारतवर्षमे पहले टी० बी० का नाम नही था वहाँ आज लाखोंकी संख्यामे इस रोगसे ग्रसित है। यह सर्व क्यों है ? एक ब्रह्मचर्यके महत्त्वको नही समझनेसे है। जब तक एक बच्चा माँका दुग्ध पान करता है तब तक दूसरा बच्चा उत्पन्न न किया जाय तो

बच्चे भी पुष्ट हों तथा माता पिता भी स्वस्थ रहे। आज तो स्त्रीके दो तीन बच्चे हुए नही कि उसके शरीरमें बढापे के चिह्न प्रगट हो जाते है। इस स्थितिमे भगवान ही देशकी रक्षा करें।

लौकिक मनुष्य केवल जननेन्द्रिय द्वारा ही विषय-सेवनको ब्रह्मचर्य-का घातक मानते हैं। परन्तु परमार्थसे सब इन्द्रियों द्वारा जो विषय सेवनकी इच्छा है, वह ही ब्रह्मचर्यकी घातक है। इसलिये ब्रह्मचारी मनुष्यको अपने रहन, सहन, वेष, भूषा आदि सब पर दृष्टि रखना पडता है। बाह्य परिकर भी उज्वल बनाना पडता है, क्योंकि इन सबका असर उसके ब्रह्मचर्य पर अच्छा नही पडता।

यदि किसीकी लडकी या बधू विधवा हो जाती है, तो लोग यह कह कर उसे रुलाते हैं कि हाय! तेरी जिन्दगी कैसे कटेगी? पर यह नही कहते कि बेटी! तू अनन्त पापसे बच गई, तेरा जीवन बन्धन मुक्त हो गया। अब तू आत्महित स्वतन्त्रतामे कर सकती है।

(२) पद-यात्रा करता हुआ गया से निर्वाणोत्सव मनानेके लिये श्री पावापुर आया। वहाँ एक आदमी मिला, जिसने मुझे बताया कि मै व्रती नही हूँ, तदपि मै और मेरी स्त्री दोनो व्रतो का पालन करते है।

जब हम दोनो का सम्बन्ध हुआ था तब हम दोनो ने यह नियम किया था कि चूकि विवाह का सम्बन्ध केवल विषयाभिलाषाकी पूर्तिके लिये नही है किन्तु धर्मकी परिपाटी चलाने वाली योग्य सन्तानकी उत्पत्तिके लिये है, अत ऋतु-कालके अनन्तर ही विषय सेवन करेंगे, और वह भी पर्वके दिन छोड कर। साथ ही यह भी नियम किया कि जब हमारे दो सन्तानें हो जावेगी तबसे विषय वासनाका बिल्कुल त्याग कर देवेंगे।

दैवयोगसे हमारे एक सन्तान चौबीस वर्षमे हुई और दूसरी बत्तीस वर्ष मे। अब आठ वर्ष हो गए हम दोनो का सम्बन्ध भाई बहनके सदृश है। मेरी बात मानो, जब सन्तान गर्भ मे आ जावे तब से लेकर जब तक बालक मा का दुग्धपान न छोड देवे, तब तक भूलकर भी विषय सेवन न करो। बालकके समक्ष स्त्रीसे रागादि मिश्रित हास्य मत करो। बालकोंके सामने स्त्रीसे कुचेष्टा मत करो, क्योंकि बालकोंकी

प्रवृत्ति माता पिताके अनुरूप होती है। उनकी राम कहानी सुन कर कई लोग गद-गद हो गए और कहने लगे कि हम भी यह अभ्यास करेंगे।

(३) यदि यह समाज मर्यादा मे रहे तो कल्याण-पथ दुर्लभ नही। सबसे पहले ब्रह्मचर्य पाले। स्त्री स्व-पतिमें सन्तोष करे और पुरुष वर्गको उचित है कि स्व-दारमे सन्तोष करे। जब स्त्री के उदरमे बालक आ जावे तबसे लेकर ३ वर्ष ब्रह्मचर्य पाले। यदि आजकी जनता ब्रह्मचर्य के इस महत्त्वको हृदयाङ्कित कर सके तो उसकी सन्तान हृष्ट पुष्ट हो तथा जनसख्या की वृद्धि सीमित रहे। आज मनुष्य को सन्तानमे वृद्धि के कारण रात दिन सक्लेश का अनुभव होता है। इससे बचनेका सीधा सच्चा उपाय यही है कि पुरुष तथा स्त्री वर्ग अपनी इच्छाओ पर नियन्त्रण करे। ●

६

•

लेख व पत्र

•

सर्वत्र एक ही रस, अत्यन्त मार्मिक व
रहस्य पूर्ण। सभी लेखों व पत्रो-
का संग्रह सम्भव नहीं। कति-
पयका दिग्दर्शन ही
पर्याप्त है।

१–त्रिविध उपयोग

१. सामान्य निर्देश

संसारके मनुष्य अनेक प्रकारके काम करते दिखाई देते है। उन कार्योमें जो अशुभ कार्य होते है वे अशुभोपयोगके निमित्तसे होते है, जो शुभ कार्य होते है वे शुभोपयोगके निमित्तसे होते है, और जो मोक्ष सुख-साधक कार्य होते है वे शुद्धोपयोगके निमित्तसे होते है। यद्यपि यह तीनों उपयोग एक ही आत्माके हैं, परन्तु जिस तरहका निमित्त मिलता है उसी तरहका कार्य करनेके लिये आत्मा प्रेरित होती है।

शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनो अशुद्ध है। शुभोपयोगसे स्वर्गादिक और अशुभोपयोगसे नरकादि प्राप्त होते है, परन्तु हैं दोनो ही ससारके कारण। एक स्वर्णकी बेडी है तो दूसरी लोहेकी। दोनों हैं बेडियाँ ही। परन्तु इन दोनोसे भिन्न जो तीसरी वस्तु है वह है शुद्धोपयोग, जिसके अन्दर न तो शुभ और अशुभ विकल्प है और न किसी प्रकारकी आकुलता है। वह तो एक निर्विकल्प भाव है। सम्यग्दृष्टि अशुभोपयोगमे सदा बचे रहनेकी आकाक्षा रखता है। यद्यपि शुभोपयोग पूजा दान आदि करता है परन्तु अन्तरगसे इन्हे करना नही चाहता। स्नेहको बन्धनका कारण मानता है। वह सदा सोचता है—

२. शरीरसे भिन्नता

मनुष्यको एक शुद्ध चेतनका ही अवलम्बन है। वह टङ्कोत्कीर्ण फूलके समान एक शुद्ध भाव है। वह निर्विकार एवं निर्विकल्प एक शुद्ध ज्ञानघन है। उसमें किसी भी प्रकारकी संकरता नही। बाह्यमें अवश्य दोनो (पुद्गल और जीव) का एक-क्षेत्रावगाह सम्बन्ध हो रहा है, पर किसीका एक प्रदेश भी किसीमे प्रविष्ट नही होता।

जैसे चार तोला सोना है और उसमें चार तोला चाँदी मिला दी, इस तरह वह आठ तोलेकी चीज बन गई। अब देखो, बाह्यमें सोना और चाँदी बिल्कुल मिली हुई दीखती है, पर विचारो तो सोना अलग है और चाँदी अलग है। सोनेका परिणमन सोनेमे हो रहा है और चाँदीका परिणमन चाँदीमे। सोनेका एक चावल चाँदीमें नही जाता और चाँदीका एक चावल सोनेमे नहीं आता। वैसे ही आत्मा अलग है और पुद्गल अलग है। आत्माका परिणमन आत्मामे हो रहा है और पुद्गलका परिणमन पुद्गलमें। आत्माका स्वचतुष्टय जुदा है और पुद्गलका स्वचतुष्टय जुदा है। आत्माकी चेतना पुद्गलमे नही जाती और पुद्गलकी जड़ता आत्मामें नही आती। पर व्यवहारमे देख लो, एकसी दीखती है।

और जब उस सोने चाँदीको तेजाबमे डाल दिया तो सोना सोना रह जाता है और चाँदी चाँदी रह जाती है। वैसे ही तत्त्वदृष्टिसे विचारो तो आत्मा आत्मा है पुद्गल पुद्गल है। कोईका किसीसे कुछ सम्बन्ध नही। चेतनमे जडका क्या काम है? अब देखिये शरीरपर कपड़ा पहना तो क्या कपड़ा शरीरमे प्रवेश कर गया? उस जीर्ण वस्त्रको उतारकर दूसरा नवीन वस्त्र पहन लिया। वैसे ही आत्मा ८४ लाख योनियोंमे पर्यायमात्र बदलता है।

कोई कहे कि इस तरह तो आत्मा त्रिकाल शुद्ध हुआ, उसमे कुछ बिगाड़ भला होता नही, चाहे आप कुछ भी करो। पर ऐसा नहीं है। नय प्रमाणसे पदार्थके स्वरूपको समझनेका प्रयत्न करो। द्रव्यदृष्टिसे वह त्रिकालाबाधित शुद्ध है, पर वर्तमान पर्याय उसको अशुद्ध ही माननी पड़ेगी। अन्यथा ससार किसका?

३. शुद्धोपयोग व शुभोपयोग

पूजा करते हुए भगवानसे यही तो कहते हो—

"तव पद मेरे हियमें, मम हिय तेरे पुनीत चरणोंमें।
तबलों लीन रहे प्रभु, जबलो प्राप्ति न मुक्तिपदकी हो।।"

भगवान् ! तेरे चरण मेरे हृदयमे निवास करें और मेरा हृदय तेरे चरण कमलोमें, परन्तु कब तक ? जब तक निर्वाणकी प्राप्ति न हो तब तक। यदि आज ही निर्वाण हो तो इस प्रार्थनाकी क्या आवश्यकता है ? उसकी सफल साधनाके लिये—

"शास्त्रोंका हो पठन, दर्शन, लाभ सत्सङ्गतिका।
सद्वृत्तोंका सुयश कहकर दोष ढाकूँ सभीका।।
बोलूँ प्यारे वचन हितके आपका रूप ध्याऊँ।
सेऊँ तबलों चरण जिनके मोक्ष जबलो न पाऊँ।।"

हे भगवन् ! जब तक मोक्षको प्राप्त न करूँ तब तक शास्त्रका अभ्यास, जिनेन्द्रदेवकी सेवा और अच्छी सङ्गति मिले। सद्वृत्ति है जिनकी ऐसे पुरुषोका गुणगान करूँ, पराए दोषोके कहनेमे मौन हो जाऊँ। सुन्दर हित मित वचन बोलूँ। पर वह भी कब तक ? जब तक मोक्ष न हो जाय। इससे मालूम पड़ता है कि उस शुद्धोपयोगमे शुभोपयोगकी भी आवश्यकता नही है। अरे, तभी तक सीढी चढूँ न, जब तक कि शिखर पर न पहुँचूँ। शिखर पर पहुँच गए तो फिर सीढियोकी क्या आवश्यकता ?

४. शुभोपयोगका प्रयोजन

सम्यग्दृष्टिका लक्ष्य केवल शुद्धोपयोगमे ही रहता है। अशुभोपयोगकी निवृत्तिके लिए वह पूजा दानादिमे प्रवर्तन करता है। जब तक शुद्धोपयोगको प्राप्ति नही हुई तब तब शुभोपयोग रूप ही प्रवर्तता है। यदि आज ही शुद्धोपयोगकी प्राप्ति हो जाय तो आज ही शुभोपयोग त्याग दे।

यद्यपि शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनो हेय हैं, परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि हम शुभोपयोग न करें। शुभोपयोग करो, इसका कौन निषेध करता है ? शुभोपयोगको त्यागनेसे शुद्धोपयोग नहीं होता, किन्तु शुभोपयोगमें जो मोक्षमार्गकी कल्पना कर रखी है, उसके त्याग (और राग द्वेषकी निवृत्ति) से शुद्धोपयोग होता है, और वही परिणाम मोक्षमार्गका साधन है।

५. शुद्धोपयोगकी प्रधानता

अशुभोपयगकी निवृत्तिके लिये शुभोपयोग आवश्यक बताया है। इसका यह तात्पर्य नही कि शुभोपयोगसे ही मोक्षसुख भी प्राप्त हो जायेगा।

शुभोपयोग द्वारा प्राप्त इन्द्रियाधीन सुख वास्तविक सुख नही है, परन्तु करे क्या, ऊँटको कडुआ नीम ही अच्छा लगता है, वह गन्नेको बुरा समझता है। शुभोपयोगको मोक्षका कारण मान बैठता है। मोक्ष-सुखका कारण केवल शुद्धोपयोग ही है। शुभोपयोगमे रहकर ही यदि मुक्ति चाहो तो कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। मुक्ति प्राप्तिके लिये शुद्धोपयोगका आश्रय ग्रहण करना होगा।

इसका दृष्टान्त ऐसा है, जैसे वृक्षकी छाया मिल गई। वहाँ उसने किञ्चित् विश्राम किया। वहाँसे चलकर वह अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच गया। फिर वह कहता है कि मुझे छायाने यहाँ पहुँचा दिया, अरे छायाने यहाँ नही पहुँचाया, पहुँचाया तो उसकी चालने। छाया केवल निमित्त मात्र हुई। वैसे ही शुभोपयोगने मोक्ष नही पहुँचाया। पहुँचाया तो शुद्धोपयोगने, पर व्यवहारसे कहते है कि शुभोपयोगने मोक्ष पहुँचाया। पर तत्त्व दृष्टिसे विचारो तो शुभोपयोग संसार ही का कारण है, क्योकि उसमे रागका अंश मिला हुआ है, इसलिये सच्चा सुख प्राप्त नही करा पाता।

६. सम्यक्त्व और शुद्धोपयोग

सम्यक्त्वी भगवानके दर्शन करता है, पर उस मूर्तिमें भी वह अपने शुद्ध स्वरूपकी झलक पाता है। हम भगवान्‌के दर्शन करते हैं तो हमें

उनके दर्शन ज्ञान और चारित्र ही तो रुचते हैं, और है क्या ? क्योंकि जो जैसा अर्थ चाहता है, वह उसी अर्थ वालेके पास जाता है। जो धनका अर्थी होगा वह धनिकोकी सेवा करेगा। वह हम सरीखोके पास क्यो आवेगा ? और जो मोक्षार्थी होगा वह भगवानकी सेवा करेगा। हमें भगवान्के दर्शन ज्ञान और चारित्र रुचते है, तभी तो हम उनके पास जाते है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वीका लक्ष्य केवल शुद्धोपयोग रहता है, लेकिन फिलहाल वह शुद्धोपयोग पर चढ़नेके लिए असमर्थ है, इसलिये शुभोपयोगरूप प्रवर्त्तता है, पर अन्तरङ्गमें जानता है कि वह भी मेरे शान्तिमार्गमें बाधा करने वाला है। यदि शुभोपयोगसे स्वर्गादि की प्राप्ति हो जाय तो इसमें उसके लक्ष्यका तो दोप नही है।

देखिये मुनि तपश्चरणादिक करते है जिससे उन्हे स्वर्गादिक मिल जाता है। पर तपका कार्य स्वर्गकी विभूति दिलाना तो नहीं है। उसका काम तो मुक्ति लाभ कराना है। चूँकि उस तपसे वह मुनि शुद्धोपयोगकी भूमिको स्पर्श नही कर सका, इसलिये शुभोपयोग द्वारा स्वर्गादिकी प्राप्ति हो गई। जैसे किसानका लक्ष्य तो बीज बोकर धान्य उत्पन्न करना है पर उसके घास फूसादिको प्राप्ति स्वयमेव ही हो जाती है। एतावत् शुभोपयोग होनेसे स्वर्गादिक मिल जाता है।

पर स्वर्गोमे भी क्या है ? तनिक वहाँ ज्यादा भोग है। कल्पवृक्षोकी छाया है। यहाँ ईट चूनेके मकान है, वहाँ हीरे कञ्चनके प्रसाद है और क्या ? ज्यादासे ज्यादा वहाँ अप्सराओके आलिंगनका सुख है, सो भी क्षणिक और अनन्त दुखदायी। लेकिन अनुपम, अलौकिक, अतीन्द्रिय सच्चा शाश्वत सुख तो सिवाय अपनी आत्माके और कहीं नहीं है, यह निश्चय है। इसीकी प्राप्तिके लिये सम्यक्त्वीका लक्ष्य एक मात्र शुद्धोपयोग होता है।

७. अत्यासक्ति केवल पाप

कुछ लोग समझते हैं—'पुण्य बन्ध नरकका कारण है—क्योंकि पुण्यसे विषय सामग्री जुटती है और और विपयोके मिलनेसे भोगनेकी इच्छा होती है, भोगनेसे अशुभ कर्मबन्ध पड़ता है, और इस तरह

नरक जाना पड़ता है।' पर वस्तुतः यह बात नहीं है; पुण्य नरकका कारण नहीं है। पुण्यका काम विषयसामग्री जुटा देना मात्र है। तुम्हारी पदार्थके भोगनेमें कोई आपत्ति नहीं है।; पर उसमें लिप्त मत हो जाओ।

अत्यासक्ति ही नरककी जननी है। विषयको अन्नकी तरह सेवन करो। यदि अन्न ज्यादा खा लिया जाय तो अजीर्ण हो जाता है, उसी तरह विषयोका अधिक सेवन करोगे तो मरो तपेदिक मे, बुलाओ डाक्टरको। देखो आचार शब्द है, उसमें 'अति' लगो दो तो 'अत्याचार' बन जाता है।>

८. मूर्च्छा छोड़ो

यदि अत्यासक्ति या अत्याचारसे बचना चाहते हो तो तुम्हारी जिन पदार्थोंमें रुचि है, ग्रहण करते ही उन्हें छोड़ दो। क्योंकि मूर्च्छा ही का नाम परिग्रह है। तुम्हारी भोजनमे रुचि है तभी खाते हो। माँको बच्चेसे मूर्च्छा है, इसीलिए तो लालन पालन होता है। इस लंगोटीसे हमें मूर्च्छा है, तभी तो फँसे हो। यदि मूर्च्छा नही है तो फिर हो जाओ मुनि। एक मुनि है, उन्हे मूर्च्छा नही है, इसलिये लंगोटी संभालने की आवश्यकता नही है। संभालने वाली चीज थी वह तो मिट गई। एक लंगोटी ऐसी है जो मोक्ष नही होने देती, सोलह स्वर्गसे आगे नही जाने देती।

अत. वह जीज जब तक बनी है तभी तक संसार है।(जहाँ तक बने पर-पदार्थोंसे मूर्च्छा हटाओ। जितनी मूर्च्छा हटेगी उतनी ही स्वात्माकी ओर प्रवृत्ति होगी। लोग कहते है कि जितने धनाढ्य पुरुष है, उन्हे बड़ा सुख होगा। मै तो कहूँगा कि उन्हे हमसे भी ज्यादा दुःख है। उनपर जिस परिग्रहका भूत सवार है उससे वे तीन कालमें भी सुखी नही हो सकते। मनुष्यके जितना जितना परिग्रह बढ़ता है उनका उतना उतना दु.ख भी दिन दूना और रात चौगुना बढता जायेगा और जितना कम होगा, उतना ही सुख झलकेगा। अत. यदि मोक्षकी ओर रुचि है, सुखकी कामना है तो परिग्रह कम करनेका प्रयत्न करो।

९. इच्छा-दमन एक आवश्यकता

परिग्रह तव तक नही घट सकता जब तक इच्छाओका दमन न हो।

एक मनुष्यने भूखेको रोटी दान किया, नंगेको कपडा दिया, निराश्रयोको आश्रय दिया और उसे सुख हुआ। वह सुख उसे कहाँसे हुआ? सुख तो उसे अवश्य हुआ, उस सुखका वह अनुभव भी कर रहा है। तो वह सुख उसका अन्तरङ्गसे उमडा। उसने बिना किसी स्वार्थके परोपकार बुद्धिसे ऐसा किया, जिससे उसे इच्छाओ या कपायोकी मन्दता करनी पडी, इसलिये उसे सुख हुआ। तो पता चला कि जब इच्छाओ या कपायोका पूर्ण अभाव हो जाय और तब यदि उसे विशेष सुख मिले तो इसमे आश्चर्यकी कौनसी बडी बात है।

जितनी मनुष्यके पास इच्छायें है, उसके लिये उतने ही रोग है। एक इच्छाकी पूर्ति हो गई तो वह रोग कुछ देरके लिये शान्त हो गया और उसने अपनेको सुखी मान लिया। पर परमार्थ दृष्टिसे विचारो, क्या वह सुखी हो गया? आज सुबह रोटी खाई, शामको फिर खानेकी जरूरत पड गई, इससे मालूम होता है, कि इच्छाओमे सुख नही है। अपितु इच्छाओमे ही दुःख है।

जितनी जिसके पास इच्छाये है, उतना ही उसे दुःख है। जिसकी एक इच्छा कम हो गई वह सुखी है, परन्तु जिसके एक मात्र लगोटीकी इच्छा रह गई, वह उससे भी ज्यादा सुखी है, और जिसके पास कुछ भी इच्छा न हो दिगम्बर हो जाय वह उससे ज्यादा सुखी है। बस परिग्रह त्यागका मतलब ही होता है कि इच्छाओको कम करना। ससारमे ही देख लो, राजाकी अपेक्षा एक सन्त ज्यादा सुखी है। अतः हमारी समझमे तो यही आता है कि जिसने अपनी इच्छाओको वश कर लिया वही सुखी है।

मूर्च्छाका त्याग या इच्छाओंके दमनके लिये केवल परिणाम पलटने की आवश्यकता है, क्योकि उन्हीकी विचित्रता है। किन्तु मनुष्यके परिणामोंके पलटनेका कोई समय नियत नही, न मालूम किसके कब भाव पलट जायें, कोई नही कह सकता।

चक्रवर्ती छः खण्डका अधिपति था पर जब विरक्त हुआ तो सारी विभूतियोंको लात मार दी, फिर मुँह फेर कर नही देखा। परिणामो में जब विरक्तता समा जाती है तो दुनियाँकी ऐसी कोई शक्ति नही जो मनुष्यके हृदयको पलट दे—उसे विरक्त होनेसे रोक ले। इसी लिये कहा है—"सम्यक् परिणामोकी सबलता मुक्ति-रमासे मिलाने वाली दूती है।'

१०. कषाय विजय

मनुष्यके लिये एक शुद्धात्माका ही अवलम्बन है। उसीके लिये देखो यह सारा प्रयास है। और परिणामोंमें जितनी चञ्चलता होती है वह सब मोहोदयकी कल्लोलमाला है। उसमे कोई काम-क्रोधादि विकारी भाव नही है। यदि क्रोध आत्माका होता तो फिर क्यो कहते कि हमसे गलती हो गई, क्षमा करो। इसमे मालूम होता है, कि वह तुम्हारी आत्माका विभाव भाव है।

११. चाण्डालका परिवार

एक मेहतरानी किसी स्थान पर झाड़ू लगा रही थी। निकट ही एक साधु बैठा था। झाड़ू लगाते समय कुछ धूलके कण उस साधु पर भी पडे। वह तुरन्त ही क्रोधित हो गया और बोला—"ऐ मेहतरानी! क्या करती है?"

वह बोली—झाड़ू लगाती हूँ।

साधुने उत्तेजित स्वरसे कहा—तुझे दिखाता नही है?

मेहतरानीने ऐंठते हुए कहा—"मुझे तो दिखाता है।"

साधु आपेसे बाहर हो उठा—"अरी बड़ी चाण्डालिनी है?"

मेहतरानीने व्यगमे कहा—"हाँ मेरा ही परिवार तेरे घरमें बैठा है।"

साधुने कहा—"क्या बकती है? मेरे घरमे तेरा परिवार है?"

मेहतरानी ने गर्वसे कहा—"मै जो कहती हूँ ठीक कहती हूँ।"

साधु हठ पूर्वक पूछने लगा—"कैसे? कहाँ है तेरा परिवार?"

इतनेमें दस पाँच और आदमी इकट्ठे हो गए। दोनोंमें खूब वाद-विवाद हुआ। अन्तमे उससे मेहतरानीने कहा—"चाण्डाल क्रोध, राग, द्वेष, मोह, माया जो तुम्हारे घरमें बैठे है, वह मेरा परिवार है। अन्तरात्माको टटोलो। कषाय जीत नही सकते, राग छोड़ नही सकते, मायासे मुँह मोड़ नही सकते, तो इस ढोंगी वेषको छोड़ो।"

वस्तुत. आज जिन्हे चाण्डाल कहा जाता है वे चाण्डाल नही है। चाण्डालका परिवार तो ये क्रोधादि कषाय और रागादि विभाव है।

क्षमा कही शास्त्रोंमे नही रखी है। वह आत्माकी वस्तु है और आत्माकी वस्तु आत्मामे ही मिल सकती है। केवल क्रोध छोडनेकी आवश्यकता है। क्रोध छूटा कि शेष विभाव स्वय छूट जावेगे। चाण्डालिनीका परिवार अपने आप घर छोड़ना प्रारम्भ कर देगा। जरासे प्रयत्नकी आवश्यकता रह जायेगी।

आत्माको शुद्ध स्वभावमे लानेकी आवश्यकता नही है, बल्कि क्रोधादि कषाय और राग द्वेषादि विभाव भावोको मिटा दो, आत्मा अपने आप स्व-स्वभावमें आ जायेगी।

इसप्रकार स्वात्माके शुद्ध-स्वरूपकी भावना करता हुआ सम्यग्ज्ञानी आगामी कर्म-बन्धमे नही पड़ता है। नये पूर्व-बद्ध-कर्म अपना रस देकर खिरेंगे ही, अतः उनको यों ही चुटकियोमें भोग लेता है। इस तरह यह संसारी पथिक मुक्तिके पथपर निरन्तर अग्रसर होता हुआ अपनी मञ्जिलका मार्ग तय कर लेता है और सदाके लिये शाश्वत सुखमें मग्न हो जाता है। ●

२—पत्रावली

१. स्वयं अपने नाम

श्रीमान् वर्णीजी ! योग्य इच्छाकार

बहुत समयसे आपके समाचार नही पाए, इससे चित्तवृत्ति सन्दिग्ध रहती है, कि आपका स्वास्थ्य अच्छा नही है। सम्भव है आप उसमे कुछ उद्विग्न रहते हो और यह उद्विग्नता आपके अन्तस्तत्वकी निर्मलता के कृश करने मे भी समर्थ हुई हो। यद्यपि आप सावधान है परन्तु जब तक इस शरीरसे ममता है, तब तक सावधानीका भी ह्रास हो सकता है।

आपने बालकपनेमे ऐसे पदार्थोका सेवन किया है जो स्वादिष्ट और उत्तम थे। इसका मूल कारण यह था कि आपके पूर्व-पुण्योदयसे श्री चिरौंजा बाई जीका ससर्ग हुआ। तथा श्रीयुत् सर्राफ मूलचन्दजी का संसर्ग हुआ। जो सामग्री आप चाहते थे, इनके द्वारा आपको मिलती थी। आपने निरन्तर देहरादूनसे चावल मंगाकर खाए, उन मेवादिका भक्षण किया जो अन्य हीन-पुण्यवालो को दुर्लभ थे तथा उन तैलादि पदार्थोंका उपयोग किया जो धनाढ्योको ही सुलभ थे। केवल यह तुमने अनुचित कार्य किया।

किन्तु तुम्हारे आत्मामे चिरकालसे एक बात अति उत्तम थी कि तुम्हें धर्मकी दृढ़ श्रद्धा और हृदयमें दया थी। उसका उपयोग तुमने सर्वदा किया। तुम निरन्तर दुखी जीव देखकर उत्तमसे उत्तम वस्त्र तथा भोजनको देनेमे संकोंच नही करते थे। यही तुम्हारे श्रेयोमार्गके लिये एक साधन था।

न तुमने कभी भी मनोयोग पूर्वक अध्ययन किया, न स्थिरतासे पुस्तकोका अवलोकन ही किया, न चारित्रका पालन किया और न तुम्हारी शारीरिक सम्पदा चारित्र पालन की थी। तुमने केवल आवेग में आकर व्रत ले लिया। व्रत लेना और बात है और उसका आगमानुकूल पालन करना और बात है।

लोग तो भोले है, जो बाह्यसे 'ससार असार है' ऐसी (बात) कायकी चेष्टासे जानते है और उन्हीके चकमे आ जाते है, उन्ही को साधु पुरुष मानने लगते है, और उनके तन मन धनसे आज्ञाकारी सेवक बन जाते है। वास्तवमे न तो धर्मका लाभ उन्हे होता है और न आत्मामे शान्ति ही का लाभ होता है। केवल दम्भिगणोकी सेवा कर अन्तमे दम्भ करनेके ही भाव हो जाते है। इसमे आत्मा अधोगतिकी ही पात्र होती है।

इस जीवको मेने बहुत कुछ समझाया कि तू पर-पदार्थोके साथ जो एकत्व बुद्धि रखता है उसे छोड दे, परन्तु यह इतना मूढ है कि अपनी प्रकृतिको नही छोडता, फलत निरन्तर आकुलित रहता है। क्षणमात्र भी चैन नही पाता।

ईसरी
माघ शु० १३ सं० १९९९

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

२. श्री० १०८ आ० सूर्य सागर जी महाराज अनेकशः नमस्कार

आप स्वयं समर्थ हैं। आपको परकृत वैयावृत्य की आवश्यकता नही है। परन्तु जिनको प्रबल पुण्योदय मिला है वे स्वय आपके सान्निध्यमें वैयावृत्त्य तपका लाभ ले रहे है। हम अन्तरंगसे इस महाभाग्यका दृश्य देखनेको लालायित है, परन्तु आपका आदेश चाहते हैं। आगम इसका बाधक नही परन्तु हम तो 'गुरोराज्ञा बलीयसी' का पालन करने वालों में हैं। आज्ञाकी प्रतीक्षा में है। आशा है इस ओर नेक दृष्टिपात करेंगे।

उद्देश्य हमारा अच्छा है। उत्सर्ग वही है जो अपवाद सापेक्ष हो। अपवाद वही है जो उत्सर्ग निरपेक्ष न हो। प्रवृत्ति मार्ग निर्दोष ही है सो नही, अन्यथा प्रायश्चित्त शास्त्र किस कामका? हाँ अपवादमें छल नही होना चाहिये। हमारे तो कोई छल नही। केवल एक महात्माकी अन्तिम अवस्थाकी चरणरजका स्पर्श कर अपनी निर्मलताका पात्र बनू, यही भावना है। यदि आप लोगोंकी उक्तियोसे सकोच करें तब हम क्या कह सकते है? हम तो आपकी आज्ञाका अक्षरश: पालन करने वालो मे है।

सागर
श्रावण वदी ७ स० २००९

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

श्री १०८ आचार्य सूरिसागरजी महाराज सहस्रश: नमस्कार

महाराज! मेरी तो अन्यन्य भक्ति आपके गुणोमें निरन्तर रहती है। आपके पादमूलमें रहकर सुमार्गभागी हूँ। परन्तु इतना सौभाग्य नही। न हो परन्तु वही अनुराग जो प्रत्मक्षमे प्राणीके होता है, मेरेको है। इससे निरन्तर आपके गुणोका स्मरण कर प्रसन्न रहता हूँ। विशेप बात श्री नरेन्द्र कहेगा। क्या लिखूं? मन की बात व्यक्त नही कर सकना, वचनोमे वह सामर्थ्य नही।

शान्ति निकुञ्ज
सागर

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

३. बाबा भागीरथ दासजी इच्छाकार

आपका पीयूष पत्र आया, समाचार जाने। मै आपका विशेष भक्त हूँ। भक्त ही नही आपके सिवाय इस समय मेरी तो किसी भी त्यागीमें भक्ति नही, अत आप मेरे लिये आशीर्वादको छोड शब्दान्तर न लिखे। आपके सम्पर्कमें मेरी जो निर्मलता थी वह केवल (वेष) मे नही। महाराज ! मेरी तो यह श्रद्धा है कि जो भी वेष है, सर्व कषायोके ही कार्य है। परन्तु यह सब चर्चा भी कपायोके उदयमे ही होती है।

आप मेरी एक तुच्छ सम्मति मानिये। वह यह कि अब आपकी आयु दीर्घ नही, अत सब तरफसे सङ्कोचकर खतौलीमे ही समाधि-मरणकी योग्यता जानकर क्षेत्र-न्यास कीजिये। कषायोंके उदय जीवसे नाना कार्य कराते है। परन्तु पुरुपार्थकी वह तीक्ष्ण खड्गधार है, कि उन उदय-जन्य रागादिककी सन्ततिको निर्मूल कर देती है। अर्जित रागादिक की उत्पत्तिको हम नही रोक सकते। परन्तु उदयमे आये रागादिको द्वारा हर्ष-विषाद न करे, यह हमारे पुरुपार्थका कार्य है। कषायोंके उदय पर रोना आपसे निस्पृही व्यक्तिको तो सर्वथा अनुचित हो है।

द्रव्य द्वारा किसी जाति या धर्मकी उन्नति न हुई और न होगी। चक्रवर्ती जैसे शक्ति और प्रभाव-सम्पन्न महापुरुषोसे भी ससारमे शान्ति नही आई और न धर्मकी ही उन्नति हुई, किन्तु श्री वीतराग सर्वज्ञ परम महर्षि तीर्थंकरके निमित्तको पाकर शान्ति या धर्मका वैभव ससारमे व्यापक रूपसे प्रसारित हुआ, जिसका आशिक रूप अब भी ससारमे है। चक्रवर्तीकी कोई भी वस्तु आज तक नही रही, क्योकि भौतिक पदार्थ तो पुद्गल कृत है, और धर्मका असर आत्मामे होता है।

इसलिये अब भी बहुत आत्माये ऐसी है जिनमे तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित धर्मका अश है। यह मानना ही मिथ्या है कि धनिकोका धन धर्ममे नही लगता। धनमे धर्म होता ही नहीं; फिर यह कल्पना करना कि अमुक व्यक्तिका धन धर्ममे नही लगा, व्यर्थ है। हम भी क्या करे ? मोहके द्वारा असख्य कल्पना करके भी शान्त नही होते।

ईशरी
आषाढ कृ० ३ स० १९९६

आपका गुणानुरागी
गणेश वर्णी

४. क्षु० श्री पूर्ण सागरजी योग्य इच्छाकार

पत्र आया। श्री १०८ पूज्य आचार्य (सूर्य सागरजी) महाराजका स्वास्थ्य अच्छा है यह अवगत कर महती प्रसन्नता हुई। परन्तु थोड़े ही दिनोके पश्चात् जैन सन्देशमे महाराजका स्वास्थ्य फिरसे गिर रहा है बाचकर अत्यन्त खेद हो रहा है। तत्त्वदृष्टिसे महाराजका स्वास्थ्य तो उत्तम ही है। हम जिस शरीरसे ममत्व रखते है, महाराजने उसे पर समझा है। यह ही नही समझा, अटूट श्रद्धा भी तदनुकूल है। इतनेसे ही सन्तोष नही, आचरण भी उसी प्रकार है। यही कारण है जो इस प्रकार असह्य वेदनाके निमित्त समुपस्थित होने पर भी स्वात्म-रमणसे विचलित नही होते। ऐसे महापुरुषोसे यह भू भूषित है।

मै आपको धन्य मानता हूं जो ऐसे महापुरुषोकी वैय्यावृत्य कर आत्माको कर्म-भारसे मुक्त कर रहे है। मै तो आप लोगोके चारित्रकी भावनासे ही अपनेको मनुष्योकी गणनामे मानकर प्रसन्न रहता हूँ। इसके अतिरिक्त कर ही क्या सकता हूँ ?

प्रथम पत्रमें कुछ विनयकी थी, किन्तु श्री पूज्य महाराजकी आज्ञा बिना असमर्थ हूँ। मुझे तो महाराजकी आज्ञा ही आगम है। मेरी तो यह दृढतम श्रद्धा है कि महापुरुषके उद्गार है वही आगम है, क्योंकि जिनके रागादि दोषोकी निवृत्ति हो चुकी है उनकी जो वचनावली निकलेगी वह स्व-पर कल्याणकारिका होगी, तथा उनका जो आचरण है वही चरणानुयोग है। उनकी प्रवृत्तिको जो शब्दोमे गुम्फित कर लिखा जाता है, वही चरणानुयोग शब्दसे कहा जाता है। जहा उनका विहार होता है वहाँ ही तीर्थ शब्द का व्यवहार होता है।

मेरी लेखनीमें यह शक्ति नही कि महाराजके चारित्रका अश भी लिख सकूँ। फिर भी अन्तरङ्गमें व्यग्र नही, यह भी गुरु-पदाब्जोकी रजका प्रभाव है। मेरी प्रार्थना श्री पूज्य महाराजसे निवेदन करना। मेरे योग्य जो आज्ञा हो शिरसा माननेको प्रस्तुत हूँ।

ब्रह्मचारी लक्ष्मी चन्दजीसे इच्छाकार कहना। उन्हें क्या लिखूँ ? वह तो महाराजके अनन्य चरणानुरागी है।

शान्ति निकुञ्ज सागर
आषाढ वदी ४, सं० २००८

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

५. क्षु० श्री मनोहर लालजी वर्णीके नाम

श्रीयुत् भव्यमूर्ति पं० मनोहर लालजी योग्य दर्शनविशुद्धि

पत्र आया, समाचार जाने। आपके विचार प्रशस्त है। व्रत ग्रहणके पहले एक बार आप सागार धर्मामृतको देखें। परिग्रहका प्रसार दुःखमूलक शल्य है, यह जो लिखा सो ठीक है। परन्तु इतनी मूर्च्छा भी तो नहीं गई जो इसके बिना जीवन निर्वाह हो सके। सर्वोत्तम पद तो निर्ग्रन्थ ही है। किन्तु उस योग्य परिणाम भी तो होना चाहिये। बातको कह देना जितना सरल है, उतना कार्यमें परिणत होना सरल नहीं। आप ब्रह्मचर्य व्रत पालो, इससे उत्तम और क्या है? किन्तु उद्वेगसे कोई लाभ नही।

एक बार आप आवेगे, सर्व व्यवस्था उस समय ही निश्चित होगी। हमारी तो यह सम्मति है कि अभी आपके जो विचार है, स्थिर रक्खे, किन्तु प्रकाशित मत करे। समय पाकर आप ही व्यक्त हो जायेगे।

आप यदि कुछ काल अध्ययन करेगे तो बहुत कुछ परका उपकार कर सकेंगे। अपना उपकार तो सर्व कोई कर सकता है, परन्तु, परका उपकार विशिष्ट पुण्यशाली ही कर सकता है। जायदादके विषयमें बाबू रामस्वरूपकी सम्मतिमें कार्य करना। श्री श्रेयाससे भी सम्मति लेना।

ईसरी
वैशाख शु० ११ स० २००० }

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

श्रीयुत् महाराज वर्णी मनोहर लालजी साहब,
योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार जाने। मेरा तो यह विश्वास है कि 'संसारमें कोई किसीका नहीं', यह तो सिद्धान्त है। साथ ही यह निश्चय है कि कोई किसीका उपकारी नहीं। इसका यह अर्थ नहीं जो मैंने आपका उपकार किया हो, और न यह मानता हूँ कि आप मेरा उपकार करेंगे। हाँ यह व्यवहार अवश्य होगा जो वर्णीजीकी वर्णी मनोहरने सम्यक् सल्लेखना करायी।

परन्तु मेरा तो यह कहना है—जो आपने गुरुकुलकी नीव डाली है, उसे पूर्ण करिये, हमारी चिन्ता छोड़िये। हमारी सल्लेखना हमारे भवितव्यके अनुकूल हो ही जायेगी। अथवा आप लोगोंके भव्य भावोंसे ही हमारा काम बन जायेगा।

वहाँ पर जो ब्र० सुन्दर लालजी है उनसे इच्छाकार। श्री जीवारामजीसे इच्छाकार। वहाँकी समाजसे यथा योग्य। वहां जो हकीमजी है, उनसे आशीर्वाद।

इटावा
प्रथम आषाढ वदी १३ सं० २००७

आ० शु० चि०
गणेश वर्णी

६. ब्र० श्री दीप चन्दजी वर्णी योग्य इच्छाकार

आपका पत्र आया। आपके पत्रसे मुझे हर्ष होता हे और आपको मेरे पत्रसे हर्ष होता है, यह केवल मोहज परिणामकी वासना है। आपके साहसने आपमें अपूर्व स्फुर्ति उत्पन्न कर दी है, यह स्फुर्ति आपको संसार यातनाओंसे मुक्त करेगी। कहने और लिखने और वाक् चातुर्यमें मोक्षमार्ग नही। मोक्षमार्गका अंकुर तो अन्त करणसे निज पदार्थमें ही उदय होता है। उसे यह परजन्य मन वचन काय क्या जानें। ये तो पुद्गल-द्रव्यके विलास हैं। यहाँ पर इन पुद्गलकी पर्यायोंने ही नाना प्रकारके नाटक दिखाकर उस ज्ञाता द्रष्टाको इस संसार चक्रका पात्र बना रक्खा है। अत. अब दीपसे तमोराशिको भेद कर, और चन्द्रसे पर-पदार्थ जन्य आतापको शमन कर, सुधा समुद्रमें अवगाहन कर वास्तविक सच्चिदानन्द होनेकी योग्यताके पात्र बनिये। वह पात्रता आपमे है। केवल साहस करनेका विलम्ब है। अब इस अनादि संसार-जननी कायरताको दग्ध करनेसे ही कार्य सिद्धि होगी।

निरन्तर चिन्ता करनेसे क्या लाभ, लाभ तो अभ्यन्तर विशुद्धिसे है। विशुद्धिका प्रयोजन भेद-ज्ञान है। भेद-ज्ञानका कारण निरन्तर अध्यात्म ग्रन्थोकी चिन्तना है। अत इस दशामें परमात्म-प्रकाश ग्रन्थ आपको अत्यन्त उपयोगी होगा। उपयोग सरल रीतिसे इस ग्रन्थमें सलग्न हो जाता है। उपक्षीण कायमें विशेष परिश्रम करना स्वास्थ्य का बाधक होता है। अत आप सानन्द निराकुलता पूर्वक धर्म-ध्यानमें अपना समय यापन कीजिये।

शरीरकी दशा तो अब क्षीण सन्मुख हो रही है। जो दशा आपकी है वही प्रायः सबकी हे, परन्तु कोई भीतरसे दुःखी है तो कोई बाह्यसे दुःखी है। आपको शारीरिक व्याधि है जो वास्तवमे अघातिकर्म (असाता-कर्म) जन्य है। वह आत्मगुण-घातक नही। आभ्यन्तर व्याधि मोहजन्य होती है, जो कि आत्मगुण-घातक है। अत: आप मेरी सम्मति अनुसार वास्तविक दुःखके पात्र नही। अत आपको अब बडी प्रसन्नता इस तत्त्वकी होनी चाहिये जो मै आभ्यन्तर रोगसे मुक्त हूँ।

मढियाजी जबलपुर }

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

७. ब्र० श्री० शीतल प्रसादजीके नाम

श्रीयुत् महाशय ब्रह्मचारी पं० शीतलप्रसादजी !

आप सानन्द तथा निःशल्य होकर ही आइये। आपके धर्मध्यानके लिये हम यथाशक्ति त्रुटि न करेंगे। यह क्षेत्र निर्वाणकी प्राप्तिके लिये प्रसिद्ध है। आजन्म समयसारका मनन कर ऐसा अध्ययन अध्यापन करके भी यदि हमारा और आपका (विधवा विवाह विषयक) मतभेद बना रहा तब हम दोनोंमें से अन्यतर मिथ्यात्वका पात्र है, ऐसी मेरी दृढ़ प्रतीति है। यद्यपि हम दोनों ही अपने अपनेको सम्यग्दृष्टि होनेका दावा करते हैं, किन्तु उभयमें अन्यतर ही उस गुणका पात्र हो सकता है। यह निर्णय तो दिव्य-ज्ञानमें ही है कि अमुक इसका पात्र है। लौकिक जनोंमें आपके अनुयायी आपको और मेरे अनुयायी मुझे कहेंगे। जो हो इस चर्चाका अवसर नहीं।

कल्पना कीजिये दो मनुष्य ४० सेरका ही मन मानते है, परन्तु उनमें एक कहता है ८० रुपये भरका सेर होता है और एक कहता है कि ७९।।। ≡)।।। भरका सेर होता है। भरका भेद कोई भेद नहीं। परन्तु विज्ञजन इसको कभी भी तथ्य नहीं मान सकते। श्वेताम्बर कवलाहार केवलीके मानते हैं, दिगम्बर नहीं मानते। तब क्या अन्य सिद्धान्तोंमें समानता होनेपर कदापि दोनोंका मत एक हो सकता है ? कर्तृत्व-अकर्तृत्व, द्वैत-अद्वैत, शुद्ध-अशुद्ध इत्यादि एक एक बातका भेद होने पर ही नाना मतोंके निर्माण संसारमें हो गए। महासभा और परिषदमें क्या बात है ? क्या सर्व नियमोंमें भेद है ? एक ही नियमकी कृपासे समाजका जैसा उत्थान हो रहा है, किसीसे अव्यक्त नहीं। यदि दोनो पक्षोंमें से कोई पक्ष अपनी हठको छोड़ दे, तब क्या समाजका उत्थान न हो ?

अस्तु, इस अरण्यरोदनसे कुछ भी लाभ नहीं। आपका जो अभिप्राय है उसे सुरक्षित रखिये। उससे न मेरी क्षति है और न अक्षति। उस सिद्धान्तसे क्षति व अक्षति आपकी ही होगी। अन्यतरमें क्या होगा सो वीर प्रभु जानें। विपक्षी क्षति और अविपक्षी अक्षित कह ही रहे हैं।

अन्तिम आपसे यही नम्र निवेदन है जो मेरा आपसे बहुत प्राचीन व धार्मिक प्रेम है, उसे आप भी स्वीकार करेंगे। मै यह भी मानता हूँ जो आप विशिष्ट ज्ञानी हैं और कर्मठ है, अत· आपमे विशेष धर्मानुराग होनेसे फिर भी लिखना पडता है—

"यत्र प्रतिक्रमणमेव विषं प्रणीतम्।
तत्राप्रतिक्रमणमेव सुधा कुतः स्यात्॥
तत्किं प्रमाद्यति जन· प्रपन्नधोऽध·।
कि नोर्ध्वमूर्ध्वमधिरोहति निष्प्रमाद·॥

यह कुछ वाद करनेकी नियतसे नही लिखा है। केवल स्वकीय अभिप्रायको सक्षिप्ततया व्यक्त करनेका प्रयास है। इसको बाँचकर आप स्वकीय शुभागमनके अभिप्रायको परिवर्तन करनेकी बात स्वप्नमे भी मनमे न लाइये। आपके आनेका मुझे हर्ष है। विशेष क्या लिखें ? कोई किसीको परिणमन करानेमें समर्थ नही।

३०–८–३९

आपका शुभ चिन्तक
गणेश प्रसाद वर्णी

८. ब्र० भगत श्री प्यारे लालजी के नाम

श्रीयुत् भगत प्यारे लालजी योग्य इच्छाकार

आपके पत्र आये। परम आल्हादके कारण थे। वही मनुष्य कल्याण का पात्र हो सकता है जो आत्मीय लक्ष्यसे च्युत न हो। यही फल साधु समागमादि कारणोंसे हो सकता है। न भी हो परन्तु होनेका निमित्त है तो यही है। आज कल यहाँ ३ मुनि, ३ क्षुल्लक, २ आर्या है। हम भी आश्रममे है। न जाने कैसा समय है जो ३६ के अंककी दशाका प्रत्यक्ष होता रहता है। यद्यपि ससारके साथ ३६ का होना अच्छा है, परन्तु यहाँ तो कुछ और ही बात है, जो लिखनेमें संकोच होता है। ६३ होनेकी बात करते है, परन्तु उसका अश नही।

हमको प्रसन्नता इस बातकी है कि आपके समयका सदुपयोग हो रहा है। जहाँ पर तत्त्व चर्चा हो तथा विरागताकी वृद्धि हो वही स्थान तो तीर्थ है। सेठजी (हुकुम चन्दजी इन्दौर) महोदय इसीमें मग्न हैं। यह उनके भावी सुकल्याणका चिन्ह है। वर्तमानमें तो शान्ति है ही इसमे शंका नही। तदुक्त—

अलमर्थेन कामेन सुकृतेनापि कर्मणा।
एभ्य· ससारकान्तारे न प्रशान्तमभून्मन.॥

यही कारण है जो सेठजी चतुर्थ पुरुषार्थमें लग गए। हमारा दिवस भी आप लोगोकी निर्मल भावनासे सानन्द जाता है। श्री पतासी बाईजी वहाँ पर पहुँच गई होगी। शारीरिक व्याधि कब शान्त हो इसका तो हमे परिचय नही, परन्तु यह बात तो हम भी कह सकते है जो अन्तरंग व्याधि अवश्य कृश हुई है।

बाह्य औषधि तो प्राय. सर्वत्र ही मिल जाती है परन्तु आभ्यन्तर व्याधिको शमन करनेकी औषधि सर्वत्र सुलभ नही। इसका सेठजीको धन्यवाद है जो इस आभ्यान्तर रोगको दूर करनेके अर्थ औषधालय खोल रखा है और उसमे अनुकूल परिचारक और वैद्य है। अत मेरी तो पतासीबाईको यही सम्मति कह देना। अब सानन्दसे अभ्यन्तर रोगका निराकरण करके ही इन्दौर छोड़ना।

सेठ साहबसे मेरी यह भावना है जो आपने ससार-व्याधि अपहरण करनेका औषधालय खोला है वह चिरकाल रहे, जिसमे संसार-सतप्तोंको कल्याण मार्ग सुलभ रहे। ऐसा औषधालय केवल धनसे नही खुलता, किन्तु स्वय उसपर चले तभी वह चलता है। सेठजी साहबको क्या लिखूँ। उनका पत्र पढकर यही भावना होती है जो ऐसे पुरुषरत्न ही धर्मके पात्र चिरजीवी रहें। चिरजीवीका अर्थ सर्व जानते हैं। विकृत भावका अभाव जिनके हैं, वे ही चिरजीवी है।

ईसरी बाजार
वैशाख सुदी १५ सं० २०११

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी



ब्र० भगत श्री प्यारे लाल जी

९. ब्र० भगत श्री सुमेर चन्दजीके नाम

शान्ति-प्रकृति प्रिय श्री लाला सुमेर चन्दजी दर्शनविशुद्धि

आपके द्वारा भेजी हुई वस्तु जो आतप-निवारणके लिये जल-सयोग चाहती है आई। अस्तु अब आपको और हमको वही कार्य करना हित-कर होगा जो इस आतपादिसे आत्मा सुरक्षित रहे। अब तो ऐसी परिणति बनाओ कि यह हमारा और तुम्हारा विकल्प मिटे। 'यह भला वह बुरा' यह वासना मिट जावे, क्योकि यही वासना बन्धकी जननी है। आज तक इन्ही पदार्थोमे ऐसी कल्पना करते-करते ससार ही के पात्र रहे। बहुत प्रयास किया तो इन बाह्य वस्तुओको छोड दिया, किन्तु इनसे कोई तत्त्व न निकला।

निकले कहाँसे ? वस्तु तो वस्तुमे है, परमे कहाँसे आवे ? परके त्यागसे क्या ? क्योंकि वह तो स्वयं पृथक है। उसका चतुष्टय भी स्वयं पृथक् है। किन्तु विभाव दशामे जिसके साथ अपना चतुष्टय तद्रूप हो रहा है, उस पर्यायका त्याग हो शुद्ध चतुष्टयका उत्पादक है, अत. उसकी ओर दृष्टिपात करो। लौकिक चर्चाको तिलाञ्जलि दो। आजन्म वही आलाप ता रहा। अब एकबार निज आलापकी तान लगाकर तानसेन हो जाओ। अनायास सब दु.खो की सत्ताका अभाव हो जायेगा। विशेष क्या लिखे।

जिसके हाथ इलायची भेजी वह जीव अत्यन्त भद्र है। ऐसे मनुष्य का समाज सुखकर है। इनके हाथ स्वाध्याय बहुत ही लाभप्रद होगा। तथा यह जीव आपका तो अति प्रेमी है। आप अपने साथीको समझा देना। यदि अब द्वन्दमे न पड़े तो बहुत ही अच्छा होगा। द्वन्दके फलकी रक्षाके लिये फिर द्वन्दमे पड़ना कहाँ तक अच्छा होगा सो समझमें नही आता। इससे शान्ति न मिलेगी, प्रत्युत बहुत अशान्ति मिलेगी। परन्तु अभी ज्ञानमे नही आती। धतूरेके नशेमे धतूरेका पत्ता भी पीला दीखता है। आपका अनुरागी है, समझा देना।

ईशरी
फाल्गुन सु० १४, सं०१९९४

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

१०. ब्र० श्री छोटे लालजी योग्य इच्छाकार

पत्र आपका भगतजीके पास आया, बाँचा। यद्यपि उसपर प्राइवेट लिखा था। उसको हमने सुननेकी आकाक्षा की। यह नीति-मार्गके प्रतिकूल हुआ। अस्तु इसकी क्षमा देना। किन्तु आपकी उद्वेगताका परामर्श करनेसे हमको तो यह अनुमान होता है जो आप लोगोकी दृष्टि अभी तक श्री भगवान् परम गुरुके सिद्धान्तके अनुकूल नही। यदि होती तो क्या आपको इतनी दौड़ धूप करनी पड़ती? नीतिकारने कहा है—

> अपराधिनि चेत्क्रोध. क्रोधे क्रोध' कथ न हि।
> धर्मार्थकाममोक्षाणा चतुर्णा परिपन्थिनि ॥

इस गाथामें सामान्य आत्माकी अपेक्षाका वर्णन है। विशेषकी अपेक्षा आस्रव आदि सप्त तत्वोका वर्णन स्वामीने कहा है—

जीवाजीवाधिकारमे जो निरूपण है, उसमे जीवका वर्णन लक्षणकी अपेक्षा कहा है, पर्यायकी अपेक्षा नही है। अतएव अमृतचन्द्र सूरिने लिखा है—जैसे वर्णादिसे भिन्नप्रदेशी आत्मा है ऐसे ही इन रागादिकोसे भी भिन्न-प्रदेशी आत्मा है।

इस अधिकारमें श्री कुन्दकुन्द भगवानने जीवका निराबाध स्वरूप बतलाया है। इसीका अज्ञानी मनुष्य अन्यथा अभिप्राय कल्पना कर विपरीत श्रद्धाके पात्र हो जाते है। उनका कहना है कि जैसे वर्णादिसे भिन्न-प्रदेशी आत्मा है वैसे ही रागादिकसे भी वह भिन्न प्रदेशी है। रागादिक तो स्फटिक मणिकी तरह परके ही है।

ऐसा माननेसे शनश जैनी बाह्याचरणको दम्भ बतलाने लगे और आप स्वय इस गिरी श्रेणीमे भक्ष्याभक्ष्य व निन्द्य भोग्यके विवेकसे रहित पशुवत् विषयोमे प्रवृत्ति करने लग गए। तात्त्विक मर्म जाने बिना वही पतित दशा है। आत्माकी परिणति ज्ञानचेतना, कर्मफलचेतना तथा कर्मचेतनाके भेदसे तीन प्रकारकी है। पहली तो उदयमे न आई, शुभ परिणामको दम्भ स्वरूप कह दिया, अन्य शरण न होकर अशुभोपयोग परिणामोके ही कर्ता सप्रेम बन गए।

आपका शुभ चिन्तक
गणेशप्रसाद वर्णी

११. ब्र० श्री मूल शंकरजीके नाम

श्रीयुत् बाबू मूल शंकरजी, योग्य दर्शन विशुद्धि

जहाँ तक बने जिसके साथ धार्मिक स्नेह हो उसे परिग्रहसे रक्षित रखिये। कल्याणका मार्ग निर्ग्रन्थ ही है। इस मूर्च्छाने ही जिन-धर्ममे नाना भेद कर दिये। इसका मूल कारण मूर्च्छा है। इसके सद्भावमे अहिंसा-धर्मका विकाश नही होता। अत. जहाँ मूर्च्छा है, वही परिग्रह है, और जहाँ परिग्रह है वहाँ महाव्रतका अभाव है।

मनकी चञ्चलताका कारण केवल अनादि कषायकी वासना है, और कुछ कारण नही। मनके जानेका दु:ख नही, दुःख तो इष्टानिष्ट कल्पनाओका है। वास्तवमे उपाय तो जो बन सके तो उदय आनेपर हर्ष विषाद न हो। यदि हो भी जावे तो उत्तर-कालमें वासना नही रहने दे, वही तक रहने दे।

जैसे मनुष्य लौकिक कार्योंमे मग्न होकर धर्मकी ओर चित्त नही लगाता, यदि इसी प्रकार इन बाह्य वस्तुओसे हम अन्तरङ्गसे चित्त-वृत्ति हटाकर आभ्यन्तर दृष्टिको आत्माकी ओर लगा दे तो कल्याण-पथ आप ही आप मिल जावे। गरम जलको ठण्डा करनेका उपाय उसकी उष्णता दूर करना ही है।

आप आकुलित मत हो। घर रह कर भी अन्त:करण निर्मल हो सकता है। अपनी आत्मापर भरोसा रखना ही मोक्षका प्रथम उपाय है। परके द्वारा न किसीका कल्याण हुआ, न होता है और न होगा। निमित्तका अर्थ तो यही है—मुखसे उपदेश देना। परन्तु उसका मर्म तो स्वयं जानना होगा तथा उसे स्वय करना होगा।

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

श्री युत् महाशय मूल शकरजी, योग्य दर्शन विशुद्धि,

शास्त्रके द्वारा पदार्थके स्वरूपका ज्ञान होता है। सामायिकादि क्रिया बाह्य है। अन्तरङ्गकी निर्मलताका कारण आत्मा स्वयं है, अन्य निमित्त कारण हैं। किसीके परिणाम किसीके द्वारा निर्मल हों ही जावें यह नियम नही। हाँ वह जीव पुरुषार्थ करे और काललब्धि आदि कारण सामग्रीका सद्भाव हो तब निर्मल परिणाम होनेमें बाधा भी नही है। परन्तु इसीका निरन्तर ऊहापोह करे और उद्यम न करे तो कार्य सिद्ध होना दुर्लभ है।

आप का शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

१२. **ब्र० श्री धन्य कुमारजी** योग्य इच्छाकार,

हमारा विचार राजगृही जानेका निश्चित है। दीपमालिका बाद जावेंगे। आप कब तक आवेंगे। यह मान ही हमारे अन्तस्तत्त्वका बाधक है। जैसे हमारे रागद्वेष जाते है, परन्तु फिर आते है। यही तो विपत्ति मूलक वार्ता है। घर छोडा, जगतको घर बना लिया। घरमे तो परिमित कुटुम्ब होता है, यहाँ तो उसकी इयत्ता नही। यही ममता तो संसारकी माता है।

ससारमे मनुष्य बहुत कुछ सुख चाहते हैं। परन्तु जिन कारणोंसे सुख होगा उनका स्पर्श भी नही करते। यही कारण है जो आजन्म उस नित्य स्वाधीन आत्मोत्थ सुखसे वञ्चित रहते है। केवल मोदकको कथा कर मधुरताका स्वाद लेना चाहते है, जो सर्व ही अलीक है।

श्रीयुत् हर नारायणजीको कहना—अब तो चरम वय है। चरम पुरुषार्थ करनेकी घड़ी है।

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

कार्तिक कृ० ७ सं० १९९७

१३. ब्र० श्री मङ्गलसेन जीके नाम

योग्यदर्शन विशुद्धि,

मेरी सम्मति तो यह है कि इस कथोपकथनकी शैलीको छोड़कर कर्तव्य पथमें लग जाना ही श्रेयस्कर है। कल्याण करनेवाला आप है। पर-पदार्थकी आकांक्षा ही बाधक है। परके सम्बन्धसे रागादिक ही होते है, और रागादिकोंके नाशके अर्थ ही हमारी चेष्टा है। अत· निःशक होकर निराकुलतारूप उद्योग द्वारा ही आत्म-तत्त्वकी विशुद्धि होगी। अत· जो आकुलताके उत्पादक हों उन्हे सर्वथा त्यागकर स्वात्मगुणकी निर्मलता ही हमारा ध्येय होना चाहिये।

अपनी मण्डलीको मोक्षमार्गमे साधक जान अभी आप सब एकान्तमें अपने ही ग्रामोंके उपवनोंमें २ या ४ दिन अवसर पाकर रहनेका अभ्यास करोगे तो अधिक लाभ उठाओगे। हमारे सवारी आदिका त्याग है, अन्यथा हम आपके उन्ही उपवनोमें झोपड़ी बनाकर रहते, क्योकि बाह्य साधन वहाँ योग्य थे। चिन्ता किसी बातकी न करना। मेरा तो यह धारणा है कि मोक्षकी भी चिन्ता न करो। मोक्षपथमें लग जाना चिन्ताकी अपेक्षा अति श्रेयस्कर है।

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

१४. ब्र० श्री हुकम चन्दजीके नाम

श्रीयुत् महाशय लाला हुकम चन्दजी,
योग्य इच्छाकार

पत्र आया, समाचार अवगत किये। मेरी अन्तरङ्गसे यही सम्मति है—आप लोगोंने पुरुषार्थ कर जो समागमका लाभ लिया है वह सर्वको हो। अत: जहाँ तक बुद्धि पूर्वक पुरुषार्थ चले उसे एक मिनटको भी भंग न करना। मुझे तो आप महानुभावोंके समागसे अपूर्व लाभ होगा, इसमें कोई शंका नहीं, परन्तु मैं हृदयसे यह चाहता हूँ जो आप लोगोका निरपाय समागम हुआ है वह आ-निर्वाण भग न हो। पुरुषार्थोंमे परम पुरुषार्थ मोक्ष ही है। तीन पुरुषार्थोंमे शान्ति नहीं! चरमावस्था भी उनकी हो जावे, परन्तु उसमे शान्तिका आस्वाद नही। तथा हि—

अलमर्थेन कामेन मुकृतेनापि कर्म्मणा।
एभ्य: ससारकान्तारे न प्रशान्तमभून्मनः॥
विहाय वैरिण काममर्थञ्चानर्थसकुलम्।
धर्म्ममप्येतयोर्मूल सर्वत्र चनादरं कुरु॥

तात्पर्य यह है जो धर्म अर्थ कामसे ससारमें शान्ति नही, प्रत्युत अशान्तिकी ही उत्पत्ति होती है। अत: आप लोगोका जो पुरुषार्थ है वह निरपाय पदके अर्थ है। 'समागम उत्तम हो' यह भी एक कहनेकी शैली है। 'न हो' यह भी एक कथन-पद्धति है। 'वस्तुकी स्वच्छावस्था ही हमको प्राप्त हो' निरन्तर यही ध्येय ज्ञानीके है। यद्यपि श्रद्धाकी प्रबलतासे सम्यग्ज्ञानीकी महिमा अनिर्वाच्य है, तथापि चारित्र-मोहनीयकी महिमासे ६ मास मृत मनुष्यको बल भद्र छोड़ न सका। अस्तु, उसके लिखनेका आपके सामने अवसर न था।

विशेष क्या लिखूँ, कल्याणका मार्ग आपमें है। हम अन्यत्र अन्वेषण करते है। यही महती (भूल) है। बीचमे जो है सो मैं क्या लिखूँ? मेरा तो यह कहना है—जितना पुरुषार्थ शब्द-वर्गणामे हमारा है उसका शतांश भी यदि आभ्यन्तरमे हो तब यह जो कुछ पर्यायमें होता है, अनायास शान्त हो जावेगा।

बलवन्तसिंह यहाँ आ गए, सानन्द हैं। सर्वमण्डलीसे यथायोग्य। सत्समागममें यथार्थ निर्णय हो सकता है, आजकल प्रायः जो लिखनेकी पद्धति है उसमें अहम्मान्यताकी गन्ध प्राय. रहती है। अस्तु हम लोगोंको उचित है जो अन्त करणको शुद्धिपूर्वक तत्त्वका निर्णय करें। यदि अन्तःकरण न माने तो मत मानो, फिर निर्णय करो।

ईसरी
भाद्र सु० ९ सं० २०१०

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

१५. ब्र० सेठ श्री कमलापतिजीके नाम

श्रीमान् महाशय सेठकमलापतिजी
योग्य इच्छाकार

आपकी प्रकृति बहुत ही निमित्त मार्गकी ओर प्रसार कर रही है, इसका आपको तो आनन्द आता ही होगा, परन्तु हमको श्रवण कर ही आनन्द आता है। मनुष्य-जन्म-लाभका यही फल है। अनन्त मनुष्य-जन्म पाए, परन्तु सयम-रत्नके बिना नहींके तुल्य हुए। यदि इस जन्मका भी सयमकी रक्षामें उपयोग न किया तब इतर जन्मोंसे कौन-सी विशेषता इसके लाभमें पाई। सयमके लाभकी योग्यता इसी मनुष्य-जन्ममें है। जिन महाशयोंने या महापुरुषोंने इस ओर लक्ष्य दिया उन्हीने कुछ अपने महत्त्वको समझा। हम तो आपके वियोगसे व्यामोह जालमें उलझ गए। मनुष्य पर्यायबुद्धि होता है, यह सर्वत्र नहीं। इन सदृश ही इसके पात्र हैं।

परन्तु फिर भी निवृत्ति-मार्गके उत्कृष्टत्वकी श्रद्धा हृदयमें जाज्वल्य-मान रहती है। अनेक बार मनमें उत्कृष्ट श्रावकके उत्कृष्ट भावकी अभिलाषा रहती है। परन्तु अन्तरङ्गकी दुर्बलता और कारण कलापके अभावमें मनकी कल्पना मनमें ही विलीन हो जाती है। अहर्निश निष्परिग्रह व्रतकी अभिलाषा रहती है, और ऐसा भी नही है जो कुछ भाव न हो, परन्तु वास्तवमें उपादानकी न्यूनता प्रबल बाधक है। जिन जीवोंकी अवस्थिति अल्प रह गई है उन्हे अनायास साधन मिल जाते है। जिनकी अवस्थिति बहुत है उन्हे साक्षात् कारण मिलनेपर भी विपरीत परिणमन हो जाता है। जैसे, मरीचिकुमार।

इसका यह तात्पर्य नही जो पुरुषार्थकी ओर दृष्टिका निषेध हो, श्रद्धासे अन्तर न होना चाहिये। आपके समागमके बाद हमको तो हानिका ही लाभ हुआ है। इसमे किसीका दोष नही। मै निजकी भूल ही मानता हूँ। फिर भी—

'जो जो देखो वीर प्रभुने सो सो होसी वीरा रे'

इससे चित्त व्यग्र नही होता।

अब तो अन्तरङ्गसे यही प्रबल भावना हो गई है जो वर्षा वाद पार्श्वप्रभुकी शरणमे अपनेको पहुँचा देना।''''''यह भी नियम नही जो आप लोगोंके समागमादिसे हमारी कषाय कृश हो जावे।''''' हम लोग भी तो उस (संयम)के पात्र हो सकते है, परन्तु मनोदुर्बलताके कारण दैन्य वृत्तिवाले बन रहे है।''''''अस्तु हम तो आपके व्रतकी प्रशंसा करते है।''''''

विशेष क्या लिखे कषायसे दग्ध हैं। अतः बुद्धि अपना कार्य नही करती।''''''अतः जिन महानुभावोंको आत्महित करना हो उन्हे इसका संस्कार मिटाना चाहिये, अथवा मिटाओ। हमको यही उचित है जो हम आपसे संसर्ग त्याग दे।

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

१६. ब्र० माता श्री चन्दाबाई जीके नाम

श्री प्रशमूर्ति चन्दा बाईजी योग्य इच्छाकार,

पत्र आया समाचार जाने। आपका स्वाध्याय सानन्द होता होगा। हम भी यथायोग्य स्वाध्याय करते हैं, परन्तु स्वाध्याय करनेका जो लाभ है, उसके अभावमें कुछ व्यापारका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। बाईजी! समागमको दोष देना तो अज्ञानता है। क्या करें हमारा अन्तरंग अभी उस तत्त्व तक नहीं पहुँचा, जहाँसे शान्तिका उदय होता है। केवल पाठके अर्थमें ही बुद्धिका उपयोग रह जाता है। ज्ञानका फल विरति है, यह अभी बहुत दूर है। समयसारका स्वाध्याय तो करता हूँ, परन्तु अभी उसका स्वाद नहीं आता, परन्तु श्रद्धा तो है। विशेष क्या लिखूँ? श्री सिद्धान्तका भी स्वाध्याय किया, विवेचन शैली बहुत उत्तम है।

आपको क्या लिखूँ, क्योंकि आपकी प्रवृत्ति प्राय: अलौकिक है। जहाँ तक बने अब उसे यातायातकी हवासे रक्षित रखिये। श्री चिरञ्जीव निर्मल बाबूकी माँ सानन्द होगी? उनसे मेरा धर्मप्रेम कहना (अब शेष जीवनमें जो उदासीनता है उसे ही वृद्धि रूप करनेमे उपयोगकी निर्मलता करे, यही कल्याणका मार्ग है। यह बाह्य समागम तो पुण्यका फल है और निर्मलता संसार बन्धनको छेदन करनेमें तीक्ष्ण असिधारा है। वह जितनी निर्मल रहेगी उतनी ही शीघ्रतासे इसका निपात करेगी।

हमने आपके समक्ष सराक-जातिके अर्थ भ्रमणका विचार किया था। कोई ने बात न पूछी और न कोई साधन जानेका मिला, अतः आपकी सम्मति ही सर्वोपरि मान कर यहीं रहना ही निश्चित रखा है। शेष यहाँके सर्व त्यागी आपको इच्छाकार कहते हैं। श्री आत्मानन्दजी चले गये। श्री सूरज मलजीका कार्य जैसा था वैसा ही है। "जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे" इसीमें सन्तोष है। मैं तो निर्द्वन्द हूँ, कुछ उसमे चेष्टा नहीं।

ईशरी }

आपका शुभ चिंतक
गणेश वर्णी

१७. ब्र० माता श्री अनूपादेवीजीके नाम

श्री शान्तिरस-पान-कर्त्री अनूपमाला देवी योग्य इच्छाकार

पत्र आया वृत्त जाने। स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा है, यह भीतरकी शुद्धिका ही माहात्म्य है। समाधिमरण तो जब समय आवेगा अनायास हो जायेगा, उसकी चिन्ता न करो। केवल वर्त्तमान परिणामोकी निर्मलतापर दृष्टि रक्खो, क्योकि सम्यग्ज्ञानी जीवके जो औदयिक भोग है उसमें उसके वियोग बुद्धि है और आगामीकी अभिलाषा नही। अतीतका प्रतिक्रमण हैं। ऐसी जिसके सावधानता है उसे भय किस बातका ? जब आपका परिणाम वर्तमानमे उत्तम है, तब उत्तर कालमें उसका फल उत्कृष्ट ही होगा।

आप यह बात अन्तरङ्गसे अच्छी तरह हृदयमे धारण कर लो कि पञ्चम गुणस्थान वालेको वीतरागी मुनिको शान्तिका आस्वाद नही आ सकता। ध्यान भी वही तक ही होगा जितनी कषायकी कृशता है। परिग्रह होनेसे पञ्चम गुणस्थानमे रौद्र-ध्यान तकको सम्भावना है, परन्तु वह अधोगतिका कारण नही। सर्वथा मूर्च्छाका त्याग अणुव्रतवालोको नही हो सकता।

अत. व्यर्थकी चिन्ता न करो और सानन्द सर्व पदार्थोंसे ममत्वको छोडनेकी चेष्टा करो। अब जहाँ तक बने आत्माका परिग्रह आत्मा हो है, इसका निरन्तर रसास्वाद लो। बुद्धिमान् मनुष्य परको अपना परिग्रह नही मानता। तब जो आपके भाव होते है, वे भी तो औदयिक है। उन्हे अनात्मीय जान उनसे अपनेको भिन्न समझो। उनमे जो ज्ञायक भाव है उसे आत्मीय जान उमीमे रत रहो, उसीमे सन्तोष करो, उमीमे तृप्ति होगी। और इस समय सुगम ग्रन्थोंका, जो सरल रीतिसे समझमें आ जावे, श्रवण करो। परमात्म-प्रकाश बहुत उपयोगी ग्रन्थ है। समाधिशतक पूज्यपाद स्वामीका अद्भुत ग्रन्थ है। उसका भी स्वाध्याय श्रवण करो। और कायकी कृशताको गौण कर कषायकी कृशता पर ध्यान देना। बाह्य त्यागकी वही तक मर्यादा है, जो आत्म-परिणामोंमे निर्मलताका साधक हो।

आपका शुभ चिन्तक
गणेश प्रसाद वर्णी

१८. ब्र० माता श्री पतासा बाईजीके नाम

श्रीयुत् महाशान्मिूर्ति पतासीबाईजी
योग्य इच्छाकार,

मेरे पास कोई पत्र नही आया। मै आपके पत्रका उत्तर न दूँ यह असम्भव है। संसारमे सभी स्वार्थी है। आपके द्वारा हमारा उपकार हुआ है; क्योकि आपकी प्रवृत्ति निवृत्तिसे मिश्रित है। गया-समाजका ही उपकार नही हुआ, उस प्रान्तकी आस पास शोभा है। यद्यपि निश्चयसे कोई किसीका उपकारी नही, परन्तु निमित्त अपेक्षा यह सर्व व्यवहार है। तत्त्व-दृष्टि वाले भी परोपकार करते है, परन्तु कर्तृत्वका अभिमान नही करते।

जब तक संसारमें राग है उसका कार्य होगा। अन्तरङ्गसे वह नही चाहता, परन्तु बलात्कार करना पडता है। मेरा तो यह विश्वास है, सोलह-कारण-भावनाको भी सम्यग्दृष्टि उपादेय नही मानता। बन्धके कारणोमे सम्यग्दृष्टि उपादेयता माने, असम्भव है।

आपने लिखा हमारी शक्ति नही, सो ठीक नही। यह सर्व कार्य तो मोहके उदयमे होते है। उनमे कर्तृत्व बुद्धि न करना उचित है। गयाकी स्त्री-समाज तो आपके उपदेशसे द्रवीभूत हो गई है। यदि वह सुमार्गपर चले तब इसमे क्या आश्चर्य ? परन्तु हमारी तो यह सम्मति है, आप उसे सुना देना। यद्यपि आपने उसे सब कुछ दिया है। यह मेरी सम्मति नवीन नही, फिर भी सुना देना—

अष्टमी, चतुर्दशी, सोलह कारण और अष्टाह्निका पर्वमे ब्रह्मचर्यसे रहे और जब गर्भमे बालक आवे तबसे लेकर जबतक बालक जन्मसे १२ मासका न हो जावे, ब्रह्मचर्यसे रहे। मनुष्योंको भी यह पढा देना। इसके बिना मनुष्य व स्त्री धर्मसाधनके पात्र नही।

जबलपुर
माघ वदी ८ सं० २००० }

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

१९. ब्र० माता श्री कृष्णा बाईजी योग्य इच्छाकार,

आत्मा वही दु.खसे छूटनेका पात्र है जो पर-पदार्थसे सम्बन्ध छोडेगा। आप लोगोंकी सहन-शक्ति जब शारीरिक इतनी है जो ५ डिग्री ज्वरमें भी सामायिक करनेका साहस रखते हैं, तब पर-पदार्थोंसे सम्बन्ध छोड़नेमें क्या कठिनता है ? हम कहें संसार स्वार्थी है, तब इसका यह अर्थ है जो हम स्वार्थी नही हैं। अत· इन अप्रयोजनीभूत विकल्पोंको छोड केवल माध्यस्थ-भावकी वृद्धि करना।

'राग द्वेष दुःखदायी है' ऐसा कहनेसे कुछ भी सार नहीं, कर्ता उसके हम हैं, अतः आत्मा ही आत्माको दु·ख देनेवाला है, इसलिये आत्माको निर्मल करनेकी आवश्यकता है। उस निर्मलताके अर्थ किसीकी आवश्यकता नही, केवल स्वकीय विपरीत मार्गकी गमन-पद्धति को छोड देना ही श्रेयस्कर है। हम क्या करे।

जिसका प्रश्न है उसका उत्तर यह है—जिस वस्तु या परिणामको आप दु खकर समझते है उसे छोड दे। हमारी तो यही सम्मति है, जो आत्माके हितके अर्थ जो भी त्याग करना पड़े करे। वही कहा है—

> आपदर्थे धन रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि।
> आत्मानं सतत रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥

क्योंकि संसारमें प्राय प्रवृत्ति भी इसी प्रकारकी है, अत जो मुमुक्षु है उनकी स्वात्म-हितके अर्थ यदि प्रवृत्ति हो तब इसमें क्या आपत्ति है ? समारमें तो परार्थ-घात करके स्वार्थ-साधन करते है। यहाँ मोक्ष मार्गी केवल स्वार्थ-साधनामे ही उपयोगको चेष्टा रखते हैं। अतः निष्कर्ष यह है जो आपका कल्याण आपसे होगा, इतरका सम्बन्ध बाधक ही है। हम तो वस्तु ही क्या हैं, मेरी तो श्रद्धा है, परमेष्ठीका ससर्ग भी साधकतम नही। साधकताका निषेध नही, तत्त्व तो सरल है, पर उसकी व्याख्या इतनी कठिन है जो बहु-यत्नसाध्य है, परन्तु श्रद्धालु जीवोंको उसकी प्राप्ति कठिन नही। पूर्वधारी भी श्रेणी माँडते है और अष्ट-प्रवचनके जानने वाले भी वही काम करते हैं।

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

श्रीयुत् शान्तिमूर्ति पतासी व कृष्णाबाईजी योग्य इच्छाकार,

आपका समागम महावीर स्वामीकी यात्राके अर्थ हुआ, अच्छा ही हुआ। प्रायः मनुष्य लौकिक कामनाके हेतु ही विशेष रूपसे यात्रा करते हैं। आप संसार निवृत्तिकी कामनाका आशय हृदयमे धारणकर यात्रा करियेगा। मै तो उस दिन आपको धन्य समझूँगा जो आपकी प्रवृत्ति जब अन्यसे छूटेगी। आत्मीय गुणका विकाश उसी आत्मामे होगा जो पर-पदार्थसे स्नेह छोड़ेगा। आत्म-कल्याणका अर्थी शुद्धोपयोग के साधक जो पदार्थ है, उनसे भी स्नेह छोड देता है, अन्यकी तो कथा ही क्या है ?

मनुष्य जन्ममे ही आत्मज्ञान होता हो सो नही, चारों गति ही भेदज्ञानमे कारण है। परन्तु संयमका पात्र यही मनुष्य-जन्म है। अतः इसका लाभ तभी है जब इन पर-पदार्थोंसे ममता भाव छोड़ा जाय। ममताके त्याग बिना ममता नही और समताके बिना तामस भावका अभाव नही। जबतक आत्मामे कलुषताका कारण यह भाव है तबतक शान्तिका उदय नही। शान्तिका मूल कारण निरीह वृत्ति है।

आत्म-हितका कारण शुद्ध भाव है और कदाचित् विशुद्ध भाव-भी निमित्त कहा है। परन्तु सक्लेश भाव तो सर्वथा ही अयोग्य है। शुभोपयोगके साथ शुद्धोपयोगका समानाधिकरण हो सकता है, किन्तु अशुभोपयोगके साथ तो उस भावका रहना असम्भव है।

युक्तिका उपयोग वही तक करना जहाँ तक मूलतत्त्वमें बाधा न आवे। बहुतसे मनुष्य व्यवहारको मुख्यताकर मूल वस्तुका उच्छेद करते हैं, यह अनुचित है। इसी तरह निश्चयकी मुख्यता कर जो बाह्य प्रवृत्ति का निषेध करते है, वे भी पतित है। तत्त्व प्राप्ति तो समभावसे ही होती है। सो जहाँ तक बने अविरोध पूर्वक धर्म साधन करना श्रेयो मार्ग है।....

........इस दीपावली बाद कोडरमा जावेगे और फिर गया जावेगे। वही मनुष्य उत्तम है, जो अल्प सम्बन्ध रखता है।

ईशरी
कार्तिक बदी ५ सं० २०००

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

२०. श्री० महा देवीजी योग्य दर्शन विशुद्धि

बेटी ! संसारमें शान्ति नही सो ठीक है, परन्तु शान्तिका मूल हम लोग ही तो हैं। क्या पुद्गल-कर्म शान्तिका बाधक है ? हमारी अज्ञानताने यह सर्व असत् कल्पना कर संसार बना रक्खा है। वास्तविक तो वस्तु अशान्तिमयी नहीं, औपाधिक परिणामोंने यह सब उपद्रव बना रक्खा है।

अत: जहाँ तक बने उन औपाधिक भावोंका यथार्थ ज्ञान करना ही मोक्षमार्गकी प्रथम सीढी है, औपाधिक भावोंके त्यागके बिना हम सम्यग्दर्शनके पात्र नही हो सकते। अतः ससारमें संवेग होना ही श्रेयस्कर है। क्या लिखूँ ? पदार्थ तो इतना सरल है जो एक मिनट तो बहुत, एक सिकेण्डमें अवबोधका विषय हो सकता है, परन्तु वचनकी प्रचुरतासे वर्षोंमे उसकी यथार्थता आना दुर्गम है।

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

श्री युक्ता देवी जी, योग्य दर्शन विशुद्धि

मैने पत्र बनारसको लिख दिया है। आशा है उत्तर आपके पतेमे पहुँचेगा। यदि २) की जगह ३) रु० दिये जावे तब अच्छा है।

बेटी ! संसारमें सर्वत्र ही अशान्ति है। धन्य है उन महापुरुषोंको जो इस महती अशान्तिमे शान्तिके पात्र हो जाते हैं। मूल कारण शान्तिका पर-पदार्थसे परिणति हटावे। हटानेका उपाय उनके न्यून करनेका प्रयास है। जितना अल्प परिग्रही होगा उतना ही सुखी होगा। परिग्रह ही सर्व पापोका निदान है। इसकी कृशता ही रागादिके अभावोंमें रामबाण औषधि है।

बेटी ! जहाँ तक बने रागादि दोषोसे ही अपनी रक्षा करना। यह अवसर अति दुर्लभ है। मनुष्यायुकी प्राप्ति, शरीरादिककी निरोगता, उत्तरोत्तर दुर्लभ जान सानन्द चित्तसे इन शत्रुओको विजयकर स्वात्म लाभ करना।

आपका शुभ चिन्तक
गणेश वर्णी

७

•

धर्मका मर्म

•

मानवता विहीन रूढिवाद व दम्भाचरण पतनके हेतु
है। सत्य वैराग्यमे ही कल्याणकी प्रतिष्ठा है।
अनेकान्तकी विशाल कक्षमे सभी धर्मो-
को समान स्थान प्राप्त है।

१—मानव धर्म

•

१. परमार्थ अहिंसा—मानव सेवा

(१) जय पुरमें जब पढता था तब वहाँ श्रीमान् स्वर्गीय अर्जुनदास जी भी एन्ट्रेसमें पढते थे। आपका ध्येय देशोद्धारका विशेष था, अत: आपका काग्रेस सस्थासे अधिक प्रेम था। आप विरोधीके सामने कायरताका बर्ताव करना अच्छा नही समझते थे। आप अहिंसाका यथार्थ स्वरूप समझते थे। बहुधा बहुतसे पुरुष दयाको ही अहिंसा मान बैठते है। पर आपको अहिसा और दयाके मार्मिक भेदका अनुगम था।

(२) वि० सं० २०१० में गया चातुर्मास था। आरासे पं० नेमिचन्द्रजी ज्योतिपाचार्य भी आए थे। उन्होने अहिंसा तत्त्व पर अच्छा प्रकाश डाला। आपने कहा कि हम जिस मुहल्लेमे रहते है, उसमे रहनेवाले सब लोगोके साथमे कुटुम्ब जैसा व्यवहार करना चाहिये। यदि किसीके घर किसी वस्तुकी कमी है, तो उसकी पूर्ति करना चाहिये। हम लोग अहिंसाके नाम पर छोटे-छोटे जीव जन्तुओकी तो रक्षा करते है, परन्तु मनुष्योकी उपेक्षा कर देते है।

(३) बनारससे गया जाते हुए दुर्गावती नदीके तट पर ठहरे। स्कूलके एक बालक ने प्रश्न किया–आप कौन है ? मैंने उत्तर दिया— जैन हैं। ⋯जैन किसे कहते हैं ? ⋯ जो जीव मात्र पर दया करे। जीव मात्र पर दया करनेसे समारकी व्यवस्था किस प्रकार चलेगी ? ⋯दयाका यथोचित विभाग करनेसे सब व्यवस्था चल मकती है। अपने अपने पद और अपनी-अपनी शक्तिके अनुमार जीव दयाका पालन करनेसे कही कोई व्यवस्था भग नही होती। उत्तर मुनकर बालक प्रसन्न हुआ।

(४) एक दिनकी बात है कि बरुआमागरमें मूलचन्द्रजीके श्वसुरको उसके पुत्रने शिरमे लाठी मार दी। हम व मूलचन्द सर्राफ वही पर बैठे थे। केवल वचनोंसे प्रलाप करने लगे। 'हा भगवन्! भारतमे कैसे अधम पुरुष होने लगे है ? इत्यादि ⋯ जो कुछ मनमे आया उसे वचनों द्वारा प्रगट कर हम दोनोंने सन्तोष कर लिया, पर यह न हुआ कि उस वृद्धकी कुछ सेवा करते।

इतनेमें क्या देखते है कि एक मनुष्य जो वहाँ भीडमे खडा हुआ था एकदम दौडा हुआ अपने घर गया और शीघ्र ही कुछ सामान लेकर आ गया। उसने जलसे वृद्धका शरीर धोया और घावके ऊपर एक बोतलमेसे कुछ दवाई डाली। पश्चात् एक रेशमका टुकड़ा जलाकर शिरमे भर दिया। फिर एक पट्टी शिर पर बान्ध दी। साथमें दो आदमी लाया था, उनके द्वारा उस वृद्धको उसके घर पहुँचा दिया।

हम लोगोंने उससे पूछा—'भाई! आप कौन है ?' वह बोला— 'हम एक हिन्दूके बालक हैं। हमारा बाप जातिका कोरी था। जब दुर्भिक्ष पडा और हमारे बापकी किसीने परवरिश न की तब लाचार होकर उसने ईसाई धर्म अङ्गीकार कर लिया। हमारी माँ अब भी सीतारामका स्मरण करती है। हमारी भी रुचि हिन्दू धर्मसे हठी नहीं है।

परन्तु खेद है, आप तो जैनी है, पानी छान कर पीते हैं, रात्रि-भोजन नहीं करते, किसी जीवका वध न हो जावे, इस लिये चुग चुग कर अन्न खाते है, कण्डा नही जलाते क्योंकि उसमें जीव राशि होती है, खटमल होनेपर खटिया घाममें नहीं डालते, किसी स्त्रीके शिरमें

जुवाँ हो जावें तो उन्हें निकाल कर सुरक्षित स्थान पर रख देते है····
यह सब होने पर भी, आपके यहाँ जो दया बतलाई है, उससे आप लोग वञ्चित रहते हैं।

एक वृद्धको उसके लडकेने लाठी मारदी, यह तुम लोग देखते रहे। क्या एक दम लाठी मार दी होगी? नही, पहले तो वृद्धने उसे कुछ अनाप शनाप गाली दी होगी। पश्चात् लडकेने कुछ कहा होगा। धीरे धीरे बात बढी होगी। आप लोगोंको उचित था कि उसी समय उन्हें समझाकर या स्थानान्तरित करके शान्त कर देते। परन्तु तुम लोगोंकी यह प्रकृति पड गई है, कि झगड़ेमें कौन पडे? यह शूरता नही, यह तो कायरता है।

तुम लोग केवल बोलनेमे शूर हो। जिसका समवेदनामें कर्तव्य नही, उससे क्या लाभ? कार्य करनेमे नपुंसक हो। उचित तो यह था कि उस वृद्धकी उसी समय औषधि आदिसे सेवा करते। परन्तु तुम्हें तो खून देखनेसे भय लगता है, पराये शरीरकी रुग्णावस्था देख ग्लानि आती है। तुम लोग अपने माँ बापकी शुश्रुशा नहीं कर सकते। व्यर्थ ही अहिसा धर्मकी अवहेलना कर रहे हो।

परन्तु कभी एकान्तमे यह विचारा कि हम ईसाई क्यो हो गए? खानेके लिये अन्न न मिला। पहननेके लिये वस्त्र नहीं मिले। उस हालतमें आप ही बतलाइये कि क्या करते? आपका धर्म इतना उत्कृष्ट है कि उसका पालन करनेवाला ससारमे अलौकिक हो जाता है। परन्तु तुम्हारे आचरणको देखकर मुझे तो दया आती है। मुझे तो ऐसे स्वार्थी लोगोको मनुष्य कहते हुए भी लज्जा आती है, अत मेरी तो आपसे यह विनय है कि आप लोग जितना बोलते है, उसका सौवाँ हिस्सा भी पालन करनेमे लावें तो आपकी उपमा इस समय भी मिलना कठिन हो जावे।

हम उसकी इस खरी समालोचनासे बहुत प्रसन्न हुए। जिन्हे हम यह समझते है कि ये लोग धर्म-विरुद्ध आचरण करते है, वे लोग भी हमारे कार्योंको देखकर इसे उत्तम नहीं मानते। कितना गया बीता हो गया है हमारा आचरण।

२. सर्व-जन-सत्कार

[क्षुल्लक अवस्थामें पद विहार करते हुए अनेकों छोटे-छोटे ग्रामोंमें ठहरना पड़ता था। कही तो धर्मशालामें ठहरते थे, कहीं किसी स्कूलमें, कही किसी शिवालयमें, कही किसी बागमें और कहीं किसी साधुकी कुटियामें। क्या स्कूलके मास्टर और क्या ग्रामीण व्यक्ति, क्या साधु, क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, क्या उच्च वर्णी और क्या शूद्र, सभी अत्यन्त शिष्ट व्यवहार करते थे। स्वयं कष्ट सहकर भी हमे अच्छेसे अच्छा स्थान देते थे। स्थान ही नही देते थे, भोजन पान आदिके लिये भी अत्यन्त आग्रह करते थे। हमे चाहिये कि उनसे कुछ सीखे।]

(१) वैष्णव सम्प्रदायमें अतिथि सत्कारकी समीचीन प्रथा है। इसका अनुकरण हम लोगोको करना चाहिये। परमार्थसे सब जीव समान है।

जैसा अतिथि सत्कार ये लोग करते है, वैसा हम लोगोंमे नही है। हम लोग तो अन्य लोगोंको मिथ्यादृष्टि वाक्यका उपयोग कर ही अपने आपको कृतकृत्य मान लेते है। (२।४३७)

(२) बनारससे गया जाते हुए शिवसासर ग्राममें एक शिवालयमे ठहर गए। पुजारी अत्यन्त शिष्ट था। गर्मीकी अधिकता देख उसने हमे शिवालयके भीतर स्थान दिया। भीतर देवस्थान है। वहाँ ठहरनेसे अविनय होगी ······ ऐसा हमारे कहने पर उसने उत्तर दिया कि मनुष्यकी रक्षा करना सर्वोपरि है। भगवानका उपदेश है कि दया करो। हम भीतर आपको स्थान देकर दयाका ही तो पालन कर रहे है, इसमें अविनयकी कौनसी बात है। उसका उत्तर सुनकर जब हमने अपने लोगोकी प्रवृत्तिकी ओर दृष्टि दी तो जान पड़ा कि हम लोग मुखसे ही दयाका पाठ पढते है। काम पड जावे तो हम लोग अन्य मतावलम्बियोको मन्दिरमें ठहरना तो दूर रहा बैठने तक न देवेंगे। यह बात जैन धर्मके सर्वथा प्रतिकूल है।

(३) बनारससे गयाकी ओर जाते समय मार्गमें शिवगञ्ज निवास किया। एक डाक्टर साहबने अपना स्थान खाली कर दिया, और स्वयं परिमार्जन कर हमें प्रेमसे ठहराया। १।२ दिन उनकी दुकान बन्द रही।

दुपहरीमें आप स्वयं छपरीमें लेटे रहे, पर हमें (गर्मीका) अल्प कष्ट नहीं होने दिया। शिष्टताका जैसा व्यवहार अन्य समाजमें है, उसका शतांश भी हमारी समाजमे नहीं।

(४) सागरसे बनारसकी ओर विहार करते हुए मार्गमे एक मुसलमानके घरमे ठहरे। बहुत सत्कारसे उसने ठहराया। इसी प्रकार एक मिडिल स्कूलमें ठहरे। यहाँ अध्यापकवर्ग अत्यन्त सभ्य हैं। एक कमरा तत्काल रिक्त कर दिया।

३. सुहृदयता

(१) सागर विद्यालयकी सहायताके लिये देहातमें भ्रमण करते हुए मै और सेठ कमलापत्तिजी बहेरिया ग्रामके कुआँ पर पानी पीते थे। इतनेमे एक पंच-वर्षीय बालक सहित उसकी माता खड़ी दिखाई दी। दोनो प्यासे थे, परन्तु शूद्र होनेके कारण कुअेसे भर कर पानी नही पी सकते थे। हमने उन्हे पानी पिलाया। पासमे कुछ मेवा थी, वह बालकोंको खानेके लिये दी। उस स्त्रीकी व्यथा सुनकर मैने अपनी धोती दुपट्टा व जो रुपये उसमे बन्धे थे वे सब उसे दिये, और स्वय एक लगोटीमें रात्रिके ७ बजे सागरमे प्रवेश किया।

(२) द्रोणगिरिसे लौटकर हम लोग सागर आ गए। एक दिनकी बात है कि शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर गाँवके बाहर कूप पर हाथ पैर धोनेकी तैयारी कर रहा था, कि इतनेमें एक औरत बड़े जोरसे रोने लगी। पूछनेपर उसने बताया कि हमारे पैरमे काटा चुभ गया है। परन्तु बार-बार कहने पर भी वह पैरको न छूने देती थी। कहती थी कि मै जातिकी कोरिन तथा स्त्री हूँ। आप लोग पण्डित है, कैसे पैर छूने दूँ।

विद्यालयके छात्रने पैर देखकर कहा कि इसमे खजूरका काटा टूट गया है, जो बिना संडासीके निकालनेका नही है। सड़कके ऊपर एक लुहारकी दुकान थी। माँगनेपर भी उसने सडासी न दी। श्री माधवजीके कहनेसे छात्र बलात्कार लुहारसे सडासी छीन लाए।

मैने चाहा कि सडासीसे काँटा निकाल दूँ। परन्तु उस औरतने पैर छुआना स्वीकार न किया। तब कुछ छात्रोंने उसके हाथ पकड़ लिये और कुछने पैर। मैने सडासीसे काँटा दबा कर ज्यों ही खीचा

त्यों ही एक अंगुलका काँटा बाहर आ गया। साथ ही खूनकी धारा बहने लगी। मैंने पानी ढोलकर धोती फाड़कर पट्टी बाँध दी। उसे मूर्छा आ गई। पश्चात् जब मूर्छा शान्त हुई, तो लकड़ीकी मौरी उठानेकी चेष्टा करने लगी। वह लकड़हारिन् थी। मैंने कहा तुम धीरे-धीरे चलो। हम तुम्हारी लकड़ियाँ तुम्हारे घर पहुँचा देंगे। बड़ी कठिनतासे वह मजूर हुई। हम लोगोने उसका बोझ सिरपर रखकर उसके मोहल्लामे पहुँचा दिया। उस मोहल्लाके जितने मनुष्य थे, हम लोगोकी यह प्रवृत्ति देखकर हम लोगोंको देवता कहने लगे।

(३) एक दिन भोजन कर रहा था। इतनेमें एक भिखमगा आया और गिड़गिड़ाकर माँगने लगा। मुझसे भोजन नही किया गया। मैने दो रोटी और कढ़ी लेकर उसे दी और पानी पिलाया।

(४) एक बार हम और कमलापति सेठ बरायठासे आ रहे थे। कुर्रापुरसे दो मील दूर एक कुएँ पर पानी पी रहे थे। पानी पी कर ज्यों ही चलने लगे, त्यों ही एक मनुष्य आया और कहने लगा कि हमें पानी पिला दीजिये। परन्तु 'महाराज! मैं मेहतर भंगी हूँ।' मैने कहा—'कुछ हानि नही, पानी ही तो पीना चाहते हो।' सेठजी बोले—'लोटा आगमें शुद्ध करना पड़ेगा।' मैने कहा—'कुछ हानि नही पानी तो पिलाने दो।' मैने उसे पानी पिलाया। पश्चात् वह लोटा उसे ही दे दिया और सेठ जीसे कहा—'चलो शुद्ध करनेकी झंझट मिटी।'

(५) एक बार शिखरजीमें प्रातःकाल शौच आदि क्रियाको गया, मार्गमें एक बुढिया ठण्डसे काँप रही थी। जो चद्दर ओढे था उसे दे आया और स्वय काँपता-काँपता धर्मशालामे आया।

(६) खुरईकी बात है। स्टेशनके फाटक पर एक बुड्ढा ब्राह्मण सत्तूका लोदा बनाये बैठा था, पर पानी न होनेके कारण उसे खा नही पाता था। मैने कहा, मै आपके सामानकी रक्षा करूँगा, आप मानन्द पानी ले आइये। वह उस पार गया पर उसे पानी न मिला। मैने कहा—'मेरे कमण्डलुमे पानी है, जो आपके पीने योग्य है।' उसने प्रसन्नता पूर्वक जल ले लिया और आशीर्वाद देकर कहने लगा कि 'यदि भारतवर्षमे यह भाव हो जावे तो उसका उत्थान अनायास ही हो जावे।'

(७) दिल्लीसे इटावा जाते हुए मार्गमें मरिपुर ग्राम आये। वहाँ पर कोरीका एक बालक ठण्डमें नंगा पड़ा था। उसे मैंने मेरे पास जो ३ गज कपड़ा था वह दे दिया। यह देख लाला खचेडूमल तथा मगळ-सेनजीने भी उसे कपड़ा दिया। गरीबका काम बन गया। यह देख मुझे हर्ष हुआ। दया बड़ी वस्तु है। आगे चले तो पहाड़ी नामक गाँवमें ८ स्त्रियोने ब्रह्मचर्य व्रत लिया। उसमेंसे एक औरत गरीब थी। उसे एक थान दसूतीका जो सघके लोगोंके वास्ते अलीगढमें एक श्वेताम्बर भाईने दिया था, दिलवा दिया। बड़े आग्रहसे उसने लिया।

(८) एक बार रेशन्दीगिरिके मेलेमे ताँगेसे गया। बाईजीने मुझे चार पेड़े रख दिये। रास्तेमें मैंने दो पेडे ताँगे वालेको दिये और दो मैने खाए। कच्ची रास्तामे धूल उडने लगी मुझे कष्ट हुआ। ताँगे वालेने ज्यों ही देखा झटसे ताँगा आगे ले गया। साथ वालोंने भी अपने ताँगे वालोसे आगे ले जानेको कहा और साथमें इस बातकी धमकी दी कि हमने भी तो तुम्हे उतना ही किराया दिया है। ताँगे वालेने कहा कि आपने किराया दिया सो तो ठीक है, पर स्वयं भूखा रह कर दो पेड़े तो नही दिये। हृदय पर हृदयका असर पडता है।

(९) फीरोजाबादसे सागर जाते हुए मार्गमे वेत्रवदी नदी पार करनी पडी। नाविक मेरा हाथ पकडकर शनै शनै मुझे स्थलपर पहुंचा आया। उसका हृदय दयासे परिपूर्ण था। मैने उसे उपकारी मान अपने पास जो २ गज खादीका दुपट्टा था वह दे दिया। उसे लेकर वह बहुत प्रसन्न हुआ तथा धन्यवाद देता हुआ चला गया।

(१०) धौलपुरका राजा बहुत सज्जन है। वनमें जाते है और रोटी आदि लेकर पशुओंको खिलाते है। राजाके पहुँचनेपर पशु स्वय-मेव उनके पास आ जाते है। देखो दया (अहिसा)की महिमा कि पशु भी अपने हितकारीको समझ लेते है। यदि हम लोग दया करना सीख लें तो क्रूरसे क्रूर जीव भो शान्त हो सकता है।

४. अन्य साधुओंके साथ शिष्ट व्यवहार

(१) सागरसे बुन्देल खण्डमे पर्यटनके लिये निकला तो चित्रकूटमे एक साधू मिला। उसने कहा कि आप लोग तो जैनातिरिक्त मतानुयायी

साधुओंको नहीं मानते हो, परन्तु मेरा आपपर अपने साधुओंके सदृश ही प्रेम है।' मै उसकी यह प्रवृत्ति देख बहुत असमञ्जसमें पड़ गया। हम लोग तो अन्य साधुको देखकर शिष्टाचारको तिलाञ्जली दे देते हैं। यदि किसीने 'महाज ! सीता राम' ऐसा कह दिया तो उसे मिथ्यादृष्टि समझने लगते है। जब तक किसीके साथ सज्जनताका व्यवहार न किया जावे तब तक उसकी उस धर्मसे, जिससे कि जगतकी रक्षा होती है, कैसे प्रेम हो सकता है।

(२) दिल्ली यात्राके मध्य एक साधु मिला। बडा शिष्ट था। बड़ा ही सौजन्य उसने दिखाया। हमारे यहाँ तो कुछ ऐसी पद्धति हो गई है, कि अन्य मतावलम्बी साधुके साथ यदि कोई विनयसे बर्ताव करे तो यह कहनेमें सकोच नही कि तुम तो वैनयिक मिथ्यादृष्टि हो। अस्तु, कुछ बुद्धिमें नहीं आता। जो धर्म इतना उपदेश देता है कि एकेन्द्रिय जीवकी भी बिना प्रयोजन क्षति न करो, उसका व्यवहार संज्ञी जीवोंके प्रति कितना शिष्ट होगा, यह आप जान सकते है। ●

२–त्याग धर्म

•

१. दम्भ बनाम त्याग

(१) हम लोग निमित्त कारणोंकी आयोजनामें सब पुरुषार्थ लगा देते है। पर उपादानकी ओर दृष्टि नही देते। आवश्यकता इस बातकी है कि अन्तस्तत्वकी निर्मलताके जो बाधक कारण (रागादि) हैं, उन्हे दूर किया जावे। वास्तविक बाधक कारण क्या है, इस ओर दृष्टि नही देते। हम लोग निमित्त कारणोको ही बाधक मानते है, इससे उनको दूर करनेकी चेष्टा करते हैं।

मै स्वयकी कथा कहता हूँ—"जब श्री बाई जी जीवित थी, तब मै निरन्तर यही मानता था कि यदि बाई जी न होती तो मै भी आत्म-कल्याणके मार्गमे निर्विघ्न लग जाता।" बाई जी का कहना था कि 'बेटा ! अभी तुम जैन धर्मका मर्म नही समझते।'

मै एक दिन जोर देकर बोला—'बाई जी। मै तो अब त्यागी होना चाहता हूँ। कोई किसीका नही। सब स्वार्थके सगे है। इतने दिन व्यर्थ गए। अब मै जाता हूँ।' बाई जी बोली—'बेटा ! मै नही रोकती। बडी प्रसन्नता है। परन्तु खेद इस बातका है कि तुम बात बहुत करते हो पर करनेमे कायर हो। मनुष्य वह है कि जो कार्य करनेकी बात न निकाले और अन्य मनुष्य उसके कार्यको देखकर अनुमान करें कि इनके इस कार्यके करनेका अभिप्राय था।'

'हमने तुम्हारा ३० वर्ष पोषण किया। कभी इस बातकी इच्छा नही रक्खी कि वृद्धावस्थामें तुम हमारी वैयावृत्य करोगे। अब हमारी अवस्था शिथिल हो गई। अतः उचित तो यह था कि प्रति दिन हमको शास्त्र प्रवचन सुनाते, सो तो दूर रहा, और अनधिकार चेष्टाकी बात करते हो कि हम त्यागी होते हैं।'

'त्यागी जो होता है वह किसीसे रागद्वेष नही करता। शान्त चित्तसे आत्म-कल्याणके मार्गमे लग जाता है। यदि वास्तवमे त्याग-धर्मका स्वाद लेना चाहते हो तो सर्व प्रथम अपने अभिप्रायको निर्मल बनानेका प्रयत्न करो। हमने तुम्हारा कौन-सा अकल्याण किया है कि जिससे डर कर तुम राग-भावके गए बिना ही विरक्त होते हो। इसके माने त्याग नही। इसका अर्थ तो यह है कि अब बाई जोकी वृद्धावस्था हो गई है अतः इनकी वैयावृत्य करनी पड़ेगी। वह न करना पडे, इसलिये चलो त्यागी बन जाओ। इस प्रकारका छल कल्याण-मार्गका साधक नही। इसका नाम त्याग नही। यह तो द्वेष है।'

'जब अन्तरङ्गसे रागकी कृशता होती है, तब बाह्य वस्तु स्वयमेव छूट जाती है। सच्चा त्याग इसीका नाम है। जिस त्यागसे शान्ति-लाभ न हो, वह त्याग नही दम्भ है।' मै सुनकर चुप रह गया और जो विचार थे उन्हे परिवर्तित कर दिया। वास्तवमे त्याग तो कषायके अभावमें होता है, सो तो था नही। लौकिक प्रतिष्ठाके लिये जो त्याग करते है वे रागके लिये चन्दन जलाते है।

[फरोजाबाद माघ शु० ५ वि० सं० २००७ सेठ छदामी लालके मेलेको आयोजना] १ बजे श्री आ० सूर्य सागरजी महाराजकी अध्यक्षतामे व्रती सम्मेलनका उत्सव हुआ। जिसमे अनेक विवाद-ग्रस्त विषयो पर चर्चा हुई। जिसमें यह निर्णय किये गए—

(२) जैन धर्मका श्रद्धालु त्रिवर्णवाला यदि जैन धर्मकी प्रक्रियासे आहार बनाता है तो व्रती उसे ग्रहण कर सकता है।

(३) छोटी मोटी प्रतिज्ञा लेकर घर छोड़ देना और अपने आपको एकदम पराश्रित (समाजाश्रित) कर देना योग्य नहीं है। पहली दूसरी प्रतिमा-धारी त्यागी व्यापारादि छोड भोजन वस्त्रादिके लिये परमुखापेक्षी बन जाते हैं। यथार्थमे पर-गृह भोजन १० वी ११ वी

प्रतिमासे शुरु होता है। उसके पहले जो व्रती पर-गृह भोजन-सापेक्ष होते हैं उन्हें संक्लेशका अनुभव करना पडता है।

(४) त्यागी लोग तीर्थ-यात्रादिके बहाने गृहस्थोंसे पैसेकी याचना करते हैं। यह मार्ग अच्छा नहीं। यदि याचना ही करनी थी तो त्यागका आडम्बर क्यों किया। यह आत्मवञ्चना है।

(५) त्यागीको किसी संस्थावादमें नही पडना चाहिये। यह कार्य गृहस्थोंका है। संस्थावादके दलदलमें फँसनेवाला तत्त्व लौकेषणाकी चाह है। पर इससे क्या होने जानेवाला है।

(६) आजका व्रती-वर्ग चाहे मुनि हो चाहे श्रावक, स्वच्छन्द होकर विचरना चाहता है, यह उचित नही है।

(७) व्रतीके लिये शास्त्रमे नि:शल्य होना बताया है। शल्योंमें एक माया भी शल्य होती है। उसका तात्पर्य यही है कि भीतर कुछ रूप रखना और बाहर कुछ रूप दिखाना। व्रतीमें ऐसी बात नही होनी चाहिये। वह तो भीतर बाहर मनसा वाचा कर्मणा एक हो।

(८) त्यागीको ज्ञानका अभ्यास अच्छा करना चाहिये। आगम-ज्ञानके बिना लोकमे प्रतिष्ठा नही और प्रतिष्ठाकी चाह घटी नहीं, इसलिये त्यागी ऊट पटाग क्रियायें बताकर भोलीभाली जनतामे अपनी प्रतिष्ठा वनाये रखना चाहते हैं। पर इसे धर्मका स्वरूप कैसे कहा जा सकता है। व्रती-विद्यालय स्थापित होने चाहिये।

(९) त्यागी-वर्गको यह उचित है कि जहाँ जावे वहाँ पर यदि विद्यालय होवे तो ज्ञानार्जन करे। केवल हल्दी धनिया जीरेके त्यागमे हो अपना समय न बितावें। गृहस्थोंके बालक जहाँ अध्ययन करते हो वहाँ अध्ययन करे। तथा शास्त्र-सभामे यदि अच्छा विद्वान् हो तो उसके द्वारा शास्त्र-प्रवचन-प्रणालीको शिक्षा लेवे। केवल शिक्षा-प्रणाली तक न रहे, किन्तु ससारके उपकारमे अपनेको लगा दे।

२. साधु-वृत्ति-समालोचना

(१) पोष कृष्ण १३ वि० सं० २००७को भिण्डमे था। तब मल्लिसागरजी दिगम्बर मुनि आये। सामायिकके बाद उपदेश देने लगे। लोगोने चर्याके लिये प्रार्थना की। आप कहने लगे—'किसीके शूद्र जलका त्याग

है ? दस्सोंके यहाँ भोजन तो नहीं करते ? एक जैनी बोला—'मेरे शूद्र जलका त्याग है।' 'किसके समक्ष लिया।'–महाराजने कहा। 'श्री१०८ सूर्य सागरजी महाराजके पास नियम लिया था।' बोले—'अरे वह तो उत्तरका मुनि है। प्रतिमाको स्पर्श कर नियम ले।' वह मन्दिर गया और प्रतिमाको स्पर्श करके आया।

महाराज पड़गाहे गए। आहार देने वाली औरतके मुखसे यह नही निकला कि दस्सोके घर भोजन नही करूँगी। इतने पर महाराज भोजन छोड़कर चले गए। और स्टेशनपर साथके मनुष्योंके यहाँ भोजन किया।

ग्राम ग्राममें चन्दा होता है। यहाँसे भी ९०) का चन्दा हो गया। साथमे मोटर है। यह दृश्य देख मुझे लगा कि पञ्चम-कालका चमत्कार है। अब यही धर्म रह गया है।

किसी मुनिको दक्षिण और उत्तरका विकल्प सता रहा है, तो किसीको बीसपथ और तेरह पथका। किसीको दस्सा बहिष्कारकी धुन है, तो कोई शूद्र जल त्यागके पीछे पड़ा है। कोई स्त्री प्रक्षालके पक्षमे मस्त है तो कोई जनेऊ पहराने और कटीमें धागा बन्धवानेमे व्यग्र है। कोई ग्रन्थमालाओंके सचालक बने हुए है, तो कोई ग्रन्थ छपवानेकी चिन्तामें गृहस्थोंके घर घरसे चन्दा माँगते फिरते है। किन्हीके साथ मोटरें चलती हैं, तो किन्हीके साथ गृहस्थ-जन-दुर्लभ ऐसी कीमती चटाइयाँ, आसनके पाटे, और छोलदारियाँ चलती हैं।

त्यागी ब्रह्मचारी लोग अपने लिये आश्रय मान उनकी सेवा में लीन रहते है। 'बहती गङ्गामें हाथ धोनेसे क्यो चूके' इस भावना से कितने ही विद्वान् उनके अनुयायी बन आँख मीच चुप बैठ जाते हैं, या हां में हा मिला गुरुभक्तिका प्रमाण पत्र प्राप्त करनेमे सलग्न रहते है।

ये अपने परिणामों की गति को देखते नही। चारित्र और कषायका सम्बन्ध प्रकाश और अन्धकारके समान है। इसलिये जहाँ चारित्र है वहाँ कषाय नही और जहाँ कषाय है वहाँ चारित्र नही।

(२) बनारससे चलकर मोगलसरायके पास एक बाबाजीकी कुटिया में ठहरे। (मनमे विचार आया, कि) अन्य साधु जिस प्रकार निरीह हो

नगरके बाहर शान्तिसे जीवन बिताते हैं, उस प्रकार हमारे साधु नही। अब इन्हें बिना परिकरके एक दिन भी चैन नही पड़ता।

३. आहार-वृत्ति-समालोचना

(१) लोगोंमें धार्मिक प्रेम है, तथा त्यागकी महती प्रतिष्ठा करते है। उसका भोजन हो गया मानों उन्हे त्रैलोक्यकी निधि मिल गई। जब तक त्यागी भोजन न करले तब तक बडी सावधानी रखते है। यही भावना निरन्तर रखते है कि किसी तरह मेरे घर पात्रका भोजन हो जावे। दैवयोगसे पात्र आ जावे तो मेरा धन्य-भाग होगा।

प्रत्येक मनुष्यकी यह दृष्टि रहती है कि हमारे यहाँ ऐसा भोजन बने जो सर्वश्रेष्ठ हो तथा पात्र हमारी इच्छानुसार उतना भोजन कर लेवे। चाहे पात्र को लाभ हो चाहे अलाभ।

(२) भोजन बहुत हो सकोच से होता है। कारण उसका यह है, कि क्षुल्लक-पदके अनुकूल प्रक्रिया उत्तम नही। अनेक घरसे भोजन आता है, तथा अति भोजन परोस देते है, जो आगम विरुद्ध है। सकोच का कारण भी एक प्रकारसे प्रशंसा का लोभ है। जिस जीवके प्रशसा की इच्छा नहीं वही निर्भीक कार्य कर सकता है।

(३) मनमें यह विचार उठते है—कि पराधीन भोजनमें सन्तोष रखना ही सुखका कारण है। यदि भिक्षा-भोजन अङ्गीकृत किया है तो उसमे मनोवाञ्छितकी इच्छा हास्यकारी है।

(४) भोजनकी प्रक्रियाको सरल बनाओ। ललितपुर चातुर्मासमें दिल्लीसे जैनेन्द्र किशोर जी सकुटुम्ब आये। आश्विन कृ० अमावस्याके दिन आपके यहाँ आहार हुआ। अनेक प्रकारकी सामग्री थी। इसमें उनका अपराध नही। अपराध हमारी लालसाका है। यदि मै लालसा पर विजय प्राप्त कर सीधा साधा भोजन ग्रहण करने लगूँ तो यह सब प्रपञ्च आज दूर हो जावे।

(५) सागरसे बनारस जाते हुए मार्गमें एक गाँवमें ठहरे। दया-चन्द्रने असत्य भाषण कर अभक्ष्य दुग्धका भक्षण करा दिया। यद्यपि मैने दुग्ध त्याग दिया, फिर भी आत्मामे ग्लानि बनी रही।

(६) हम लोग उद्दिष्ट त्यागकी कथा मात्र कर लेते हैं, परन्तु पालन नहीं करते। उसीका फल है कि परिणामोंमें शान्ति नहीं आती।

(७) दिल्ली यात्राके मध्य गोपाचलसे ढाई मील दूर एक बागमें ठहरे। यहाँसे मुरार डेढ़ मील है। गर्मीका प्रकोप अधिक था इससे प्रायः मुरार जाना नहीं होता था। वहाँसे प्रति दिन दो चौका आते थे। चरणानुयोगकी पद्धतिसे यद्यपि बहुतसे मनुष्य इस भोजन-चर्याको सदोष कह सकते है, परन्तु वर्तमान कालको देखकर सन्तोष करना ही अच्छा है।

(८) लोग निरन्तर चर्या करानेकी इच्छा करते हैं, परन्तु विधिका बोध नही। परमार्थसे चर्या तो उसके यहाँ हो सकती है, जो स्वय शुद्ध भोजन करे। हम लोगोंने केवल शास्त्र पढना सीखा है, उसके अनुकूल प्रवृत्ति करना नही, अतः हम स्वयं अपराधी है। उचित तो यह था कि हम उनको प्रथम उपदेश करते, पश्चात् उनकी प्रवृत्ति देखते यदि वह अनुकूल होती तो उनके यहाँ भोजन करते, अन्यथा स्थानान्तर चले जाते। अथवा यह बात विदित हो जाती कि इस घरमे भोजन हमारे उद्देश्यसे बनाया गया है तो अन्तराय कर चले जाते।

(९) परन्तु जो पात्र है वे मर्यादातिक्रमण कर आहार लेते है। चरणानुयोगकी पद्धतिको अतिक्रमण कर नई-नई पद्धति निकालना उचित नही है। प्राय. पात्रको देखकर दान देनेवाला व्यक्ति भयसे कम्पायमान हो जाता है। इसमें पात्रकी असरलता ही कारण है।

४. जाति पातिका विचार एक संकीर्णता

[क्षुल्लक अवस्थामे पद-विहार करते हुए मार्गमे वर्णीजीको सभी स्थानो पर, क्या हिन्दू क्या मुसलमान क्या उच्च वर्णी और क्या शूद्र, प्राय सभी अत्यन्त भक्ति भावसे भोजन करानेकी इच्छा व्यक्त करते थे। कोई दूध लाता था, कोई रस और कोई फल। सामाजिक प्रति-रोध होनेके कारण वे मन मसोस कर रह जाते थे।]

फीरोजाबाद माघ शुक ५ वि० स० २००७ आचार्य सूर्य सागर जी महाराजकी अध्यक्षतामें व्रती-सम्मेलन हुआ। एक विषय यह था कि यदि कोई त्रिवर्ण वाला जैन धर्मकी श्रद्धासे सहित हो और जैन-

धर्मकी प्रक्रियासे आहार तैयार करे तो व्रती उसके घर भोजन कर सकता है या नहीं ? पक्ष विपक्षकी चर्चाके बाद यह निर्णय हुआ कि व्रती उसे ग्रहण कर सकता है।

[यह तो दिगम्बर साधुकी बात रही। वर्णीजीका विचार तो कुछ इससे भी आगे है। किसी एक प्रसंगमें उन्होने यहाँ तक भी लिखा है कि]—

"आगममे शूद्रके क्षुल्लक पर्याय हो सकती है, ऐसा विधान है। तब क्या शूद्र लोग उसे (क्षुल्लकको) आहार नही दे सकते ? यह समझमें नही आता।"

(२) मुरारसे दिल्लीकी ओर चलते हुए मार्गमें एक धर्मशालाके स्वामीको अन्तरग भावना भोजन करानेकी थी। परन्तु यहाँको प्रक्रिया तो उसके हाथका पानी पीना भी आगम-विरुद्ध मानती है। यद्यपि आगम यही तो कहता है कि जिसे जैन धर्मकी श्रद्धा हो और जो शुद्धता पूर्वक भोजन बनावे, ऐसे त्रिवर्णका भोजन मुनि भी कर सकता है। अब विचारो, जब उसकी रुचि आपको भोजन करानेकी हुई तब आपके धर्ममे स्वय श्रद्धा हो गई। जब श्रद्धा आपमे हो गई तब जो प्रक्रिया आप बताओगे उसी प्रक्रियासे वह अनायास आपके अनुकूल भोजन बना देगा। परन्तु यहाँ तो रूढिवादको इतनी महिमा है, कि जैन-धर्मका प्रचार होना कठिन है। हमने धर्मको पैतृक सम्पत्ति मान रक्खा है। बाह्यमे आचरण ऐसा होना चाहिये जो उसमे सहायक हो।

(३) आगरासे सिकन्दराबाद आये। यहाँ एक क्षत्रिय महोदय मिले। उनका अभिप्राय अपने घर भोजन करानेका था। परन्तु हृदयकी दुर्बलता और लीगोकी १४४ धाराने यह न होने दिया। यह देखकर वह कहने लगे—"क्या यही जैन-धर्म है ? आप लोग व्याख्यान करते हुए तो ऐसे ऐसे शब्दोका प्रयोग करते है 'मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्या-स्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु', और उन जीवोको भी रक्षाका उपाय बतलाते है, जो कि दृष्टि गोचर भी नही होते, परन्तु हमारे साथ आपका जो व्यवहार है, क्या वह प्रशसनीय है ?"

"आप पैदल यात्रा कर रहे है, इसलिए उचित तो यह था कि आप जनतामे धर्मका उपदेश करते, उनके गृह पर भोजन करते। या कि यह कि जहाँ ठहरें वहाँ पर साथमें रहने वालोंका भोजन खायें? एक त्यागीके भोजनमे बीसो रुपये व्यय हो गए, फल क्या निकला? केवल मार्गकी धूल छानना ही तो हुआ।"

"आपकी भीरु प्रकृति इतनी है कि, मैं इनके यहाँ भोजन करने लगूँगा तो लोग मुझे क्या कहेगे। यह आपको कल्पना निःसार है। लोग क्या कहेंगे? हजारों मनुष्य सुमार्ग पर आ जावे।" आपने ही तो सुनाया था—'आत्मामे रागादि भावोंका उत्पन्न न होना अहिंसा है और उन्हीका उत्पन्न होना हिंसा है।' आप लोग न तो स्वयं अहिंसा धर्म पालते है, और न परको उसकी शिक्षा देते हैं।"

"हमने यह समझ रक्खा है कि आप लोग ही धर्मके उपदेष्टा है। आपको दान देनेसे हमें पुण्य बन्ध होता है। यह भ्रम (अब) निकल गया। आप लोग भयभीत है। बडे आदमियोकी हाँ मे हाँ मिलाने वाले है। उनकी बात चाहे आगम-विरुद्ध हो, आप लोग उसका प्रत्युत्तर न देवेंगे।"...... इतना कह कर वह तो चले गए, हम निरुत्तर रह गए।

(४) दिल्ली यात्राके मध्य खुर्जासे चलकर एक ग्राममे पहुँचे। एक क्षत्रियके घरमें निवास किया। रात्रिमे उनकी माँ बोली—सरदी बहुत पडती है। मेरे यहाँ नवीन सौड है। अभी तक हम लोगोके काममे नहीं आई है। आप उसे लेकर सो जाइये। मै दूध लाती हूँ। उसे पान कर लीजिये। मैने कहा—'माँजी! मै यही वस्त्र ओढता हूँ, तथा रात्रिको कुछ खान पान नही करता हूँ। वह उदास हो गई और बोली—'प्रातःकाल मेरे यहाँ भोजन कर प्रस्थान करे।' प्रातः चलने लगे तो बोली, 'यह क्या हो रहा है।' हमने कहा—'माजी, ! जा रहे है।' वह बोली—'यह शिष्टाचारके अनुकूल आचरण नही है।'

(५) इसलामपुरके मार्गमें एक पठानने २ आम उपहारमें दिये। एक जैनी भाई लेनेको प्रस्तुत नही हुए। मैने कहा कि अवश्य लेना चाहिये, आखिर यह भी तो मनुष्य है। इसी प्रकार कांदलामें एक मौलवीने २ आम भोजनके लिये दिये। लोगोने बहुत टिप्पणी की,

परन्तु मैने उन्हें आहारमें ले लिया। खेद इसका है कि लोग बिना शिर पैरकी टिप्पणी करते हैं। यदि ये ही आम किसी मुसलमानकी दुकानसे लाये होते तो ये लोग टिप्पणी न करते। लोग अपने अभिप्रायके अनुसार टीका टिप्पणी करते है। हमको उचित है कि उससे भय न करें।

(६) दिल्लीसे चलकर गाजियाबाद आये। बेगमाबाद स्टेशनसे १ फर्लांग सड़क पर ठहर गए। एक शरणार्थी पंजाबी मनुष्य बड़ा भला आदमी था। भोजनादिके लिये आग्रह किया। [परन्तु लाचार]। जैन कहनेको तो कहते है कि हम जिन-भगवान्के उपासक है, परन्तु उनके मार्गका आदर नही करते।

५. क्षुल्लक-वृत्ति-समालचना

[फीरोजाबाद माघ शु० ५ वि स० २००७ सेठ छदामी लालके मेले की योजना]—१ बजे श्री आ० सूर्य सागरजीकी अध्यक्षतामें व्रती-सम्मेलनका उत्सव हुआ। जिसमे क्षुल्लकके विषयमे निम्न निर्णय दिये।

(१) नवधा भक्तिका पात्र मुनि है, क्षुल्लक नही। उसे पड़गाह कर पाद-प्रक्षालन करना, तथा मन वचन काय और अन्न जलकी शुद्धता प्रगट कर आहार देना चाहिये।

(२) क्षुल्लक पैसेका त्याग कर चुका है, तथा ईर्या-समितिसे चलने का अभ्यास कर रहा है, तब वह वाहन पर कैसे बैठ सकता है। आखिर विचार करो, मनुष्य क्षुल्लक हुआ क्यो? इसी लिए तो कि इच्छायें कम हो, यातायात कम हो, सीमित स्थानमें विहार हो? फिर क्षुल्लक बनने पर भी इन बातोंमे कमी नही आई, तो क्षुल्लक पद किस लिये रखा?

(३) अमुक जगह जाकर उपदेश देगे, अमुक जगह जाकर अमुक करेंगे, यह सब छल क्षुल्लक हो कर भी क्यो नही छूट रहा है? अरे, जिन्हे तुम्हारा उपदेश सुनना अपेक्षित होगा, वे स्वयं तुम्हारे पास चले आवेगे। तुम दूसरेके हितको व्याज बना कर स्वयं क्यों दोड़े जा रहे हो।

(४) [दिल्लीके चातुर्मासमें] एक दिन क्षु० पूर्ण सागरजी रुष्ट होकर चले गए। 'वर्णीजीने कुछ कहा होगा, ऐसा अनुमान लोगोंने लगाया। परन्तु मैने तो कहा भी नहीं। इतना अवश्य था कि इनके समागमसे निरन्तर क्लेश रहता था। आप आहारके बाद श्रावकोंसे केन्द्रिय समितिके नामपर प्रेरणा कर दान कराते थे। क्षुल्लककी वृत्ति तो निःस्पृह है। उसे दान आदि कराकर उसका व्यवस्थापक बनना शोभास्पद नहीं है।

(५) इसी प्रकार क्षु० चिदानन्दजी ने भी जैन शास्त्रोंको सस्ते मूल्यमे प्रकाशित करानेके लिए एक सस्ती ग्रन्थमालाका आयोजन किया और उसके द्वारा कई ग्रन्थोंका प्रकाशन भी हुआ। मेरे मनमें रह रह कर यही विचार घर करता गया कि परसे संसर्ग करना ही पापका मूल है। जब अन्य-द्रव्य स्वाधीन है तब परसे सम्बन्ध जोड़ना ही दुःखका बीज है। उन्हे उचित है कि इन पर-पदार्थोंका सम्पर्क त्याग दे, एकाकी होनेका अभ्यास करे। हे भगवान् (आत्मन्)! तुम भगवान् होकर भी क्यों पतित हो रहे हो ?

६. केश-लौंच-प्रदर्शन-समालोचना

यद्यपि केशलुञ्चन एक क्रिया है, और इसको मुनि तथा ऐलक करते है, एवं यह एकान्तमे होता है। किन्तु इसे प्रभावनाका अग बना दिया है। यद्यपि केशलुञ्चन करना कोई धर्म नही। केश है, पासमे पैसा नही, यदि रक्खा जावे तो कौन सम्भाले, यूका आदि हो जावे, अत. हाथमे उपाडना ही धर्म है। उसे जनता वीतरागताका द्योतक समझती है, तथा जय-जयकारके नारे लगाती है। मेरी समझमे व्रतीको आगमकी अवहेलना करना उचित नही।

७. व्रतका सम्यक् स्वरूप

(१) 'निःशल्यो व्रती' अर्थात् व्रतीको निःशल्य होना चाहिये। माया, मिथ्या और निदान ये तीन शल्य है।

मायाका अर्थ है भीतर कुछ और बाहर कुछ। व्रतीको कभी ऐसा नही करना चाहिये। कितने ही व्रती अन्तरङ्गमे कुछ है, और लोक-व्यवहारमें कुछ और ही प्रवृत्ति करते है। जिसकी ऐसी प्रपञ्चसे भरी वृत्ति है वह व्रती कैसे हो सकता है ? हृदय यदि दुर्बल है तो कठिन व्रत

कभी धारण नही करो, तथा हृदयकी दुर्बलता छिपाकर बाह्य प्रवृत्तिके द्वारा उन्नत बननेकी भावना निन्द्य भावना है।

इसी तरह जिस व्रतको धारण किया जाय, उसमे पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये। उसके बिना मिथ्यात्व अवस्था रहेगी, तथा विवेक न होनेसे आचार भी निर्मल नही रह सकेगा। इसलिये जितना आचरण किया जाय विवेक और श्रद्धाके साथ किया जाय।

इसके सिवाय व्रतीको व्रत धारण कर उसके फल-स्वरूप किसी भी प्रकारकी ख्याति-लाभकी या इह-पर-भव सम्बन्धी भोगोपभोगकी आकाक्षा नही रखनी चाहिये, क्योकि ऐसा करनेके कारण उसकी आत्मामे निर्मलता नही आ सकेगी। जहाँ स्वार्थकी गन्ध है, वहाँ निर्मलता कैसी?

(२) सप्तम प्रतिमा लेनेका सकल्प करते समय बाईजीने मुझे समझाया कि अनादिकालसे इस जीवके आहार भय मैथुन और परिग्रह ये चार सज्ञाये लग रही है, जिसके कारण प्रतिज्ञा-पथ पर निश्चल रहना बहुत कठिन है। परिग्रह-सग्रह सर्व-प्रधान पाप है और सर्व परिग्रहों मे भी महान पाप मिथ्यात्व परिग्रह है। जब तक इसका अभाव नही तब तक आप कितने भी व्रत तप सयम आदि ग्रहण क्यो न करे, मोक्षमार्गके साधक नही। जब तक सम्यग्दर्शन न हो तब तक यह जीव न तो गृहस्थ-धर्मका अधिकारी हो सकता है और न ऋषि-धर्मका। ऊपरसे चाहे गृहस्थ रहे, चाहे मुनि वेष धारण करले, कौन रोक सकता है।

"बाईजी! आखिर हम भी तो मनुष्य है। मनुष्य ही तो महाव्रत धारण करते हैं", मेरी इस बातके उत्तरमे श्री बालचन्दजी बोले— 'हम आपकी अन्तरङ्ग परिणतिको जानते है, और उसके आधार पर कहते है कि आप अभी व्रत लेनेके पात्र नही।' मैने कहा कि चलो ऐसा करनेमे मेरी बाह्य वृत्ति तो छूट जावेगी। उन्होने कहा कि लोक-भय से ही व्रतोका पालन करोगे, परन्तु जो परिणाम आज है वे फिर न रहेगे। सयम धारण करना आवश्यक है, परन्तु सयम होना चाहिये। नाम मात्रके सयमसे आत्माका सुधार नही होता।

कहनेको तो सब कह देते है कि शरीर जड है, हम चेतन हैं, परन्तु जब शरीरमे कोई व्याधि आती है, तब माँ दादी याद आती

है। बस छलसे यही उत्तर दिया जाता है कि क्या करें, चारित्रमोहकी प्रबलता है, हम तो श्रद्धामें पर ही मानते है।

अतः व्रत धारणके लिये सर्व प्रथम तो अभिप्राय निर्मल होनेकी आवश्यकता है। अनन्तर पचेन्द्रियके विषयोमे स्वेच्छाचारिता न होनी चाहिये। फिर वचन कायकी चेष्टा योग्य होनी चाहिये और मनमें निरन्तर उत्तम विचारोंका सचार होना चाहिये। इन सब योग्यताओंके अनन्तर द्रव्यादि चतुष्टयकी योग्यताका विचार कर सयम धारण करना चाहिये। तथा चित्तमे कोई भी शल्य न हो, तभी संयम ग्रहण करना लाभदायक होगा।

इसी प्रकार श्री बालचन्द जी यह भी कहने लगे कि—बाईजीके पश्चात् तुम्हे पराधीन होना पड़ेगा। तब यह न कह सकोगे कि अष्ट-मूल गुण धारण करनेवालेके ही यहाँ भोजन करेंगे। यदि अधिक आग्रह करोगे तो लोग तुम्हारे समक्ष प्रतिज्ञा भो धारण कर लेंगे, परन्तु वह नाममात्रकी प्रतिज्ञा होगी।

जब अन्न जलादिकी व्यवस्थामे इतनी कठिनाई है तब विना विचारे व्रत लेना मै तो योग्य नही समझता। केवल लौकिक मनुष्योमे यह प्रसिद्ध हो जावे कि अमुक मनुष्य व्रती है इसी दृष्टिसे व्रती होना कहाँ तक योग्य है? आपका पुण्य विशिष्ट है। यदि आप सदोप भी व्रत पालेंगे तो भी प्रशसाके पात्र होंगे। परन्तु परमार्थसे आप उस व्रतके पात्र नही।

मेरी यही अनुमति है कि ज्ञानको पाकर उसका दुरुपयोग न करो। कुछ दिन तक अभ्यास रूपसे व्रतोका पालन करो। पश्चात् जब सम्यक् अभ्यास हो जावे तब व्रत ग्रहण कर लेना।

बाई जी बोली कि, 'सरल होते हुए भी यह क्रोधी है इसलिये इसके परिणाम व्रत पालनके योग्य नही है।'

(३) सम्मेद शिखर श्री पार्श्व प्रभुकी टोक पर दूसरी प्रतिमाके व्रत लेते समय बाईजीने मुझसे कहा—'तूने सप्तम प्रतिमा ली है, यह भी मेरी अनुमतिके बिना ली है। अब हम तो तीन मासमे चले जावेगे। तुम आनन्दसे व्रत पालना। शास्त्रमें यद्यपि मुनि व श्रावक-धर्मका पूर्ण विवेचन है, तथापि जो शक्ति अपनी हो उसीके अनुसार त्याग करना।

व्याख्यान सुनकर या शास्त्र पढ़कर आवेग वश शक्तिके बाहर त्याग न कर बैठना।'

(४) जब जीवके सम्यग्दर्शन हो जाता है, उस समय उसकी आत्मामें जो शान्ति आती है, उसका अनुभव उसी आत्माको होता है। अन्य कोई क्या उसका निरूपण करेगा। इतना होने पर भी यदि वह अन्तरङ्गसे खिन्न रहता है तो मेरी (वर्णी जीकी) बुद्धिमें तो उसे सम्यग्दर्शन नही हुआ। व्यर्थ ही व्रती बननेका मान करता है।

८. सातिचार निर्मलता

मेरी प्रकृतिको देखकर साथ वाले त्यागी कहने लगे—'वर्णी जी! आप चरणानुयोगकी आज्ञा भग करते है।' मैने कहा—'आपका कहना उचित है, परन्तु मै प्रकृतिसे लाचार हूँ।' यद्यपि मेरी दशमी प्रतिमा है, परन्तु मेरी उसके अनुकूल प्रवृत्ति नही है। उसमें निरन्तर दोष लगते है, फिर भी स्वेच्छाचारी नहीं हूँ। मेरी प्रवृत्ति पराये दु खको देखकर आर्द्र हो जाती है। यही कारण है कि मै विरुद्ध कार्यका कर्ता हो जाता हूँ। मुझे उचित तो यह था कि कोई प्रतिज्ञा न लेता, और न्याय वृत्तिसे अपनी आयु पूर्ण करता, परन्तु अब जो व्रत लिया उसका निरतिचार पालन करनेमें ही प्रतिष्ठा है। ●

३—दान

१. सहजता व निश्छलता

(१) दान सम्मानके साथ देना चाहिये और उसके बदले किसी प्रकारका अभिमान या प्रतिकारका भाव हृदयमे उत्पन्न नही होना चाहिये। मान बड़ाईके लिये जो दान दिया जाता है वह व्यर्थ जाता है। [निश्छल भावसे दिया गया एक पैसेका दान भी महान है और अहंकार भावसे दिया गया लाख रुपयेका दान भी अल्प मात्र है।]

(२) गजपन्थामे एक सेठ साहबका सहवास हुआ। उन्होंने जब मुनीमको ५) देकर रसीद ली तो मेरे मनमे भी कुछ देनेका भाव आया। पासमे केवल एक आना था, जो इसलिये बच गया था कि उस दिनका भोजन सेठ साहबके साथ कर लिया था। मुनीमने लेनेमे सकोच किया, सेठजी भी हँस पडे और मै भी लज्जित हो गया। परन्तु मैने अन्तरङ्गसे दिया था। अतः उस एक आनेके दानसे मेरा जीवन पलट गया।

(३) एक दिन श्री सुनू शाहके यहाँ भोजनके लिये गया। उनकी स्त्रीने बड़े स्नेहसे मुझे फल खानेके लिये २) दिये। इतनेमें एक भिक्षुक रोटी माँगता हुआ सामने आ गया। मैने उसे दो रुपये दे दिये। सुनू शाह यह देखकर इतने प्रसन्न हुए कि मै वहाँसे चलकर नैनागिरिमे रहा, जिसका पूरा व्यय उन्होने दिया।

(४) दान निश्छल भावसे किया जाना चाहिये, और संकल्प करनेके साथ ही पैसा या द्रव्य त्याग देना चाहिये।

एक बार बनारस विद्यालयमें बाईजीके नामसे १०००) लिखा आया। पर भयके कारण बाईजीसे कहा नही। बाईजी मुझे आठ दिनमें तीन रुपया फल खानेके लिये देती थी, मै फल न खा कर उन रुपयोंको पोस्ट आफिसमे जमा कराने लगा। बाईजीको पता लगा तो बोलीं—'इस प्रकार कब तक अदा होगे ? जिस दिन दिये उसी दिन देना उचित था। दानकी रकम है, वह तो ऋण है। पाँच रुपया मासिक उसका ब्याज हुआ। तुम्हे १०) मासिक ही तो देती हूँ, इनसे किस प्रकार अदा करोगे।

दान देनेके भाव जिस समय हो उसी समय उस द्रव्यको पृथक् कर देना उचित है। तत्काल न देनेसे महान अनर्थकी सम्भावना है। यदि कलको असातोदय आ जावे और स्वय दरिद्री होकर परकी आशा करने लगे, तो द्रव्य कहाँसे चुकाओगे। अथवा कल यह भाव हो जावे कि किस चक्रमे फँस गया, तो केवल पाप बन्ध ही होगा।

इसलिये जिस समय दानके भाव हो उस समय सम्यक् विचार कर बोलो और बोलनेके पहले दे दो, यही सर्वोत्तम मार्ग है।

(५) देहलीमे मेरी जयन्तीके उत्सव पर श्रीयुत रतन लालजी मादेपुरियाने २१००) स्याद्वाद विद्यालयको दिये, और कहा कि ११) मासिक ब्याज देते जावेगे और रुपया अपने यहाँ ही जमा रक्खेगे। जब विद्यालयको आवश्यकता पडेगी, वापिस दे देवेंगे। परन्तु मेरी बुद्धिसे यह बात यथार्थ नही। क्योकि दानका रुपया दे देना ही श्रेयस्कर है। इसमे काल पाकर नकारा भी हो सकता है। मै इस दानको दान नही मानता। दान देकर उससे ममता रखना दानके परिणामोका विघात है। मनुष्य आवेगमे आकर दान तो कर बैठता है, और लोगोंसे धन्यवाद भी ले लेता है, तपश्चात् जब अन्तरङ्गसे विचार करता है, तब व्यग्र होने लगता है।

२. पात्र विवेक

दान देते समय पात्रकी योग्यता और आवश्यकता पर भी दृष्टि डालना चाहिये।

एक दिन एक भिखमंगेको रोटी खिला कर मैंने उससे कहा—कि तुम्हारा पेट तो भरा हुआ दिखाई देता है, तब इतने करुण-स्वरसे क्यों माँगते हो ? वह बोला कि 'यदि इस तरह न माँगा जावे तो कौन साला देवे।' मेरे पास १००) नकद है, जोड़ो चूड़ा और १० सेर गेहूँ चावल आदिका संग्रह है। इसके अतिरिक्त एक स्त्री भी है। तुम्हारे जैसे बीसों उल्लू हमको देने वाले है। हममें माँगनेका वह पुरुषार्थ है कि माँग कर दस आदमियोंको खिला सकते है।

मै जन्मसे भिखमगा न था। एक धनाढ्य कुलमें उत्पन्न हुआ था। जातिका द्विज वर्ण हूँ। मेरे जिमीदारी होती थी और लेन भी था। दुर्भाग्यसे मेरा बाप मर गया। मेरा धन मेरे चाचा आदिने हड़प लिया। मेरी स्त्री शोकमे मर गई। मै दुःखी हो गया। खानेको इतना तंग हुआ कि कभी कभी शाम तक भोजन मिलना भी अति कठिन हो गया। अन्तमे यह विचार किया कि ईसाई या मुसलमान हो जाऊँ, परन्तु धर्म परिवर्तनकी बजाये भीख माँगना ही उचित समझा। जबसे भिक्षा माँगने लगा हूँ, सुखमे हूँ।

वह बोला—'आप एक शिक्षा हमारी मानना। वह यह कि केवल ऊपरी वेश देखर ठगे न जाना। अभी दो घण्टा बाद एक लूला यहाँसे निकलेगा। उसके पास २०००) की नकदी है। और इतने पर भी वह माँगता है। मै जहाँ रहता हूँ, वहाँ पर बहुतसे दरिद्र भिखमगोंका निवास है। उसमे कोई भी ऐसा अभागा मँगता होगा, जिसके पास द्रव्य न हो। आप लोग हमारी दशा देखकर वस्त्रादि देते है, पर जो नवीन वस्त्र मिलता है, उसे हम बेच देते है।

आप लोग यदि विवेकसे काम लेते तो जो परिवार वास्तवमे दरिद्र हैं, जिनके बालक मारे मारे फिरते हैं, उनका पोषण करते, उन्हे शिक्षित बनाते, व्यापार नौकरीसे लगाते। परन्तु वह तो दूर रहा, आप अयोग्य आदमियोंको दान देकर भिखमंगोंकी संख्या बढा रहे हैं। भारतवर्षमें अकर्मण्यता इन्ही अविवेकी दानवीरोंकी बदौलत ही तो अपना स्थान बनाए है। असल बात तो यह है कि आप लोग न्यायसे द्रव्य उपार्जन नहीं करते। अन्यथा आपके धनका इतना दुरुपयोग न होता।

३. दानका दुरुपयोग

(१) जैनियोमें दान देनेकी प्रक्रिया प्राय: उत्तम है। प्रत्येक कार्यमें दान देनेका प्रचार है। किन्तु व्यवस्था नही। यदि व्यवस्था हो जावे तो धर्मके अनेक कार्य अनायास चल सकते है। यहाँ प्रत्येक व्यक्तिका नेतृत्व है और अपने अभिप्रायके अनुरूप कार्य करनेका आग्रह करता है।

(२) लोग जिन कार्योंमे धर्म मानते आ रहे है, उनसे भिन्न कार्योंमे आवश्यकता होने पर भी पैसा व्यय करना नही चाहते। देखा गया है कि मन्दिरमे नवीन वेदिका की आवश्यकता नही, फिर भी उसमें वेदी जड़वा देंगे। उसमे १०,०००) तका व्यय कर देंगे। पडौसमे जैनी आजीविकासे रहित होगा, उसे १०) भी पूँजी न देवेंगे। देशमे लाखो मनुष्य अन्नके कष्टसे पीड़ित होने पर भी लोग विवाहादि कार्योंमे लाखों रुपया बारूदकी तरह फूँक देनेमें संकोच न करेंगे, परन्तु अन्न वस्त्र विहीनोकी रक्षामें ध्यान न देवेंगे।

सिद्ध-चक्र-विधानमें हजारो रुपया व्यय कर देवेंगे, किन्तु १ छात्रको पढानेमे १००) भी न देवेंगे। पंचकल्याणक की आवश्यकता न होने पर ५०,०००) व्यय करनेमे विलम्ब न करेंगे, परन्तु ग्राममे बालकोको धर्म-शिक्षा देनेके अर्थ १ अध्यापकको ५०) देनेमे इनका हृदय द्रवी-भूत न होगा।

आजकल नवीन मन्दिर-निर्माणकी लोग इच्छा करते हैं, पर प्राचीन मन्दिरोका उद्धार नही कराते। नवीन मन्दिर-निर्माणमे उनका निर्माताके रूपमे गौरव होता है और प्राचीन मन्दिरोंके उद्धारमे नही। यही प्रतिष्ठाकी आकाक्षा लोगोंको इस कार्यकी ओर प्रवृत्त नही होने देती।

(३) समाजमे जहाँ तहाँ मिलकर प्रतिवर्ष लाखो रुपयोका दान होता है पर वह दान की हुई रकम स्व-स्व स्थानोमे रहनेसे छिन्न भिन्न हो जाती है और उससे समाजको ऊँचा उठाने वाला कोई काम नहीं हो पाता। समाजके सर्व दानको एकत्र मिलाया जाय तो उससे विद्यालय तथा कालेज तो दूर यूनिवर्सिटीका भी संचालन हो सकता है, और उसके द्वारा जैन संस्कृतिका प्रचार सर्वत्र किया जा सकता है।

दानका रुपया एकत्र तब तक नहीं हो सकता जब तक कि दाता महानुभाव अपने स्थानका मोह नही छोड़ देते हैं। आज कोई दान देता है तो उसका परिणाम अपने ही यहाँ देखना चाहता है। पर यह निश्चित है कि उसकी उतनी छोटीसी रकमसे कोई बड़ा काम नही चल सकता और न सर्वत्र उत्तम कोटिकी कार्यकारिता ही हो सकती है। देने वाले महानुभाव जब तक अपने हृदयको विशाल कर उदार नही बनाते है, तब तक उक्त कार्य स्वप्नवत् ही जान पड़ते हैं।

४. दानका सदुपयोग

(१) व्यवहार-धर्मकी प्रवृत्ति देश कालके अनुसार होती है। अभी आप मारवाड़में जाइये। वहाँ आपको गेहूँ आदि अनाज धोकर खानेका रिवाज नहीं मिलेगा। परन्तु चुगनेकी पद्धति बहुत ही उत्तम मिलेगी। भोजन करनेके समय वहाँके लोग पैरोको धोनेके लिये सेरो पानी नही ढोलेंगे और स्नान भी अल्प जलसे करेंगे। इसका कारण यह है कि वहाँ पानीकी बहुलता नही है। परन्तु हमारे प्रान्तमें बिना धोया अनाज नही खावेंगे। भोजनके समय लोटा भर पानी ढोल देवेंगे और स्नान भी अधिक जलसे करेंगे। इसका मूल कारण पानीकी पुष्कलता है।

जिस ग्राममे मन्दिर और मूर्तियोकी प्रचुरता है, यदि वहाँ पर मन्दिर न बनवाया जाय तथा गज-रथ न चलाया जाय तो कोई हानि नही है। वही द्रव्य दरिद्र लोगोंके स्थितिकरणमे लगाया जावे, बालको को शिक्षित बनाया जावे तो क्या धर्म नही हो सकता ?

(२) प्रभावना दो तरह से होती है, एक तो पुष्कल द्रव्यका व्यय कर गजरथ चलाना और दूसरो वह है जिसकी लोग आज अत्यन्त आवश्यकता बतलाते हैं। वह यह कि हजारो दरिद्रोको भोजन देना, अनाथोंको वस्त्र देना, आजीविका विहीन मनुष्योंको आजीविकामें लगाना, स्थान-स्थान पर ऋतुओंके अनुसार धर्मशालायें बनवाना और लोगोंका अज्ञान दूरकर उनमें सम्यग्ज्ञानका प्रचार करना।

(३) ऐसा दान करो जिससे साधारण लोगोंका भी उपकार हो। ऐसे विद्यालय खोलो जिससे यथाशक्ति सबको ज्ञान-लाभ हो। ऐसे औषधालय खोलो जिनमे शुद्ध औषधियोका भण्डार हो। एसे भोजनालय

खोलो जिनमें शुद्ध भोजनका प्रबन्ध हो। अनाथोंको भोजन दो। अनुकम्पासे प्राणि-मात्रको दानका निषेध नहीं। इस प्रकार ज्ञान-दान, औषध-दान, आहार-दान व अभय-दान ऐसे चतुर्विध दान देकर प्राणियों को निर्भय बना दो।

(४) बहुतसे महानुभाव ऐसे हैं कि जिनके सजातीय बन्धु तो आजीविका विहीन होकर इतस्ततः भ्रमण कर रहे हैं, पर वे हजारों रुपये प्रतिष्ठा आदिमें व्यय कर रहे हैं, और खूबीकी बात यह कि सजातीय बन्धुओंकी अवस्थाके सुधारनेके लिये एक पैसा देनेमें भी उदारताका परिचय नहीं देते। क्या यह धर्म-प्रभावना है? इसका मूल कारण अन्तरङ्गके अभिप्रायकी मलिनता है।

वर्तमानमें अनेक मनुष्य अन्नके बिना अपना धर्म छोड कर अन्य धर्म अङ्गीकार कर लेते हैं। कोई उनकी रक्षा करनेवाला नहीं। द्रव्यका सदुपयोग यही है कि दुःखी प्राणियोंकी रक्षामें लगाया जावे।

५. विद्या-दान सर्व-प्रधान

भारतवर्षमें करोडों आदमी देवीको बलिदान कर धर्म मानते हैं। हमारी दृष्टि उस ओर नहीं जाती। धर्मका स्वरूप तो दया है। वे भी तो हमारे भाई हैं जो कि उपदेशके अभावमें कुमार्ग-गामी हो गए हैं। यदि हमारा लक्ष्य होता तो उनका कुमार्गसे सुमार्ग पर आना क्या दुर्लभ था?

देहातकी बात जाने दो, तीर्थ स्थानों पर भी शास्त्र-प्रवचनका कोई योग्य प्रबन्ध नहीं है। सबसे महान तीर्थ गिरिराज सम्मेदाचल है, जहाँसे अनन्तानन्त प्राणी मोक्ष लाभ कर चुके हैं। परन्तु वहाँ पर भी कोई ऐसा विद्वान नहीं जो जनताको मार्मिक शब्दोंमें क्षेत्रका माहात्म्य समझा सके। जहाँ पर हजारों रुपया मासिक व्यय है वहाँ पर ज्ञान-दानका कोई साधन नहीं।

जिस समय श्री शान्ति सागरजी महाराजका वहाँ शुभागमन हुआ, उस समय वहाँ एक लाखसे अधिक जनताका जमाव हुआ था। लाखों रुपये रेलवे कम्पनीने कमाये और लाखों ही रुपये मोटरकार तथा बैल-गाड़ियोंमें गए। क्या उस समय दस लाखकी पूँजीसे एक ऐसी सस्थाका

खोला जाना दुर्लभ था, जिसमें कि उस प्रान्तके भीलोंके हजारों बालक जैन-धर्मकी शिक्षा पाते, हजारों गरीबोंके लिये औषधिका प्रबन्ध होता और हजारों मनुष्य आजीविकाके साधन प्राप्त करते ?

बनारसमें एक विद्यालय है। सबसे उत्तम स्थान है। आज तक मूल-धन एक लाख भी नही हो सका। उस संस्थाको स्थापित हुए चालीस वर्ष हो चुके, पर कभी पचाससे अधिक छात्र उसमें नही रह सके। धनाभावके कारण वहाँ केवल जैन छात्रोको ही स्थान मिल पाता है। आज यदि पच्चीस रुपया छात्र-वृत्ति ब्राह्मण छात्रोको दी जावे तो सहस्रो छात्र जैन-धर्मके सिद्धान्तोंके पारगामी हो सकते है और अनायास ही धर्मका प्रचार हो सकता है।

४—वैराग्य

•

१. वैराग्य बनाम तप

इच्छाका निरोध ही तप है जो वास्तवमे किया नही जाता। जहाँ वैराग्य भाव जागृत हुआ, तहाँ वह मुतराँ हो जाता है। परन्तु वैराग्य भी आभ्यन्तर होना चाहिये बाह्य नही।

प्रद्युम्न कुमारको वैराग्य आया। वह राज्य सभामें बलदेव व कृष्णसे आज्ञा लेनेके लिये गया। उन लोगोंने कहा कि हम लोगोंके जीवित रहते तुझे ऐसा विचार करना नही चाहिये। तदनन्तर अन्तःपुरमे पहुँचा और स्त्रीसे कहता है—प्रिये ! मेरा दीक्षा लेनेका भाव है। स्त्री पहलेसे ही विरक्त बैठी थी। वह कहती है—जब दीक्षा लेनेका भाव है तब 'प्रिये' सम्बोधनकी क्या आवश्यकता है ? क्या स्त्रीसे पूछ-पूछ कर दीक्षा ली जाती है ? आप लें या न लें, मै तो जाकर अभी लेती हूँ। दोनोंने अपना कल्याण किया और कृष्ण व बलदेव संसारके चक्रमें ही फँसे रहे।

जिस प्रकार चिकने घड़े पर पानीकी बूँद नही ठहरती उसी प्रकार मोही जीवो पर वैराग्य-वर्द्धक उपदेशोंका प्रभाव नही ठहरता। थोड़ा बहुत वैराग्य जब कभी आता भी है, तो श्मशान वैराग्यके समान थोड़ी ही देरमें साफ हो जाता है।

२. निवृत्तिकी ओर

(१) क्या कहें ? किससे कहें ? कुछ कहा नहीं जाता। व्यर्थके जंजालमें पड़कर अपनी अभिलाषाओंको न रोक सके। यथार्थमें 'यों करेंगे, त्यों करेंगे' ऐसे शब्दो द्वारा जनताके समक्ष बातें बघारना कुछ लाभदायक नहीं। पानी विलोनेसे हाथ चिकना नहीं होता। वह तो परिश्रमका कारण है।

(२) आजकल ऋतुकी उग्रतासे भोजनके बाद तृषाका प्रकोप हो जाता है। प्राय. २२ घण्टा रहता है। फिर भी चित्तमें यह खेद नही होता कि व्रत क्यों धारण किया। खेद इस बातका रहता है कि हम बाह्य बाधा तो सहन कर लेते हैं, परन्तु अन्तरङ्ग कषायको नही रोक पाते।

(३) कहाँ तो वे मुनिराज थे जो ज्येष्ठ मासकी दुपहरियोमें पर्वतकी चट्टानोंपर आतापन योग धारण करते थे, और कहाँ मैं, जो बुद्धि पूर्वक शीतलसे शीतल स्थान खोजकर उसमें ग्रीष्मकाल बितानेका प्रयास करता हूँ ? वस्तुतः शरीरसे ममत्व भाव अभी दूर हुआ नहीं। मुखसे कहना बात दूसरी है और अमलमे लाना बात दूसरी है। यदि शरीरसे ममत्त्व छूट गया होता तो क्या सर्दी, क्या गर्मी, और क्या बरसात, सब एक सदृश रहते।

(४) फीरोजाबादमे आ० सूर्य सागरजी महाराजके उपदेशका आत्मा पर अत्यन्त प्रभाव पड़ा, किन्तु श्मशान वैराग्य-वत् ही दशा रही। देखने वाले दर्शक भी हमारी प्रक्रियाको देखकर प्रसन्न हुए—शिष्य हो तो ऐसा हो। परन्तु यह सब नाटकका दृश्य था—अन्तरङ्गमे कुछ भी न था। ऐसी चेष्टा केवल स्वात्म-वञ्चनामे ही परिणत हो जाती है।

(५) शारीरिक शक्ति दुर्बल हो गई है। केवल कषायसे भ्रमण करते है।

३. पद-विहारकी सार्थकता

विहारके अनेक गुण है—

(१) एक स्थान पर रहनेसे जो प्राणियोंके साथ स्नेह होता है, वह नहीं होता।

(२) देशाटन करनेसे अनेक मनुष्योंके साथ धर्म-चर्चा करनेका अवसर आता है।

(३) अनेक देशोके वन उपवन नदी नाले आदि देखनेका सुअवसर प्राप्त होता है।

(४) शरीरके अवयवोंमें संचलन होनेसे क्षुधा आदिकी शक्ति क्षीण नही हो पाती। अन्नका परिपाक ठीक होता रहता है।

(५) आलस्यादि दुर्गुणोसे आत्मा सुरक्षित रहती है।

(६) अनेक तीर्थ क्षेत्रादिके दर्शनोका अवसर मिलता है।

(७) किसी दिन अनुकूल स्थानादि न मिलनेसे परीषह-सहन करनेकी शक्ति आ जाती है।

(८) कभी दुर्जन मनुष्योके समागमसे क्रोधादि कषायके कारणोंके सद्भावमे क्षमाका भी परिचय हो जाता है।

इत्यादि अनेक लाभोकी विहारमें सम्भावना है। ●

५—अनेकान्त वादकी व्यापकता

•

१. श्वेताम्बरके एकान्त पक्षकी समालोचना

यद्यपि श्वेताम्बर समाजमें साधु समाज पुष्कल है, और वे लोग पठन पाठनमें अपना समय लगाते है। कई विशिष्ट विद्वान् भी है, किन्तु न जाने दिगम्बर समाजसे इतना वैमनस्य क्यो रखते है।

वस्त्र रखकर भी यही अर्थ करते है, कि इस परिग्रहमे हमको मूर्च्छा नहीं। तब समझमे नही आता कि दिगम्बर मुद्रासे इतनी घृणा क्यो करते है। मूर्तिको सपरिग्रह बनानेमे कोई प्रयत्न शेष नही रखते, तथा कहते है कि यह वीतराग देवकी मूर्ति है।

यह सब पञ्चम कालका महत्त्व है। कल्याण-पथ तो केवल आत्मामें है। जहाँ अन्यकी अणु मात्र भी मूर्च्छा है वहाँ श्रेयोमार्ग नही। अन्यकी कथा छोड़ो, परमात्मामे अनुराग भी परमात्म-पदका घातक है। तब वस्त्रमे मूर्च्छा रख कर अपनेको वीतराग मानना क्या शोभा देता है? अनादि कालसे इसी मूर्च्छाने आत्माको ससारका पात्र बना रखा है।

२. श्री काञ्जी स्वामीके एकान्त पक्षकी समालोचना

श्री काञ्जी स्वामी फाल्गुन ५ वि० सं० २०१३ को संघ सहित गिरिराजकी वन्दनार्थ मधुवन पधारे। मैं भी सागर विद्यालय की स्वर्ण-

जयन्तीके कारण उन दिनों वहाँ ही था। जितने दिन रहे प्रायः हमसे मिलते रहे। प्रसन्नमुख तथा विचारक व्यक्ति हैं। आप प्रारम्भमें स्थानकवासी श्वेताम्बर थे। परन्तु कुन्दकुन्द स्वामीके ग्रन्थोका अवलोकन करनेसे आपकी दिगम्बर धर्मकी ओर दृढ श्रद्धा हो गई।

आपने दिगम्बर धर्म अपना लिया। न केवल आपने ही किन्तु अपने उपदेशसे सौराष्ट्र तथा गुजरात प्रान्तके हजारों व्यक्तियोंको भी दिगम्बर जैन धर्ममें दीक्षित किया है। आपकी प्रेरणासे सोनगढ तथा उस प्रान्तमें अनेक जगह दिगम्बर जैन मन्दिरोका निर्माण हुआ है।

आपके प्रवचन प्रायः निश्चय-धर्मकी मुख्यता लेकर होते है, तथा आपका जो साहित्य प्रकाशित हुआ है, मै तो आनुपूर्वीसे देखा नही, पर लोग कहते है कि निश्चय-धर्मकी प्रधानताको लिये हुए है। इस स्थितिमे अभी नही तो आगे चलकर व्यवहार-धर्मसे लोगोकी उपेक्षा हो जाना सम्भव है, जो किसीको भी इष्ट नही है। अत. दोनों नयों पर दृष्टि डालते हुए ही श्री कुन्द-कुन्द, समन्तभद्र, अकलक आदि आचार्योके समान पदार्थका निरूपण किया जाय तो जैन-श्रुतकी परम्परा अक्षुण्ण बनी रहे।

विद्वान् लोग यह चर्चा आपसे करना चाहते थे, पर कार्यक्रमोंकी बहुलताके कारण मधुवनमे वह अवसर नही मिल सका। उत्सवमें आपके सघकी ओरसे सागर विद्यालयको १०००) समर्पित किया गया।

३. सर्वधर्म सम्मेलन (सागर प्रवचन-चैत्र शु० १३ सं०२००९)

(१) महावीर जयन्तीका उत्सव था। समारोह अच्छा हुआ। दूसरे दिन सर्व-धर्म सम्मेलनका आयोजन था। जिसमे जैन, हिन्दू, मुसलमान, और ईसाई धर्मवालोके व्याख्यान हुए। अन्तमें मैने भी बताया कि—

धर्म तो आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार आत्माकी उस निर्मल परिणतिको मलिन किये हुए है। जिस दिन यह मलिनता दूर हो जायेगी, उसी दिन आत्मामे धर्म प्रगट हुआ कहलावेगा। किसी कुल या जातिमे उत्पन्न होनेसे कोई उस धर्मका धारक नही हो जाता। कुलमें तो शरीर उत्पन्न होता है, सो उसे जितने परलोक-वादी है सब आत्मासे जुदा मानते हैं।

इतना तो सब मानते हैं कि इस समय संसारमें कोई विशिष्ट ज्ञानी नही है। विशिष्ट ज्ञानीके अभावमें लोग अपने अपने ज्ञानके अनुसार पदार्थको समझानेका प्रयास करते है। जिस प्रकार सूर्यके अभावमें घर घर दीपक जल जाते है। कोई बिजलीका बडा बल्ब जलाता है, तो कोई मिट्टीका छोटा सा टिमटिमाता हुआ दीपक ही जलाता है। जिसकी जितनी सामर्थ्य है वह उतना साधन जुटाता है। इसीप्रकार सर्वज्ञ-विशिष्ट ज्ञानीके अभावमें लोग अपने अपने ज्ञानके दीपक जलाते है। फिर भी एक सूर्य ससारका जितना अन्धकार नष्ट कर देता है, उसको पृथिवीके छोटे बडे सब दीपक भी मिलकर नष्ट नही कर सकते।

ज्ञान थोड़ा हो, उसमें कोई हानि नही परन्तु मोह मिश्रित ज्ञान हो तो वह पक्ष खडा कर देता है। यही कारण है कि इस समय उपलब्ध पृथिवी पर नाना धर्म व नाना मत मतान्तर प्रचलित है। यह कलि-कालकी महिमा है। इस कालका यही स्वभाव है।

आज लोगोंमें इतनी तो समझ आई है कि विभिन्न धर्म वाले एक स्थानपर बैठकर एक दूसरेके धर्मको बात सुनते है, सुनाते है। जैन-धर्मका अनेकान्तवाद तो इसीलिये अवतीर्ण हुआ है कि यह सब धर्मोका सामञ्जस्य बैठाकर उनके पारस्परिक संघर्षको कम कर सके।

(२) [श्री जैन बिद्री व मूडबिद्रीकी यात्राके मध्य एलोराकी गुफाये देखनेका अवसर मिला।] उन गुफाओमें सब धर्म-वालोंके मन्दिर पाए जाते है। उन लोगोमें परस्पर कितना सौमनस होगा। आज तो साम्प्र-दायिकता ने भारतको गारत बना दिया है। धर्म तो आत्माकी स्वाभाविक परिणति है। उपासनाके भेदसे जनतामें परस्पर बहुत ही वैमनस्य हो गया है, जो कि दु खका कारण बन रहा है।

श्री गिरिनारजीके पर्वत पर श्वेताम्बर मन्दिर देखने गए। [ऐसा लगा मानो] तपो-भूमि भोग-भूमि बना दी गई है। मन्दिर गए और श्री नेमि प्रभुकी मूर्ति देखी। ऐसा प्रत्यय हुआ जैसे कोई राजा बैठा है। कितना शृंगार था, हम वर्णन नही कर सकते। मनमें आया कि देखो इतना सब विभव होकर भी भगवान् संसारसे विरक्त हो गए। यदि उस मूर्तिके साथ दिगम्बरी दीक्षाकी मूर्ति भी होती तो संसारकी

असारताका परिज्ञान करने वालोंको बहुत शीघ्र परिज्ञान हो जाता। परन्तु यहाँ तो पक्षपातका इतना प्रभाव है कि दिगम्बर मुद्राको देख भी नही सकते। संसारमें यदि यह हठ न होती तो इतने मतोंकी सृष्टि न होती।

मेरी निजी सम्मति तो यह है कि एक ऐसा मन्दिर बनवाना चाहिये कि जिसमें सब मत वालोंकी सुन्दरसे सुन्दर मूर्तियाँ और उनके ऊपर संगमरमरमें उनका इतिहास लिखा रहे। इन सबके अन्तमें श्री आदिनाथ स्वामीकी मूर्ति अपने इतिहासके साथमें रहे, और अन्तमे एक सिद्धभगवान्की मूर्ति रहे।

मन्दिरके साथमे एक बडा भारी पुस्तकालय हो, जिसमे सर्व आगमोका समूह हो। प्रत्येक मतवालोको उसमे पढ़नेका सुभीता रहे। हर एक विभागमे निष्णात विद्वान रहे, जो कि अपने मतकी मार्मिक स्थिति सामने रख सके। इसके लिये सर्वोत्तम स्थान बनारस है।

(३) गयामे चातुर्मास था। कार्तिक कृ० ७ वि० सं० २०१० को नालन्दा बौद्ध विद्यालयके अधिष्ठाता मिले। बहुत शिष्ट पुरुष है। आपकी अन्तरंग इच्छा है कि नालन्दामें भी जैन दर्शनके अध्यापन आदि कार्य हो और इसलिये एक जैन विद्यालय (वहाँ) खोला जावे। ऐसा करनेसे परस्परमे आदाना प्रदान होगा, जिससे छात्रोको तुलनात्मक अध्ययन करनेका अवसर अनायास मिल सकेगा। आत्मा ज्ञानी है, अत वह सत्यको ग्रहण करेगी और असत्यको छोड देगी। उक्त महानुभावकी उक्त बात हमे रुचिकर हुई। विचार ले तो पैसेवालोको कार्य कठिन नही। ●

८

•

अमृत निर्भर

•

कितने हृदय-स्पर्शी हैं आपके
अनुभवपूर्ण सैद्धान्तिक व
आध्यात्मिक वचन

१–श्रेय सूक्त

•

१. सुख कहाँ ?

१. निर्मोही जीव सुखके भाजन होते है। मोही जीव सदा दुःखी रहते है। उन्हे सुखका मार्ग समवशरणमें भी नही मिल सकता।

२ पराधीनताका त्याग ही स्वाधीनताका मूल मन्त्र है।

३ सुख-दुःखकी व्यवस्था तो अपनेमे बनानी चाहिये, बाह्य पदार्थोंमे नही।

४. सन्तोष ही परम सुख और वही सच्चा धन है। सन्तोषामृतसे जो तृप्ति आती है वह बाह्य साधनसे नही आती।

५ आवश्यकता कम करे। आवश्यकता जितनी कम उतना ही अधिक सुख।

६ सासारिक पदार्थोंसे सुखकी आशा छोड दो, अपने आप सुखी हो जावोगे।

७. व्यक्ति जितना अल्प परिग्रही होगा, उतना ही अधिक सुखी होगा।

८. संयमसे रहना ही सुख और शान्तिका सत्य उपाय है।

९. सुखका मूल कारण अन्तःचित्तवृत्तिकी स्वच्छता है।

२. शान्ति कहाँ ?

१. केवल वचनोंकी चतुरतासे शान्ति-लाभ चाहना मिश्रीकी कथासे मीठा स्वाद लेने जैसा प्रयास है।

२. संसारमें शान्तिके अर्थ अनेक उपाय करो, परन्तु जब तक अज्ञानता है, शान्ति नही मिल सकती।

३. जिस दिन तात्त्विक ज्ञानका उदय होगा, शान्तिका राज्य मिल जावेगा। केवल पर-पदार्थोंके छोड़नेसे शान्तिका मिलना अति कठिन है।

४. जहाँ शान्ति है वहाँ मूर्च्छा नहीं और जहाँ मूर्च्छा है वहाँ शान्ति नही।

५. आभ्यन्तर शान्तिके लिये कषाय कृश करनेकी आवश्यकता है। उसी ओर हमारा लक्ष्य होना चाहिये।

६. अन्तरंग रागद्वेषका त्याग करना ही आत्म-शान्तिका साधक है।

७. संसारमे वही मनुष्य सुख और शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकता है, जिसने अपनी मनोवृत्तिको स्वाधीन बना रखा है।

८. सर्व संगतिको छोड़कर एक स्वात्मोन्नति करो, वही शान्तिकी जड़ है।

९. समाजका कार्य करनेमें शान्तिका लाभ होना कठिन है। शान्ति तो एकान्तवासमें है। आवश्यकता इस बातकी है कि उपयोग अन्यत्र न जावे।

१०. संसारमें यदि शान्तिकी अभिलाषा है, तो इससे तटस्थ रहना चाहिये।

११. शान्तिका मूल कारण समता है।

१२. ममताके त्याग बिना समता नहीं, और समताके बिना तामस भावका अभाव नहीं। जब तक आत्मामें कलुषताका कारण यह भाव है, तब तक शान्ति मिलना असम्भव है।

१३. शान्तिके कारण सर्वत्र हैं, परन्तु मोही जीव कहीं भी रहे, उनके लाभसे वञ्चित रहता है।

१४. शान्तिका लाभ अशान्तिके आभ्यन्तर बीजको नाश करनेसे होता है।

३. कल्याण मार्ग

१. जिन कार्योंके करनेसे संक्लेश होता है, उन्हें छोड़नेका प्रयास करो, यही कल्याण मार्ग है।

२. कल्याण पथमें बाह्य कारणोंकी आवश्यकता नहीं। मुख्यतया एकत्व-परिणत आत्मा ही संसार और मोक्षका प्रधान कारण है।

३. कल्याणका मार्ग बाह्य त्यागसे परे है और वह आत्मानुभव-गम्य है।

४. निमित्त कारणोंके ऊपर अपने कल्याण मार्गका निर्माण करना अपनी दृष्टिको हीन करना है। बाहरकी ओर देखनेसे कुछ न होगा, आत्म-परिणतिको देखो, उसे विकृतिसे संरक्षित रखो, तभी कल्याणके अधिकारी हो सकोगे।

५ कल्याणका मार्ग आत्म-निर्मलतामें है, बाह्याडम्बरमें नहीं। मूर्ति बनानेके योग्य शिलाका अस्तित्व संगमर्मरकी खानिमें होता है, मारवाड़के बालुका-पुञ्जमें नही।

६ जगतकी ओर जो दृष्टि है वही आत्माकी ओर कर दो, यही श्रेयोमार्ग है।

७. श्रद्धा-पूर्वक पर्यायके अनुकूल यथाशक्ति निवृत्ति-मार्ग पर चलना कल्याणका मार्ग है।

८ यदि आप सत्पथके पथिक हैं तो मार्गसे चले जाओ, कल्याण अवश्य होगा।

९ स्वरूपकी स्थिरता ही कल्याणकी खानि है।

१०. कल्याणकी प्राप्ति आकुलतासे नहीं निराकुलतासे होती है।

११. तत्त्वज्ञान पूर्वक रागद्वेषकी निवृत्ति आत्म-कल्याणका सहज साधन है।

४. मोक्ष मार्ग

१. आत्माकी शुद्ध अवस्थाका नाम मोक्ष है।

२. अनादिकालीन अपनी भूलसे ही आत्मा संसारी बन रहा है। भूल मिटी कि मोक्षका पात्र होनेमें विलम्ब नहीं।

३. विषयसे निवृत्त होनेपर तत्त्व-ज्ञानकी निरन्तर भावना ही कुछ कालमें संसार-लतिकाका मूलोच्छेदन कर देती है। केवल देह-शोषण मोक्षमार्ग नहीं।

४. जहाँ तक बने संसार व मोक्षको अपनेमें ही देखो, यही तत्त्व-ज्ञान तुम्हे सिद्धि तक पहुँचा देगा।

५. हम लोग सदा पर-पदार्थमें उत्कर्ष और अपकर्षकी समालोचना करते रहते हैं, परन्तु 'हम कौन है', इसकी ओर कभी भी दृष्टिपात नहीं करते। फल यह होता है कि आजन्म ज्योंके त्यों भी नहीं, किन्तु छब्बेके स्थानमे दुवे रह जाते है। अत. निरन्तर स्वकीय भावोंको उज्ज्वल रखनेमे प्रयत्नशील रहना ही मोक्षाभिलाषियोंका मुख्य कर्त्तव्य है।

६. जिन महानुभावोंने रागद्वेषकी शृङ्खला तोडनेका अधिकार प्राप्त कर लिया है, वही मोक्षके पात्र है।

७. जीव अपने ही परिणामोकी कलुषतासे ससारी है, कलुषता गई कि संसार चला गया।

८ आत्मोत्कर्षके मार्गमे कर्म-निमित्तक इष्टानिष्ट कल्पना ने जो अपना प्रभुत्व जमा रखा है, उसे ध्वंस करो, यही मोक्षमार्ग है।

९ रागादिक न हो इसकी चिन्ता न करे, चिन्ता इस बातकी करे कि इस प्रकारके जितने भी भाव है, वे सब विभाव है, क्षणिक है, व्यभिचारी है। अतः इनको परकृत जान इनमे हर्ष विषाद करना उचित नहीं। यही चिन्ता मोक्षमार्गका प्रथम सोपान है।

१०. भेष मोक्ष नहीं, मोक्ष तो आत्माका स्वतंत्र परिणमन है। पर-पदार्थका संसर्ग छोडो, यही मोक्षका साधक है।

११. वही कति, मोक्षका अधिकारी है जो श्रद्धाके अनुकूल ज्ञान और चरित्रकी धारी हो।

२—सम्यक्त्व सूक्त

•

१. श्रद्धा

१ शुद्धात्म-तत्त्वकी उपासनाका मूल कारण सम्यग्दर्शन ही है, क्योंकि यथार्थ वस्तुका परिज्ञान सम्यग्ज्ञानीको ही होता है।

२ जिन जीवोंको सम्यग्दर्शन हो गया है, उन्हे साता असाताका उदय चञ्चल नही करता।

३. श्रद्धाकी निर्मलता ही मोक्षका कारण है।

४. मुख्यतया स्वाध्यायमे भी हमारी दृढ़ श्रद्धा ही शिक्षकका कार्य करती है।

५ केवल श्रद्धा-गुणके विकाससे कल्याण उदयमें आता है। इसके होनेपर अन्य गुणोका विकास अनायास हो जाता है।

६ कुछ भी करो श्रद्धा न छोडो। श्रद्धा ही संसारातीत अवस्थाकी प्राप्तिमे सहायक है। श्रद्धाके बिना आत्मतत्त्वकी उपलब्धि नही होती।

७. श्रद्धासे जो शान्ति मिलती है, उसका आस्वाद लेकर सन्तोष करो।

८ जिन्हे दीर्घ संसारसे भय है उन्हें श्रद्धा गुणको कलङ्कित नही करना चाहिये।

९. यह स्पष्ट है कि जिसमे दृढ श्रद्धाकी न्यूनता है, वे देवादिका समागम पाकर भी आत्म-सुखसे वञ्चित रहते हैं। अतः सर्व प्रथम हमारा मुख्य लक्ष्य श्रद्धाकी ओर होना चाहिये।

२. तीन बल

१. सांसारिक आत्मामें तीन बल होते हैं—कायिक, वाचनिक और मानसिक। जिनके ये बलिष्ठ होते हैं वे ही जीवनका वास्तविक लाभ ले सकते है।

२. जिनका काय-बल श्रेष्ठ है वे मोक्ष-पथके पथिक बन सकते हैं। अतः शरीरको पुष्ट रखना आवश्यक है, किन्तु इसीके पोषणमें सब समय न लगाया जावे। दूसरे (शरीर)की रक्षा स्वात्म-रक्षाकी ओर दृष्टि रखकर ही की जाती है, अपने आपको भूल कर नही।

३. जिनमें वचन-बल था उन्हीके द्वारा आज तक मोक्ष-मार्गकी पद्धतिका प्रकाश हो रहा है, और उन्हीकी अकाट्य युक्तियो और तर्कोंके द्वारा बड़े-बड़े वादियों का गर्व दूर हुआ है।

४. जिनके वचन-बल नहीं वह मोक्ष-मार्गकी प्राप्ति करनेमें अक्षम है।

५. मानव-जीवन राज्य है, मन उसका राजा है, इन्द्रियाँ उसकी सेना है, कषाय शत्रु हैं। यदि मन विवेकशील है तो इन्द्रियाँ सदा सचेत रहकर कषाय शत्रुओंको पराजित करती रहती हैं।

६. संसारमें जितने व्यापार हैं वे सब मनोबलपर अवलम्बित हैं। मनोबल ही बल है। इसके बिना असैनी जीवोंमें सम्यग्दर्शनकी योग्यता नहीं।

७. मनोबलमें वह शक्ति है जो अनन्त जन्मार्जित कलंकोंकी कालिमाको एक क्षणमें पृथक् कर देती हैं।

८. जिससे आत्महितकी सम्भावना है उसे (मनको) कष्ट मत दो। उसे प्रत्येक कार्य करने से रोको। यदि वह दुर्बल हो जायगा। तो आत्महित करनेमें अक्षम हो जाओगे।

९ सब दोषोंमें प्रबल दोष मनकी दुर्बलता है। जिनका मन दुर्बल है वे अति भीरु हैं और भीरु मनुष्यके लिए संसारमे कोई स्यान नहीं।

१०. वर्त्तमानमें हमलोग कषायसे दग्ध हो रहे हैं, जिससे तीनों बलोंकी रक्षाका एक भी उपाय हमारे पास नही है।

११. जिनके तीनों बल श्रेष्ठ हैं वे इस लोकमें सुखी हैं और परलोकमें भी सुखी रहेगे।

३. आत्मशक्तिका दुरुपयोग

१. आत्माकी शक्ति अचिन्त्य है। उसे विकासमें लाने वाला यह आत्मा है।

२. जो कुछ है सो आत्मामे है। यदि वहाँ नही तो कही नहीं।

३. आज संसारमें विज्ञानकी जो अद्भुत शक्ति प्रत्यक्ष हो रही है। यह आत्मा ही का विकास है। अतः सर्व विकल्पों और माया-पिण्डको छोड़कर अपनी परिणतिको उपयोगमे लाओ। उसका बाधक यदि किसी को समझते हो तो उसको हटाओ।

४. इस शक्तिका विकास जिसमें हो गया है वही वास्तवमे प्रशंसाका पात्र और निजत्वका भोक्ता है।

५. निजकी शक्तिके विकास बिना दर-दर भटकते फिरते है। यदि हम अपना पौरुष सम्हालें तो अनन्त संसारके बन्धन काट सकते है।

६. आत्मा स्वतंत्र वस्तु है, ज्ञान उसका निजका भाव है। यद्यपि उसका विकास स्वयं होता है, परन्तु अनादि कालसे मिथ्यादर्शनके अभावसे आत्मीय गुणोका विकास रुका हुआ है। इसीसे परमें आत्मीय बुद्धि माननेकी प्रकृति हो गई है। जो पंचेन्द्रियोंके विषय हैं, वे ही अपने सुखके साधन मान रखे हैं। यद्यपि ज्ञानके अन्दर उनका प्रवेश नही, ऐसा प्रत्यक्ष देखनेमें आता है, परन्तु अज्ञानता वश ऐसी कल्पना हो रही है, कि ये हमारे हैं।

७. जब तक आभ्यन्तर हीनता नही गई तभी तक बाह्य निमित्तोंकी मुख्यता प्रतीत होती है। आभ्यन्तर हीनताकी न्यूनतामे आत्मा ही समर्थ कारण है।

८. आत्मा ही अपना गुरु है और आत्मा ही उसका शत्रु है।

९. शरीरकी परिचर्यामें ही आत्म-शक्तिका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। इसकी परिचर्यासे आज तक जो दुर्दशा हुई है वह इसीका महाप्रसाद है।

१०. अन्तरङ्गकी बलवत्ता ही श्रेयोमार्गकी जननी है।

११. परको पर जाननेकी बजाय आत्माको आत्मा जानना विशेष महत्त्वका है।

४. अभिप्रायकी स्वच्छता

१. कल्याणका मार्ग सन्मतिमें है, अन्यथा मानव-धर्मका दुरु-पयोग है।

२. कल्याणका पथ निर्मल अभिप्राय है। इस आत्माने अनादि कालसे अपनी सेवा नही की, केवल पर-पदार्थोंके संग्रहमें ही अपने प्रिय जीवनको भुला दिया। भगवान अर्हन्तका उपदेश है, "यदि अपना कल्याण चाहते हो तो पर-पदार्थोंसे आत्मीयता छोड़ो।"

३. अभिप्रायकी निर्मलताके अभावमें अनेक जन्म द्रव्य-लिंग धारण करके भी मोक्षमार्गका पथिक नही बना। और अभिप्रायके शुद्ध होनेपर व्रत-धारणके बिना भी मोक्षमार्गका पथिक बन गया।

४ जिनके अभिप्राय स्वच्छ हैं, वे गृहस्थावस्थामें भी श्री रामचन्द्र-जीकी तरह व्यग्र होते हुए भी समय पाकर कर्म शत्रुका विनाश करनेमें, और सुकुमालकी तरह आत्म-शक्तिका सदुपयोग करनेमें नहीं चूकते।

५. अभिप्राय यदि निर्मल है तो बाह्य-पदार्थ कल्याणमें बाधक और साधक कुछ भी नही। साधक और बाधक तो अपनी ही परिणति है।

६. आत्म-निर्मलताका सम्बन्ध भीतरसे है, क्योंकि स्वयं आत्मा ही उसका मूल हेतु है। यदि ऐसा न हो तो किसी भी आत्माका उद्धार नही हो सकता।

७. अन्तरङ्गकी विशुद्धिसे ही कर्मोंका नाश सम्भव है अन्यथा नही।

८ केवल शास्त्रका अध्ययन संसार-बन्धनसे मुक्त करनेका मार्ग नहीं। बहुत शास्त्रका बोध होनेपर भी जिसने अपने हृदयको निर्मल नहीं बनाया उससे जगतका कोई कल्याण नही हो सकता।

९ अन्तरङ्ग शुद्धिके बिना बहिरङ्ग सामग्री हितकर नही। अतः प्राणीको प्रथम चित्त-शुद्धि करना आवश्यक है।

१० आवश्यकता इस बातकी है, कि आत्मीय भाव निर्मल बनाया जाय, और उसकी बाधक कषाय-परिणतिको मिटानेका प्रयास किया जाय। आत्म-निर्मलताके लिये अन्य बाह्य कारणोंको जुटानेका जो प्रयास है, वह आकाश ताड़नेके सदृश है।

११. जो कुछ करना है आत्म-निर्मलतासे करो।

५. आत्म-विश्वास

१ आत्म-शक्ति पर विश्वास ही मोक्ष-महलकी नीव है। इसके बिना मोक्ष-महलपर आरोहण करना दुर्लभ है।

२. बडे-बडे महत्त्व पूर्ण कार्य, जिन पर संसार आश्चर्य करता है, आत्म-विश्वासके बिना नहीं हो सकते।

३. आत्माके लिये कोई भी कार्य असाध्य नही। सारे जगतके पदार्थोका अनुभव करने वाले हम है, इन्द्रियाँ और मन नही, क्योंकि वे जड हैं। जब ऐसा दृढ विश्वास आत्मामे आ जाता है, तब अशक्यसे अशक्य कार्य भी वह क्षण मात्रमे कर डालता है।

४ आत्म-विश्वास एक ऐसा प्रभावशाली पवित्र गुण है कि जिससे नरको नारायण होनेमे कोई विलम्ब नही लगता।

५ जिस मनुष्यको आत्म-तत्त्वमे दृढ श्रद्धान है वही संसार भरके प्राणियोमे उत्कृष्ट है।

६ जिस कार्यको एक मनुष्य कर सकता है, उसीको यदि दूसरा न कर सके तो समझो कि उसमें आत्म-विश्वासकी कमी है।

७ जिन्हे अपने आत्मबलपर विश्वास नही उन्हे संसार-सागरको तो बात जाने दो, गाँवकी मेढक-तरण-तलैया भी गहरी है।

८ जिस मनुष्यको आत्मामे विश्वास नही वे मनुष्यधर्मके उच्चतम शिखरपर चढनेके अधिकारी नही।

९ जो मनुष्य सिहके बच्चे होकर भी अपनेको भेड तुल्य तुच्छ समझते है, जिन्हे अपने अनन्त आत्मबलपर विश्वास नहीं, वही दुःखके पात्र होते है।

१० "मुझसे क्या हो सकता है? मै क्या कर सकता हूँ? मै असमर्थ हूँ, दीन हूँ", ऐसे कुत्सित विचारवाले मनुष्य आत्मविश्वासके अभावमें कदापि सफल नही हो सकते।

६. आत्म-निर्भरता

१. किसी पर विश्वास मत करो। जो आत्मा माने उसी पर विश्वास करो।

२. अपनी दृष्टि निर्मल होना आवश्यक है। कोई कुछ भी कहे, उसपर अन्तरात्मासे परामर्श करके ही निर्णय दो।

३. शान्त परिणामोंकी ओर लक्ष्य दो। जो आपका आत्मा कहे उसीके अनुसार कार्य करो। पराये कहने पर यदि अनुभव न माने तो कदापि न चलो।

४. जो वस्तु तुम्हारे ज्ञानमें न आवे उसे सहसा अङ्गीकार मत करो।

५. जिस कार्यके लिये हृदय सहमत हो, यदि वह शुभ कार्य है तो अवश्य करो।

६. प्रतिज्ञाके विकल्प मत करो। प्रयोजन पडे तब वचन बोलो, प्रयोजन पडे तब चलो, और जब प्रयोजन पडे तब मनका व्यापार करो। इन्द्रियोकी स्वेच्छाचारिता न हो, ऐसा व्यवहार उनके साथ रक्खो। यदि अवसर आवे तो उनको एक दम रोको।

७. बिना विचारे कोई काम मत करो। जिस कार्यको करो उसका अन्त तक निर्वाह करो। यदि वह कार्य अयोग्य सिद्ध हो तथा अनुभव भी साक्षी न दे तो शीघ्र ही त्याग दो। जो कार्य उत्तम जञ्चे और सुखकर प्रतीत हो उसे ही यत्न पूर्वक करो। किसीकी बातोंमें आकर मत फँस जाओ।

८. जो काम करो निर्भीकतासे करो, परन्तु निर्भीकतामें सत्यताकी पुट होनी चाहिये।

९ मनके अनुकूल होने पर भी प्रकृतिके प्रतिकूल कोई भी कार्य मत करो।

१०. जिस कार्यसे आत्मामें आकुलता न हो उस कार्यको ही कर्त्तव्य पथमे लानेका प्रयत्न करो।

७. कायरता-वमन

१. त्याग धर्ममें कायरताको स्थान नही।

२. कर्म शत्रुकी विजय शूरोंसे होती है, कायरोंसे नहीं।

३. कायरतासे शत्रुके बलकी वृद्धि होती है, और अपनी शक्तिका ह्रास होता है, अतः जहाँ तक बने कायरताको अपने पास न फटकने दो।

४. दुःखमय संसार उसीका है जो अपनी आत्माको हीन और कायर समझता है। जो शूर है उसे कुछ दुःख नही।

५. कायरता संसारकी जननी है।

६ परसे न कुछ होता है न जाता है। आप ही से मोक्ष और आप ही से संसार दोनो पर्यायोका उदय होता है। आवश्यकता इस बातकी है कि हम संसारमे भ्रमण कराने वाली कायरताको दूर करें।

७ 'ससार असार है', इस वाक्यके वास्तविक अर्थको न समझकर लोग अर्थका अनर्थ करते है। परिणाम यह होता है कि भोला मानव-समाज कायर बन जाता है, और कर्त्तव्य-पथसे च्युत होकर त्यागी, साधु, उदासीन आदि अनेक भेषोंको धारण कर भूतलका भारभूत हो जाता है।

८ ऐसे ईश्वरको मानकर हम क्या करे जिससे हमे कायरताकी शिक्षा मिलती है। क्यों न हम उस तत्त्वको स्वीकार करे जो व्यक्ति-स्वातंत्र्य और उसकी परिपूर्णताका सूचक है।

९. यह मानना कि हम कुछ नहीं कर सकते सबसे बड़ी कायरता है। इसे त्यागो, आत्म-पुरुषार्थको जागृत करो। फिर देखोगे कि तुम्हारी उन्नति तुम्हारे हाथ है।

८. धैर्य

१. जो कर्त्तव्य-परायण होते हैं वे व्यर्थ विकल्प नहीं करते ।

२. निश्चलता से सब कार्योंकी सिद्धि होती है । चञ्चलता ही कार्य-की बाधक है ।

३. अच्छे कार्यके प्रारम्भ करनेके पूर्व यह दृढ़ संकल्प कर लो कि अनेक विघ्नोंके होनेपर भी हम यह कार्य अवश्य ही पूर्ण करेंगे ।

४ किसी कार्यको करनेका जो निश्चय करो उसे सहस्रों बाधायें आने पर भी न छोड़ो । यदि उस निश्चयसे आत्मघात होता हो और आत्मा (उसका) साक्षीभूत होता हो तब उसे छोड़ दो ।

५. उतावली न करो, धैर्य तुम्हारा साधक है ।

६. जो कार्य करो धीरतासे करो, व्यग्र होनेकी आवश्यकता नही ।

७. जो मनुष्य धीर नही, वह मनुष्य किसी कार्यमें सफलीभूत नही हो सकता । मै जन्मसे अधीर हूँ, अत: मेरा कोई भी कार्य आज तक सफल नहीं हुआ ।

८. आपत्तियोंके आनेपर धीरताके साथ पहलेकी अपेक्षा अधिक उस कार्यको सफल बनानेका प्रयास करना चाहिये । इसीमे भलाई है ।

९. अधीरताके द्वारा अपनी शक्तिको क्षीण करते-करते जब एक दिन मनुष्य एकदम निर्बल हो जाते है, तब कोई कार्य करनेके योग्य नही रहते ।

१०. शान्तिसे काम करो । आकुलता दूर करनेके लिये अशान्त होना पागलपनकी चेष्टा है ।

३–सम्यग्ज्ञान सूक्त

•

१. ज्ञानोदय

१ आत्महितका कारण ज्ञान है। हम लोग केवल ऊपरी बातें देखते है, जिससे अभ्यन्तरका पता नही लगता। अभ्यन्तरके ज्ञान बिना अज्ञान दूर हो ही नही सकता। यदि कल्याण चाहो तो ज्ञानको उतना ही आवश्यक समझो जितना कि भोजनको आवश्यक समझते हो।

२ जितना समय ससारी कामोमे लगाते हो उसका दशाश भी यदि आगमाभ्यासमें लगाओ तो अनायास ही भेद-ज्ञान हो सकता है।

३ ज्ञान-शून्य जीवन सार-शून्य-तरुवत् निरर्थक है।

४ यदि ज्ञान नही है तो व्रत, नियम, शील और जप तपके होने पर भी अज्ञानी जीवोको मोक्ष लाभ नही हो सकता।

५ आगमाभ्यास भी उतना ही सुखद है, जितना आत्मा धारण कर सके। बहुत अभ्यास यदि धारणा शक्तिसे परे है, तब जैसे जठराग्निके बिना गरिष्ठ भोजन लाभदायक नही, वैसे ही यह अभ्यास भी लाभ-दायक नही, प्रत्युत् हानिकारक है।

६ शिक्षाका उद्देश्य शान्ति है। उसका कारण आध्यात्मिक शिक्षा है। आध्यात्मिक शिक्षासे ही मनुष्य ऐहिक एवं पारलौकिक शान्तिका भाजन हो सकता है।

१९

२. शास्त्राध्ययन

१. स्वाध्यायके समान तप नही। इसका अर्थ यह है कि आत्मा जब वस्तु-स्वरूप का विचार करता है तब चित्त-वृत्ति सब तरफसे रुक जाती है, केवल तत्त्व-विचारमें लीन हो जाती है। उस समय अन्य चिन्ताओंके अभावमे स्वयमेव (वह) शान्त-भावको प्राप्त हो जाती है।

२. परिणामोंको कलुषित मत करो। यही तो शास्त्रको पढ़नेका फल है।

३. सानन्द स्वाध्याय कीजिये, परन्तु उसके फलस्वरूप रागादि-मूर्च्छाकी न्यूनतापर निरन्तर दृष्टि रखिये।

४ स्वाध्यायका फल केवल ज्ञानकी वृद्धि नही है, किन्तु स्वात्म-तत्त्वको स्वावलम्बन देकर शान्ति मार्गमे जाना मुख्य ध्येय है। ज्ञानार्जनसे ससारमे हम अपनी प्रतिष्ठा चाहते है, ससारसे मुक्त होना नहीं चाहते। अन्यको तुच्छ और अपनेको महान बनानेके लिए ज्ञानका उपयोग करते है।

५. जिस प्रकार व्यापारका प्रयोजन आर्थिक-लाभ है, उसी प्रकार स्वाध्यायका प्रयोजन शान्ति-लाभ है।

६ यदि वर्त्तमानमे आप वीतरागकी अविनाभाविनी शान्ति चाहे तो असम्भव है, क्योंकि इस कालमे परम वीतरागताकी प्राप्ति होना दुर्लभ है। अतः जहाँ तक बने स्वाध्याय व तत्त्व-चर्चा कीजिये।

७. शारीरिक व्याधियोंकी चिकित्सा डाक्टर और वैद्य कर सकते हैं, लेकिन सासारिक व्याधियोंकी रामबाण चिकित्सा केवल श्री वीतराग भगवान्‌की विशुद्ध वाणी ही कर सकती है।

८. स्वाध्यायका मर्म जानकर आकुलता नही होनी चाहिये। आकुलता मोक्षमार्गमें साधक नहीं, साधक तो निराकुलता है।

९ जो सिद्धान्तवेत्ता हैं वे अपथ पर नही जाते। सिद्धान्तवेत्ता वही कहलाते हैं जिन्हे स्व-पर-ज्ञान है। तथा वेही सच्चे वीर व आत्मसेवी है।

१०. शास्त्रज्ञान और बात है और भेदज्ञान और बात है।

११. सत्समागमसे भी स्वाध्याय विशेष हितकर है। सत्समागममें प्रकृति-विरुद्ध भी मनुष्य मिल जाते हैं, परन्तु स्वाध्यायमें इसकी भी सम्भावना नही।

३. सजीव-अध्ययन

१. विचार-परम्पराको उत्तम रखनेकी कारण अन्तःकरणकी शुद्धि है। वह शुद्धि बिना विवेकके नही हो सकती। वह विवेक भेद विज्ञानके बिना नही हो सकता, और वह भेदविज्ञान बिना सत्समागमके नही हो सकता।

२ सत्समागम उत्तम होता है, परन्तु धर्मके अनुकूल हो तभी, अन्यथा संसार-गर्तमें पड़नेका कारण हो जाता है।

३. सत्समागम उसे कहते है जिसके कारण कषाय उत्पन्न न हो।

४. आवश्यकता इस बातकी है कि निरन्तर निष्कपट पुरुषोंकी सगति करो। ऐसे समागमसे अपने को रक्षित रखो, जो स्वार्थ-प्रेमी है, कुपथ-गामी है।

५ प्रत्येक उदासीन व्यक्तिको सत्समागममें रहना चाहिये। सत्समागमसे यह अर्थ लेना चाहिये कि जो मनुष्य ससारसे विरक्त हो, शेष आयु मोक्षमार्गमें बिताना चाहते हों, उन्हीका समागम करें।

६. साधु-समागम मोक्षमार्गमें बाह्य निमित्त है।

७ जिस तरह दीपकसे दीपक जलाया जाता है, उसी तरह महात्माओंसे महात्मा बनते है, अतः महात्माओंके सम्पर्कसे (साधु-समागमसे) एक दिन स्वयं महात्मा हो जाओगे।

८. विकल्पोका अभाव कषायके अभावमें है, कषायोंका अभाव तत्त्वज्ञानके सद्भावमें है और तत्त्वज्ञानका सद्भाव साधु-समागमसे होता है।

९. सत्सगतिका अर्थ यही है—"निजात्मा बाह्य पदार्थोंसे भिन्न भावनाके अभ्याससे कैवल्यपद पानेका पात्र हो जाता है।"

१०. सत्संगका लाभ पुण्योदयसे होता है, और पुण्योदय मन्द कषायसे होता है।

११. वर्त्तमानमें निष्कपट समागमका मिलना बहुत दुर्लभ है। अतः सर्वोत्तम समागम तो अपनी रागादि परिणतिको घटाना ही है।

४. जन-संसर्ग—एक प्रपञ्च

१ आत्म-पुरुषार्थ परमावश्यक है। परिणामोकी निर्मलताका कारण पर-पदार्थोंसे सम्बन्ध-त्याग है। आत्म-श्लाघा त्यागनेकी महती आवश्यकता है।

२ मनुष्योंसे सम्पर्क रहना ही संसार-बन्धनका मूल कारण है। (स्वप्नमे बाबा भागीरथ दास जीकी आज्ञा हुई—'तेरी आयु अधिक नही। क्षुल्लक पदकी रक्षा करना कोई कठिन कार्य नही। मनुष्य सम्पर्क छोड़ो। केवल लोकेषणाके जालमे मत पड़ो। लोक-प्रतिष्ठाके लिये यह पद नही, यह तो कल्याणके लिये है। परकी निन्दा प्रशंसाकी परवाह न करो।')

३ शूरताकी पराकाष्ठा होना ही मनुष्य के लिये लौकिक और पारमार्थिक सुखकी जननी है। भगवान् (आत्मन्)। तुम अचिन्त्य शक्तिके स्वत्वमे भी क्यो दर-दरके भिक्षुक बन रहे हो। यदि तुम अपनेको सम्भालो तो फिर जगतको (उपदेशो आदि द्वारा) प्रसन्न करनेकी आवश्यकता नही। हमारी ७४ वर्षकी आयु हो गई, पर शान्तिका लेश नही आया, और न आनेकी सम्भावना है, क्योकि मार्ग (ससर्ग-त्याग) जो है उससे हम विरुद्ध चल रहे है। बाह्य-प्रशसाका लोभी महान् पापी है। हम बहुत दुर्बल प्रकृतिके मनुष्य है। 'कोई द्रव्य किसीका बिगाड सुधार करने वाला नही' इत्यादि मुखसे ही कहते है परन्तु उसपर अमल नही। गल्पवाद है।

यदि वास्तवमे धार्मिक बुद्धि है तो त्यागीको गृहस्थके मध्य नही ठहरना चाहिये। गृहस्थोके सम्पर्कसे बुद्धिमे विकार हो जाता है। जिन्हे आत्महित करना है वे इन उपद्रवोसे सुरक्षित रहे। मनुष्योके साथ विशेष सम्पर्क करना रागका कारण है।

४ लोगोमे भक्ति बहुत है, परन्तु जिसकी भक्तिकी जाती है, वह पात्र नही, वेषमात्र है। मनमे विचार आया कि अपनी दिनचर्या ऐसी बनाओ कि विशेषतया परका सम्पर्क न्यून रहे।

(५ मोहकी महिमा देखो कि लोग जिस समागमसे बचनेके लिये गृहका त्याग करते है, त्यागी होनेपर भी उन्हे वही समागम अच्छा लगता है। परमार्थत मोह गया नही है, उसने रूप भर बदल लिया है।)

६ शामली आया। वहाँ स्वप्नमे बाबा भगीरथ दास जीका दर्शन हुआ। दिगम्बर मुद्रामे थे। उन्होने कहा—'भाई गणेश प्रसाद। बाहरमें

१ चादर दो लगोटी रखना कठिन नही, किन्तु आभ्यन्तर निर्मलता होना अत्यन्त कठिन है।'

७ क्षयोपशम पाया है तो उसे पराधीन जान उसका अभिमान छोड़ो। यद्वा तद्वा मनुष्योसे वार्तालाप करना उचित नही। हरिजन-मन्दिर-प्रवेशके विषयमे बोलकर पछताना पडा। हमारे मनमे बार-बार यही भाव आता है कि अब हमे व्यवहार मार्गमे नही पडना चाहिये। यद्वा तद्वा मत बोलो। वही बोलो जिससे स्व-पर-हित हो।

८ इटावा चातुर्मासके पश्चात् भिण्ड आया और वहाँसे फीरोजाबाद जानेका निश्चय किया। साथमे क्षु० मनोहरलाल जी आदि भी थे। उन्होंने कहा कि हम खुर्जा जावेगे। मैने कहा ठीक है। मनमे विचार आया कि मै सघका आडम्बर कर लोगोंके सयोग वियोगके समय व्यर्थ ही हर्ष विषादका पात्र बनता हूँ। अत जितनी जल्दी बन सके यह सघका आडम्बर छोड देना चाहिये। परका समागम सुखद नही, क्योकि परके समागममे अनेक विकल्प होते है।

९ ज्येष्ठ शु० ११ स० २००८ के दिन मि धन्यकुमारजी बरुआसागर आये। आपका कहना है कि कटनी आकर रहिये। मुझे अन्तरङ्गसे लगा कि यदि कल्याणकी अभिलाषा है तो इन ससर्गोंको त्यागो। जितना ससर्ग बाह्यमे अधिक होगा, उतना ही कल्याण मार्गका विरोध होगा। कल्याण केवल आत्म-पर्यायमे है। जो परके निमित्तसे भाव होते है, वे सब स्व-तत्त्व-परिणतिकी निर्मलतामे बाधक है।

१० जो आत्म-हितैषी है उन्हे पर-पदार्थोंका सम्पर्क त्यागना चाहिये। व्यर्थ गल्पवादमे क्या रखा है।

११ प्रथम तो परके समागमसे अपना समय नष्ट होना है। द्वितीय जिसका समागम होता है, उसके अनुकूल प्रवृत्ति करना पडती है। अनुकूल प्रवृत्ति न करनेपर अन्यको कष्ट देनेकी सम्भावना हो जाती है। अत परका समागम सर्वथा हेय है।

१२ यदि यह चाहते हो कि हमारे श्रेयोमार्गका विकास हो तो शीघ्रसे शीघ्र इन महापुरुषोंका समागम त्यागो। आजकल जितने महापुरुष मिलते है, उनका अभिप्राय तुम्हारे अभिप्रायसे नही मिलता है, और इससे यह दृढ निश्चय करो कि प्रत्येक पदार्थका परिणमन भिन्न-भिन्न है। तब यह खेद करना कि यह समागम अच्छा नही, व्यर्थकी कल्पना है।

१३. जहाँ अपना शरीर ही सुखकर नहीं वहाँ अन्य पदार्थों या अन्य व्यक्तियोंका संसर्ग सुखकर मानना मूर्खताके सिवा और क्या है ?

१४. समागममें महान दुःख है। यदि सुख चाहते हो तो इसे छोड़ो। कल्याणमार्ग तो आत्मामें है। आत्मा एकाकी है। इसका कोई दूसरा साथी नही है।

१५. "किसीसे विशेष परिचय मत करो", यही शास्त्रकी आज्ञा है, परन्तु आत्मन् ! तुम इसका अनादर करते हो, अतः अनन्त संसारके पात्र होगे।

१६. सम्पर्कसे ही रागादि दोषोंकी उत्पत्ति होती है, और रागादि दोष ही संसारके कारण होते है।

१७. सम्पर्कसे सकल्पोंकी उत्पत्ति होती है, और फिर मनमे अनेक विध विभ्रम होते है, विभ्रमोमे अनेक प्रकारकी आकुलता होती है, आकुलतासे निरन्तर दुखी रहता है, क्योकि जहाँ पर आकुलता है, वही पर दुःख है।

१८ पर-संसर्गसे जितना राग होता है, वह एकाकी रहनेसे नहीं होता। पानके चर्वण करनेपर ही मुँह लाल होता है, पृथक् रहनेपर वह लालिमा नही लाता।

१९. बहुत मनुष्योंमें गल्पवाद ही की प्रचुरता रहती है। एकान्तमें चित्त विक्षेपताके कारणो की प्रचुरता नही रहती।

२०. गृहवास उतना बाधक नहीं जितना कायरोका समागम है।

२१. ससारमें समागम करना ही उलझनका कारण है। किस किसके अनुकूल प्रवृत्ति करें। स्वाधीन रहना ही धर्म-साधनमे मुख्य हेतु है।

२२ मनुष्य-मात्रका सम्पर्क अच्छा नही। यदि सम्पर्कके बिना निर्वाह नही हो सके तो कमसे-कम सम्पर्क रखे, क्योंकि अन्तरंगकी वीतरागता नही है। उसके अभावमे ही इन पर-पदार्थोंका आश्रम लेना पडता है।

२३ किसीके सहवासमे मत रहो। यदि रहो तब उनकी प्रवृत्तिका ज्ञान ही मत करो।

२४. किसीकी प्रकृति देखकर दुखी मत होवो। 'तुमको क्या अधिकार है जो पराई प्रकृतिको संक्रमण करा सको।'

२५. चित्त-वृत्ति शान्त रखनेके लिये पर-पदार्थके सम्पर्कको त्यागो। इसका तात्पर्य परमे इष्टानिष्ट कल्पनाका त्याग करना है।

५. सच्चा वैराग्य—आत्मस्वतंत्रता

१. जहाँ तक बने परकी पराधीनता त्यागो, यही कल्याणका मार्ग है। स्वतंत्रता ही सुखकी जननी है। सुखका साधन एकाकी होता है।

२. अनेकोके साथ सम्बन्ध होना, यही महा सकट है। जिसके अनेक सम्बन्ध होगे, उसका उपयोग निरन्तर झझटोंमे उलझा रहेगा।

३ गुरुदेवसे (अन्तर्गुरुसे) यह प्रार्थना की, कि हे गुरुदेव! अब तो सुमार्ग पर लगाओ। किसीका सहारा लेना उत्तम नही है, सहारा निजका ही कल्याण करने वाला है। पञ्चास्तिकायमे कुन्द-कुन्द महाराजने तो यहाँ तक लिखा है कि हे आत्मन्! यदि तू संसार-बन्धनसे छूटना चाहता है तो जिनेन्द्रकी भक्तिका भी त्याग कर। क्योकि वह भी चन्दन-नग-सङ्गत-दहनकी भाँति दुःखका ही कारण है।

४ मेरे मनमें तो अटल श्रद्धा है कि शान्तिका मार्ग न तो पुस्तकोंमें है, न तीर्थ-यात्रादिमे है, न सत्समागमादिमे है, और न केवल दिखावाके योग-निरोधमे है। किन्तु कषाय-निग्रह पूर्वक सर्व अवस्थाओंमे है।

५ सर्वोत्तम बात यह है कि किसीके चक्रमे न आवे, जिन्हे संसार-बन्धनका उच्छेद करना है, उन्हे उचित है कि वे परकी चिन्ता त्यागें। परकी चिन्ता करना मोही जीवका कर्त्तव्य है।

६ भृत्यका अभ्यास छोडो। आत्मीय कार्यको परके ऊपर मत डालो। त्यागका अर्थ यह नही कि अन्य समाजको भारभूत बनो।

७ सूत्रमे स्वामीने 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' लिखा है। तदनुकूल वृत्ति करो। तुम त्यागी न होते तो निर्वाहके अर्थ कुछ व्यापार आदि करते। उसमे तुम्हारा काल जाता। अत जो तुम्हारा भोजनादि द्वारा उपकार करे उसका ज्ञानादि द्वारा उपकार कर उससे उऋण होना चाहिये।

८. लोग शान्ति शान्ति चिल्लाते है, और मै भी निरन्तर उसीकी खोजमें रहता हूँ। पर उसका पता नही चलता। परमार्थतासे शान्ति तो तब आये जब कषायका कुछ भी उपद्रव न रहे। कषायातुर प्राणी निरन्तर पर-निन्दाके श्रवणमें आनन्द मानता है। जिसे परकी निन्दामें प्रसन्नता होती है, उसे आत्म-निन्दामें स्वयमेव विषाद होता है। जिसके

निरन्तर हर्ष विषाद रहते हों वह सम्यग्ज्ञानी कैसा ? अतः स्वरूपमें लीन रहना ही उत्तम बात है। अपना उपयोग बाहर भ्रमाया तो फँसे।

९ पाठ करना अन्य बात है। हृदयमें शान्तिका आना अन्य बात है। शान्तिका लाभ कषायके अभावमे है। शान्तिका पाठ पढना प्रत्येक व्यक्तिको आता है, किन्तु भीतरसे शान्तिका होना कठिन है। परसे न शान्ति मिलती है, और न मिलनेकी सम्भावना है।

१० जहाँ तक विचारसे काम लेते है, यही समझमे आता है कि अनादि कलुषताके प्रचुर प्रभावमे कुछ सुध बुध नही रहती, केवल ऊपरी वेष रह जाते है।

११. इस भवाटवीमे मार्ग प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। मोह-राजाकी यह अटवी है। इसके रक्षक राग द्वेष हैं। इनसे यह निरन्तर रक्षित रहती है। जीवोका इससे निकलना अति कठिन है। जिन महापुरुषोने अपनेको पहिचाना वे ही इससे निकल सकते है।

१२ मार्गमे स्वतत्रता ही मुख्य है। पराधीनता तो मोक्षमे बाधक है।

१३. स्वाधीनता ही एक ऐसा अमोघ मन्त्र है, जिससे हम सदा खुसी रह सकते है, क्योंकि यह पराधीनता तो ऐसा प्रबल रोग है जो संसारसे मुक्त होने नही देता। अत. चाहे भले ही वनमे रहो यदि इसके वशमे हो तब तो कुछ सार नही। यदि इसपर विजय प्राप्त कर ली तब कही भी रहो, पौ-बारा है।

१४ स्वाधीनता पूर्वक थोडा भी धर्म-साधन करना पराधीनता पूर्वक किये गये अधिक धर्म-साधनसे लाख गुणा अच्छा है।

१५. स्वाधीन कुटियासे पराधीनताका स्वर्ग भी अच्छा नही।

१६. यदि हमको स्वतंत्रता रुचने लगी, तब समझना चाहिये, अब हमारा कल्याणका मार्ग दूर नही।

१७ यदि आत्माको ससारमे रखनेवाली कोई शक्ति है तो पराधीनता ही है, और कल्याण करनेवाली कोई शक्ति है तो वह स्वाधीनता ही है।

१८. शान्तिका आविर्भाव आत्मामें ही होता है और आत्मा ही से होता है। आत्माकी शक्ति द्वारा आत्मा ही उस आत्म-भावको अपने द्वारा अपने ही लिये अपनेमें अनुभव करता है। लोक निरन्तर परात्म-बुद्धि है, अत उसे परमे ही अन्वेषण करनेका उद्यम करते है।

१९ कितनी मूर्खताकी वात है कि परके द्वारा आत्म-कल्याण चाहते हैं। देवी देवताओंको भी लोभ लालच और लाच घूस देनेकी चेष्टा करते है। यह सब पराधीनताका विलास है। इसे त्यागो और शूर वीर बनो, तभी कल्याण होगा।

२० भूलकी खानि तुम स्वय हो। निमित्त कारणो पर आरोप करना अपनेको गर्तमे पटकना है।

२१ परसे ममत्व करना अपनेको कारागारमे डालना है।

२२ वे ही पार हो सकते है, जो पराये दास नही बनते। हम लोग परकी ममतासे ही घूम रहे है।

२३ आत्मा सर्वदा एकाकी रहता है, अत परकी पराधीनतासे न कुछ आता है और न कुछ जाता है।

२४ परकी सहायता परमात्मपदकी बाधक है।

२५ पराधीनतासे बढकर कोई पाप नही।

२६ जो आत्मा पराधीन होकर कल्याण चाहेगा वह कल्याणसे वञ्चित रहेगा। अपने स्वरूपको देखो, ज्ञाता द्रष्टा होकर प्रवृत्ति करो। चाहे भगवत्पूजा करो, चाहे विषयोपभोगमे उपयुक्त होओ, उभयत्र अनात्मधर्म जान रत और अरत न होओ।

२७ पराधीनताको त्यागकर अरहन्त परमात्मा व ज्ञायक स्वरूप आत्मापर ही लक्ष्य रखो। पास होत हुए भी कस्तूरीके अर्थ कस्तूरी मृगकी तरह स्थानान्तरमे भ्रमण कर आत्म-शुद्धिकी चेष्टा न करो।

२८. हम लोग अति कायर है जो अपनेको पराधीनताके जालमें अर्पित कर चुके है। इसीसे ससार यातनाओंके पात्र हो रहे हैं।

६. स्व-पर-चिन्ता

१ पराई चिन्तासे न कभी किसीका उद्धार हुआ है और न होगा। स्वाधीन जीव ही मोक्षगामी होते हैं।

२. परकी चिन्ता कल्याण पथका पत्थर है।

३. चिन्ता किसकी करते हो? जब पर-वस्तु अपनी नहीं, तब उसकी चिन्तासे क्या लाभ?

४. उन पुरुषोंका अभी निकट संसार नहीं जो परकी चिन्ता करते हैं।

५ इस कालमें सत्पथका पथिक वही हो सकता है जो परकी चिन्तासे अपनेको बचा सके।

६ चिन्तासे कभी पार न होंगे। आत्मचिन्ता भी तभी लाभ-दायक हो सकती है, जब आत्माको जानो, मानो और तद्रूप होनेका प्रयास करो।

७. चिन्ता चाहे अपनी हो चाहे परकी, बहुत ही भयकर वस्तु है। 'चिता' और 'चिन्ता' शब्द लिखनेमें तो केवल एक बिन्दी मात्रका अन्तर है, परन्तु स्वभावत दोनों ही विलक्षण है। चिता मृत मनुष्यको एक ही बार जलाती है, परन्तु चिन्ता जीवित मनुष्योंको रह-रहकर जलाती है।

८ चिन्ता आत्माके पौरुषको क्षीण कर, चतुर्गति भवावर्तमे पातकर नाना दुःखोंका पात्र बना देती है।

९ जिससे उत्तरोत्तर शरीर क्षीण और मन चञ्चल हो जाता है वह चिन्ता ही तो है। उसका त्याग करो और आत्महितमे लगो।

१०. जिनका चित्त चिन्तासे मलिन है उनके विशुद्धताका अंश कहाँसे उदय होगा?

११. बहुत कम बोलो, व्यर्थ चिन्ता मत करो, मोह त्यागो, यही ध्यान करनेका मूल उपाय है।

७. शास्त्र-प्रवचन—मात्र जन-रञ्जना

१. केवल मनुष्योंका अनुरञ्जन करना तात्त्विक मार्ग नहीं। तात्त्विक मार्ग तो वह है, जिससे आत्माको शान्ति मिले।

२ वाह्-वाहमे ससार लुट रहा है, आप स्वय निज स्वरूपसे च्युत है।

३ जनताके अनुकूल प्रवचन होना कठिन है। जनता गल्पवादकी रसिक है।

४ गल्पवादसे स्व-पर-मनोरञ्जनकी चेष्टा अकार्यकारिणी है।

५ वचनोकी कुशलतासे जगतको मुग्ध करना वञ्चना है। प्रशसा उस वक्ताकी है, जो उस पर अमल करता है।

६ परके उपदेशसे कोई लाभ नही, और न परको उपदेश देनेसे आत्म-लाभ होता है।

७ श्रोताओको मनमानी सुना देना, अपनी प्रभुता जमाना, पाण्डित्य प्रदर्शन करना तथा 'हम ही सब कुछ हैं', इत्यादि मनोविकारोंके होने, आत्मकल्याणकी लिप्सा अन्धे मनुष्यके हाथमे दर्पण सदृश है।

८ जो यह चाहता है कि मेरे उपदेशोका प्रभाव लोगो पर पड़े तब उसे सबसे पहले उस कामको स्वयं करना चाहिये।

९ अन्यको उपदेश देकर सुधारनेकी अपेक्षा अपनेको सुधारना अच्छा है।

१० प्रवचनका लाभ तो यह है कि यथाशक्ति उपयोगको निर्मल बनाया जाय। उपयोगकी निर्मलता कषायके मन्दभावमें है।

११ धर्मके मर्मको जानना ही कल्याणपथका पथिक होना है। परन्तु हम धर्मके जाननेका तो प्रयत्न नही करते, केवल लौकिक मनुष्यों-को समझानेका प्रयत्न करते है, जो सर्वथा अनुचित है। जब अपनेमें ही धर्मका विकाश नही तब अन्यमें क्या करेंगे?

१२. स्वयं पालन किये बिना दूसरेको उसका उपदेश देना वेश्याके द्वारा दिये गए ब्रह्मचर्यके उपदेशके सदृश है।

१३ आजकल मनुष्योंका यह भाव हो गया है, कि अन्य सिद्धान्त-वाले हमारा सिद्धान्त स्वीकार कर लेवें। इसके लिये जो मार्ग है, उसपर न चलना पड़े। यह विपरीतभाव हमारे उत्कर्षका बाधक है।

८. परोपदेश—एक विडम्बना

१. परके उपदेशसे कुछ लाभ नहीं, और न परको उपदेश देनेसे आत्म-लाभ होता है। मोहकी भ्रान्ति छोडो। बहुत बोलना दुःखका मूल है। शान्तिका मार्ग वही है, जहाँ निवृत्ति है। केवल गल्पवादमें कुछ लाभ नहीं।

२. मेरी यह दृढ श्रद्धा है कि मै जो कहता हूँ, उसका स्वयं तो पालन नही करता, अन्यसे क्या कहूँ? यही कारण है कि मै उपदेशमे सकोच करता हूँ (उस आत्माको ही उपदेश देनेका अधिकार है, जो स्वयं मार्गपर चले) केवल शब्दोंकी मधुरता और सरसता अन्यपर प्रभाव नही डाल सकती। प्रतिदिन सुन्दर विचार आत्मामे आते है, परन्तु उनपर आरूढ नही होते, अत. जैसे आये वैसे न आये, कुछ लाभ नही।

३. खतौली मन्दिरमे प्रवचन करते हुए मुझे लगा कि लोग ऊपरी दृष्टिसे सुनते है। पश्चात् उसका असर नही रहता, केवल प्रशंसा ही रह जाती है। (दूसरी ओर) वक्ता आत्मीय परिणतिसे कार्य नही लेता। लौकिक मर्यादा ही में निज-प्रतिष्ठा मान प्रसन्न हो जाता है।

प्रवचनमें लोगोका समुदाय बहुत आता है, परन्तु न तो तात्त्विक लाभ उठाता है और तात्त्विक धर्मके ऊपर दृष्टि है। केवल रस्म अदा करनी पडती है। बहुत आदमी जिसमे प्रसन्न हो उसीमे प्रसन्नता मानना हमारा कार्य है। परन्तु धर्मका स्वरूप तो निर्मल आत्माकी परिणति है।

४ वाह-वाहमे ससार लुट रहा है। आप स्वय निजस्वरूपसे च्युत है और ससारको उस स्वरूपमे लगाना चाहता है यह सर्वथा उचित नही है। जो मनुष्य जगतके कल्याणकी चेष्टा करते है, उनका स्वयं अपनी ओर लक्ष्य नही। बडे-बडे पुरुष हो गए। वे भी ससारकी गुत्थीको सुलझा न सके। तब अल्पज्ञानी इसकी चेष्टा करे, यह महती दुर्बोधता है।

५ आजकल तत्त्वज्ञानका आदर नही केवल ऊपरी बातोसे लोकका रञ्जन करना ही व्याख्यानका विषय रहता है। मैने बहुत विचार किया

कि अब इस विषयमें न पड़ूँ, तथा आत्मकल्याणकी ओर दृष्टिपात करूँ, परन्तु पुरातन संस्कार भावनाके अनुसार कार्य नही होने देते ।

६ वास्तवमें न तो कोई वक्ता है और न श्रोता है । मोहकी बलवत्तामें ही यह सब ठाठ हो रहा है । जहाँ तक मोहकी सत्ता है वहाँ तक यह सब प्रपञ्च है । जनता बहुत आती है, इस स्थितिमें यथार्थ बात तो कहनेमे आती नही, केवल सामाजिक बातोंमे शास्त्रका प्रवचन होने लगता है । मुझे तो अन्तरङ्गमे लगता है कि बोलना न पडे, अपनी परिणतिको निर्मल बनानेका प्रयत्न करूँ, इसीमें सार दिखता है ।

७ खेखडामे बहुत जनता धर्मकी पिपासु है, परन्तु धर्मका स्वरूप बतलानेवाले बिरले है । मैं तो अपनी आत्माको इस विषयमें प्रायः दुर्बल देख रहा हूँ । जहाँ तक हो परकी वञ्चना मत करो । परकी वञ्चना हो व मत हो, आपकी वञ्चना तो हो ही जाती है । आपकी वञ्चनाका यही अर्थ है कि आप वर्तमानमें जिस (लोकेषणा) कषायसे दुःखी होता है, उसीका बीज फिर बो लेता है । केवल ससारकी वासनाये उन्हे सताती रहती है । वासनाओमे सबसे बड़ी वासना लोकेषणा है, जिसमें सिवाय संक्लेशके कुछ नही ।

८ दिल्लीके मन्दिरोंमे प्रवचन हुए, परन्तु वास्तविक लाभ कुछ नही । यथार्थमे प्राणी-मात्रका कल्याण उसके आधीन है । अत सर्व विकल्पोंका त्याग कर आत्महित करना । व्यर्थकी झञ्झटमें पडना अच्छा नही । प्रवचनो और व्याख्यान-सभाओसे लाभ लकर एक भी आदमी सुमार्ग पर आता तो मे इन सब आयोजनोंको सारपूर्ण समझता । परन्तु ऐसा तो कुछ है नही । लोगोका ख्याल तो ऐसा हो गया है कि ये सुनानेवाले है । कुछ देना लेना तो है नही । एक तरहका सिनेमा है, पर सिनेमामे तो पैसेका व्यय है, यह अमूल्य दृश्य है ।

९. सर्व मनुष्य धर्मके पिपासु है, परन्तु धर्मका मर्म बताने वाले विरलताको प्राप्त हो गए है । अपने अन्तरङ्गमे यद्वा तद्वा जो समझ रखा है, वही लोगोको सुना देते है । अभिप्राय स्वात्म-प्रशंसाका है । लोग यह समझते है कि हमारे सदृश अन्य नही । धर्मके ठेकेदार बनते है, पर धर्म तो मोह क्षोभसे रहित आत्माकी परिणतिका नाम है । उस पर दृष्टि नही ।

(१०. जैन धर्मका जो सिद्धान्त था उसे गृहस्थोंने लुप्त कर दिया है। त्यागी वर्ग भी अपने कर्त्तव्यसे च्युत है। पठन पाठन करनेका अवसर नहीं। केवल गल्पवाद रह गया है, सो उससे क्या होने वाला है। लोक-प्रशंसाके अर्थ ही मनुष्योकी चेष्टायें रहती हैं। गल्पवादसे कर्त्तव्यवाद अच्छा होता है।)

११. भिण्डमें प्रवचन हुआ, पर वास्तविक प्रभाव कुछ नहीं हुआ। मेरा तो यह विश्वास है कि वक्ता स्वयं उस (प्रवचन) के प्रभावमें नही आता, अन्यको प्रभावमें लाना चाहता है। यह प्रवचन-कर्तामें महती त्रुटि है।

(१२ हम लोग अपनेको नही संभालते संसारको उपदेश देते हैं।) रक्षाबन्धन रक्षाका पर्व है। परकी रक्षा वही कर सकता है, जो स्वयं रक्षित है। जो स्वयं अपनी रक्षा करनेको असमर्थ है, वह परका कल्याण कैसे कर सकता है? अन्तरङ्गमे विचार किया तो यही ध्वनि निकली कि परकी समालोचना त्यागो, आत्मीय समालोचना करो। जो मनुष्य आत्म-कल्याणसे वञ्चित हैं, वे ही ससारके कल्याणमे प्रयत्न करते हैं। प्रतिदिन गल्पवादसे जगत्को सुलझानेकी चेष्टा है, उसे त्यागो और आपको सुलझानेका प्रयत्न करो।

१३ [इटावाके चातुर्मासमे पर्यूषण पर्व आया] वृद्धावस्थाके कारण अधिक बोला नही जाता, न बोलनेकी इच्छा होती है। उसका कारण यह है कि जो बात प्रवचनमे कहता हूँ, तदनुरूप मेरी चेष्टा नही है। दूसरोंसे कहता हूँ कि सर्व प्रकारके विकल्प त्यागो, पर स्वयं न जाने कहाँ-कहाँके विकल्पोंमे फँसा हुआ हूँ।

१४. केवल गल्पवादसे कुछ तत्त्व नही। हम गल्पवादके भण्डार हैं—करनेमे नपुंसक है। जब हम स्वयं अगमानुकूल चलनेमें (व्यवहार चर्या करनेमे) असमर्थ है तब अन्यको उपदेश क्या देवेंगे।

१५. गर्जने वाले मेघ और निरर्थक उपदेश देनेवाले वक्ता सर्वत्र सुलभ है। ये वृथा ही सामने आ जाते हैं। परन्तु जिनका अन्तरङ्ग आर्द्र है तथा जो जगतका उद्धार करना चाहते हैं, ऐसे मेघ तथा उपदेशक दुर्लभ है। यदि वक्ता चाहता है कि हमारे वचनोका प्रभाव लोगों पर पड़े तो उस कायको उसे स्वयं करना चाहिये।

न जाने क्या कारण है कि वर्तमान युगमे परका कल्याण करनेकी भावना तो प्रायः सबमें रहती है, परन्तु हमारा कल्याण हो इसका ध्यान नही रहता।

९. परोपकार—एक दम्भ

१. प्राणियोंका कल्याण हो ऐसी चिन्ता करनी भी महत्ती अज्ञानता है।

२. "हमसे परोपकार होता है", यह धारणा गलत है।

३ कोई किसीका उपकार या अपकार करनेवाला नहीं। आत्मीय परिणाम ही उपकार और अनुपकारके करने वाले है।

४. अनन्तानन्त तीर्थंकर हो गए, वे भी ससारका उद्धार नहीं कर गए। तब हम शक्तिहीन अल्पज्ञ क्या कर सकते है?

५. ससारमे जहाँ स्वार्थ है वहाँ उससे परोपकार होना असम्भव है। "जो मिला सो स्वार्थी मिला", इसका अर्थ यह है कि हम स्वय स्वार्थी हैं, इसीमे हमारी दृष्टिमे परार्थ नही दीखता।

६. दूसरोंकी भलाईकी चेष्टाके पहले अपनी शक्तिका विकास करो। केवल गल्पवादसे भलाई नही हो सकती।

७ बातोंसे न स्वोपकार होता है, न परोपकार होता है। कार्यमे उद्यम करनेसे स्वोपकार होता है।

८ ससारमे मनुष्योंकी दृष्टि स्वात्मोपकारकी ओर रहनी चाहिये। उससे संसारका उपकार हो जावे यह अन्य बात है।

९ जगतके उपकारकी चेष्टा करना प्रायः व्यर्थ है। आत्मोपकारकी भावनामे प्रायः जगतका उपकार हो जाता है। जगतके उपकारसे आत्माका उपकार नही हो सकता। केवल कल्पना है।

१०. जिन्होंने जो भी परोपकार किया, उसका अर्थ यह है कि जो कुछ कार्य जीव करता है, वह अपनी कषाय-जन्य पीड़ाके शमनके अर्थ करता है, फिर चाहे यह कार्य परके उपकारका हो या अपकारका हो।

११. परोपकारकी अपेक्षा स्वोपकार करनेवाला व्यक्ति जगतका अधिक उपकार कर सकता है।

१२. 'परोपकारसे बढ़कर पुण्य नही', इसका यही अर्थ है कि निजत्व की रक्षा करो।

१३. परोपकारके लिये उत्सर्ग आवश्यक है, उत्सर्गके लिये उदारता आवश्यक है, और उदारताके लिये संसारसे भीरुता आवश्यक है।

१४. कोई किसीका उपकार नही कर सकता, अतः उपकार करो परन्तु उपकारी बननेकी अभिलाषा मत करो। ●

४—मोह-निवृत्ति सूक्त

●

१. मोह-महिमा

१. संसारके मूल हेतु हम स्वयं है। इसी प्रकार मोक्षके भी कारण हम ही हैं। इसके अतिरिक्त कल्पना मोहज भावोकी महिमा है। मोहका नष्ट करना ससार-बन्धनमे मुक्त होना है।

२ जो मोही जीव है वे निमित्तकी मुख्यतासे ही मोक्षमार्गके पथिक बनते है।

३. जिस तरफ दृष्टि डालें उपद्रव ही उपद्रव दृष्टिमे आते है, क्योंकि दृष्टिमें मोह है। कामल रोगवालेको, जहाँ भी दृष्टि डाले पीला ही दिखाई देता है।

४ निश्चय कर मै एक हूँ, शुद्ध हूँ, ज्ञानदर्शनात्मक हूँ, इस ससारमे अन्य परमाणु मात्र भी मेरा नही, परन्तु मोह! तेरी महिमा अचिन्त्य है, अपार है, जो ससार मात्रको अपना बनाना चाहता है।

५ हाय रे मोह! तेरे सद्भावमें ही तो यह उपासना है—'दासोऽहं' और तेरे ही असद्भावमे 'सोऽहं'। कितना अन्तर है?

६. यह अच्छा है, वह जघन्य है, अमुक स्थान उपयोगी है, अमुक अनुपयोगी है, कुटुम्ब बाधक है, साधुवर्ग साधक है, यह सब मोहोदयकी कल्लोलमालायें हैं।

२. राग-निवृत्ति

१. मोहकी दुर्बलता भोजनकी न्यूनतासे नहीं होगी। किन्तु रागादिके त्यागनेसे होगी।

२. आज तक हमने धर्म-साधन बहुत किया, परन्तु उसका प्रयोजन जो रागादि-निवृत्ति है उस पर दृष्टि नही दी। फल यह हुआ कि टससे मस न हुए।

३. वास्तवमें आनन्द तो तब होगा जब ये रागादि शत्रु दूर हो जायेंगे। इनके सद्भावमें आनन्द नही।

४. संसारका मूल कारण रागद्वेष है। इन पर जिसने विजय प्राप्त कर ली, उसके लिये शेष क्या रह गया?

५ (तिलकी भाँति) जब तक आत्मामें स्नेह (राग) रहता है, तब तक संसार-यंत्रकी यातनाओंको सहना पड़ता है, परन्तु जब यह आत्मा स्नेह-शून्य हो जाता है, तब वह संसार-यातनाओंसे मुक्त हो जाता है।

६ जिसका मोह दूर हो गया है, वही जीव सम्यक् स्वरूपको प्राप्त करता हुआ यदि राग द्वेषको त्याग देता है तो वह शुद्धात्म-तत्त्वको प्राप्त कर लेता है। अन्य कोई उपाय आत्म-तत्त्वकी प्राप्तिमें साधक नहीं है।

७. रागादिकोंके होने पर जो आकुलित हो जाता है, और उसके उपशमके लिये, स्तोत्र, पाठ, उपवास, व्रत, साधु-समागम, तीर्थ-यात्रा आदि सहस्रों उपाय कर उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा करता है, वह कभी भी आकुलताके घेरेसे बाहर नही होने वाला है।

८ 'रागादि भावोका अभाव कैसे हो'. यह एक समस्या है। इसके सुलझानेके मुख्य उपाय ये हैं—

(क) जिन कारणोको पाकर रागद्वेष उत्पन्न होता है। उन्हें पृथक करो।

(ख) प्रत्येक प्राणीके साथ आत्मीयताको छोड़ो, परन्तु आत्म-सदृश लोक-प्रिय व्यवहार करो।

(ग) उन महापुरुषोंका समागम करो जिनका रागद्वेष कम हो गया है, और उनके जीवन चरित्र पढ़ो।

९. वही जीव रागादिकोंके रणमे विजय पा सकेगा, जो इनके होने पर साम्य भावका आलम्बन करेगा।

३. कषाय-निग्रह

१. कही भी जाओ कषायकी प्रचुरता नष्ट हुए बिना शक्ति नही मिल सकती।

२. अनेक यत्न करने पर भी मनकी चञ्चलताका निग्रह नहीं होता। आभ्यन्तर कषायका निग्रह कितना विषम है। बाह्य कारणोंका अभाव होने पर भी उसका अभाव होना अति दुष्कर है।

३. विकल्पोंका अभाव कषायके अभावमें ही होता है।

४. जब तक कषायकी वासनाका निरोध न हो तब तक वचनयोग और मनोयोगका निरोध असम्भव है।

५. मन वचन कायके व्यापार तो कषायके साथ ही बन्धके जनक होते है। यदि कषाय न हो तो वे कुछ भी बन्धके कारण नही।

६. संसारका मूल कारण तो कषाय है, उसे ही न होने दो, इसीमें आत्म-कल्याण है।

७. जिस त्यागमे कषाय है, वह शान्तिका मार्ग नही।

८. शान्ति न आनेका कारण कषायका सद्भाव है, और शान्ति आनेकाकारण कषायका अभाव है। उपयोग न शान्तिका कारण है और न अशान्तिका ही।

९. कषाय-कलुषताकी कालिमासे जिनका आत्मा मलिन हो रहा है, भला उनके ऊपर धर्मका रग कैसे चढ़ सकता है।

१०. मोक्षमार्गका लाभ उसी आत्माको होता है, जो कषायकी वासनासे परे रहता है।

११. जिसने कषाय पर विजय पा ली या विजय पानेके सन्मुख है, वही धन्य है, और वही सच्चा सन्मार्गगामी है।

१२. अनादिसे आगत वासनाओंको पृथक करना वीर मनुष्यका काम है। वीर वही है जो कषायों पर विजय करता है।

१३. जितने भी विकल्प है, सब कषायोंके आधीन है। कषायकी निवृत्ति ही धर्म है। जहाँ तक बने उसे हटानेका प्रयत्न करो।

१४. श्रेयोमार्ग तो आन्तरिक कलुषताके अभावमें है।

१५. कषाय दूर करनेके लिये जन-संसर्ग, विषयोंकी प्रचुरता, और विशेषतया जीभकी लौलुपताका त्याग आवश्यक है।

४. मीठा विष—लोकेषणा

१. दिल्लीमें चातुर्मास था। एक दिन साहू शान्ति प्रसादजीने भारतीय ज्ञानपीठ बनारसके लिए दश लाख रुपयेके शेयर प्रदान किये, और उससे सम्बद्ध कागजो पर मैने क्षुल्लक अवस्थामें, हस्ताक्षर कर दिये। हस्ताक्षर तो कर दिये पर जब विचार किया तो मुझे लगा कि मैने महती भूल की है। उचित यही था कि चाहे कुछ हो परिग्रहके विषयमें कुछ भी नही करना चाहिये। हमारी प्रवृत्ति आजन्म प्रवृत्ति-मार्गमें लग रही है। अतः निरीह-मार्गकी ओर जाना अति कठिन है।

२. सबसे बड़ा दोष यदि हममें है तो यह है, कि हम सबको खुश करना चाहते है। और इसका मूल कारण यह भाव है, कि सब हमको अच्छी दृष्टिसे देखें। अर्थात् यह कहे कि देखो कैसा शुद्ध आदमी है। इस लोकेषणाने ही हमे पतित कर रखा है। जिस दिन कलकका प्रक्षालन हो जायेगा, उसी दिन आनन्दकी भेरी बजने लगेगी।

लोक-वञ्चनाके चक्करमें पड़े मानव उन शब्दोका व्यवहार करते है, जिनसे लोग समझें कि यह बड़ा विरक्त है, परन्तु उनमे विरक्तताका अंश भी नही। यदि विरक्तताका अश होता तो स्व-प्रतिष्ठाके भाव ही न होते। सबको प्रसन्न करनेके चेष्टा अग्निमें कमल उत्पन्न करनेकी चेष्टा है। परमार्थसे यह हमारे हृदयकी बहुत बडी दुर्बलता है।

३. प्रायः जितने आदमी मिलते है सर्व प्रशसा द्वारा साधुको उत्तम रूप देना चाहते है। मेरा यह अनुभव है कि प्रशंसासे आदमीकी गुरुता लघुतामे परिणत हो जाती है। जहाँ प्रशंसा हुई वहाँ उसे सुनकर आदमी प्रसन्न हो जाता है, और जहाँ निन्दा हुई वहाँ दुखी हो उठता है। वस्तुतः प्रशंसा और निन्दा दोनो ही विकृत रूप है।

४. मायाके निर्मम कटाक्षोके वेधनेसे आत्मज्ञान-पराङ्मुख होकर व्यक्ति अनन्त संसारकी यातनाओके पात्र होते है।

५. झूठी प्रशसा कर दूसरोको प्रसन्न करनेका तात्पर्य केवल स्वात्म-प्रशंसा है। हमारा व्रत तप ज्ञान दान सभीका प्रयोजन केवल स्वात्म-प्रशंसाकी ओर रहता है। यही अशान्तिका कारण है।

६. यह मूढ़ जीव बाह्य प्रशंसामें आत्म-गौरवको खो बैठता है। आत्मा न तो गौरवशाली है न लाघवशाली है, जैसा है वैसा ही है। यह गौरव-लाघव-विचार कषायके सद्भाव असद्भावसे होता है।

७. प्रत्येक मनुष्यके यह भाव होते हैं, कि लोकमें मेरी प्रतिष्ठा हो। यद्यपि इससे कोई लाभ नही, फिर भी न जाने लोकेषणा क्यों होती है?

८. लौकिक प्रतिष्ठा पतनका कारण है। जिन्हे उसके द्वारा हर्ष होता है, वे तत्त्वज्ञानसे पराङ्मुख है।

९. मनुष्यको माया और कीर्ति-कामिनीसे सदा बचते रहना चाहिये।

१०. मनुष्यमें सबसे बड़ा अवगुण अपनी प्रतिष्ठाका है।

११. लोकेषणाकी मूर्च्छा ही लोकमें कार्य करनेमें प्रवृत्ति कराती है। कार्यसे जो बचता है उसमें भी यही लोकेषणा कारण है।

१२. एक ओर तो यह कहते हैं कि हमने कुछ नहीं किया, परन्तु दूसरी ओर प्रशसाकी अन्तरंग वासना स्थान बनाये अपना काम कर रही है। यदि तुम्हारे कर्तृत्व-भाव न था तो फलकी इच्छा कैसी?

१३. संसारमें प्रतिष्ठा पानेके लिये धर्मका आचरण अधोगतिका कारण है।

१४. लौकिक-प्रतिष्ठाके लिये यदि तुम ज्ञानादिका अर्जन करते हो, तो अर्जन करना न करनेके ही बराबर है।

१५. संसारमें जो मनुष्य नामके लोभसे दान देते हैं, मेरी समझमें तो उनके पुण्य बन्ध भी नही होता। पहले लोभ कषायसे ग्रहण किया था, अब मान कषायसे त्याग रहे है। कषायसे पिण्ड न छूटा, पर हाँ इतना हुआ कि दानी कहलाने लगे।

१६. संसारमें प्रतिष्ठा कोई वस्तु नहीं, इसकी इच्छा ही मिथ्या है। जो मनुष्य संसार-बन्धनको छोड़ना चाहते हैं वे लोकप्रतिष्ठाको कोई वस्तु नहीं समझते।

१७. लोकप्रतिष्ठाकी लिप्साने इस आत्माको इतना मलिन कर रखा है कि वह आत्मगौरव पानेकी चेष्टा ही नहीं कर पाता।

१८. लोकप्रतिष्ठाका लोभी आत्म-प्रतिष्ठाका अधिकारी नही। लोकमें प्रतिष्ठा उसीकी होती है जिसने अपनेपनको भुला दिया।

५. परात्म-निन्दा-प्रशंसा

१. परकी प्रशंसा या निन्दासे स्वरूप-पराङ्मुखता न हो जावे, इस ओर निरन्तर सतर्क रहो।

२. किसी की मिथ्या प्रशंसा करना अपनेको वञ्चित करना है।

३. जहाँ पर पराई निन्दा और अपनी प्रशंसा होती हो वहाँ बहरे बन कर रहो।

४. अन्य प्राणीकी प्रशसात्मक कथासे आत्माका हित भी होता है, और अहित भी होता है। किन्तु जहाँ पर केवल अपनी प्रशसाके अर्थ परकी कथा की जाती है, वहाँ केवल पाप सञ्चय करानेवाला भाव ही होता है। अभिप्रायमें जो अपनी प्रशसाकी इच्छा है, वह मान कषायकी परिचायका ही है।

५ अपनी गलतियोंको छिपानेके अभिप्रायसे ही मनुष्य आत्म-प्रशसा और पर-निन्दा कर दुर्गतिके पात्र बनते है।

६. जहाँ प्रशसा हुई वहाँ प्रसन्नता और जहाँ निन्दा हुई वहाँ अप्रसन्नताका अनुभव करते हैं, अत जहाँ पर यह व्यवस्था है वहाँ शान्त-रसका आस्वादन तो दूर रहे, उसकी गन्ध भी नही आ सकती।

७. स्वात्म-प्रशसाके लिये ही मनुष्य प्रायः ज्ञानार्जन करते हैं, धनार्जन करते है, पर-निन्दा तथा स्वात्म-प्रशंसा करते हैं, पर मिलता जुलता कुछ नहीं।

८ जब तक हमारी यह भावना है कि लोग हमें उत्तम कहे, और हमें अपनी प्रशसा सुहावे तब तक हमसे मोक्षमार्ग अति दूर है।

९ जो अपनी प्रशस्ति चाहता है वह मोक्षमार्गमे कण्टक बिछाता है।

१०. आत्म-श्लाघामें प्रसन्न होना संसारी जीवोंकी चेष्टा है। जो मुमुक्षु हैं वे इन विजातीय भावोंसे अपनी आत्माकी रक्षा करते हैं।

११. उन्नत होनेके लिये आत्म-प्रशंसाकी आवश्यकता नही, आवश्यकता सद्‌गुणोके विकासकी है।

६. समालोचना

१. दूसरोंकी आलोचना करना सरल है, किन्तु अपनी त्रुटि देखना विवेकी मनुष्योंका कर्त्तव्य है।

२. परकी आलोचनासे आत्महित होना दुर्लभ है।

३. अपने उत्कर्षको व्यक्त करनेकी जो अभिलाषा है, उसे पूर्ण करनेके लिये मनुष्य जब परकी आलोचना करता है, तब उसका ही कलुषित परिणाम उसके सुगुणोंका घातक बन बैठता है।

४. दूसरोंकी कथा कहनेमें सार नहीं। अपने परिणामोके अनुकूल कार्य करो, यही सम्यग्ज्ञान है।

५. सब जीव अपने-अपने प्रयोजनको देखते हैं, अत. किसीको अपराधी मानना मूर्खता है।

६. हम कहते हैं कि संसार स्वार्थी है। तब क्या इसका यह अर्थ है कि हम स्वार्थी नही।

७ अपने दोषोंको कोई नही कहना चाहता। निरन्तर महान बननेकी चेष्टा करता है, भले ही काम अन्यथा करे। यही तो भूल है।

८. अपने आपकी समालोचना संसार-बन्धनसे मुक्तिका प्रधान कारण है।

९. आत्मगत दोषोंको पृथक् करनेकी चेष्टा ही श्रेयस्करी है। अन्यकी समालोचना केवल पर्यवसानमें दु:संस्कारका हेतु है।

१० जो अपनी समालोचनामें नही घबड़ाते, अन्तमें वे ही विजयी होते है।

११. दूसरेके द्वारा की गई समालोचनाको धैर्यपूर्वक सुननेकी आदत डालो, और उससे लाभ उठाओ।

१२. अन्तरंगकी बात करनेमें भी लाभ नहीं, क्योंकि उसमें भी यह भाव रहता है, कि देखो हमारी परिणति इतनी सरल है कि अपनी भावनाको व्यक्त कर दिया। अत: उत्तम मार्ग तो यह है कि निरन्तर अपने भावोंको शुभ और अशुभके कलङ्कसे रहित रखें।

७. मौन

१. मौन व्रतका प्रयोजन सासारिक चिन्ताओंसे मनकी वृत्तिका निरोध कर रागादिकको कृश करना है। यदि इस ओर दृष्टि नही गई तो मौन रखनेसे कोई विशेष लाभ नही।

२ मौनका यह अर्थ है कि उस दिन अपना अभिप्राय काय द्वारा व्यक्त न करना, तथा लिखकर भी प्रकट न करना, यदि कषाय नहीं घटी तो बोलनेमें क्या हानि है? सब से उत्तम मौन तो वह है कि उस दिन अपनी वृत्तिको स्वाधीन रखा जाय।

३ मौन व्रत तो वह कहलाता है, जिसमे बोलनेकी कषाय न हो। केवल ऊपरसे न बोलना मौन व्रत नही।

४ जहाँ बोलनेकी इच्छा होगी वही पर प्राणियोंसे संसर्गकी लालसा होगी, जो कि मूर्च्छा है। इससे छूटनेके लिये मौन व्रत सबसे अच्छा है।

५ यदि बाह्य-वचनकी प्रवृत्ति नही भी है, किन्तु अन्तरंग रागादिककी शृङ्खला पूर्ववत् वृद्धि रूपा होती गई, तब उस मौनसे केवल लोगोंकी वञ्चना कर स्वकीय मान-कषायकी वृद्धि करना ही है।

६. लोगोंकी वञ्चनाके लिए तथा अपनी प्रतिष्ठाके लिये इस व्रतका सदुपयोग नही, प्रत्युत अन्तरङ्गमे कषायकी प्रचुरता होनेसे, वह व्रत नहीं व्रताभास है और उसका फल अधोगति है।

७ मौन रखनेकी आवश्यकता ही नही। यदि परको अपना मानना छोड दो तो अनायास मनो-व्यापार उस ओर नहीं जायेगा।

८ जैसे केवल परिग्रहके न होनेसे अपरिग्रही नही किन्तु मूर्च्छाके अभावसे अपरिग्रही होता है, वैसे ही केवल मुँहसे न बोलनेसे मौनव्रती नही किन्तु बोलनेकी कषायके अभावसे मौन व्रती होता है।

९. मौनका प्रयोजन रागादिको कृश करना है। अतः अन्तरंगमें रागादिको स्थान मत दो। जब तक तुम्हारी भावना सराग न होगी कदापि रागादि नहीं हो सकते। ●

५—चारित्र-सूक्त

•

१. कर्त्तव्य पथ

१. कल्याणकी प्राप्तिमें ज्ञान ही कारण है, यह तो मेरी समझमे नही आता। ज्ञानसे पदार्थोंका जानना होता है, और केवल जानना कल्याणमें सहायक होता नही। अतः उत्तम तो यही है कि ज्ञानके द्वारा जानकर, जो परिणाम बन्धके कारण हो रहे हैं, उन्हें त्यागना चाहिये। इसीसे कल्याण होगा।

२. अन्तरंग रागद्वेषको जीतनेमें केवल कथा और शास्त्र-स्वाध्याय ही कारण नही हैं, अपितु पर-पदार्थोंमें जो इष्टानिष्ट कल्पना होती है उसे न होने देनेका पुरुषार्थ करना भी आवश्यक कारण है।

३. तात्त्विक विचारकी यही महिमा है कि यथार्थ मार्ग पर चले।

४. स्वाध्यायका फल केवल ज्ञानकी वृद्धि नही है, किन्तु स्वात्मतत्त्व को स्वावलम्बन देकर शान्ति-मार्गमे जाना मुख्य ध्येय है। ज्ञानार्जनसे हम संसारमें अपनी प्रतिष्ठा चाहते हैं, ससारसे मुक्त होना नहीं चाहते।

५. अन्यको तुच्छ और अपनेको महान बनानेके लिये उस ज्ञानका उपयोग करते हैं। जिस ज्ञानसे भेदज्ञानका लाभ था, आज उससे हम गर्तमें पड़ना चाहते हैं।

२. कहनी नहीं करनी

१. शास्त्र प्रवचन और बात है, अन्तरङ्गकी श्रद्धा और बात है। श्रद्धाके अनुकूल प्रवृत्ति हर एकको नही होती। ऊपरके बगुला भगत हँस नही हो सकते।

२. कहनेसे करनेमें महान अन्तर है। सभी कहते है कि रागादिक परम दुःखके कारण है, गीत पाठ पढ़ लेते हैं, परन्तु कर्त्तव्यपथसे प्रायः वञ्चित रहते हैं।

३. बात कहनेमें कुछ भी नही लगता परन्तु तद्रूप होना कठिन है।

४. बड़ा कलङ्क यह है कि तुम (प्रवचन दाता) जो कहते हो उस पर अमल नहीं करते।

५ कहनेकी प्रकृति छोड़ो, करनेका अभ्यास करो।

६. जीवन उसीका अच्छा है जो पराये दुःखमे सहायता करता है। गल्पवादकी अपेक्षा कर्त्तव्यपथमे विचरण उत्तम है।

७. अति चर्चा द्वारा श्रेयोमार्गकी प्राप्ति अति दुर्लभ हो जाती है। कल्याणका मार्ग तो निर्मल परिणामोमे होता है।

८. 'कोई किमीका नही', इस बातको गल्पवादमें न लाओ। कर्त्तव्य-पथमे लाओ।

९. बहुत जल्पवाद दम्भमें परिणत हो जाता है। १०० बात कहनेकी अपेक्षा एक काम करना श्रेयस्कर है। उपदेश उतना दो जितना अमलमें आ सके।

१०. कार्य करनेकी आन्तरिक इच्छा होनी चाहिये, तभी वह उस ओर उद्योग शील हो सकता है। केवल लेख लिख देने, भाषण दे डालने या विवाद प्रतियोगितामें भाग ले लेने मात्रसे कुछ नही होता।

११. मनुष्यको यह उचित है कि वह अपना लक्ष्य स्थिर कर उसीके अनुकूल प्रवृत्ति करे।

१२. शास्त्र पढ़ना उसीका हितकर होता है जो स्वयं उस पथ पर चलता हो।

१३. परिणामोंको कलुषित मत करो, यही तो शास्त्रको पढ़नेका फल है।

३. पुरुषार्थकी प्रधानता

१. आजकल विज्ञानका युग है। इसमें जो पुरुषार्थ करेगा वही उन्नति करेगा। इस समय प्राय· जो मनुष्य पुरुषार्थी है वे ही आत्मीय उन्नतिके पात्र होते हैं।

२ घर छोड़कर तीर्थ स्थानमें रहनेमें पुरुषार्थ नही, दिगम्बर वेष भी पुरुषार्थ नही। सच्चा पुरुषार्थ तो वह है कि उदयके अनुसार जो रागादिक हों वे हमारे ज्ञानमें तो आवें और उनकी प्रवृत्ति भी हममे हो, किन्तु हम उन्हें कर्मज भाव समझकर इष्टानिष्ट कल्पनासे अपनी आत्माकी रक्षा कर सकें।

३. प्रतिज्ञा करना कुछ कार्यकारी नही, यदि उसके अनुसार आचरण न किया जाय। गल्पवादसे यथार्थ वस्तुका लाभ नही होगा।

४. नियम करना एक तरहसे मूढता है। नियमकी अपेक्षा काम करना उत्कृष्ट है। कोई भी किसीको विवश कर अन्य रूप परिणमन नहीं करा सकता। मोही जीवोकी प्रकृति स्वय अनाप शनाप प्रवृत्ति करनेकी होती है।

५. जहाँ तक पुरुषार्थ कर सकते है आत्म-दोष-निवारण करनेमें ही लगाओ। अपनी परिणति यदि यथार्थ मार्ग पर आ गई तो ससार-तट निकट आ गया।

६. संसारमें हम लोग जो आज तक भ्रमण कर रहे है, उसका मूल कारण यह है कि हमने अपनी रक्षा नहीं की और निरन्तर पर-पदार्थोके ममत्त्वमें अपनी आत्म-शक्तिको भूल गये।

७ केवल मनोवृत्तिसे कार्य नही होता, 'तदनुकूल प्रयत्न करनेकी महती आवश्यकता है।

८ "जो जो देखा वीतरागने, सो सो होसी वीरा रे!" इस वाक्यसे सन्तोष पा लेना अन्य बात है और पुरुषार्थ कर रागद्वेषका निपात करना अन्य बात है।

९. 'क्या करें ऐसा ही होना था' यह सिद्धान्त बहुत ही सुन्दर है, परन्तु इसका यथार्थ उपयोग नहीं होता। यदि ऐसी श्रद्धा है तब कार्य होनेपर पश्चात्ताप क्यों करते हो? 'क्या करें बड़ी भूल हुई?' हम भूल को अपनी मानकर उसे त्यागनेकी चेष्टा नहीं करते।

४. चारित्र—स्वरूप-दर्शन

१. अज्ञान-निवृत्ति मात्रसे आत्मा शान्तिका पात्र नही होता। ज्ञानसे मोक्ष पथका ज्ञान हो जानेपर भी, उसकी प्राप्ति चारित्रसे ही होती है।

२. यदि आगमज्ञान संयमभावसे रिक्त है, तो उससे कोई लाभ नही।

३. ज्ञानका साधन प्राय· बहुत स्थानोंपर मिल जायेगा, परन्तु चारित्रका साधन प्रायः दुर्लभ है। उसका सम्बन्ध आत्मीय रागादि-निवृत्तिसे है। वह जब तक न हो यह बाह्य आचरण दम्भ है।

४. आत्माके स्वरूपमें जो चर्या होती है, उसीका नाम चारित्र है। वही वस्तुका स्वभावपनेसे धर्म है।

५ उपयोगकी निर्मलता ही चारित्र है।

६ वही ज्ञान प्रशंसनीय है, जो चारित्रसे युक्त है। चारित्र ही साक्षान्मोक्षमार्ग है।

७ शान्तिका स्वाद तभी आ सकता है, जब श्रद्धाके साथ चारित्र गुणकी उद्भूति हो।

८ चारित्रके विकासमें आगमज्ञान, साधुसमागम और विद्वानोंका सम्पर्क आदि किसीकी आवश्यकता नही। वह तो ज्ञानी जीवकी साहजिक प्रकृति है।

९. वास्तविक दृष्टिसे चारित्र न प्रवृत्ति रूप है और न निवृत्ति रूप ही। वह तो विधि निषेधसे परे अपरिमित शान्तिका दाता आत्माका परिणाम मात्र है।

१०. शुभोपयोगिनी क्रिया पुण्य जननी है, उसे वैसा ही मानना किन्तु न करना यह कहांका सिद्धान्त है? मन्दकषायका भी बाह्य प्रवृत्तिसे सम्बन्ध है। इसका सर्वथा निषेध बुद्धिमें नही आता।

११ चारित्र बिना मुक्ति नहीं, मुक्ति बिना सुख नही।

१२. जिनकी प्रवृत्ति चरणानुयोग द्वारा निर्मल हो गई है, वे ही स्व-पर-कल्याण कर सकते हैं।

१३. कषायोको कृश करनेका निमित्त चरणानुयोग द्वारा निर्दिष्ट यथार्थ आचरणका पालन करना है।

५. इन्द्रिय-संयम

१. पर्यायकी सफलता संयमसे है। मनुष्य-पर्यायमें देव-पर्यायसे भी उत्तमता इसी संयमकी मुख्यतासे है।

१. अन्तरङ्गकी निर्मलता बाह्य क्रियाओंसे अनुमापित करना प्रायः असम्भव है।

३. सयम ही आत्माको कल्याणपथमें सहायक है। संयमका यह अर्थ है कि पंचेन्द्रियोके विषयोंसे विरक्त रहना, मनके विकल्प मेटना। किसीको प्रसन्न करनेसे संयमकी रक्षा नहीं हो सकती। संयमकी रक्षा निरपेक्षतासे ही हो सकती है।

४. विषय-लिप्साने जगको अन्धा बना दिया है। जगतको अपनाना ही अपने पतनका कारण है।

५. हे तात् ! यदि आप मुक्तिकी अभिलाषा रखते हो तो विषयोंको विषके सदृश जान त्याग करो और क्षमा, मार्दव, आर्जव, परजीवानुकम्पा, पवित्रता तथा सत्य धर्मको अमृतके सदृश सेवन करो। जिन जीवोंने पञ्चेन्द्रियके विषयमें अनुराग त्याग दिया है, उनके शेष (क्षमा आदि) धर्म अनायास ही आ जाते हैं।

६. इन्द्रियोंका दास सबसे बड़ा दास है।

७. रसनेन्द्रियकी प्रबलता भवगर्तमें पतनका कारण है।

८. जो घ्राणेन्द्रियके दास है, लौकिक इत्र तेल फूल आदिकी सुगन्धके आदी हैं, उन्हे आत्मोन्नति–कुसुमकी सुखावह गन्ध नहीं आ सकती।

९. जो परका रूप देखनेमें लगे रहेंगे उन्हें अपना रूप दिखाई नहीं दे सकता।

१०. सुखी संसारका गाना सुननेकी अपेक्षा दुःखी दुनियाका रोना सुनना कहीं अच्छा है।

११. स्पर्शन इन्द्रियके क्षणिक सुखका लौलुपी हाथी कागजकी हस्तिनीके लिये गड्ढेमें गिर जाता है।

१२. इन्द्रियोंकी दासतासे जो मुक्त हुआ वही महान है।

१३ संयम कोई ऐसी वस्तु नही, जिसे हम प्राप्त न कर सकें। इन्द्रियोके द्वारा विषयोंका अवबोध होता है तो होने दो, परन्तु विषयोंमे राग बुद्धि न हो, यही संयम धारण करनेका मुख्य उपाय है।

६. आहार-संयम

१. सब रोगोंका मूल कारण भोजन विषयक तीव्र गृद्धता है। यदि रसना इन्द्रिय पर विजय प्राप्त न हो सकी तो समझो कि किसी (इन्द्रिय) पर भी विजय प्राप्त नहीं कर सकते।

२. ससारके कारण रागादिकोंमे भोजनकी लिप्सा ही प्रधान कारण है। अत: जिसने रसनेन्द्रियको नही जीता उसे उत्तम गति होना प्राय दुर्लभ है।

३. जिह्वा-लम्पटी आकण्ठ तृप्तिको करते हुए नाना रोगके पात्र तो होते ही हैं, साथ ही लालचके वशीभूत होकर दुर्वासनाके द्वारा अधोगतिके भी पात्र होते हैं।

४. रसना इन्द्रिय पर नियन्त्रण रखना सबसे हितकर है। जो वस्तु जिस समय पच सके वही उस कालमें पथ्य है। औषधिका सेवन आलसी और धनिकोंके लिए है।

५. भोजन-प्रक्रियाको सरल बनाओ।

६. भोजनमें शाहीपना रोगका मूल है।

७ भोजनमें लोग आडम्बरसे राजी हैं। खाने वाले भी इसीमें आनन्द मानते हैं, चाहे पीछे भले ही लालच बढ जावे, दुर्दशा हो जावे, बीमारी का सामना भी करना पडे।

८. भोजन वही हितकर होता है, जो सादा हो। जिस भोजनमे आडम्बर है, वह भोजन नहीं, केवल स्वादकी बिडम्बना है।

९. भोजनमें लिप्साका त्याग करना उत्तम पुरुषोंका कर्त्तव्य है।

१०. राजस-भोजन दर्पकर होता है, प्रमादका जनक होता है, लम्पटताका कारण है, अधिक व्यय-साध्य और अस्वास्थ्यकर है।

११. परके घर अतिथि बनकर भोजन करना अपरिग्रही जीवोंको ही अच्छा लगता है, वैसे पराया माल किसे बुरा लगता है। परन्तु इस तरह भोजनभट्ट बनकर पराये मालसे देह पोषण करना पामरोंका ही काम है।

१२. भोजन करना सरल है, परन्तु भोजन करके उसके प्रति कुछ उपकार करना चाहिये। बिना प्रत्युपकार किये भोजन करना एक तरह का समाजके ऊपर भार है।

१३. जिस व्रतके लिए अन्नका सादा भोजन छोडकर बहुमूल्य पदार्थ या फल सञ्चित किये जायँ, ग्रहण किये जायँ, वह व्रत नहीं अव्रत है, धर्म नहीं, अधर्म है। जहाँ राग परिणाम है, वहाँ धर्मकी गन्ध नहीं।

७. निवृत्ति-मार्ग

१. त्यागकी भावना इसीमें है कि वह आकुलतासे दूषित न हो।

२. जितना भी भीतरसे त्यागोगे, उतना ही सुख पाओगे।

३. जितना ही कषायका उपशम होता है उतना ही त्याग होता है।

४. हम लोग केवल शास्त्रीय परिभाषाओंके आधारसे त्याग करनेके व्यसनो हैं। किन्तु जब तक आत्मगत विचारसे त्याग नही होता, तब तक 'त्याग' त्याग नही कहला सकता।

५. बाह्य वस्तुका त्याग करना कठिन नहीं। आभ्यन्तर कषायोंकी निवृत्ति ही कठिन है।

६. बाह्य-त्यागकी वहीं तक मर्यादा है, जहाँ तक वह आत्म-परिणामों की निर्मलताका साधक हो।

७ 'प्राणिमात्रका कल्याण राग त्यागनेमे है', त्यागकी ऐसी महिमा का गान करते है, परन्तु राग-त्यागकी ओर अणुमात्र भी लक्ष्य नही।

८ राग छोड़ो वस्तुको छोडनेकी आवश्यकता नही। वस्तु तो रागके अभावमें स्वयं छूट जायेगी। रोटी खानेसे पेट तो खुद भर जायेगा।

९. द्रव्य-लिंग ग्रहण मत करो। आत्माको नग्न करो।

१०. त्यागी वही प्रशंसाका पात्र है जो जितेन्द्रिय है।

११. हम लोग मोही हैं। एक घर छोड़कर ससारको अपना घर बनानेकी चेष्टा करते हैं। व्रत त्यागीके लेते हैं, परन्तु त्यागके महत्त्वको नही समझते। यही कारण है कि दर-दरके स्नेही हैं, और यही स्नेह नरकका कारण होगा।

१२. अपने कार्यके लिये अन्य पर निर्भर मत रहो। त्यागका अर्थ यह नही कि समाजके लिये भारभूत बनो। यदि तुम त्यागी न होते तब निर्वाहके अर्थ कुछ व्यापार आदि करते, उसमे तुम्हारा कुछ समय जाता। अतः तुम्हारा जो भोजनादि द्वारा उपकार करे उसका ज्ञानादि द्वारा तुम्हे भी प्रत्युपकार कर उऋण होना चाहिये।

१३. त्यागी लोग संयमकी ओर दृष्टि रखें तो यह दुरवस्था ही क्यों हो ?

१४. अन्तरंगकी वृत्तिमें जब तक परिवर्तन न होगा, बाह्य त्याग दम्भ है।

८. व्रत-धारण

१. व्रत उत्तम वस्तु है। परन्तु यह काल इस तरहका क्षुद्र है कि व्रतका निर्वाह होना कठिन है। कोई घर ऐसा नही जिसमे अस्पतालकी औषधि प्रयोगमें न लाई जाती हो।

२. व्रतके माने तो यह है कि आगमके विरुद्ध प्रवृत्ति न होनी चाहिये। तथा ऐसा करना प्रायश्चितसे भी शुद्ध नही हो सकता। जान कर अपराध करना अत्यन्त अन्याय है।

३. विवेक-हीन-व्रत संसारका कारण है। विवेकका अर्थ चरणानु-योगकी पद्धतिके ज्ञानसे है।

४. आवेगमे आकार व्रत ग्रहण मत करो। व्रत ग्रहणका फल निवृत्ति-मार्गकी प्राप्तिमे पर्यवसान हो।

५ बाह्य-व्रतका उपयोग (पूर्वोक्त) चारित्रके अर्थ है। यदि वह न हुआ तो जैसा व्रती वैसा अव्रती।

६. मन्द-कषाय व्रतका फल नही, वह तो मिथ्यात्व-गुणस्थानमे भी हो जाता है। व्रतका फल तो वास्तवमे चारित्र है। उसीसे आत्मामे पूर्ण शान्तिका लाभ होता है।

७. जो नियम करो पूर्वापर परामर्श करके करो। यदि कोई विवेकी बुद्धिमान उसे अनावश्यक बतालावे तो उसे त्याग दो।

८ अपने परिणाम निर्मल रहे इसलिये व्रत पालो।

९. जो व्रत लिया है उसे सद्भावनासे पालो। किसीसे पुजवानेका अभिप्राय मत करो। किसीको तुच्छ मत मानो।

१०. लोक-निन्दाके भयसे व्रतको पालना कोई लाभप्रद नही। आत्माको जो भर्यादि परिणति है, उसे दूर करनेकी चेष्टा करो।

११. व्रत धारण करना सहज है, परन्तु उसका निर्वाह करना बहुत कठिन है। जिसने निर्वाह किया वही व्रती है।

१२ शुद्ध-परिणामोसे किया गया व्रत ही व्रत होता है, अन्यथा कष्ट।

१३ मूर्च्छा-त्याग ही व्रत है। व्रत वस्तु भीतरकी है। यों तो सहस्रों व्रती हैं, परन्तु परमार्थसे बिरला ही व्रती होगा।

१४. कषायके उदयमें कार्य होता है। महाव्रती भी व्रत नही करता, महाव्रत होते है। जिसप्रकार सम्यग्दृष्टि विषय-भोग नही चाहता, परन्तु वे होते हैं।

९. दम्भ-निषेध

१. निष्कपट होकर जो काम करता है, वही मोक्षमार्गका पात्र होता है।

२. भोजन करने वालोंमें प्रायः सादगी नहीं। त्यागका केवल बहाना है। अन्तरङ्ग त्यागकी ओर लक्ष्य नहीं। केवल बाह्य त्यागसे लोगोकी दृष्टिमें चमत्कार है। आभ्यन्तर-त्यागसे अभी हम लोग बहुत दूर हैं।

३. मिथ्या-सन्तोष मत करो। सत्य-सन्तोष वह पदार्थ है, कि जिससे अन्तरंगमें पर वस्तुकी इच्छा ही नही होती। अन्तरग में यदि इच्छाकी प्रचुरता है और ऊपरसे लोक-प्रतिष्ठाके लिये त्यागी बनते हैं, तो वह त्याग त्याग नही, दम्भ है। दम्भ ही नही आलस्य का पोषण, दूसरोको धोखा देना और आत्मवञ्चना है। जहाँ ये तीनो पाप हैं. वहाँ आत्मोत्थानकी आशा ही व्यर्थ है।

४ कषायके कारण जब अन्तरंगमें और बाह्य-प्रवृत्तिमें कुछ और ही व्यवहार होता है, तब उसे अभद्र तथा अपवित्र व्यवहार कहा जाता है। उसे ही दम्भाचार भी कहते हैं। ऐसे आचरण वाला व्यक्ति मोक्षमार्गका पथिक नहीं हो सकता।

५. संसारमें ऐसी प्रवृत्ति मत करो, जो अभ्यन्तरसे कुछ और हो और बाह्यसे कुछ और। इससे तुम स्वयं अपने को ठग रहे हो।

६. धर्मके नाम पर जगत ठगाया जाता है। प्रत्यक्ष ठगसे धर्मठग भयंकर होता है।

७. धर्म रत्नत्रयरूप है। उसमें वञ्चनाके लिये स्थान नही है।

८. आत्मीय रागादि की निवृत्ति जब तक नही है, तब तक यह (चारित्र) दम्भ है।

९. यदि आत्म-कल्याण करना चाहते हो तो इन बाह्याडम्बरों का प्रभुत्व देख इनसे पृथक होनेकी चेष्टा करो। व्यर्थ की प्रशंसामें पड़कर आत्माको वञ्चित करने का ढंग मत बनो।

१०. कोई कार्य करो, आत्माको धोखा मत दो। कोई मीमांसा करे, चाहे न करे, परन्तु तुम अपनी प्रवृत्ति आत्माके अनुरूप करो। संसारकी प्रसन्नता या अप्रसन्नतासे न तो लाभ है और न अलाभ।

११. घर को त्यागकर जो मनुष्य जितना दम्भ करता है, वह अपने को प्रायः उतने ही जघन्य मार्गमें ले जाता है।

१०. निरीह-वृत्ति

१. कल्याणका पथ निरीह-वृत्ति है।

२ निरीहताका यही अर्थ है कि ससारमे आत्मातिरिक्त जितने पदार्थ हैं उनको ग्रहण करने की अभिलाषा छोड़ देना।

३ इच्छा-मात्र आकुलता की जननी है, अत· वह परमानन्द का दर्शन नही करा सकती।

४ सुखकी जननी निस्पृहता है, लालचका रंग अति बुरा है। इसका रंग जिसके चढ जाता है, वह कदापि सुखी नही हो सकता।

५ कार्य करनेमे इच्छा मुख्य कारण होती है, इच्छा ही प्रेरणा कराके प्रवृत्ति करानी है। अत· सबसे उत्तम मार्ग यही है कि ऐसा अभ्यास करो जो किसी भी विषयकी इच्छा न हो।

६ मनुष्यको सन्तोष करना उचित है, कार्य करनेका प्रयत्न करना उचित है। कार्य होना न होना भाग्य के अधीन है।

७ इच्छित बात न हुई न होगी, अत इच्छाको छोडकर कार्य करनेकी चेष्टा करो।

किसी कार्य का सकल्प मत करो, यदि कुछ करना ही इष्ट है तो सब कार्य करने की इच्छा त्याग दो।

९. मोक्ष-लिप्सा मोक्षकी साधक नही, किन्तु लिप्साकी निवृत्ति ही मोक्षकी साधक है।

१० इच्छा या अभिलाषा के शान्त हुए बिना ऊपरी त्यागकी कोई महिमा नही है।

११ बिना निरीह-वृत्तिके कपाय कृश होना महान कठिन कार्य है। अन्तरगमे चाह-दाह महती कष्टदायी है। अत चाहको त्यागो।

१२. जिसने निरीह-वृत्तिका आलम्बन लिया उसीने मनुष्य जन्मको सार्थक किया।

१३. जिन जीवोने अपनी लालसा को अन्त कर दिया वे ही मोक्ष के पात्र हैं।

११. उदासीनता

१. संसारमें वही मनुष्य परमात्मपदका अधिकारी हो सकता है जो संसारसे उदासीन हो।

२ जो कुछ होता है, प्रकृतिके नियमानुसार होता है। उसमें कर्तृत्व बुद्धिका त्याग करना ही उदासीनता है।

३ विषय कषायोमे स्वरूपसे शिथिलता आ जानेका नाम उदासीनता है।

४ भैया ! जिस संसारके दु:खसे भगवान् डर गए, तुम नहीं डरते ? बड़े बलवान् हो। जो सर्प घरमे बैठा है, उसे निकालो यही संवेग है।

५. जिन्हे संसारसे भय नही वे क्या डरेंगे ?

६ उदासीनता ही वैराग्यकी जननी और संसार की जड काटने वाली है।

७ उदासीनताका अर्थ है पर से आत्मीयता छोडो।

८ कल्याणका उदय केवल लिखने पढने या घर छोड़नेसे नही होगा, अपितु स्वाध्याय करने और विषयसे विरक्त रहनेसे होगा।

९ उपेक्षा भाव उदासीनताका पर्यायवाची है, और चित्तमे रागद्वेषरूप विकल्पका न होना ही उपेक्षा भाव है।

१०. निरपेक्षता ही आत्म-विकासका मुख्य कारण है। मानव-जीवनमें जिसने यह गुण सम्पादन न किया, उसने कुछ नही किया।

११ जैसे कमल जलमे रहकर भी उससे जुदा है, वैसे ही अनात्मीय भावोसे अपनेको जुदा अनुभव करना ही उदासीनता है।

१२ उदासीन वे है जो सब कुछ करते हुए भी उसमें लिप्त नही होते।

१३ चाहे पूजा करो, चाहे जप, तप, सयम करो, पर एक बात ध्यान मे रखो कि ससारकी कोई भी वस्तु तुम्हे लुभा न सके।

१२. समाधि-मरण

१. समाधिमरणके लिये प्रायः निर्मल निमित्त होने चाहिये।

२. जिनका उत्तम भविष्य है उनकी घोर उपसर्ग आदि (समाधि-मरणके विरुद्ध प्रबल कारणो) के उपस्थित होनेपर भी उत्तम गति हुई है। इसलिये निमित्तकारणोंके ही जालमे फँसे रहना अच्छा नही।

३. समाधिमरणके लिये आत्म-परिणामोंको निर्मल करनेमें ही अपना पुरुषार्थ लगा देना चाहिये, क्योकि जिन जीवोके निरन्तर निर्मल परिणाम रहते है, वे नियमसे सद्गतिके पात्र होते है।

४ समाधिमरण करने वालोको बाह्य-कारणोको गौण कर केवल रागादिकी कृशतापर निरन्तर उद्यत रहना श्रेयस्कर है।

५. समाधिके लिये आचार्योंकी आज्ञा है कि कायको कृश करनेसे पहले कषायको कृश करो, क्योंकि काय पर-द्रव्य है। उसकी कृशता और पुष्टता न तो समाधिमरणमें साधक है और न बाधक। जब कि कषाय अनादि कालसे स्वाभाविक पदकी बाधक है।

६. समाधिमरणके समय प्रज्ञा होना आवश्यक है, क्योंकि प्रज्ञा एक ऐसी प्रबल छैनी है कि जिसके पडते ही बन्ध और आत्मा जुदे-जुदे हो जाते है—आत्मा और अनात्माका ज्ञान कराना प्रज्ञाके आधीन है।

७ प्रज्ञाके द्वारा जिसका ग्रहण होता है वही चैतन्य रूप मै हूँ। इसके सिवा अन्य जितने भाव हैं निश्चयसे पर-द्रव्य है—पर-पदार्थ है। जिसके मोह निकल जाता है, उसे एक आत्मा ही आत्माका बोध होने लगता है। उसकी दृष्टि बाह्य ज्ञेयोंकी ओर जाती ही नही। ऐसी दशामें आत्मा आत्माके द्वारा आत्मको आत्माके लिए आत्मासे आत्मामे ही जानने लगता है। एक आत्मा ही षट्-कारकरूप हो जाता है।

८. समाधि निस्पृह-पुरुषोंको तो निरन्तर रहती है, परन्तु जन्मान्तर होनेका ही नाम मरण है। और जहाँ सम्यग्भावसे मरण होता है उसे समाधिमरण कहते हैं। ●

६–धर्म सूक्त

१. इह-युगीन-धर्माभास

१ आजकल लोगोने धर्मात्मा बननेके बहुत सीधे और सरल उपाय निकाल लिये है। थोड़ा स्वाध्याय कर लिया, आसन जमाकर आँख मीचकर एक घण्टा माला फेरनेकी प्रथा निभा दी, दस व्यक्तियोके समुदायमें—'संसार असार है' कथा कह डाली, न्यायमार्गकी शब्दोसे पुष्टि कर दी, बहुत हुआ तो पर्वके दिन व्रत उपवास कर लिया, और भी विशेष काम किया तो किसी त्यागी महात्माको भोजन करा दिया, बस धर्मात्मा बन गए।

२ कल्याण-मार्ग मोही जीवोने इतना गहन बना दिया है कि सामान्य आदमी श्रवण कर उसे धारण करनेमें असमर्थ हो जाता है। बाह्यमे इतने आचरण उसके साथ लगा दिये जाते है, कि उन्हीके करनेमें सारा समय चला जाता है। अतः आचरण करनेको समय ही नही बच पाता।

३ परन्तु ये सब ऊपरी बातें है। आत्माके प्रदेशोंमें तादात्म्यसे बैठा हुआ रागादि-भाव जब तक नही गया तब तक यह आचारण दम्भ है।

४ हम लोग रूढिके उपासक है। धर्मके वास्तविक तत्त्वसे दूर है। उचित तो यह है कि पर-पदार्थोंसे जो आत्मीय सम्बन्ध है उसे त्यागना चाहिये। जब तक यह न होगा, सभी क्रियायें निःसार है।

२. यथार्थ-धर्म-दिग्दर्शन

१. चारित्तं खलु धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो ही समो ।।

अर्थात् चारित्र ही धर्म है। उसीका नाम साम्य है। उसीमें यथार्थ आत्म-स्वभाव है। अर्थात् दर्शनमोह और चारित्रमोहके उदयमें आत्मामें जो मोह क्षोभ होता है, उसके अभावमें आत्माका जो अत्यन्त निर्विकार परिणाम होता है, इसीका नाम चारित्र है, (इसीका नाम समता है) और इसीका नाम धर्म है।

२. धर्मका व्यवहार रूप और है, भीतरी रूप और है। शरीरकी शुद्धता और है, आत्माकी शुचिता इससे परे है, और उसीके लिये यह धर्म है।

३ धर्मका लाभ प्रतिज्ञा पालनेसे नही होता। वह तो निमित्त है। धर्म-लाभ तो आत्म-परिणामोको निर्मल रखनेसे ही होता है।

४. धर्मका मूल कारण निर्मलता है और निर्मलताका कारण रागादिकी न्यूनता है। रागादिकी न्यूनता पञ्चेन्द्रिय-विषयोके त्यागसे होती है। केवल गल्पवादमें धर्म नही होता।

५ धर्म तो लौकिक यातनाओसे निवृत्ति करानेका कारण है। उसे लौकिक कार्योंके लिये करना महान् मूर्खता है।

६ रूढिके अनुसार चलना और बात है, धर्मका स्वरूप समझ लेना और बात है।

७ अन्तरङ्गमे धर्मकी रुचि होनी चाहिये, केवल गल्पवाद तो श्रवण ही का विषय रहता है। अधिक हुआ तो उसका अर्थ-बोध हो गया।

८. परकी अपेक्षासे धर्म-साधन नही होता। धर्म-साधन तो निरीह-वृत्तिसे होता है।

९. धर्म उसको कहते है जो समयके अनुकूल हो, जिसमे आत्माको शान्ति मिले। जहाँ आत्माको शान्ति नही मिलती वहाँ धर्मका लाभ नही प्रत्युत अधर्म होता है।

१० हम लोग इतने मूढ़ हो गए कि मार्गकी सरलताको भूल गए, केवल बाह्य क्रियामें धर्म मानकर मुग्ध हो गए।

३. समता

१ मोहवह्निमपाकर्तुं स्वीकर्तुं संयमश्रियं।
छेत्तुं रागद्रुमोद्यानं समत्वमवलम्बताम्॥

अर्थात्-यदि मोहाग्निको दूर करना चाहते हो, तथा संयम रूपी लक्ष्मीको स्वीकार करनेकी अभिलाषा है, तथा रागवृक्षको छेदन करनेकी वाञ्छा है तो समत्त्वका अवलम्बन करो।

२. समता भाव ही मोक्षाभिलाषी जीवोंका मुख्य कर्तव्य है। और सब शिष्टाचार मात्र है।

३ "संसारमे सभी पदार्थोको समान देखो", इसका यह अर्थ नही कि गधा-घोडा, स्वर्ण-लोहा, सभीको समान समझो, किन्तु यह अर्थ है कि किसी पदार्थमें राग द्वेष न करो।

४. कल्याणका मार्ग अति सुलभ है। न तो किसीसे प्रीति करो और न किसीसे अप्रीति करो। जब यह निश्चय हो गया कि न तो मेरा कोई शत्रु है, न मित्र है, तब उन पदार्थोसे किस लिये सम्बन्ध रखना?

५. मोक्षके पथिकको न राग करना न द्वेष करना, केवल मध्यस्थ रहना।

६. उत्तम मनुष्य वे हैं जो निर्दोष आचरण करें, निर्भीक हो, पर-कृत निन्दा प्रशसाके द्वारा दुखी और सुखी न हों।

७. 'संसारमें दुःख सिवाय सुख नही', यह कहना सामान्य मनुष्योको मार्ग पर लगानेके लिये है। दुःखका मूल कारण मिथ्या-भाव है।

८ वही जीव धन्य है जो आपत्ति-सम्पत्ति, दुःख-सुख, निन्दा-प्रशसा, विषाद और हर्षमें सदा समभाव रहता है।

९. जिसके इष्ट-वियोग अनिष्ट-सयोगमें धीरता रहती है, वही सयम का पात्र है।

१०. कल्याणका मार्ग उसीको प्राप्त हो सकता है, जो प्रत्येक अवस्थामे सुखी रहता है।

४. मानव-धर्म

१ मनुष्य-जन्मकी सार्थकता मनुष्यताके विकाशमें है, व्यर्थके जालमें पड़नेसे नहीं।

२ मनुष्य वही है जिसमें मनुष्यताका व्यवहार है। मनुष्यता वही है जिसके होनेपर स्व-पर भेदविज्ञान हो जावे। स्व-पर भेदविज्ञान वही है जिसके सद्भावमें आत्मा सुमार्गगामी रहता है। सुमार्ग वही है जिससे आत्मपरिणति निर्मल रहती है। और आत्मनिर्मलता वही है, जिससे मानव मानवताका पुजारी कहलाता है।

३ सुहृदयता-पूर्ण शिष्ट और मिष्ट व्यवहारका नाम मानवता है।

४ जीवन उसीका सार्थक है जी पराये दुःखमें सहायता करता है। गल्पवादकी अपेक्षा कर्त्तव्य-पथमें विचरण करना उत्तम है।

५ ऐसा व्यवहार करो जो किसीको कष्ट न हो। अपने ही सदृश दूसरोको मानो, परकी उत्कृष्टता देख प्रसन्न होओ, यही उत्तम बननेका मार्ग है।

६ हर समय प्रसन्न रहो। हर अवस्थामें परके हितके लिये ध्यान रखो।

७ भला मनुष्य वही है जो भलाईको जाने।

८ जिसने इस अमूल्य मानव जीवनसे स्व-पर शान्तिका लाभ न लिया उसका जन्म अर्कतूलके सदृश किस कामका ?

९ मनुष्यता वही है जो अपनी प्रवृत्तिको निर्मल करता है।

१० संसार स्नेहमय है। इस स्नेहपर जिसने विजय पाली वही मनुष्य है।

११. मनुष्य वही है जो अपने वचनोका पालन करे।

१२ मनुष्यका सबसे बडा गुण सदाचारता और विश्वासपात्रता है।

१३ मानवता वह विशेष गुण है जिसके बिना मानव-मानव नही कहला सकता। मानवता उस व्यवहारका नाम है, जिससे दूसरोंको दुःख न पहुँचे, उनका अहित न हो, एक दूसरेको क्रोधकी भावना जागृत न हो। संक्षेपमें सुहृदयतापूर्ण शिष्ट और मिष्ट व्यवहारका नाम मानवता है।

५. सदाचार

१. जिस तरह मकान पक्का बनानेके लिये नींवका पक्का होना आवश्यक है, उसी तरह उज्ज्वल-भविष्य-निर्माणके लिये बाल-जीवनके सुसंस्कार तथा सदाचारादिका सुदृढ़ होना आवश्यक है।

२ सदाचारके बिना सुख पानेका यत्न करना आकाशके पुष्पावचयनके सदृश है।

३ सदाचारी मनुष्य राष्ट्रकी वह आत्मा है, जो अजर-अमर रहती है और दुराचारी मनुष्य राष्ट्रका वह शरीर है जिसे सदा सुरक्षित रखनेपर भी राजरोग लगे ही रहते है।

४ सदाचारका प्रारम्भ राष्ट्रकी उन्नतिका प्रारम्भ है, और दुराचारका प्रारम्भ राष्ट्रकी अवनतिका प्रारम्भ है।

५ ससारकी समस्त सुन्दरता, श्रेष्ठता और सत्सामाजिकता यदि प्राप्त हो सकती है तो वह एक मात्र सदाचारसे ही।

६. यदि सदाचार है तो दुःखपूर्ण ससार भी स्वर्ग है, और यदि असदाचार है तो सुखपूर्ण स्वर्ग भी नरक है।

७ सदाचार ही जीवन है, इसकी निरन्तर रक्षा करनेका प्रयत्न करो।

८ धार्मिकता, नीतिमत्ता, बुद्धिमत्ता, और आत्म-दृढता, ये सदाचारकी चार कसौटियाँ है।

९ सदाचारी मनुष्यके लिये दृढ-निश्चय, उत्साह, साहस, और कर्त्तव्य जहाँ बरदान हैं, वहाँ दुराचारी मनुष्यके लिये वे अभिशाप है।

१० सदा सत्कार्य करते रहना सदाचारके मार्गपर चलना है।

११ सभ्यता और असभ्यता विद्यासे नही जानी जाती। जो सदाचारी है वह सभ्य है, और जो असदाचारी है वह असभ्य है।

१२ सद्भावनाओ और सद्वासनाओंके बलपर जो नामवरी मिल सकती है, वह बडी भारी सम्पत्ति और पोथी-पराक्रम-शीलताके बलपर नही मिल सकती।

१३. जिनके पास सदाचारकी सुनिधि है वे सच्चे अर्थमे पुण्यात्मा, महात्मा, एवं सम्मानित साहूकार हैं।

६. परिग्रह-पिशाच

१ अधिक सम्पत्ति सदाचारकी शिक्षिका नही, दुराचारकी दूती है।

२. संसारमें पापका मूल परिग्रह है। इसका जिसने सम्बन्ध किया उसीका संसारमे पतन हुआ।

३. आज यदि इस परिग्रहमे मनुष्य आसक्त न होते तब यह 'समाजवाद' या 'कम्युनिष्टवाद' क्यो होते ? आज यदि परिग्रहके धनी न होते तब ये हड़तालें क्यों होती ? यदि परिग्रह-पिशाच न होता तब जिमीदारी-प्रथा और राज सत्ताका विध्वंस करनेका अवसर न आता।

४ जिनको इसका स्वरूप परिज्ञात ही नही वे इसे दूर न करें तब इसमें आश्चर्यकी कथा ही क्या ? आश्चर्य तो इस बातका है कि जितने विद्वान् है वे स्वय इसके द्वारा पराभूत है।

५ आवश्यकताये तो इतनी है कि ससारके सब पदार्थ भी मिल जावे तो भी उनकी पूर्ति नही हो सकती। अत: किसीकी आवश्यकता न हो यही आवश्यकता है।

६ जो कहता है 'हमने परिग्रह छोड़ा', वह अभी सुमार्गपर नही आया। रागभाव छोडनेसे पर-पदार्थ स्वयमेव छूट जाते है।

७ वास्तवमें गृहभार अन्य कुछ नही, अपनी ही मूर्च्छाने यह रूप दे रखा है, कि उसे हेय जानता हुआ भी यह जीव उसे त्याग नही सकता। मूर्च्छाके अभावमे चक्रवर्तीकी विभूतिका भी भार नही और मूर्च्छाके सद्भावमें एक फूटी कानी कौड़ी भी भार है।

८. मनमे नाना विकल्प होते है। उनकी शान्तिका उपाय केवल कषायोका उपशमन करना है। कषायोके दूर करनेका उपाय पर-पदार्थोमे मूर्च्छाका त्याग है। अत मूर्च्छाका त्याग ही मुख्य कार्य है।

९. जो सुख अकिञ्चन होनेपर होता है, वह कौपीनमात्र परिग्रहके सद्भावमें भी नही होता।

१०. संसारमें परिग्रह ही पाँच पापोके उत्पन्न होनेमें निमित्त होता है। जहाँ परिग्रह है वहाँ राग है, जहाँ राग है वही आत्माके आकुलता रूप दु:ख है, और वही सुख गुणका घात है। सुख गुणके घातका नाम ही हिंसा है।

७. दान

१. लोक केवल दान देनेमें महान् पुण्य समझते है, ठीक भी है, परन्तु उसके साथ ही दृष्टि भी आत्मीय गुणोंके विकाशमें जानी चाहिए। दानसे जो लोभ कषायका त्याग होता है उस ओर हमारी दृष्टि नही।

२. मनुष्य जिस वस्तुका दान करता है, उसे अपनी समझता है। इसीसे अहंबुद्धि होती है। यही ससार-भ्रमणका कारण है। अत दान करनेसे धनका धन गया और ससारके पात्र हुए।

३ आजकल लोग अभ्यन्तरसे मान कषायके अभिलाषी है। यही कारण है कि उसी जगह दान करना चाहते हैं, जहाँ अधिकसे अधिक व्यक्ति उनकी प्रशसा करें।

४. शहरोंमे जो दानकी पद्धति है वह अपनी प्रसिद्धिके लिये है। 'संसारमें हमारी ख्याति हो' जहाँ यह भावना है वहाँ लोभके सिवा कुछ नही।

५. ससारमें जो मनुष्य नामके लोभसे दान देते हैं, मेरी समझमें तो उनके पुण्य बन्ध भी नही होता। पहले लोभ कषायसे ग्रहण किया था अब मान कषायसे त्याग रहे हैं। कषायसे पिण्ड न छूटा, पर हाँ इतना हुआ कि दानी कहलाने लगे।

६. दानमें अनुराग रखनेसे उसका जो फल मिलता है, वह लौकिक विभूति ही तो है, परमार्थ तो नही।

७. वस्तु-दानके समय उच्च-जनोका विचारकर सकीर्ण-हृदय मत होओ। पर-वस्तुके देनेमे सङ्कोच करना तथा लघु-गौरव भावकी मनमें कल्पना करना अपनी आत्माको लघु बनानेका प्रयत्न है।

८ दु:खीको दान दिया इसमे क्या किया, अपना दु:ख दूर किया न कि दूसरेका।

९ दान पहले पात्र-बुद्धिसे होता था। अब 'हम तुम्हारा उपकार करते हैं', इस बुद्धिसे दान देते हैं। वस्तुत. लोभके त्यागको ही दान कहते है।

१०. अभ्यन्तर प्रवृत्तिमें जो कषाय है, उसका त्याग जो कर देता है वही सत्यपथानुगामी दानी है।

८. सुभाषित

१. सदा सत्य बोलो। किसीके प्रभाव, बहकाव या दबावमें आकर झूठ मत बोलो।

२. सत्यता पूर्वक व्यवहार करो, भले ही आय कम हो।

३. बहुत कम बोलो। सत्य बोलनेका अर्थ है कि किसीके भी प्रति कष्टकर वचनोंका प्रयोग मत करो।

४. अनर्थ वाक्य मत बोलो, अनर्थ कार्य मत करो, तथा जहाँ तक बने अनर्थ चिन्तवन भी मत करो। इससे मानसिक शक्तिका सदुपयोग होगा।

५ आजीविका–अर्जनका न्याय मार्ग यह है कि जिससे अन्यको पीड़ा न पहुँचे तथा अपने परिणामोंमें भी किसी प्रकारकी सक्लेशता उत्पन्न न हो।

६ किसीकी हाँ में हाँ मत मिलाओ। स्वच्छ हृदयसे विचार कर किया हुआ कार्य अवश्य सफल होता है।

७ किमीको तुच्छ मत मानो, तुच्छ कोई नहीं। तुच्छ व्यक्ति ही दूसरेको तुच्छ समझता है।

८ जो काम करो निर्भीकतासे करो परन्तु निर्भीकतामें सत्यताकी पुट रहनी चाहिये। परके मर्म-भेदी अभिप्रायको हृदयमें स्थान नहीं देना चाहिये।

९ निश्चलतासे सब कार्योंकी सिद्धि होती है। चञ्चलता ही कार्य-बाधक है।

१०. वचन अमूल्य (निर्मूल्य) होता है सो नही, वह तो अमूल्य वस्तु है। यदि आप उसका पालन करेंगे तो ससार बन्धनसे मुक्त होगे।

११ सरल व्यवहार करो, आभ्यन्तर कषाय मत करो, किसीके परिणमनको देख हर्ष विषाद मत करो।

१२. किसीके अवगुणको कषायसे मत देखो। हितकी दृष्टिसे देखना कोई हानिकारक नही।

१३. आत्मश्लाघाके लिये अच्छा कार्य करनेका संकल्प मत करो। ऐसे कार्य करो जो लोगोंकी दृष्टिमें मान-पोषक न समझे जावें।

१४. क्यो परकी ओर देखते हो? कोई कुछ करे, तुम उस ओर लक्ष्य ही मत दो। यदि कोई तुमसे कहे—'बड़े अज्ञानी हो' तो सुनकर शान्त रहो।

१५. परको प्रसन्न करनेकी चेष्टा मत करो।

१६. जो हठग्राही है, उनके समागममें रहना अपने आत्माको कुपथ-गामी बनानेका प्रयत्न है।

१७ आनेवाली आपत्तिसे भय मत करो। जो कार्य होता है, सामग्री पूर्वक ही होता है।

१८ आत्माको दुःखसे बचाने वाले मनुष्य सादगीसे व्यवहार करते है।

१९. विवेकसे कार्य करो। बिना विवेकके कोई भी मनुष्य श्रेयो-मार्गका पथिक नही बन सकता।

२०. स्वकीय रागादि मेटनेका प्रयत्न करो।

२१ मन और इन्द्रियोको सदा अपने वशमें रखो।

२२ किसी कार्यको देखकर भय मत करो। उपायसे महानसे महान कार्य भी सहजमे हो जाते है।

२३. किसीसे यश की आशा मत करो।

२४. किसीसे आर्थिक या किसी भी तरहके लाभकी आशा मत करो।

२५ किसीसे अन्न वस्त्र या किसी भी पदार्थकी याचना मत करो।

२६ अल्प बात करो, सहसा उत्तर मत दो, हठ मत करो, किसीका अनिष्ट मत सोचो, अप्रिय और असत्य मत बोलो, जो उचित बात हो कहनेमे संकोच मत करो, आगमसे विरुद्ध आचरण मत करो।

२७. किसीकी मायामें मत आओ, जो कहो उस पर दृढ रहो, अर्थात् उपदेष्टा मत बनो, किसीसे रुष्ट मत होओ, तथा आध्यात्मिक प्रसन्नता भी व्यक्त मत करो।

२८. किसी संस्थासे अनावश्यक सम्बन्ध मत रखो, परकी चिन्ता मत करो।

२९. स्पष्ट व्यवहार करो। परको अपराधी बनाना महती अज्ञानता है। परकी समालोचना अपनी आत्मीय कलुषताके बिना नहीं होती।

३० सुख उसीको हो सकता है जिसकी प्रवृत्ति निर्मल हो, प्रवृत्ति की निर्मलता उसीके हो सकती है जिसका आशय पवित्र हो, आशय पवित्र उसीका हो सकता है जिसने अनात्मीय पदार्थोंमे आत्मबुद्धि त्याग दी। जो इतना कर सकता है वही सासारिक बन्धनो से छूट कर सच्चा सुखी हो सकता है।

३१ समयकी प्रतिष्ठा आत्माकी प्रतिष्ठा है, इसलिए जितना भी हो सके समयका सदुपयोग करो।

३२ जिस कार्यके लिये जो समय नियत है, उसे उसी समय करो। ऐसा करनेसे चित्तमे, स्थिरता और स्फुर्ति आवेगी।

३३ समय की प्रतिष्ठा करो, इससे तुम मनुष्य बन जाओगे। मूर्खसे मूर्ख मनुष्य समयका आदर करनेसे पण्डित हो जाते है, क्योकि वे प्रति दिन कुछ न कुछ सग्रह करते है; और कालान्तर मे उनकी गणना बुद्धिमानो मे होने लगती है। तथा जो बडे-बडे कुशाग्र बुद्धिशाली होते है वे आलस्यक वशीभूत हो मूर्खों मे गणनाके पात्र हो जाते है।

३४ समयकी प्रतिष्ठा आत्मा की प्रतिष्ठा है, इसलिये जितना भी हो सके समयका सदुपयोग करो। अर्थात् धार्मिक भावोंसे ओतप्रोत रहो, जिससे आत्मा उन भावोसे बचे जो आकुलता के जनक है।

३५. असातोदय में क्लेश मत करो, सातोदयमें हर्ष मत करो, शान्त भावसे कर्मके उदयको देखो जानो।

३६. ऐसी चेष्टा करो जो कोई कल्पना न हो। कल्पना ही संसारकी जननी है। कल्पना चाहे सत् हो चाहे असत् हो, आकुलता ही की जननी है।

३७. नाना विकल्प होते हैं; जिनमें कोई भी सार नहीं। जो कार्य कर सके, उसका यदि कोई विकल्प हो तो कोई हानि नहीं। परन्तु वहाँ तो वह धारा विकल्पोंकी होती है जिनके प्रारम्भ करनेकी सम्भावना नहीं।

३८. रागादि से सुखके लिये प्रयास करना आकाश से पुष्पचयन करनेके तुल्य है।

३९ ससारमें वही प्राणी सुखका भाजन हो सकता है, जो निरन्तर अपनी त्रुटियों पर दृष्टि रखता है। परके अवगुण देखनेसे अपने उपयोग की विशुद्धता पलायमान हो जाती है।

४०. शारीरिक वेदनाओ का मूल कारण तुम्हारी गृद्धता है। यदि केवल क्षुधाको शान्त करना है, तब जो समय पर मिले शान्तिसे उसे उपयोगमे लाओ। केवल कल्पना-जालमे मत उलझो।

४१. अपना कल्याण करनेमें आप ही शरण है। अन्यको शरण मानना मोही जीवोकी प्रणाली है। मोही जीव जो न करे सो अल्प है।

४२ आत्माका कल्याण तो निरपेक्ष वृत्तिमे है, वह तो दूर रही, बहुत मनुष्य तो श्रद्धासे भी शून्य हैं।

४३. यदि कल्याणकी कामना है तो निरपेक्ष रहो। अपेक्षा करना ही ससारका कारण है।

४४ भद्रता वहीं प्रशसनीय है जिसमे भिन्न-भिन्न अवगुणोंकी गन्ध न हो।

४५. भद्रता स्वाभाविकी वस्तु है, उसमें बातोंकी सुन्दरता बाधक है।

४६. जिसके परिणामोमे कुटिलता नहीं वह स्वभावसे ही भद्र होता है।

९. दैनंदिनीके पृष्ठ

१. दैनंदिनी (डायरी) का यही उपयोग है कि अपनी अतीत जीवन-यात्रका आद्योपान्त सिहावलोकन कर दोषोंको दूर किया जाय, गुणोंका सञ्चय किया जाय और उज्वल भविष्य निर्माण के लिये स्व-पर हितमें प्रवृत्त होकर आदर्श बना जाय।

२. आज की बात कल पर मत छोडो

पोष० कृ० १२ वी० २४६३

३. आकुलताका मूल कारण इच्छा है, इच्छा का मूल कारण वासना है, वासनाका मूल कारण विपरीत आशय है और विपरीत आशयका मूल कारण पर-पदार्थमें स्वात्म-बुद्धि है।

पौष कृ० १३ वी० २४६३

४ व्रतमे सावधानी रखो, केवल भूखे रहना कार्यकर नही।

पौष० कृ० १४ वी० २४६३

५ धर्म वह वस्तु है जहाँ कषाय पूर्वक मन वचन कायके व्यापार रुक जावें। वही धर्म मोक्ष-मार्ग है।

पौष शु० ३ वी० २४६३

६. अच्छे कार्य करते समय प्रसन्न रहो। यदि पापका काम बन जावे तो उत्तर कालमें आत्मनिन्दा करते हुए भविष्य में वह कार्य न हो ऐसा प्रयत्न करो, यही प्रायश्चित् है।

माघ कृ० ७ वी० २४६३

७. सच और झूठ छिपाये नही छिपता, अतः इस बातको भूल जाओ कि हम कुछ भी अकार्य करते है, उसे कोई देखने वाला नही।

माघ कृ० ९ वी० २४६३

८. अपना स्वभाव अभिमान आदि अवगुणोंसे रहित है। भोजन विशेष चटपटी चीजोंसे रहित और वस्त्र चाक्यचिक्यसे रहित स्वदेशी शुद्ध खादीके रखो, देश भक्त बन जाओगे।

माघ कृ० १०वी० २४६३

९. दोनों पक्षों का हाल जाने बिना न्याय न करो। न्याय करते

समय पक्ष-विपक्षका परामर्श कर जिस पक्षके साधक प्रमाण प्रबल हों उसीका समर्थन करो।

माघ शु० १ वी० २४६३

१०. बिना परिग्रह की कृशताके व्रतका धारण करना अनर्थ परम्पराका हेतु है। जो निरुद्यमी होकर त्याग करते है वे अनर्थ-पोषक हैं।

फाल्गुन १ वी० २४६३

११. शिक्षाप्रद बात बच्चेकी भी मानो। अपनी प्रकृतिको सुधारनेकी चेष्टा करो, तभी आपका उपदेश दूसरो पर असर कर सकता है।

फाल्गुन कृ० ५ वी० २४६३

१२. उसी भावका आदर करो जो अन्त में सुखद हो और उस भावका मूलसे विच्छेद करो जो मूलसे लेकर विपाककाल तक कष्टप्रद है।

ज्येष्ठ शु० ७-८ वी० २४६३

१३ बहुत संकल्पो की अपेक्षा अल्प कार्य करना श्रेयस्कर है।

श्रावण शु० ७ वी० २४६३

१४. प्रत्येक व्यक्तिके अभिप्रायको सुनो, परन्तु सुनकर एकदम बहक मत जाओ। पूर्वापर विचार करो, जिससे आत्मा सहमत हो वही करो। बातें सुननेमें जितनी कर्णप्रिय होती है, उनके अन्दर उतना रहस्य नही होता है। रहस्य वस्तु की प्राप्तिमें है, दर्शनमें नही। मिश्रीका स्वाद चखनेमें आता हैं, देखनेसे नही।

पौष कृ० ४ वी० २४६४

१५ जो प्रारम्भ होते है, वे किसी समय अन्तको भी प्राप्त होते है, क्योंकि उनकी सीमा नियमित है। जो कार्य नियम पूर्वक किया जाता है वह एक दिन सिद्ध होकर ही रहता है।

पौष कृ० १४ वी० २४६४

१५ जहाँ तक देखा गया आत्मा स्वकीय उत्कर्षकी ओर ही जाता है। कोई भी व्यक्ति स्वकीय उच्चताका पतन नही चाहता। अतः सिद्ध हुआ कि आत्माका स्वभाव उच्चतम है। इसलिये जो नीचताकी ओर जाता है वह आत्म-स्वभावसे च्युत है।

माघ शु० ११ वी० २४६४

१६. किसी भी कार्यके करनेकी प्रतिज्ञा मत करो। कार्य करनेसे होता है, प्रतिज्ञासे नहीं।

चैत्र कृ० ३ वी० २४६४

१७. अज्ञानताके सद्भावमें परम तत्त्वकी आलोचना नही बनती। परम तत्त्व कोई विशेष वस्तु नही, केवल आत्माकी शुद्धावस्था है, जो अज्ञानी जीवको नही दिखती।

चैत्र कृ० ११ वी० २४६४

१८. यहाँ पुरुष होनेका उपाय केवल अपने आत्म-गौरवकी रक्षा करना है। परन्तु आत्म-गौरवका अर्थ मान करना या अपनी तुच्छता दिखाना नहीं है। क्योंकि आत्मा न ऊँच है न नीच है, अतः ऊँच नीचकी कल्पनाका त्याग ही आत्म-गौरव है और वही आत्म-पदमें स्थिरताका प्रधान कारण है।

१९. संसारसे याचना करना महती लघुताका पोषक है।

श्रावण कृ० ५ वी० २४६४

२०. विजय-दशमी मनानेकी सार्थकता तभी है जब कि पञ्चेन्द्रियों की विषसेनाके स्वामी रावण राक्षसरूपी मनका निपात किया जाय।

आश्विन शु० २० वी० २४६४

२१. जब कभी भो चित्तवृत्ति उद्विग्न हो तब स्वात्म-वृत्ति क्या है इस पर विचार करो, चित्त स्थिर हो जायगा।

कार्तिक शु० २ वी० २४६५

२२. बिना स्वात्मकथाके आत्महित होना अति कठिन है।

२३. वही मनुष्य योग और श्रेयोमार्गका अनुगामी हो सकता है जो अपनी शक्तिके अनुरूप कार्य करता है।

पौष शु० ५ वी० २४६५

२४. जितने पाप संसारमें हैं उन सबकी उत्पत्तिका मूल कारण मानसिक विकार है। जब तक वह शमन न होगा सुखका अंश भी न होगा।

माघ शु० ७ वी० २४६७

२५. जो संसार-समुद्रसे पार लगा देते हैं वे ही परमार्थतः गुरु है और वे ही मोक्षमार्गमें उपकारी है।

श्रावण शु० ८ वी० २४६७

२६. नियमका उलंघन करना आत्मघातका प्रथम चिह्न है।

आश्विन कृ० १४ वी० २४६७

२७ वही विचार प्रशस्त होते है जो आत्म-हितके पोषक हों।

श्रावण शु० २ वी० २४६७

२८. व्रत वही है जो दम्भसे विमुक्त है। जहाँ दम्भ है वहाँ व्रत नही।

द्वितीय ज्येष्ठ कृ० ४ वी० २४६८

२९. बल वही उत्तम है जो दीनोकी रक्षा करे।

द्वि० ज्येष्ठ कृ० ६ वी० २४६८

३० बात वही अच्छी है जो स्व-पर हित-साधक हो।

द्वि० ज्येष्ठ शु० २ वी० २४६८

३१. जो भी कार्य करो, निष्कपट होकर करो, यही मानवकी मुख्यता है।

अगहन शु० १३ वी० २४६८

३२ मनकी शुद्धिके बिना काय-शुद्धिका कोई महत्त्व नही।

अगहन शु० १५ वी० २४६९

३३. समय जो जाता है वह आता नहीं, मत आओ और उसके आनेसे लाभ भी नही, क्योंकि एक कालमें द्रव्यकी एक ही पर्याय होती है। तब जो समय विद्यमान है उसमें जो कुछ भी उपयोग बने, करो। करना अपने हाथकी बात है। केवल बातोंसे कुछ नही होगा। बातें करते करते अनन्त काल व्यतीत हो गया परन्तु आत्माका हित नही हुआ।

पौष कृ० १० वी० २४६९

३४. जो स्पष्ट व्यवहार करते है वे लोभवश अपयशके पात्र नही होते। संकोचमें आकर जो मानव आत्माके अन्तरङ्ग भावको व्यक्त करनेसे भय करते हैं वे अन्तमें निन्दाके पात्र होते है। यथार्थ कहनेमें भय करना वस्तुस्वरूपकी मर्यादाका लोप करना है। जो मनुष्य संसारको

प्रसन्न करनेका प्रयत्न करते हैं वे अपनी आत्माको कल्याणके गर्तमें पात करते हैं। मानव-जन्म उसीका सफल है जो आत्माको अपना जाने।

पौष कृ० १४ वी० २४६९

३५. प्राय: प्रत्येक मनुष्य यह चाहता है कि हमारा कल्याण हो। यह तो सर्व-सम्मत है, परन्तु इसमें उस जीवका जो यह अभिमान है कि जो हमारे मुखसे निकल गया वही ब्रह्मवाक्य है, वही कल्याणका घातक विष है। इसीसे अभीष्टको चाहनेपर भी जीव अभीष्टसे दूर रहता है। वास्तवमें जो निरभिमान-पूर्वक प्रवृत्ति होगी वही आत्म-कल्याणकी जननी है।

चैत्र० कृ० २ वी० २४६९

३६ जिसने अपनी प्रभुताको नही सम्भाला वह ससारमे दीन होकर रहता है, घर-घरका भिखारी होता है। अपनी शक्तिके आधारसे ही अपनी सत्ता है। उसका दुरुपयोग करना अपना घात करना है। अनन्त बलका धारी आत्मा भी पराधीन होकर दुर्गतिका पात्र बनता है। पराधीनता किसी भी हालतमें सुखकारी नही, इसके वशीभूत होकर यह जीव नाना गतियोंमे नाना दुर्गतिका पात्र होता है।

चैत्र शु० १५ वी० २४६९

३७ वही कार्य करो जो आत्माको उत्तर-काल और वर्त्तमानकालमे भी सुखकर हो। जिस कार्यके करनेमें सकोचकी प्रचुरता हो वह कार्य कदापि उत्तरकालमे हितकर नही हो सकता। ऐसे भाव कदापि न करो जिनके द्वारा आत्माका अधःपात हो। अधःपातका कारण आसक्त प्रवृत्ति है। जब मनुष्य अधम काम करनेमे आत्मीय भावोंको लगा देता है तब उसकी गणना मनुष्योंमें न होकर पशुओमें होने लगती है। अत: जिन्हें पशु-सदृश प्रवृत्ति कर मनुष्य जातिका गौरव मिला है— वे मनुष्य स्वेच्छाचारी होकर ससारमे इतस्त. पशुवत् व्यवहार भले हो करें पर उनसे मनुष्य जातिका उपकार नही हो सकता।

भाद्रपद कृ० ५ वी० २४६९

३८. जो मनुष्य संसारको प्रसन्न करनेका प्रयत्न करते है वे अपने आत्माको संसार-गर्तमे डालनेका प्रयत्न करते हैं और जो अपनी परिणतिको स्वच्छ बनानेका उपाय करते है वे ही सच्चे शूर हैं।

संसारमें अन्य पर विजय पानेमें उतना क्लेश नहीं जितना आत्म-विजय करनेमें क्लेश है। आत्माकी विजय वही कर सकता है जो अपने मनको परसे रोककर स्थिर करता है।

कार्तिक कृ० ३० वी० २४६९

३९. आज श्री गुरुदेवसे यह प्रार्थना की, हे गुरुदेव ! अब तो सुमार्ग पर लाओ। आपकी उपासना करके भी यदि सुमार्ग पर नहीं आए, तब कब अवसर सुमार्ग पर आनेका आवेगा। गुरुदेव—अभी तुमने गुरुदेवकी उपासना नही की, केवल गल्पवादमें तुम्हारी चेष्टा है। हम तो निमित्त हैं, तुम्हें उपादानपर दृष्टिपात करना चाहिये।

माघ कृ० २ वि० सं० २००७

४०. कमण्डलु पीछी पर्मार्थसे वही रख सकता है जिसके अन्तरङ्गमें ससारकी भीरुता हो। भीरुता उसे हो सकती है, जो इसे दुःखात्मक समझे। दुःखका कारण परमार्थसे पर नहीं, हमारी कल्पना ही इन पदार्थोंमे निजत्व मान दुःखकी जननी बन जाती है। दुःखका कारण रागादिक हैं।

(माघ कृ० १३)

४१ शान्तिका मार्ग स्वाधीन है, वह प्रतिज्ञासे नही मिलता कर्त्तव्यसे मिलता है।

(माघ शु० २.)

४२. आज भारतमे नवीन विधान लागू होगा। श्रीयुत महाशय राजेन्द्र प्रसादजी बिहार निवासी इसके सभापति होंगे। आज भारतको स्वतन्त्रता मिली, परन्तु इसकी रक्षा तो निर्मल चारित्रसे होगी। यदि हमारे अधिकारी महानुभाव अपरिग्रहवादको अपनावे, तो सरल रीतिसे स्व-परका भला कर सकते हैं।

माघ शु० ८ वि० सं० २००७

४३. उपदेशका फल तो यह है जो परलोकके अर्थ प्रयत्न किया जावे। जो मनुष्य आत्म-तत्त्वकी यथार्थतासे अनभिज्ञ हैं, वे कदापि मोक्ष-मार्गके पात्र नहीं हो सकते।

फाल्गुन कृ० १३, वि० सं० २००७,

४४. समागममें सुख नहीं, सुखका मूल निर्जन समागममें है। एकाकी आत्मा ही सुखका पात्र है।

चैत्र कृ० १ वि० सं० २००८

४५. सर्व ही मनुष्य स्वार्थी हैं, तब तुम भी स्वार्थी हो। जीवका स्वभाव ही स्वार्थानुरूप होता है, तब तुम क्यों इससे वञ्चित रहते हो? जब जीवका स्वभाव यथार्थ है, तब इसमें कोई भी शंका क्यों?

वैशाख कृ० ८ वि० सं० २००८

४६. दृढ-प्रतिज्ञ बनो। सत्य बात कहनेमें संकोच मत करो। मनुष्यताका आदर न करनेसे अमानुष हो जाओगे। अमानुष का अर्थ है, जो विवेक-ज्ञानके पात्र न रहेंगे। विवेक-शून्य ही अनन्त संसारकी यातनाओंका पात्र होता है। तथा विवेकी उनको ध्वंस कर अनन्त सुखका पात्र होता है।

वैशाख कृ० १४ वि० सं०२००८

४७ सर्व तरफसे चित्त-वृत्ति हटाओ और स्वाध्यायमें लगाओ। किसीसे गल्पवाद न करो, स्पष्ट उत्तर दो। अन्तमें यह समागम त्यागना पडेगा। जिसको त्यागना ही पड़ेगा उसे पहलेसे त्यागो। औदारिक शरीर नश्वर है, तब क्या वैक्रियक नित्य है? दोनो ही नश्वर हैं, फिर उसमें निजत्व बुद्धि त्यागो। इसी प्रकार आत्मा नामक जो द्रव्य है वह पुद्गलके निमित्तको पाकर अनेक अवस्थाओंका पात्र होता है और वे अवस्थाये विजातीय पुद्गल और जीव दो द्रव्योके सम्बन्धसे जायमान हैं।

वैशाख शु० ९ वि० सं० २००८

४८. आज पं० देवकी नन्दनजीके स्वर्गवासके उपलक्ष्यमे आठ बजे सभा हुई। पं० कमलकुमार जीने उनके गुणोंका सम्यक् रीतिसे वर्णन किया। सुनकर यह मनमें आया, एक दिन इस शरीरका वियोग होगा। जब तक आयु-कर्मका सम्बन्ध है, निवृत्ति-मार्गको अपनाओ, गल्पवादमें दिन मत व्यय करो। समीचीन शब्दोंकी परिपाटी उपयोगमें लाते हो, इस वञ्चक प्रणालीके साथ कुछ उस प्रणालीको भी अपनाओ जो श्रेयो-मार्गकी सहचरी है।

प्र० आषाढ़ वदी ५, सं० २००८

४९. एकका निरन्तर आलम्बन करो। वही परमात्मपदका अद्वैतीय पथ है। व्यवहारसे परमात्मा निश्चयमें आत्मा। एकको सदा त्यागो, एक सेकेण्ड भी इसमें विलम्ब मत करो। वह वस्तु अन्य कुछ नही, पर-पदार्थमें आत्मीय कल्पना है। जिसके यह कल्पना है वही मोही जीव है। अतः इस कल्पनाके अस्तित्वमें अपनेको ज्ञानी मत मानो।

आषाढ़ शु० ७ वि० सं० २००८

५०. धर्म किसीका मूल धन नहीं है। प्राणी मात्रमें धर्म है। उसपर भी लोगोंने हक जमानेकी चेष्टा कर खूबी की।

द्वि० आषाढ़ कृ० १२ वि० स० २००८

५१. जो नियम लो, उसका पालन करो। उपदेश देकर मानकी आशा न करो। सद्वचन बोलो, अल्प विहार करो। यथार्थ सत्य कहो, कटुक भाषा हो उसका प्रयोग न करो! सत्यका पालन वही कर सकता है, जो ससारसे भयभोत हो। जो लोक-प्रतिष्ठा चाहता है वह मुमुक्षु नहीं।

द्वि० आषाढ शु० ११ वि० सं० २००८

५२. संसारमें प्राणिमात्रके प्रति सद्व्यवहारसे प्रवृत्ति करो। किसीको तुच्छ मत मानो, तुच्छ मानना मान-कषायका द्योतक है। मान-कषाय ही ससारमे दुखदाता है। मनुष्योंसे मनुष्यताका व्यवहार करो, क्योकि जैसे आप मनुष्य हो, वैसे ही अन्य भी मनुष्य है।

श्रावण कृ० १३ वि० सं० २००८

१

•

प्रतिध्वनि

•

क्या त्यागी और क्या गृहस्थ, क्या धीमन्त और क्या
श्रीमन्त, सबके मस्तक-नत हैं उस आदर्शभूत
महान् व्यक्तित्वके चरणों में।

१–वर्णीका व्यक्तित्व

•

मञ्झोला कद, दुबला पतला शरीर, उसपर लंगोटी और भगुवा रंगकी एक चद्दर, घुटा हुआ सिर, उभरा हुआ मस्तिष्क, लम्बी नुकीली नासिका, धवल दन्तपंक्ति, सुन्दर साँवला-वर्ण, ऐसे ७२ वर्षके बूढ़े महापुरुषके उन्नत ललाट तथा नुकीली लम्बी नासिकाके सम्मिलनके आजू बाजू, यदि कोई अत्यन्त आकर्षक वस्तु है, तो वे हैं, छोटी-छोटी मीनसम दो आबदार आँखें। इन आँखोंसे जो विद्युत स्फुलिंग निकलते हैं, वह मानवको अपनी ओर सहसा आकर्षित किये वगैर नहीं रह सकते, और तब प्रथम दर्शन ही मे पुरुष इस महापुरुषसे प्रभावित हो उसके अत्यन्त समीप खिंचा चला जाता है। तभी तो क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवक, और क्या युवती अर्थात् प्रत्येक स्त्री पुरुष वर्णीजीसे एक बार; यदि अधिक नहीं तो वार्तालापका लोभ सवरण नहीं कर सकता।

विगत ग्रीष्म ऋतुमें इस डेढ़ पसलीके महापुरुषके दर्शनका लाभ—जिसकी चर्चा बाल्यकालसे सुनता चला आता था—प्राप्त हुआ। प्राथमिक प्रभावसे हृदयमें 'वास्तवमें यह कोई महान व्यक्ति होना ही चाहिये' ऐसा भाव सहसा उत्पन्न हुआ, चाहे उस महानताकी दिशा जो कोई और चाहे जैसी भी हो, अच्छी अथवा बुरी।

वे चमकीली नन्ही नन्हीं आँखें कह रही थीं, कि इन छोटी-छोटी आँखोंने ही विषद वस्तु-स्वरूपके अन्तस्तलमें प्रवेश कर आत्माको

पहचाना है, महान बनाया है। आज ७२ वर्षके अनन्त परिश्रमका फल है; अत्यन्त सरल, मृदुभाषी, अन्तर्मुखी, अध्यात्म-प्रवक्ता, पूज्य श्री १०५ गणेशप्रसाद वर्णी।

ऐसा प्रतीत होता है कि यह पुरुष-पुंगव महान ही उत्पन्न हुआ है। केवल किसी उस दिशाने जिसमें वह लगा है उसे महान नहीं बनाया है। यह जिस किसी भी दिशामे जाता महान ही होता। इनकी आँखोंमें जो सरलता खेलती है, उसका स्थान यदि क्रूरता ले पाती तो वैराग्य-जन्य विरोध और विवादसे भागनेकी वृत्तिकी जगह भिड जानेकी प्रकृति पडती। तब यह ससारका बडा भारी आधिभौतिक निर्माता या डाकू अथवा पीड़क होता, अर्थात् जिधर झुकता उधर अन्तिम श्रेणी तक ही जाता। परन्तु जिस ओर इनकी दृष्टि है उसने इन्हे महानतम बना दिया है।

आज संसारको राजनीतिकी नही धर्म-नीतिकी आवश्यकता है। पदार्थ-विज्ञानकी नहीं आत्म-विज्ञानकी आवश्यकता है। वास्तविक धर्म-उन्नति—आत्मोन्नतिके सिवाय आजकी दुनिया प्रत्येक दिशामे अधिकसे-अधिक उन्नति कर चुकी है, और आगे बढनेकी कोशिशमे है। फिर भी सत्रस्त है, दुःखी है। एक महायुद्धके पश्चात् दूसरा महायुद्ध। फिर भी शान्ति नही, चैन नही। क्यो ? इसी शान्ति प्राप्तिके अर्थ पुन. तीसरे महायुद्धकी आशंका है। क्या आगसे आग कभी बुझती है ?

आज संसारके लोग जो वहिर्मुख हो रहे हैं, बाह्य साधन सामग्री ही में सुख मानकर उसके जुटानेका अहर्निश प्रयत्न कर रहे है उससे क्या शान्ति मिली ? नही, फिर दुनियाँ जो सच्चे सुखका रास्ता भूलकर पथ-भ्रष्ट हो चुकी है, उसे सुपथपर लाना होगा। वह रास्ता है धर्मका, अध्यात्मका। इसी प्रकाशको देनेके लिये गणेश प्रसादकी ज्योति प्रगट हुई है। जो स्वयं आध्यात्मिक आनन्दमें शराबोर है, वही दूसरोको उस ओर अग्रसर कर सकता है। जो स्वयं प्रकाशमान नहीं वह दूसरोको क्या प्रकाशित करेगा ?

किशोरावस्था ही तो थी। एक लकडहारेसे लकडी की गाड़ी ठहराई, कुछ अधिक मूल्यमें। धर्म-माताने जब कीमत सुनी, तो कहा 'भैया ठगे गये'। इन्हे लगा कि इसे जो अधिक दाम दिये हैं वे 'येन केन

प्रकारेण' वसूल करने चाहिये। वह गाड़ी वाला जब गाड़ी खाली कर चुका तब आपने कहा 'तैने पैसे अधिक लिये है, लकड़ी चीर कर भी रख, नहीं तो उठा अपनी गाड़ी।' गरीब गाड़ीवान कुछ ही पैसे अधिक मिलने पर भी, यह कष्ट न उठा सका कि गाड़ी फिर भरता और वापस ले जाता। उसने कुल्हाड़ी उठाई, जेठकी गरमीके दोपहरका समय, पसीनेसे लथपथ हो गया तो भी लकड़ियाँ चीर कर उतने ही पैसे लेकर चला गया।

ध्यान आया "मैंने बहुत गलती की। जब ठहरा ही लिया था तो इससे अधिक काम नही लेना था। चार आठ आने ही की तो बात थी, बेचारा भूखा प्यासा चला जा रहा होगा।" झट एक आदमीके लायक मिठाई और चिराईके पैसे ले उस रास्ते पर बढ़े जिससे लकड़हारा गया था। ढूँढते चले, चिलचिलाती धूपमें। एक मीलके फासले पर वह मिला। कहा "भैया हमसे बड़ी भूल भई, जो हमने तुमसे लकडी चिराई और भूखा रखा। लो जाओ मिठाई खाओ और चिराईके दाम लो।"

उस भोले भालेको यह सब देखकर लगा कि वह इस लोकमे नहीं है। लकड़ी बेचनेके साथ-साथ उन्ही दामो पर लकडी चीरना, ठहराये दामोसे कम दाम पाना, थोडे दामो पर अधिक मूल्यकी लकड़ी बेचना, लकड़ी घरमे रख देनेके साथ-साथ घरका और काम करना, आदि साधारण बातें थीं। उसने इनके चरण छुए और कहा, 'अपन ऐसे चिल्लाटेके घाममें इतनो दूर काय आये ? रोजइ करत पण्डत जू अपनने कौनसी नई ज्यादती करी हती ? बस मै सब पा गओ।' परन्तु पण्डित न माना, जब उसने वह मिठाई और पैसे ले लिये तभी शान्ति और निश्चिन्तता की सास ली।

साधारण पुरुषकी जो कमजोरी होती है, वह यदि महापुरुषमें हो तो वह उसका गुण हो जाती है। ससारमें रहते हुए भी ससारमें न रहनेवाला यह महान पुरुष जलमें कमलके समान संसारसे अलिप्त है। इसीलिये तो विरोध और विवादका मौका नही देता, और उस रास्ते पर आगे-आगे बढा जा रहा है, जिसे पूर्ण कर वह 'वह' ही रह जायगा। आत्मानन्दकी ज्योति बखेरता हुआ यह महान आत्मा जब विहार करता है, तो यत्र, तत्र, सर्वत्र ही जन समूह इसकी ओर खिंचा चला आता

है। तब यह आत्मा उन्हें ज्ञानका दान देकर ज्ञानस्तम्भ (विद्यालय पाठशाला) वहाँ स्थापित कर आगे बढ़ जाता है, जिसके प्रकाशमें लोग अपना मार्ग खोजें और आगे बढ़ें।

लोग कहते हैं, वर्णीजी अस्थिर हैं, कोई एक कार्य पूर्ण नहीं करते। यह संस्था खुलवा, वह संस्था खुलवा, इस कार्यके लिये भी हाँ और उस कार्यके लिये भी हाँ, पर कोई भी कार्य नहीं करते। परन्तु यही तो उनकी विशेषता है। जिसने संसार छोड़नेकी ठान ली है तथा जो उसे पूर्ण रूपेण त्यागनेके मार्ग पर अग्रसर हो रहा है, वह एक स्थान पर एक संस्थासे चिपटा कैसे बैठा रह सकता है? उसे तो आत्म-ज्योति जो उसने प्राप्त की है, उसे ही लोगोंको देते-देते एक दिन उसी ज्योतिमय ही हो जाना है।

सिवनी] सुमेर चन्द कौशल बी० ए०, एल० एल० बी०

२–त्यागी वर्गकी श्रद्धाञ्जली

●

१. क्षु० समन्त भद्र—कारञ्जा

श्रीमान् त्यागी गणेश प्रसादजी वर्णीका आत्मा पवित्र है। धर्म रससे और धर्मप्रभावनाकी सद्भावनाओंसे परिप्लुत है। आत्माकी शुद्धि विशुद्धि उनका अटल ध्येय-बिन्दु रहा है। लौकिक आशा आकांक्षा उनके चित्तमे स्थान पाती नहीं। पूर्व जीवनके विषयमें जो जो बातें सुननेको मिली, सुनकर उनकी उदार-हृदयताका, धर्मभावनाओंका परिचय प्राप्त कर हृदयको सन्तोष ही हुआ।

लोभ और प्रलोभनोंकी अधिकतर सामग्रीके बीचमें घिर जानेपर भी अपनी अटल आत्म-विशुद्धि और आत्मैकाग्रभावनाके बलपर ही आत्मा अधिकाधिक विशुद्धिको प्राप्त हो सकता है। लौकिक दृष्टिसे कहा जाय तो "अध्यात्मप्रवणता" वर्णीजीका अन्तश्चर प्राण है और समाजमें सद्धर्मके प्रचारकी जागृत भावना उनका बहिश्चर प्राण है। धर्मोन्नतिके साधनों और धर्मायतनोंके निर्माणमे उनके मन वचन काय सदा ही लगे रहे हैं।

श्री वर्णीजी जैसे श्रद्धासे निर्मल, ज्ञानसे प्रभावशाली और चारित्रसे विकसन शील भव्यात्मा विरल हैं। यह हार्दिक कामना है कि वर्णीजी चिरकालके लिये जीवित रहें।

कारंजा] क्षु० समन्त भद्र

२. ब्र० मंगलसेन तुच्छ—मुबारकपुर

मुझमें जो कुछ त्याग और विवेक है उसकेकारणका विचार करने पर-वर्णीजीकी सरल मूर्ति सामने आ जाती है। अतः उनके चरणोंमें प्रणाम करनेके सिवा कुछ और कहना धृष्टता होगी।

रेशन्दीगिरि] (ब्र०) मंगलसेन—तुच्छ

३. ब्र० गोविन्द लाल–गया

पूज्य वर्णीजी आजके जैन शलाका पुरुष हैं। आप सबसे बड़े समयज्ञ हैं, अतः आप सर्व-प्रिय और मान्य हैं। सरल जीवन और "जान दो अपनको का करना" उन्हे विरक्त जीवनकी मूर्ति बना देते हैं। 'जियो और जीने दो' तो आपके जीवनका मूलाधार है। मै उनसे अत्यन्त उपकृत हूँ। अतः निकटका होनेके कारण, मेरे द्वारा उनका गुणगान कैसा ? वे चिरायु हों इसी भावनाको भाता हुआ उनके चरणोंमें प्रमाण करता हूँ।

गया] ब्र० गोविन्द लाल

४. ब्र० कस्तूर चन्द–जबलपुर

पूज्य गुरुवरके किन-किन गुणोका स्मरण करूँ ? भक्तिके अतिरेकसे भावोमें पूर आ रहा है। उनके वचन मेरे लिये आगम हो गए है। उनका संकलन और प्रचार मेरे जीवनकी साध बन चुके है। मै उनके चरण चिह्नो पर चल सकूँ यही हार्दिक भावना है।

जबलपुर] ब्र० कस्तूर चन्द्र नायक

५. भगत सुमेर चन्द—जगाधारी

जिन्होने जन्मसे ही उदासीन रहकर त्यागपूर्ण जीवन बिताया है, शिक्षा और ज्ञान-प्रधान त्यागका मार्ग चलाया है, पैदल ही चलकर गाँव गाँव जाकर अज्ञान और कलहमें पड़ी जनताका उद्धार किया है, उनके विषयमे मै क्या कह सकता हूँ, क्योकि मेरी विरक्ति और ज्ञानवृत्तिके भी वही वर्णीजी मूलस्रोत हैं।

बरुआसागर] (भगत) सुमेर चन्द्र

३–धीमन्तोंकी श्रद्धाञ्जली

•

१. पं० द्वारका प्रसाद मिश्र–नागपुर

श्री वर्णीजीकी मेरे निवास स्थान जबलपुर पर बहुत वर्षोंसे कृपा रही है। परन्तु मुझे उनके दर्शन करनेका अवसर सन् १९४५ मे जेलसे निकलनेके पश्चात् ही प्राप्त हुआ। उनकी विद्वत्ता तो असंदिग्ध है ही, परन्तु मुझपर उनके सरल स्वभावका अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

वृद्धावस्थाको अंग्रेजीमें लोग द्वितीय बाल्य काल कहते है, परन्तु इसका कारण उस अवस्थामे उत्पन्न होने वाली शारीरिक तथा मानसिक दुर्बलता है। परन्तु वर्णी जी मुझे बालकके समान भोले लगे, अपने चरित्र बलके कारण। अपने ग्रन्थ 'कृष्णायण'मे मैने जीवन्मुक्तका जो वर्णन किया है, उसकी निम्नलिखित चौपाइयाँ वर्णी जीको देखते ही याद आ जाती है।

जिमि वितरत अनजाने लोका,
सुमन सुरभि तारक आलोका।
तिमि जीवन-क्रम तासु उदारा,
सौख्य चतुर्दिक वितरत हारा॥

नागपुर]

पं० द्वारका प्रसाद मिश्र,
मंत्री विकास व निर्माण, मध्यप्रान्त

२. डॉ० वासुदेव शरण एम० ए० डी० लिट०

जैन धर्मको मै भारत भूमिपर त्याग और तपोमय जीवनके लिये किए हुए अनुभवोंमें उच्च स्थान देता हूँ। और इसी कारण उसके प्रति मेरी सहानुभूति है। जैन-प्राकृत और संस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्यमें भारतीय संस्कृतिके लिये अत्यधिक सामग्री भरी हुई है। जिन पूर्वज विद्वानोने इस साहित्यके निर्माणमें अपने व्रतपूर्ण जीवनका सदुपयोग किया है, उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना हमारा कर्त्तव्य है। पूज्य वर्णी जी ऐसी ही विभूति हैं, उनका तथा जैन-साहित्यसे भारतीय संस्कृतिकी व्याख्याके सब प्रयत्नोंका मै अभिनन्दन करता हूँ।

नई दिल्ली] डॉ० वासु देवशरण अग्रवाल एम० ए०, डी० लिट०

३. वर्द्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री–शोलापुर

पूज्य श्री १०५ क्षु० गणेश प्रसादजी वर्णीका ध्यान आते ही "भरतेश वैभवम्"के यशस्वी लेखक रत्नाकर वर्णी मेरे मानस क्षितिज पर उदित होते हैं। वर्णीजीको यदि 'धरती सुत' कहे तो शायद उनके अनेक गुणोंका कुछ संकेत मिले।

कहाँ विन्ध्याटवीके अञ्चलमें जन्म, कहाँ साधारण शिक्षा, कहाँ वह निसर्गज सद्धर्मानुराग, कैसी वह ज्ञान पिपासा और दारुण महा-निष्क्रमण, कहाँ वह अनवद्य पाण्डित्य, कहाँ वह शिक्षा-संस्था-तीर्थ-प्रवर्तन, कैसी अद्भुत लोक संग्राहकता तथा सर्व नेतृत्व और फिर कैसा वह गाँव-गाँव, झोंपड़ी-झोंपड़ी विहार। सचमुच यह वर्णी भी 'भारत वैभव निर्माता' वर्णी है। उनके चरणोंमें सप्रमाण वन्दना।

शोलापुर] पं० वर्द्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री आदि

४. नरेन्द्र विद्यार्थी—धनगुवाँ

जबलपुरके नेता आजाद-हिंद फौजकी रक्षाके लिये चन्दा करनेको सभा करनेके लिये चिन्तित है। जैनियोसे कहो।''''''''जाने भी दो अपने साधुओको सब कुछ मानते है, और वे साधु न जाने क्या बोलते है। वही बोलें वही जानें। इससे क्या मतलव पैसा तो यहाँ वही दे सकते हैं। अच्छा करिये।

ठसाठस भरी सभामें मञ्चपर एक मञ्झोले कदका साँवला वृद्ध किन्तु तेजस्वी साधु दो चादर ओढे आ बैठा। लोग बोले। बाबासे पं० द्वारका प्रसादने कहनेके लिये आग्रह किया। बाबा दो चार वाक्य बोला और उसी कडाकेकी ठण्डमें उसने अपनी एक चादर उतारकर भेंट कर दी। ठिठुरते सिकुडते लोगोकी शारीरिक ही नही आन्तरिक ठण्ड भी विदा हो गई।

वह चद्दर ही तीन हजारमें बिकी और लग गई वर्षा रुपयो गहनो आदि की। प० मिश्र बोले, 'महाराज! आँखें आज खुली हैं। धन्य है, आप धूलि भरे हीरा हैं।'

अत हे हीरा गुरु हम शिष्य-धूलि-कणोका आपसे अनादि सम्बन्ध मोक्षान्त हो।

स्याद्वाद दि० जैन विद्यालय काशी] विद्यार्थी नरेन्द्र धनगुवाँ

५. वंशीधर न्याय तीर्थ—इन्दौर.

विद्यार्थी कृतज्ञके साथ क्या कुछ और भी हो सकता है? फिर उस महागुरुके प्रति, जिसका वात्सल्य कि विद्यार्थी मात्रके लिये सदा खुला रहा है? इतना ही नही अप्रिय व अनिष्टकारी छात्रोपर उन्हे जो रोष आता था वह उनके मुखमण्डलका रक्तवर्ण करके विद्यार्थीके हृदयको द्रुत कर देता था। जतारा निवासी होनेके कारण मुझपर उनका भ्रातृ स्नेह रहा, क्योकि इस ग्रामके पास सिमरामे ही उन्हे अपनी धर्म-माता मिली थी। अतएव अधिक न लिखकर चरणोंमे विनयावनत प्रणाम।

कानपुर] पं० वंशीधर न्याय तीर्थ

६. पं० देवकी नन्दन जी वाचस्पति

पूज्य वर्णीजी से मेरा सम्बन्ध ४० वर्ष से है। मेरे गाँव बरुआ-सागरमें ४० वर्ष पूर्व आपका दो वर्ष मुकाम रहा। तब मुझे भी आपके सम्पर्क मे आनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके उपदेशसे मेरी पढ़नेमें रुचि हुई, और मेरे ऊपर आए हुए सब प्रकारके विघ्नोंको टालकर मेरी शिक्षाकी आपने ही व्यवस्था की।

जैन समाजके इस महोपकारी महात्मा की मनोवृत्ति जैन दर्शन, जैन तत्त्वज्ञान, और जैन धर्मके प्रचार और उद्योतन मे ही निरन्तर रहती है। बुन्देलखण्ड प्रान्तका तो आपके द्वारा कल्पनातीत उपकार हुआ है। आपने सैकडों गरीबों को पूंजीपतियोंके चगुलसे बचाया, ऋणमुक्त कराया। स्थान-स्थान पर छोटो बडी पाठशालायें और संस्कृत विद्यालय खोले। आपने परस्परके वैमनस्योका सैकडो जगह काला मुँह किया, सैकडो गरीब भाई पञ्चायती प्रथा के दुरुपयोग से छोटी-छोटी अशास्त्रीय बातोंके ही ऊपर जातिच्युत कहे जाते थे, उनका शुद्धिकरण कराया, और वह सब तत्तत् पञ्चायतोंने पूर्ण मान्य किया। उनके सम्बन्धमे किसीमे भी कोई मतभेद पैदा नही हुआ।

आपको अष्टसहस्त्री पढनेकी बडी उत्कण्ठा थी—कोई पढाने वाला नही था, अपना कोई विद्यालय नही था। इसलिये आपने प्रतिज्ञा ले ली थी कि जब तक मै उस ग्रन्थको पूर्ण नही पढ लूगा, सिले हुए कपडे नही पहनूगा। इसी प्रतिज्ञाने काशीमे स्याद्वाद महाविद्यालय की नीव आपसे डलवायी और जैन न्यायके पठन पाठनका प्रमुखतासे प्रचार कराया। पूज्यवर्णीजीने सागरमे और बुन्देलखण्डमें अनेक स्थानो पर, जैसे बीना, पपौरा, खुरई, बरुआ सागर, नैनागिरि, द्रोणागिरि, बामौरा साढ़मल, आदिमें विद्यालय खुलवाये। इनमे बहुतमे तो छात्रावास युक्त है। आपने सामाजिक सुधारके लिये कई छोटी मोटी सभाओकी स्थापना कराई। आपने संस्कृत शिक्षा प्रचार की बड़ी लहर उत्पन्न की, जिसके परिणाम स्वरूप आज बुन्देलखण्डमे आपके कृपा पात्र अनेक योग्य विद्वान् पाए जाते है।

आपकी वाणीमें करुणा-रसकी प्रधानता है। आपकी दया-वृत्तिका झुकाव असमर्थकी ओर अधिक रहता है। आपको पढ़ानेकी अपेक्षा पढना अधिक पसन्द है। आप संस्था स्थापित करते है, वरन् अधिकार नहीं चाहते, अतएव आप सर्व संस्थाओंके स्वयम्भू अधिकारी हैं। आचरण पर आपका बचपनसे ही अधिक ध्यान रहा है। आपका स्वभाव ही ऐसा प्रभावक है कि दश पाँच त्यागी हमेशा साथमे रहा ही करते है। अतः स्वय आप एक प्रकारके संघपति है।

समाजमें जितने पक्ष है, वर्णीजीको उनमे किसीका भी अनुगामित्व पसन्द नही; न किसी को (अपना) अनुगामी बनाना पसन्द है। आप लोक-प्रिय नेता हैं, आपका उल्लेख करते समय कोई भी 'पूज्य' पद लगाये विना सन्तोष नही मानता। आपके भाषणमें मधुरता और व्यक्तित्वमे महान आकर्षण है। ब्रह्मचर्यका प्रताप आपके अति वृद्ध काय मे भी प्रत्यक्ष दिखता है। बत्तीसो दात मौजूद हैं, सब इन्द्रियाँ काम कर रही है।

आजकल आपकी दृष्टि कन्या-शिक्षणकी ओर झुक रही है। पहले आप समन्तभद्र स्वामीके ग्रन्थोका अवलोकन करते थे, अब कुन्दकुन्दके ग्रन्थोंका मनन करते हैं। आपने जो आध्यात्मिक पत्र अपने प्रेमियोंको लिखे है वे कालान्तरमे ग्रन्थका रूप धारण करेंगे।

ऐसे पूज्य परोपकारी, वस्तु-स्वरूप-चिन्तक त्यागी एव विद्वान् पुरुषके सम्बन्धमे मै क्या लिख सकता हूँ। लेखक स्वय उनके असाधारण उपकारके कारण अपने जीवनमे पूर्ण परिवर्तन मानता है। और अपने परसे अनुमान लगाता है, कि इसी प्रकार हजारो भाइयोका जीवन परिवर्तित हुआ होगा।

इन्दौर] प० देवकी नन्दन, सिद्धान्तशास्त्री

४–श्रीमन्तोंकी श्रद्धाञ्जली

•

१. सर सेठ हुकम चन्दजी–इन्दौर

पूज्य वर्णीजी महाराजके दर्शन करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। उनकी शान्त मुद्राका अवलोकन कर अलौकिक शान्तिका लाभ होता है। श्रद्धेय वर्णीजीकी मधुर वाणीसे, भगवान कुन्दकुन्दाचार्यके अध्यात्म प्रधान समयसारकी सारगर्भित धाराका प्रवाह, श्रोताओंको मन्त्र मुग्ध कर देने वाला अन्तस्तल स्पर्शी विवेचन, सुनकर तो आनन्द की सीमा ही नही रहती। मै तो उन्हे विक्रमकी २१ वी शतीका सर्वोपरि जैन तत्त्ववेत्ता विद्वान और अध्यात्मवादका अनुपम रसिक और परम सम्यग्दृष्टि मानता हूँ।

वे समाजकी अनुपम निधि है, उन्होने समाजके कल्याणार्थ अपने अतुल अमूल्य जीवनका बहु भाग बिताया है, जो कृतज्ञ समाजसे अविदित नही है। उन जैसा निरीह, मृदुल परिणामी, मधुर भाषी, मन्दकषायी, उदार हृदय, स्वानुभूति निरत, निश्छल व्यवहारी, परहित व्रती, परम ज्ञानी, उत्कृष्ट त्यागी, वर्तमान त्यागी वर्गमे उपलब्ध होना कठिन ही नही प्रत्य दुर्लभ है।

ऐसे महापुरुषके चरणोमें श्रद्धाञ्जली अर्पण करते हुए मै अपना परम सौभाग्य मानता हूँ, और भगवान् वीरके चरणोंको ध्याता हुआ उनकी चिरायुष्यताकी कामना करता हूँ।

इन्दौर] (सर सेठ) हुकम चन्द स्वरूप चन्द

२. साहू श्रेयांस प्रसाद–बम्बई

पूज्य श्री १०५ वर्णीजीके निकट आनेका जिन्हें भी अवसर मिल सका है, वे उनकी विशालता और सौजन्यसे मुग्ध हुए बिना नहीं रह सके हैं। उनकी विद्वत्ता और प्रतिभाशाली व्यक्तित्वसे कौन ऐसा है जो कि प्रभावित और चमत्कृत न हुआ हो? उनकी कल्याणी वाणीने हमारे जनमनको शुद्ध और संस्कृत करनेमे जो अमूल्य सहायताकी है उसके हम सभी चिर आभारी रहेगे।

युग-प्रवर्त्तक जैन-धर्मके प्रकाश-स्तम्भ श्री १०५ वर्णीजीकी स्मृति सामाजिक जीवनमें सदैव जगमग रहेगी। उन्हे स्मरण कर हम पुल्कित प्रोत्साहित होते रहे है और होते रहेगे।

बम्बई] (शाहू) श्रेयांस प्रसाद

३. सेठ माणिक चन्द–बाँसखेडा

सुनते है पूज्य वर्णीजी महाराजने बड़े-बडे काम करे है। पर अपन तो अपन पर मे सोचत है कि वे 'आधरेकी लाठिया' है। अज्ञान और गरीबीके मरुस्थलमे पडे हम बुन्देलखण्डीनको वे मतीरा होकर भी सागरसे बडे है। ईसे उनके चरणोमे सैकडो प्रणाम।

बासखेडा] (सेठ) माणिकचन्द

४. शिताब राय लक्ष्मी चन्द—भेलसा

'गतानुगतिको हिलोक' बहुत समयसे मेरे मनमें धर्म-कार्य करनेकी इच्छा रहती थी। मेरे प्रान्त तथा देशमे रथ-यात्रा आदिकी प्रथा है। मनमें सकल्प किया रथ चलाऊँ और श्रीमन्त सेठ बनकर पिताजीके घरकी शान बढाऊँ। भगवान् वीरको इस क्षेत्रकी जनता स्वयमेव जान जायेगी, जब पंचकल्याणककी झड़ी लगेगी।

याद आये वर्णीजी कहते हुए 'शास्त्र दान सब दानोंसे बड़ा है'। वही करूँ, वर्णीजी ठीक ही कहते है 'नाम पै मत मरो, काम करो'। मेरा परम सौभाग्य जो मुझ ऐसे व्यक्तिके पैसेके निमित्तसे वे 'धवल सिद्धान्त ग्रन्थ' प्रकाशमें आये जिनके दर्शनके लिये लोग तरसते थे।

लड़का हुआ, फिर दान करनेकी इच्छा हुई। बाबाजीसे मिला "अरे ए भैया कायेको संकल्प करत हो। पाठशाला हाई स्कूल खोल दो।" आज वह स्कूल कालेज हो गया। मुझे समाज, राज और देशमे सम्मान मिल रहा है।

धर्मका सार क्या है, यह तो वर्णीजीने ही बताया है। उनकी विद्वत्ता, सभा चातुर्य, भाषण शैली, दयाभाव, आदिकी मै क्या तारीफ कर सकता हूँ। मेरे लिये तो "बलिहारी गुरु आपकी जिन गोविन्द दियो बताय।" मेरे स्वर्गीय बाबाजीके आदेशपर चलें और बाबाजी चिर कालतक हमारे बीच रहें यह वीर प्रभुके चरणोके स्मरण पूर्वक भावना है।

दानवीर कुटीर भेलसा] (श्रीमन्त सेठ) शिताब राय लक्ष्मीचन्द

५. सेठ विरधी चन्द—सिवनी

पूज्य पं० गणेशप्रसादजी वर्णी बुन्देलखण्डकी पवित्र देन है, इसलिये बुन्देलखण्डको अभिमान नही, किन्तु बुन्देलखण्डकी भाषाके लालित्य और सरलताका सामञ्जस्य जिस प्रकार पूज्यवरके गहन तत्त्वपूर्ण उपदेशकी शैलीमें चमका है, उसका अवश्य ही बुन्देलखण्ड उतना ही अभिमान कर सकता है, जितना गुजरात विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी पर करता है।

चन्दनके वृक्षसे चिपटे हुए सर्प जिस प्रकार मधुर ध्वनि सुनकर हठात् शिथिल हो जाते है, उसी प्रकार मनुष्यसे लिपटे काम-क्रोध-मान-माया-लोभादि कषाय रूपी सर्प उपदेश सुनते ही क्षण भरके लिये ही शान्त हो जाते है। इसमे वर्णीजीकी सरल विद्वत्ता-पूर्ण भाषा ही मुख्य कारण है।

चूँकि वर्णीजी स्व-पर-कल्याणकी भावनामे अधिक व्यस्त रहते है, इसलिये भले ही कोई उनकी भोली शकल परसे गलत और तदनुसार पाण्डित्यपूर्ण दलीलें देकर अपना काम निकालनेका वक्तव्य या पत्र लेकर चला जावे, किन्तु यह ख्याल कर लेना कि 'वर्णीजी बहुत भोले हैं, बड़े सीधे हैं, इसलिये मैने उन्हे ठग लिया' बिल्कुल भ्रमपूर्ण ख्याल है।

यथार्थ स्थिति, वर्तमान वातावरण, समयकी उपयुक्तता एव भविष्य की सम्भावनाओंको मद्देनजर रखते हुए सही सूचनाओके आधारपर जब भी कभी वर्णीजी कोई व्यवस्था देते है, तब वह पूर्ण-उपयुक्त तो होती हो है, सर्वमान्य भी हो जाती है। यही कारण है कि दलबन्दीमें पडे (सुधारक, स्थिति-पालक और मुखिया शाही वाले) लोग उन सब ममलोका मुकम्मिल फैसला हमारे वर्णीजीसे करानेको राजी नही होते है, जिनके कारण जैन समाजमे फूटका साम्राज्य छाया हुआ है, क्योकि उन्हे भय बना रहता है कि कही वर्णीजीकी व्यवस्थाके विरुद्ध हमारा प्रचार निरर्थक न हो जाय। ऐसे प्रसगो पर अच्छी तरह समझने वाले विद्वान वर्णीजीको भोले भाले, सीधे साधे, सच्चे धार्मिक, आदि, खिताबात देकर विषय टाल देते है। लोग अपने स्वार्थसे वर्णीजीके नामका उपयोग कर लेते है, पर उनकी पूरी सन्मतिको कभी नहीं मानते है।

वर्णीजीके अपूर्व प्रभावको सब ही महसूस करते है। उनके विरुद्ध सफल आवाज उठाना टेढी खीर है, यह भी मानते है। फिर क्यो उनका पूरा लाभ नही उठाया जाता है ? क्यों उनके आदेश नही माने जाते है ? उत्तर है, जैन समाज ससारका छोटा रूप है, उसमे भी सब शक्तियाँ और कमियाँ है। इसलिये तब बहुत बेचैनी होती है जब हम यह सोचते है कि पूज्य वर्णीजी अब काफी वृद्ध हो चुके है, उनके शरीरमे शिथिलता आ रही है, वे हमारा साथ कब तक दे सकेंगे। इनके बाद भी क्या हमारे बीचमे कोई ऐसा प्रभावक नेता है जिसके भाग्यमे ऐसी सर्व-मान्यता पडी हो ?

श्री जिनेन्द्रके स्मरण पूर्वक प्रार्थना है कि हम सैंकड़ो वर्षो तक पूज्य-वर्णीजीका सहयोग प्राप्त कर सकें।

सिवनी] (श्रीमन्त-सेठ) विरधी चन्द

५–संस्मरण

•

१. मैं बौद्ध कैसे बना

आजसे प्राय: पन्द्रह वर्ष पूर्व की बात है। मै काशी विश्वविद्यालयमें दर्शनका विद्यार्थी था। उन दिनो एक प्रसिद्ध विद्वान् का भाषण हो रहा था। सुना की अगले दिन जैन धर्म पर व्याख्यान होगा। मुझे तो जैन धर्मका कोई ज्ञान नही था। किन्तु उस समय अपने धर्म-पुस्तक सत्यार्थ-प्रकाशके अमुक समुल्लासमे जैन धर्मके सभी खण्डन याद थे। विचार हुआ कि उसीके आधारपर कलके भाषण के बाद वक्ताको सभामें परास्तकर वैदिक धर्मका श्रेष्ठय स्थापित करूगा।

दूसरे दिनके सभापति थे आचार्य 'ध्रुव'। प्रारम्भ मे उन्होंने वक्ता-का परिचय अत्यन्त श्रद्धापूर्ण शब्दोमें दिया। व्याख्यानको आदिसे अन्ततक बहुत ध्यान पूर्वक सुना। इतना साफ और प्रबल व्याख्यान हुआ कि मुझ आर्यसमाजीके सुतर्ककी नोक कही न पडी। तो भी आर्य-समाजी चुलबुलाहटसे मैने कुछ छेड हो दिया, और जैन-धर्मके अपने अज्ञानके कारण मुझे सभामें बेतरह लज्जित होना पड़ा। सत्यार्थ-प्रकाशकी अपनी प्रामाणिकताका बुरी तरह भडा फोड़ कराकर मुझे बडा क्षोभ हुआ। मुह छिपाकर निकल आया। श्रद्धेय वर्णीजीसे वह मेरी पहली भेंट थी।

उनके मधुर भाषण और प्रभावशाली सौम्यका आकर्षण इतना अधिक रहा कि चार पाच दिनके बाद उनके दर्शनार्थ स्याद्वाद् विद्यालय गया। आर्यसमाजके वर्णाश्रम धर्मपर बात चली। मुस्कराकर उनने पूछा—अच्छा आप किस वर्ण के है ?

मैने कहा—स्वामीजी, मै जन्मसे तो कायस्थ हूँ। पढ लिख कर विद्वान् हो जानेके कारण सिद्धान्त के अनुसार मे ब्राह्मण हो जाऊगा।

प्र०—क्या सब ब्राह्मण लोग आपके साथ रोटी बेटी करने को तैयार होगे ?

उ०—वे भले न तैयार हो, किन्तु आर्य समाज तो मुझे वैसा सम्मान अवश्य देगा।

प्र०—अच्छा आर्यसमाजमे जो ब्राह्मण है क्या वे भी आपके साथ रोटी बेटीके लिये तैयार होगे ?

उ०—मै कह नही सकता।

प्र०—तब क्या आर्य-समाजकी वर्ण व्यवस्था केवल बातों ही में है, व्यवहारमे नही ?

वर्णीजीसे मिलकर जब मै विश्वविद्यालय लौट रहा था तो यह खूब अनुभव कर रहा था कि आर्य-समाजका मेरा उत्साह मन्द हो गया था। मेरे मनमे प्रश्न हो रहा था—स्वामी दयानन्दजीने अन्य धर्मोंके विषयमें बिना जाने केवल हिंसात्मक प्रेरणासे अमुक समुल्लासोमे ऐसा क्यो लिख दिया ? क्या यह सत्यकी बात है ?

× × × ×

दो वर्षके बाद एम० ए० पास करके मैने अपनी सेवा गुरुकुल महाविद्यालय (आर्य समाज) वैद्यनाथ धाम (बिहार) को अर्पित की। गुरुकुलका मै आचार्य बना। आर्यसमाजकी प्रणालीके अनुसार मुझे लोग पण्डितजी कहने लगे। मुझे यह गौरव पाकर बड़ा आनन्द आया—और कुछ नहीं तो आर्य-समाजने मुझे इतना सम्मान तो दिया।

आचार्य पदपर रहनेके कारण लोग मेरा भय मानते थे, किन्तु मुझे ऐसा लगा कि ब्राह्मण अध्यापकोको मेरे प्रति आदर नहीं है। शायद कायस्थ होनेके कारण ! !

एक दिन कमरेके भीतरसे सुना गुरुकुलके एक अध्यापक श्री ······ तिवारीजी पुकार रहे थे,—ओ पण्डित टाइगर ! ओ पण्डित टाइगर ! !

मै बाहर आया और पूछा कि यह पण्डित टाइगर कौन है ?

श्री ··तिवारजीने गुरुकुलके कुत्तेकी ओर इशारा करते हुए कहा—आचार्यजी, यही पण्डित टाइगर है, आर्य-समाजमे सभी पण्डित है।

बस आर्य समाजकी वर्ण-व्यवस्था अच्छी तरह समझ गया। वर्णीजी की बाते झट याद आ गई। सिद्धान्तमे तो पहले ही हलचल पैदा हो गई थी।

१९३३ मे फिरसे बनारस आया—सस्कृतमें एम० ए० परीक्षा देने। दूसरे ही दिन स्याद्वाद विद्यालय गया। किन्तु यह जानकर बडी निराशा हुई कि वर्णीजी काशी छोड़कर चले गए हैं। मुझे उनके सामने अपनी कई समस्यायें रखनी थी।

जैन धर्मपर वहाँके कुछ अन्य लोगोसे वात हुई। जानकर वडा दु:ख हुआ कि भगवान महावीरके आदर्शके विरुद्ध जैन-समाजमें भी वर्ण-भेद अपनी सकीर्णताओके साथ आ गया है। शताब्दियो तक ब्राह्मण समाजके सम्पर्कमे रहनेके कारण जेन-समाजकी मौलिक शुद्धता पर प्रभाव पड ही गया है।

इस बार सारनाथ गया और बुद्ध-धर्मका अध्ययन करने लगा। 'पालि' के विशेष अध्ययनके लिये लङ्का चला गया। वर्ण-भेदकी संकीर्णताओंसे सर्वथा मुक्त बौद्ध समाजने विशेष रूपसे आकृष्ट किया। फिर तो बौद्ध-दीक्षा और उपसम्पदा भी ले ली।

इतने वर्ष पूर्व एक विद्यार्थीसे हुआ वार्तालाप आज वर्णीजीको स्मरण हो या न हो, किन्तु उसके जीवनकी दिशा बदलनेमे उसका बड़ा हाथ है।

काशी विश्वविद्यालय] (भिक्षु) जगदीश काश्यप एम० ए०

२. महान सचमुच महान

तर्क शास्त्रके विद्वान कहते हैं कि कार्य-कारण तथा परिणाम इनमें परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। एक साहित्यिक होनेके नाते तो मै शायद ही इसपर विश्वास कर सकता किन्तु……। यह एक किन्तु बिगत कुछ वर्षोंके इतिहासके पृष्ठ खोल कर रख देता है। स्मरण कर उठता हूँ एकाएक बड़ोंका वह उपदेश कि महापुरुषोके दर्शन कदाचित् विगत कई जन्मोंके पुण्य-कर्मके फलस्वरूप ही सुलभ होते है। सो इसे अपने सौभाग्यका मै प्रथम चरण ही अभी तक मान सका हूँ कि जब अति अस्वस्थ होने पर भी मुझे जैन हाई स्कूल सागरमें एक शिक्षिककी भाँति जाना पड़ा था।

यों तो प्रवास मेरे जीवनका एक अश रहा है, किन्तु सन् १९२४ के प्रारम्भसे ही मनमें प्रवासके प्रति एक विरक्तिसी उभर उठी है। फिर भी छत्तीसगढ छोडकर जीविका अर्जनके हेतु मुझे सागर जाना पडा। इस प्रवासके पूर्व सागरके सम्बन्धमे कई बाते सुना करता था। सागरकी प्राकृतिक छटा, वहाँकी स्वास्थ्यकर जलवायु, इनके विषयमे बहुत कुछ सुन चुका था। अतएव अपने हीन स्वास्थ्यका ख्याल रखते हुए मुझे सागरमे रहना रुचिकर एव हितकर प्रतीत हुआ।

तब मुझे यह पता नही था कि सागरका जैन समाज एक महत्त्वपूर्ण मात्रामे सागरके सार्वजनिक जीवनमे प्रवेश कर गया है। एक प्रश्न मेरे सामने अवश्य था। मै कान्यकुब्ज कुलोत्पन्न ब्राह्मण हूँ। सुन रखा था "न गच्छेत् जैन मन्दिरम्", आदि और उसके प्रतिकूल मै उसी स्थानपर चाकरी करने जा रहा था। मेरे समाज वालोंको यह बात खटक गई। लेकिन मै स्वभावत ही विद्रोही रहा हूँ। गुण-ग्रहण करने में रूढिका ध्यान कभी नही किया।

सो जैन हाई स्कूलमें एक शिक्षककी हैसियतसे कार्य शुरू करनेके कुछ समय पश्चात् ही, यदा कदा मेरे कानमे मोराजी सस्कृत विद्यालयके विद्यार्थियों द्वारा सम्बोधित शब्द 'बाबाजी' पड जाया करते थे। और मनमे यह भावना उठती थी कि आखिर वह कौन-सा व्यक्तित्व है, जो इन विद्यार्थियोंके बीच 'बाबाजी'के रूपमें सदैव चर्चाका विषय बन जाता है। जिज्ञासा यद्यपि मन ही मनमें थी पर उभरने लगी थी ।

फिर एक दिन जैन समाजके कुछ वयस्क व्यक्तिओंको मैने 'वर्णी जी'का नाम लेते सुना, अत्यन्त आदर एवं समुचित श्रद्धाके साथ। तत्क्षण मेरा मन दुहरा उठा। बाबाजी, वर्णीजी ये दोनों एक हो तो नही है? आखिर कौन व्यक्तित्व है जो सम्पूर्ण जैन समाजके द्वारा इतनी श्रद्धाके साथ पूजनीय है। अतएव एक सस्कृत पाठशालाके भाई पन्नालालजीसे मैने इस सम्बन्धमे प्रश्न किया। उनके उत्तरसे मुझे ज्ञात हुआ कि वे जैन समाजकी एक महान आदरणीय विभूति है। विरक्त होते हुए भी जनहिताय, लोक मगलकारी भावनाओके प्रसारमें जुटे हुए है। शिक्षा उनका प्रियतम विषय है।

इस अल्प परिचयके बलपर मेरे मनकी कल्पना उनके स्वरूपका ताना बाना बुनने लगी। काफी वृद्ध होगे, ऊँचे पूरे, श्मश्रु-युक्त, साथमें अनेको व्यक्ति होगे, बडी शानके साथ रहते होगे, वस्त्रोका सम्भवत. त्यागकर दिया होगा, आदि आदि। ऐसा ही कुछ उनका काल्पनिक स्वरूप मेरे मनमे उभर उठा था। और उसी समय एक नही अनेक प्रश्न उठ पड़े थे। क्या ये वैसे ही विरक्त साधुओमेसे नही है जैसे कि वर्तमान कालमे भारतवर्षमे पाए जाते है? इस जिज्ञासाका भला कौन उत्तर दे? नवागन्तुक अथवा यो कहिये कि प्रवासी होनेके नाते किसीसे कुछ पूछनेमें हिचक लगती थी। फिर अपने एक स्वजातीय बन्धुसे उपरोक्त प्रश्न उपस्थित करने पर मुझे उत्तर मिला था—अच्छा तो क्या आप भी जैन धर्ममे दिक्षित होना चाहते है? सच कहूं, यह उत्तर बडा बेढगसा लगा मुझे। क्या वर्णीजीके बारेमे जानना एक अन्य जातीय व्यक्तिके लिये गुनाह है? कौन उत्तर देता इन प्रश्नों का?

फिर जनवरीके महीनेमे मुझे सुननेको मिला कि मार्चमे वर्णीजी सागर पधार रहे हैं। यह समाचार मेरे लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। उनकी अनुपस्थितिमें जैन समाजके आबाल वृद्धकी अखण्ड निष्ठाको देखकर मेरे मनमे उस समय आदर तो नही कुतूहल अवश्य हुआ था। किन्तु उसी दिन कक्षामे पढाते समय जब मेरे एक प्रिय जैन छात्रने कहा कि मास्टर साहब, वर्णीजी गयासे पैदल आ रहे है—तब जैसे आप ही आप किसीने उनके प्रति श्रद्धाका बीज मेरे मनमे अङ्कुरित कर दिया। मन ही मन ऐसी विभूतिके दर्शनके लिये व्याकुल हो उठा था मै।

इसी बीच नगरके जैन समाजमें एक अद्भुत जागृतिके लक्षण मुझे दृष्टिगोचर हुए। विशाल पैमानेपर तैयारियाँ प्रारम्भ हो गई—मुझे लगा कि जैसे किसी अखिल भारतीय सस्थाका अधिवेशन होने जा रहा है। और इसी प्रकार दिन व्यतीत होते गए—जैसे-जैसे तैयारियाँ बढ़ती गई वैसे वैसे मेरा मन आश्चर्यसे भरता गया। कौनसा ऐसा व्यक्तित्व है कि जिसके लिये ऐसा शाही प्रबन्ध ? कौनसे विशेष गुण है, जिनके कारण ये विशाल तैयारियाँ ? हो सकता है ····नही नही, होगा कोई परम पावन आदर्श व्यक्तित्व। होगी निश्चय ही कोई महान प्रेरक विभूति, तभी तो यह सब कुछ हो रहा है।

× × × ×

एक दिन संध्याकाल यह सुननेको मिला कि वर्णीजी निकटस्थ ग्राममे आ गए है, और प्रात.काल वे नगरमे प्रवेश करेंगे। बचपनसे राष्ट्रीय प्रवृत्ति मुझमे प्रधान रही है, अतएव सभा, आयोजन आदिमे सदैव जाया करता था। उसी दृष्टिकोणसे प्रातःकालको लगभग आठ बजे मैने समझ रखा था। सो दूसरे दिन आठ बजेके लगभग जब मै अपने एक मित्रके साथ उस स्थान पर पहुँचा जहाँ उनका स्वागत होनेको था, तो पता चला कि सूर्यकी प्रथम रश्मियोंके साथ वे उस स्थानसे चल पडे थे। समयकी यह नियमित पावन्दी विरलोंमें ही पाई जाती है। परोक्ष रूपसे उनके इस प्रथम गुणने मुझे आकर्षित किया।

खैर, बढ़े चले आगे, और हीरा आयल मिल्सके पास मैने देखा विशाल जन समूह। तिल रखनेकी जगह नही। 'वर्णीजी की जय' की ध्वनि प्रायः कोने-कोनेमे गूँज रही थी। और मेरी आँखे चुप-चाप विकलतासे खोज रही थी, उस महान व्यक्तित्वको। कुछ मिनट और···· ····और मैने देखा सफेद चादर लपेटे एक छोटे कदका श्यामल व्यक्ति नंगे पैर बडी तेजीके साथ मीलके प्रवेश द्वारसे निकलकर आगे बढ गया—शिर पर कुछ श्वेत केश, नयनोमे एक अपूर्व ज्योति, हँसता हुआ चेहरा, आजानु बाहु, रक्त-कमलसी हथेलियाँ। विशाल जन राशि पागल होकर चिल्ला उठी—'वर्णीजीकी जय'।

उस महान विभूतिके दो जुड़े हुए हाथ ऊपर उठ गए····तो यही वर्णीजी है। और मनमे कोई बोल उठा—'महान सचमुच महान !'

वह एक झलक थी लेकिन ऐसी झलक जो दिलमें घर कर गई हो, जीवन भरको अपनी अमिट छाप छोड़ गई। 'सादा रहना उच्च विचार' यह भारतीय आदर्श जैसे वर्णीजीके व्यक्तित्वमें मूर्तिमन्त हो उठा था। मेरा मन एक नहीं कई बार उस 'जय ध्वनि' को दुहरा गया।

कवि होते हुए भी मैने नर-काव्य नही किया। लेकिन उस दिन मध्याह्नमे जैसे किसीने मेरे कविको प्रेरित कर दिया, उनके प्रति श्रद्धाञ्जली प्रगट करनेके लिये। और आप ही आप कुछ पक्तियाँ कागज पर उभर उठी थी। उसी दिन बहुत निकटसे उसे उन्हे देखनेका मौका मिला। मैने सुना वे कह रहे थे, 'आज एक वृद्धाने मुझे यह एक रुपया दिया है। शिक्षाके प्रसार हेतु मुझे एक लाख रुपया चाहिये।' और फकीरीकी चादर फैल गई। अधिक देर नही लगी, एक लाखके वचन प्राप्त हो गए। मै सोच रहा था—कौनसा जादू इस व्यक्तिने जैन समाज-पर डाल दिया है? मनने उत्तर दिया—त्याग, तपस्या और नि:स्वार्थ सेवा। हाँ सचमुच ये वर्णीजीके सेवा पथके ज्योति स्तम्भ है।

फिर सुननेको मिला 'आजाद हिन्द फौज' के लिये एक सभाका आयोजन किया गया। लोगोसे दान देनेकी अपील की गई। साधु वर्णीजीके पास क्या था? फिर भी उन्होने अपनी चादर उतारकर दानमे देनेकी घोषणा की। और यह सब पढकर मेरा मन कह रहा था—काश हमारा साधु समाज यदि ऐसा हो पाता तो जाने आज भारत कहाँ रहता।

वर्णीजीके इस स्वल्प परिचयने मनकी उत्कण्ठा बढा दी। उनके विगत जीवनसे मैने परिचय प्राप्त किया। जन्मना वे एक अजैन है, किन्तु कर्मणा वे जैन समाजके आदर्श है। जैन समाजमे सचमुच शिक्षाका भारी अभाव है। वर्णीजीने उस समाजकी कमजोरीको पहचान कर उसे दूर करनेका व्रत ले लिया। फल स्वरूप आज बनारस, कटनी, जबलपुर, दमोह, सागर आदि अनेक स्थानोमे अनेक संस्थाये चल रही हैं। अजैन होते हुए भी अपनी तपस्या एव उद्देश्यकी पवित्रताके बलपर वे जैन समाजके धर्म-आदर्श मनोनीत हुए। पूज्य और महान होकर भी वे व्यवहारमे साधारण मानवकी भाँति ही रहे। सचमुच यह उनकी महानता है।

सच कहूँ तो आज तक बहुत ही कम मै किसी धार्मिक विभूतिके प्रति आकर्षित हो सका, किन्तु वर्णीजीके स्वल्प दर्शनने मेरी धारणामें परिवर्तन कर दिया, और आज भी मन सोचने लगता है कि धर्मके क्षेत्रमें यदि ऐसे ही कुछ और भारतमाताके सपूत पैदा हुए होते तो आज हम भारतीय न जाने उन्नतिके किस उच्च शिखरपर पहुँच गए होते।

रायपुर] प० स्वराज्यप्रसाद त्रिवेदी बी० ए०
सम्पादक 'महाकोशल'

३. मानवताका कीर्तिस्तम्भ

मै वर्णीजीको सन् १४-१५ मे नन्हूलाल जी कडियाके यहाँ एक प्रौढ विद्यार्थी तथा पण्डितके रूपमे कभी-कभी देखता था। आज वर्णीजी केवल जैन-समाजकी ही विभूति नही है, यद्यपि जैन-समाजका ऋण-भार उनके भाल-प्रदेशपर अंकित है। अजैन कुटुम्बमे जन्म लेने वाले उनके द्वारा व्यवहार-जनधर्मने कूपमण्डूकत्वको त्याग दिया। इस दृष्टिसे वर्णीजी जैन तथा अजैन-समाजके बीचकी एक कडी है, जिसमे दोनो धर्मोकी महानता खिल उठी है।

आजके पैदल यात्रा करने वाले उस परिव्राजकके मुखपर न केवल जैन-धर्मकी विद्वत्ता अंकित है, किन्तु दुःख-दलित मानवताकी कसक भी विराज रही है। आजके युगमे वैरागियोका उपयोग लोकहिताय कैसा होना चाहिये इसके आप मूर्त्त रूप है।

आपके आजके प्रवचनोमे जैन-धर्मकी पारिभाषिक शब्दावलीका घटाटोप नही किन्तु सीधरूपसे मानवके भीतर खिरकर बैठने वाली वह सरस वाणी है जो महान आत्माओका भूषण रही है। उन सीधे और गँवई शब्दोमे न जाने कैसा जादू है ?

मन्दिरो तक ही धर्मको सीमित रखनेवाले जैनी क्या समझे कि जैन-धर्म कितना महान है और उसको महानता समझाने वाला भी कितना महानतम है। काश जैनी ही नही भारतीय भी इस समन्वयको समझते और बनते उनके अनुरूप; तो पूज्य राष्ट्रपिता (महावीर) का स्याद्वाद-प्रेरित 'सर्वधर्म समानत्वम्' केवल प्रार्थनाका पद न रह जाता।

सागर] बी० एल० सर्राफ बी० ए० एलएल बी०

४. वर्णी महान्

वर्णी महान् ! वर्णी महान् !!
युग-युग तक श्रद्धासे मानव गावेगा तेरा यशोगान
वर्णी महान् ! वर्णी महान् !!
तुमने युग धर्म सिखाया ।
जीवन का धर्म बताया ।।
गुमराह युगो के मानवको,
फिर जीवन पथ दिखलाया ।।
लघुमानव है कितना समर्थ, बतलाया, तेरा स्वाभिमान
वर्णी महान् ! वर्णी महान् !!
कहना जग हम स्वच्छन्द नही ।
टूटे जीवनके बन्ध नही ।।
इस पर बोले गुरूवर्य ? आप,
"मानव इतना निस्पन्द नही"
दो तोड़ विवशताके बन्धन बन जाओ अब भी युग-प्रधान
वर्णी महान् ! वर्णी महान् !!
तुम जगा रहे हो निखिल विश्व
लेकर के करमे ज्ञान दीप
वह ज्ञान कि जिससे मानवका
अन्तस्तल है बिल्कुल समीप
युग-युग तक अनुप्राणित होगा पाकर जग तेरा ज्ञान दान
वर्णी महान् ! वर्णी महान् !!
उज्वल यश किरणोसे तेरी
हो रहा व्याप्त यह धरा धाम
तू इस युगका योगी महान्
युगका तुझको शत शत प्रणाम्
श्रद्धासे नत हो उठे आज चरणोंमे तेरे प्राण प्राण
वर्णी महान् ! वर्णी महान् !!

सागर] फूल चन्द 'मधुर'

१०

•

शान्ति निकेतन

•

धर्म माता पूज्या श्री चिरौंजा बाईके चरणोमें हमारा
मस्तक सदा नत है। वर्णीजीकी प्रेरणासे सस्था-
पित ईशरीका शान्तिनिकेतन नामक
यह उदासीन आश्रम ज्ञान व धर्मके
जिज्ञासुओंका सप्रेम आवाहन
व स्वागत करता है।



पूज्य माता चिरोंजा बाई जी

१–धर्म माता चिरौंजा बाई

१. सामान्य परिचय

धर्म परिवर्तनके कारण वर्णीजीने बाल्यकालमें अपनी निज माताका परित्याग कर दिया और विधिने तुरत इन्हे धर्म माताकी पावन गोद प्रदान कर दी। एक श्रीमन्तके साथ आपका विवाह हुआ था, पर बाल्यकालमे ही आपको वैधव्य प्राप्त हो गया। वर्णीजीको देखा तो स्तनोंसे दुग्धकी धारा बह निकली, मानो ये पूर्व-जन्मके आपके पुत्र ही थे।

शास्त्रज्ञता व तत्त्वज्ञता, धार्मिक मर्मज्ञता, अन्तरङ्ग विरक्तता, सहिष्णुता व स्वाभिमानता, सुहृदयता व उदारता आदि महान गुणोसे निर्मित आपके महान् व्यक्तित्वका परिचय तो स्वय वर्णीजीके अपने शब्दोमे आगे दिया ही गया है, यहाँ तो इतना ही बता देना इष्ट है कि जितने नि स्वार्थ प्रेमसे आपने हमारे मूल-नायक पूज्य-श्रीका बालपनेमें पालन-पोषण किया, उतना सम्भवत. उनकी माता भी स्वय न कर पाती। बाल्यकालमें पूज्य-श्रीकी प्रकृति कुछ उग्र थी, जिसे आप बड़े शान्त भावसे सहन करती थी।

जीवन पर्यन्त आपने इन्हें किसी भी बातकी कमी रहने न दी। इनकी हर आवश्यकताको आप बिना कहे पूरा करती थी। यद्यपि

वैधव्य हो जानेपर आपने केवल १०,०००)का सीमित परिग्रह रखा था, जिसका केवल १००) मासिक ब्याज आता था और इतनेमें ही स्वय, एक पुत्री तथा वर्णीजी इन तीन जीवोंका निर्वाह करना होता था, तदपि आपने कभी भी इन पर आर्थिक संकट आने न दिया। अपने ठाट-बाटमे तथा निर्विवेक दानमें निरर्गल खर्च करते हुए भी इनका हाथ आपने कभी न रोका।

माता ही नही आप इनकी गुरु भी थीं। वर्णीजीका महान् व्यक्तित्व वास्तवमें उन पावन संस्कारोंका परिपक्व रूप ही है, जो कि आपने अपने विवेक व रहस्यपूर्ण उपदेशों द्वारा उनके हृदयमें गहरे पैठा दिये थे। पद-पद पर आपने इनकी प्रारम्भिक धर्मान्धता, रूढिवाद तथा त्याग-धर्मके कृत्रिम व वक्र प्रदर्शनसे रक्षा की और इन्हें सत्पथानुगामी बनानेके प्रति सतत् सतर्क रही।

बड़ी वैराग्य पूर्ण विधिसे आपने समाधि पूर्वक इस नश्वर देहका त्याग करके स्वर्गारोहण किया।

ऐसी परमोपकारी पूज्या माताके चरणोंमें हम सभीका मस्तक सदा नत रहेगा।

२. जन्म आदि

श्री सम्मेदाचल पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंक पर व्रतादि ग्रहण करते समय बाई जीने भगवानके समक्ष अपनी जीवन गाथा कही—

मै एक ऐसे कुटुम्बमे उत्पन्न हुई थी जो अत्यन्त धार्मिक था। मेरे पिता श्री मौजीलाल जी एक व्यापारी थे। उनकी आय ४०००) वार्षिक थी। एक बार श्री गिरिराजकी यात्राके लिये बहुतसे जैनी जा रहे थे। उन्होंने मेरे पिताजीसे कहा कि आप भी चलिये। आपने उत्तर दिया कि 'मेरे पास चार हजार रुपया वार्षिकको आय है। तीन हजार रुपया मै अपने प्रान्तके गरीब लोगोंको देता हूँ, और एक हजार रुपया कुटुम्बके पालनमे व्यय हो जाता है। इससे नही जा सकता।

मेरी शादी सिमरा ग्रामके श्रीयुत् सिंघई भैयालाल जीके साथ हुई थी। जब मेरी अवस्था १८ वर्षकी थी तब मेरे पतिका स्वर्गवास हो गया। मै उनके वियोगमें इतनी खिन्न हुई कि एक कुएँ पर जाकर प्राण

त्यागनेको तैयार हो गई। परन्तु तुरत सम्भल गई, और आकर भगवान्‌के समक्ष इस पापका यह प्रायश्चित् लिया कि आ-जन्म एक बार भोजन करूँगी, भोजनके बाद दो बार पानी पीऊँगी, अमर्यादित वस्तु भक्षण न करूँगी, आपकी पूजाके बिना भोजन नही करूँगी, रजोदर्शनके समय भोजन नही करूँगी, विशेष बाधा होनेपर केवल जलपान कर लूँगी, पतिकी सम्पत्तिको धर्म-कार्यमें खर्च करूँगी और अष्टमी चतुर्दशीको उपवास करूँगी।

डेरे पर आकर सासको सम्बोधा कि 'आप खेद न करें। आपकी सेवा मै करूँगी। आप सानन्द धर्म साधन कीजिये। मुझे ही अपना पुत्र समझिये। सिमरा आने पर सभी सहानुभूति करनेके लिये आये। सबसे यही कहा कि—'यह तो सुअवसर है। यदि उनका समागम रहता तो निरन्तर आयु विषय भोगमें जाती। यदि सन्तान हो जाती तो उसके मोहमे पर्याय बीत जाती। आत्म-कल्याणसे वञ्चित रहती। सबसे कठिन ब्रह्मचर्य व्रतका पालन पति-वियोगसे अनायास हो गया है।

मेरे पतिकी जो पचास हजार रुपयेकी साहूकारी थी। उनमें १००) तक जिन किसानोंके ऊपर है, वह सब मै छोड़ती हूँ। तथा सौ रुपयासे आगे जिनके ऊपर है, उसका ब्याज छोड़ती हूँ। आजसे यह नियम लेती हूँ कि जो रुपया किसानोसे आवेगा। उसका संग्रह न करूँगी। धर्म-कार्य और भोजनमें व्यय कर दूँगी। यह सुनकर राजाने भी धनको राज्यमे नही लिया।

तीन दिन पक्ति भोजन हुआ। दूसरे वर्ष शिखरजीकी यात्रा की। इस प्रकार आनन्दसे धर्म-ध्यानमें समय बीतने लगा। इसी बीचमें गणेश प्रसाद मास्टर जतारासे आया। उसे देखकर मेरे स्तनसे दुग्धधारा बह निकली। मुझे लगा मानों जन्मजन्मान्तरका यह मेरा पुत्र ही है। उसी दिन संकल्प कर लिया कि जो कुछ मेरे पास है सब इसका है।

कुछ दिन बाद मैं सिमरा छोड़कर बरुआसागर आ गई, किसानोंके ऊपर जो कर्जा था सब छोड दिया और मेरे रहनेका जो मकान था वह मन्दिरको दे दिया। केवल १०,०००)की सम्पत्ति लेकर सर्राफ मूलचन्द्र जीके यहाँ रहने लगी। वे सौ रुपया ब्याज उपार्जन कर मुझे देने लगे। कुछ दिन बाद सागर आ गई और सिंघई बालचन्दजी सवालनवीसके मकानमें रहने लगी।

३. शास्त्रज्ञता व तत्त्वज्ञता

(१) बाईजीकी आँखमें मोतिया उतर आया था। क्षेत्रपाल (ललित पुर) में एक दिन मन्दिरजी जाते समय गिर गईं। सेठ मथुरा दासजी टड़ैयाने जो देखा तो पश्चाताप करते हुए बोले, 'क्यों बाईजी चोट लग गई ?' बाईजी हँसती हुई बोलीं, 'कोई चिन्ताकी बात नहीं, जो अर्जन किया है, वह भोगना ही पडेगा।'

देखो श्री कार्तिकेय मुनिने श्री कार्तिकेयानुप्रेक्षामें लिखा है, कि जिस जीवके जिस देश और कालमें जिस विधान कर जन्म तथा मरण उपलक्षणसे सुख, दुःख, रोग, शोक, हर्ष, विषाद आदि श्री जीनेन्द्र भगवानने देखा है, वह उस उस क्षेत्र तथा उस उस कालमे उसी विधानसे होवेगा। उसे मेटनेको अर्थात् अन्यथा करनेको कोई समर्थ नही।

श्री कुन्द-कुन्द स्वामीने समयसारके बन्धाधिकारमे लिखा है—'जो यह मानता है कि मै पर की हिंसा करता हूँ या उसे जिलाता हूँ, अथवा पर जीवोंके द्वारा मै मारा जाता हूँ या जिलाया जाता हूँ, वह मूढ है, अज्ञानी है, और ज्ञानी इसके विपरीत है।

निमित्त कारणकी अपेक्षा यह सब व्यवहार है। तत्त्व-दृष्टिसे देखा जाय तो न कोई मारता है ओर न उत्पन्न करता है। यदि द्रव्य-दृष्टिसे विचार करो तब तो सब द्रव्य स्थिर है। पर्याय-दृष्टिसे उदय भी होता है और विनाश भी। यह बात श्री समन्त भद्र स्वामीने भी कही है।

जब इस प्रकार वस्तुकी स्थिति है तब दुःखके समय खेद करना व्यर्थ ही है। क्या आपने श्री समयसार कलशमें नही पढा—'सम्पूर्ण प्राणियोंका मरण जीवन दुख और सुख जो कुछ भी होता है वह सब अपने कर्म विपाकसे होता है। न तो कोई किसीका रक्षक है, न भक्षक है। तुम्हारी जो यह मान्यता है कि हम सब कुछ कर सकते है, यह सब अज्ञानकी महिमा है।

यह जीव अनादि कालसे पर्यायको ही अपना मान रहा है। जो पर्याय पाता है, उसीमे निजत्व कल्पना कर अहंबुद्धिका पात्र होता है, और अहंबुद्धिसे पर-पदार्थमें ममता कर लेता है। जो पदार्थ अपने

अनुकूल हुए उन्हें इष्ट और प्रतिकूल हुए उन्हें अनिष्ट मानकर इष्ट पदार्थों की रक्षामें व्यग्र रहता है।

बाईजीका तत्त्वज्ञान पूर्वक उत्तर सुनकर सेठ मथुरा दासजी दंग रह गए।

(२) जब मै सप्तम प्रतिमाके व्रत लेनेको उद्यत हुआ, तो बाई जीने मुझे समझाया कि सम्यग्दर्शनके बिना व्रत नहीं होते हैं। और वह सम्यग्दर्शन आत्माका वह गुण है, जिसका विकास होते ही हमारी प्रवृत्ति स्वत पूर्वसे परिचमकी ओर हो जाती है। प्रशम संवेग अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि गुणोंका आविर्भाव हो जाता है। यद्यपि अन्य ग्रन्थोंमें तत्त्वार्थ श्रद्धानको इसका लक्षण कहा है, परन्तु पञ्चाध्यायीकारके अनुसार वह वास्तवमें ज्ञानकी पर्याय है।

४. विवेक पूर्ण धर्मज्ञता

[बाई जो धर्मकी मर्मज्ञ थी। न स्वयं रूढियोंको अपनाती थी और न वर्णी जीको अपनाने देती थी। पद-पद पर उनकी अन्धानुसारी वृत्तियोंसे रक्षा करती थीं। स्वयं भी सत्य पथानुगामिनी थी, और उनको भी उसीका पथिक बननेके लिये सदा प्रेरित करती थी।]

(१) [अपनी प्रारम्भिक अवस्थामे मेरी सर्व प्रवृत्तियें धर्मान्धानुकरण मात्र होती थीं। जो मर्जीमें आया छोड़ दिया] एक बार भाद्र मासमें छहों रस छोड दिये। शरीर शक्ति-हीन हो गया। बाईजीने उपदेश दिया कि 'कोई भी काम करो, समतासे करो। शीघ्रता मत करो। जिस कार्यमें आकुलता हो उसे मत करो।'

(२) जब बाईजीको यह पता चला कि मैंने धर्मान्धानुकरणके कारण अपनी माता व पत्नीसे सम्बन्ध विच्छेद कर दिया है, तो डाँटकर कहने लगी, कि संसारमें कोई किसीका स्वामी नही। तुम्हे कौन-सा अधिकार है कि उनके धर्मका परिवर्तन कराते हो ?

(३) जब मैंने सप्तम प्रतिमाके व्रत लेनेका संकल्प किया, तो बाई जीने मुझे सावधान किया कि तेरी प्रकृति अभी उग्र है इसलिये अभी तू व्रत ग्रहण करनेके योग्य नहीं है।

आपने मुझे बताया कि जब तक मिथ्यात्व का अभाव नही हो जाता तब तक कितने भी व्रत संयम व तप आदि क्यों न करो वे मोक्ष मार्गके साधक नही हैं। तुम अभी व्रत लेनेके पात्र नही हो। लोक-भय से ही व्रतों का पालन करोगे। परन्तु जो परिणाम आज है वे फिर न रहेंगे। नाम-मात्रके संयमसे आत्माका सुधार नहीं होता।

४ एक बार बाईजीसे मैने कहा कि जगत मे कोई किसीका नही, इसलिये अब सब कुछ छोडकर त्याग मार्गका अवलम्बन करूँगा। बाईजी बोलीं—"बेटा! बडी प्रसन्नता है, अवश्य करो। पर खेद इस बातका है कि तुम बात बहुत करते हो, और करनेमे कायर हो। मनुष्य वह है कि जो कार्य करनेकी बात मुँहसे न निकाले और अन्य मनुष्य उसके कार्यको देखकर यह अनुभव करें कि इनके इस कार्य करनेका अभिप्राय था।

त्यागी जो होता है, वह किसी से राग-द्वेष नही करता। शान्तचित्त से आत्म-कल्याणके मार्गमे लग जाता है। यदि वास्तवमे त्याग धर्मका स्वाद लेना चाहते हो तो सर्व प्रथम अपने अभिप्रायको निर्मल बनानेका प्रयत्न करो। जब अन्तरंगमें रागकी कृषता होती है तब बाह्य वस्तु तो स्वय छूट जाती है।

५ जब बनारसमें अध्ययन करता था तो एक बार स्याद्वाद विद्यालय में बाईजीके नामसे १०००) का दान लिखा आया, परन्तु डरके मारे बाईजीसे न कह कर उसकी पूर्तिके अर्थ अपने फल खानेके पैसे डाकखाने में जमा करने लगा।

बाईजी को पता चला तो बोली कि ऐसे कब तक पूरे करोगे। १५) मासिक ही तो देती हूँ। ५) मासिक तो १०००) का सूद हो बैठ जाता है। दानकी रकमको ऋण समझो। देनेका भाव जिस समय हो उसी समय द्रव्यको पृथक कर देना उचित है। तत्काल न देनेसे महान अनर्थ को सम्भावना है। सम्यक् विचार कर बोलो और बोलनेसे पहले दे दो। यही सर्वोत्तम मार्ग है।

६ श्री पार्श्वनाथ भगवानकी टोंकपर स्वय व्रत ग्रहण करते समय बाईजीने मुझे उपदेश दिया कि—'बेटा! जिस कालमें जो काम करो, सब तरफसे उपयोग खेंचकर चित्त उसीमें लगा दो। पूजाके समय स्वाध्यायकी चिन्ता न करो।'

७ उसी समय उन्होंने यह भी बताया कि—'धर्म तो आत्माकी निर्मल परिणतिका नाम है। धर्मके नामपर ये जो हम प्रवृत्तियें कर रहे हैं। वे धर्म नहीं हैं, मन वचन कायके शुभ कारण हैं। जहाँ मनमे शुभ चिन्तन होता है, कायकी चेष्टा सरल होती है, वचनोंका व्यापार स्व-परको अनिष्ट नहीं होता, वह सब मन्द कषायके कार्य हैं। धर्म तो वह वस्तु है, जहाँ न कषाय है, और न मन वचन कायका व्यापार।'

८. 'बेटा! जो बात न आती हो उसका उत्तर न दो। यही उत्तर दो, कि हम नहीं जानते। जिसको तुम समझ गए कि गलत हम कह रहे थे, शीघ्र कह दो कि यह बात हम मिथ्या कह रहे थे। प्रतिष्ठाके लिये उसकी पुष्टि मत करो।

५. गृहवासी भी उदासी

बाईजी यद्यपि घरमें रहती थी, कोई प्रतिमा आदि भी नही थी, तथापि उनकी दैनिक चर्या त्यागियो जैसी थी। प्रातःकाल सामायिक करना, उसके बाद शौचादिसे निवृत्त होकर श्री अभिनन्दन स्वामीके दर्शन करना और वही एक घण्टा पाठ करना, पश्चात् वन्दना करके १० बजे निवास स्थानपर आकर भोजनसे निवृत्त हो आराम करना, फिर सामायिकादि पाठ करके स्वाध्याय (प्रवचन) श्रवण करना, अनन्तर शान्तिरूपसे अपने समयकी उपयोगिता करनेमें तत्पर रहना, पश्चात् सायकालकी सामायिकादि क्रिया करना, यदि शास्त्र श्रवणका निमित्त मिल जाय तब एक घण्टा उसमें लगाना। अनन्तर निद्रा लेना।

६. सहिष्णुता व स्वाभिमानता

१. बनारस रहते-रहते ही बाईजीके मस्तकमें शूल वेदना हो गई और इसीके कारण आँखमें मोतिया बिन्दु भी हो गया। हमारा पढना लिखना छूट गया और सन्तोषके साथ बाईजीकी वैयावृत्य करनमें समयका सदुपयोग करने लगे। बाईजीकी धीरता सराहनीय थी। पूजन, सामायिक आदि नित्य-नियममें जितना समय पहले लगाती थी, उससे न्यून एक मिनट भी न लगाना, किसी पर अपनी वेदना प्रगट न होने

देना और सदा हँसमुख रहना, आदि उनके कार्य ज्योंके त्यों चलते रहे।

एक दिन बोलीं—बेटा ! हमको शूलकी वेदना बहुत है, अतः यहाँसे देश चलो। हम श्री बाईजीको लेकर बरुआसागर आ गये। एक साधारणसे आदमीने किसी बनस्पतिकी जड़ लाकर दी और कहा कि इसे छेरीके दूधमें घिसकर लगाओ। उसके लगाने से शिरकी वेदना तो चली गई, परन्तु आँखका मोतिया बिन्दु नहीं गया।

झाँसीमें एक बङ्गाली डाक्टरको दिखाया। उसने कहा कि चिन्ता न करो १५ दिनमें आराम हो जायेगा। हमारी फीस ५०) होगी। तथा कमरा कम्पाउण्डर आदिका कुल मिलकर ९०) और लगेंगे। सर्राफजीने स्वीकार कर लिया। परन्तु डाक्टरने एक वाक्‌वाण मारा कि सम्पत्ति-शाली होते हुए भी बाईजी ऐसे वस्त्र पहनकर आईं कि जिससे दूसरेको यह निश्चय हो कि इनके पास कुछ नही है। बस इतना सुनते ही बाई-जीने कह दिया—'भैया डाक्टर ! हम आपसे आप्रेशन कराना नही चाहते। अन्धा रहना अच्छा, परन्तु लोभी आदमीसे आप्रेशन कराना अच्छा नही। बाईजी वहाँसे ललितपुर चली गई।

शुभ योगसे ललितपुरके बगीचेमें एक अंग्रेज डाक्टर मिल गये। वे सुहृदयताके अवतार थे। अपना परिचय देते हुए उन्होंने बताया, कि 'हम झाँसीके बडे अस्पतालके सिविल-सर्जन है। हम तुम्हारे मोतिया बिन्दुका आप्रेशन कर देंगे।' बाईजीने कहा कि 'मै अस्पतालमे नही रहूँगी। शहरकी परवार धर्मशाला में रहूँगी, जिससे कि नौ बजे भगवानके दर्शन पूजन नित्य कर सकूँ। डाक्टरने कहा—'तुम जहाँ ठहरोगी, मै वही आ जाऊँगा। तुम आज ही झाँसी जाओ, मै भी जाता हूँ।'

हम १२ बजेकी गाड़ीसे झाँसी पहुँच गए। डाक्टरने आप्रेशन किया। वह सफल हुआ, बाईजीको दिखने लगा। इस प्रसंगमें ३२ बार डाक्टरको आना पड़ा। उनके साथ उनका १० वर्षीय बच्चा भी आता था। बाईजी की पापड पूड़ी उसे बहुत स्वाद लगी। वह प्रतिदिन आता और पापड़ पूड़ी माँग कर भी खा लेता। तात्पर्य यह कि बाईजीके साथ उसकी अत्यन्त प्रीति हो गई।

१६) के हिसाबसे ३२ चक्करोंकी फीस ५१२) होते थे। बाईजीने तुरत ५१२) मँगा भेजे और ४०) की मेवा आदि सजाकर थालियोंमें भरकर रखी। अगले दिन डाक्टर साहब आये तो उनको भेंट की, परन्तु डाक्टरने किसी प्रकार भी स्वीकार न किया, और कहा कि तुम्हारे पास केवल १०,०००) हैं, जिनका १००) सूद आता है। उसमें आपका, एक लड़कीका, इस (गणेश प्रसाद) बच्चेका तथा इसकी माँका निर्वाह होता है। ५००) मूलमेंसे निकल जानेपर ५) सूद कम हो जायेगा। जिससे आपके मासिक व्ययमें त्रुटि होगी। यह कहकर सम्मान रखनेके लिये कुछ मेवा और ११) कम्पाउण्डर के लं लिये। और कुछ न लिया। बाईजीकी आँखोंमें हर्षके अश्रु छलक पड़े और कण्ठ रुद्ध हो गया।

२ वि०संबत् १९७६ में मूडविद्रीकी यात्राको गए थे। कारकल पहुँचे तो छ मील बैलगाडीमें चलना पड़ा। मार्गमें बाईजी लघु-शंकाके लिये नीचे उतरी। चार बजे रात्रिका समय था। उतरते ही बैलने बड़े वेगसे लात मारी, जिससे बाईजीकी मध्यमा उँगली फट गई। हड्डी दिखने लगी। रुधिरकी धारा बह उठी। परन्तु बाईजीने आह न की। केवल इतना कहा—'सेठ कमलापतिजी ! बैलने अँगुलीमे लात मार दी। प्रातः होने पर जब बाईजोसे कहा कि, 'अस्पतालमें चलकर दवाई लगवा लीजिये' तो बाईजीने यह कहकर निषेध कर दिया, कि हम अस्पतालकी दवाईका प्रयोग नही करेंगे, क्योकि उसमें ब्राण्डीका जुज रहता है। उन्होने अण्डे (उपले) की राखको छानकर घीमें मन्थन कर लगाया। तीन मासमें अंगुली अच्छी हुई, परन्तु उन्होंने अस्पतालकी दवाईका प्रयोग नहीं किया।

७ सुहृदयता व उदारता

१ सागरकी ही घटना है। एक बिल्लीका बच्चा था। उसकी माँ मर गई। मैने उसे दूध पिला कर पाल लिया। बाईजी भोजन करती थी तब ही वह आ जाता था, और जब तक बाईजी उसे दूध रोटी नहीं दे देती थीं तब तक नही भागता था। जब बाईजी बरुआसागर या कही अन्यत्र जाती थीं, तब वह एक दिन पहलेसे भोजन छोड देता था, और जब तांगा पर बैठ कर स्टेशन जाती थी, तब वहीं खड़ा रहता था। तांगा जानेके बाद वह धर्मशाला छोड देता था, और जब बाईजी

आ जाती थी, तब पुनः आ जाता था। अन्तमें जब वह बीमार हुआ तब दो दिन तक उसने कुछ भी नही लिया। और बाईजीके द्वारा नमस्कार मन्त्रका श्रवण करते हुए उसने प्राण विसर्जन किये।

२. बाईजी जो चीज हमको भोजनमें देती थीं, वही नाई धोबी मेहतरानी आदिको देती थीं। उनसे यदि कोई कहता तो साफ उत्तर देती थी कि महीनों बाद त्यौहारके दिन ही तो इन्हें देती हूँ। खराब भोजन क्यों दूँ। आखिर ये भी तो मनुष्य हैं।

३. एक बार मैं बनारस विद्यालयके लिये बाईजीके नामसे एक हजार रुपया लिख आया, पर भयके कारण बाईजीसे कहा नही। बाईजी मुझे आठ दिनमें तीन रुपया फल खानेके लिये देती थी। मैं फल न खाकर उन रुपयोको पोस्ट आफिसमें जमा कराने लगा। बाईजी को पता लगा तो कहने लगी कि 'जब तुम्हे हमारा भय था तब दान देनेकी क्या आवश्यकता थी। अभी जाओ और एक हजार रुपया आज ही भेज दो। अब आगेके लिये हमारे पास जो कुछ है वह सब तुम्हे देती हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो सो करो। भयसे मत करो। आजसे हमने इस द्रव्यकी ममता त्याग दी।

४. एक दिनकी बात है—एक लकड़ी बेचने वाली आई। उसकी लकड़ी चार आनेमें ठहराई, मेरे पास अठन्नी थी। बाकी पैसे उसके पास न थे। मैने कहा, 'आठ आना ही ले जा।' उसके शरीर पर जो धोती थी वह बहुत फटी हुई थी। मैं ऊपर गया। वहाँ बाईजीकी रोटी बनाने की धोती सूख रही थी, वही पर चार सेर गेहूँ रक्खे थे। दोनों वस्तुएँ लाकर उसे दे दीं। बाईजी मन्दिरसे आईं। दीप चन्द्रजीके मुखसे यह सुनकर खुश हुईं और कहने लगी कि धोती देनेका रञ्ज नहीं, किन्तु दूसरी दे देते। गेहूँ भी दूसरे दे देते। अब जब धोती सूखेगी तव रोटी बनेगी।

८. व्रतारोपण

सम्मेदशिखर श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंकपर पूजा करके बाईजी इतनी आनन्द निमग्न हो गईं कि पुलकित वदन होकर गद्‌गद् स्वरमे हमसे कहने लगीं कि 'भैया ! हमारी पर्याय तीन महीनेकी है, अतः तुम हमे दूसरी प्रतिमाके व्रत दो। मैने कहा 'बाईजी ! मै तो आपका बालक

हूँ। आपके उपकारोंको आजन्म विस्मरण नहीं कर सकता। आपका समागम न होता तो न जाने मेरी क्या दशा होती। आपके समागमसे मेरी कषाय मन्द हुई, मैने द्रव्य सम्बन्धी व्यग्रताका कभी अनुभव नही किया, दान देनेमें मुझे संकोच नहीं हुआ। इसलिये मैं तो स्वयं आपको गुरु मानता हूँ।

तब मुझे कुछ आवश्यक उपदेश देकर बाईजीने स्वयं श्री पार्श्वनाथ स्वामीकी टोंकपर द्वितीय प्रतिमाके व्रत लिये और यह भी व्रत लिया कि जिस समय मेरी समाधि होगी उस समय एक वस्त्र रखकर सबका त्याग कर दूँगी—क्षुल्लिका वेषमें ही प्राण विसर्जन करूँगी। यदि तीन मास जीवित रही तो सर्व परिग्रहका त्याग कर नवमी प्रतिमाका आचरण करूँगी। १८ वर्ष मे वैधव्य अवस्था हो चुकी थी। तभी से मेरे एक बार भोजनका नियम था। अब आपके समक्ष विधि-पूर्वक उसका नियम लेती हूँ।

९. समाधि-मरण

बाईजीका स्वास्थ्य प्रतिदिन शिथिल होने लगा। मैने डाक्टरको दिखानेका आग्रह किया तो बाईजीने कहा—'भैया! मै शिखरजीमे प्रतिज्ञा कर आई हूँ कि कोई भी सचित्त पदार्थ नही खाऊँगी। फल आदि चाहे सचित्त हो चाहे अचित्त हों, नही खाऊँगी। गेहूँ, दलिया, घी और नमकको छोड़कर कुछ न खाऊँगी। दवाईमें अलसी, अजवाइन और हर्र छोड़कर अन्य कुछ न लूँगी।

उसी समय उन्होने शरीरपर जो आभूषण थे वे उतार दिये, बाल कटवा दिये, और एक बार भोजन और एक बार पानी पीनेका नियम कर लिया। पन्द्रह दिन बाद जब मन्दिर जानेकी शक्ति न रही, तब हमने एक ठेला बनवा लिया, उसीमें उनको मन्दिर ले जाते थे। पन्द्रह दिन बाद वह भी छुट गया। प्रातःकाल मन्दिरसे अष्ट-द्रव्य लाते, और बाईजी घर पर ही एक चौकीपर बैठे-बैठे पूजन करती थी।

मैं ९ बजे दलिया बनाता था और बाईजी दस बजे भोजन करती थीं। एक मास बाद आध छटाँक भोजन रह गया। फिर भी उनकी श्रवण शक्ति ज्यों की त्यों थी। श्वास रोगके कारण बाईजी लेट नही

सकती थीं। केवल एक तकियाके सहारे २४ घण्टा बैठी रहती थीं। परन्तु बाईजीने कभी 'हाय' आदि शब्द उच्चारण नही किये। बाई जीको निद्रा नही आती थी। केवल रात्रिको दो बजे बाद कुछ आलस्य आता था। हम लोग रात्रि दिन उनकी वैयावृत्यमें लगे रहते थे।

जब आयुके दस दिन रह गए तब बाईजीने एकान्तमें मुझसे कहा कि—'हमने तुम्हें चालीस वर्ष पुत्रवत् पाला। इस दीर्घ कालमें हमसे यदि किसी प्रकारका अपराध हुआ हो तो उसे क्षमा करना। मैं रुदन करने लगा। हिलहिली आने लगी। उन्होंने मुझे ऊपर भेज दिया। मेरे बाद मुला बाई आई फिर शान्ति बाई आई और फिर सिंघईजी आए। सभी दो चार मिनट कुछ सुनानेके पश्चात् रोने लगते थे, और बाईजी उन्हें बाहर भेज देती थी। बाईजीने कहा—'आप लोगोका साहस इतना दुर्बल है कि आप किसीकी समाधि करानेके पात्र नहीं है।

बाईजीका साहस प्रतिदिन बढता गया। इसके बाद बाईजीने केवल आधी छटाँक दलियेका आहार रक्खा और जो दूसरी बार पानी पीती थी, वह भी छोड दिया। जब आयुके दो दिन रह गए तब दलिया भी छोड़ दिया, केवल एक बार पानी रक्खा और जिस दिन आयुका अवसान होने वाला था, उस दिन जल भी छोड़ दिया।

उस दिन उनका बोल बन्द हो गया। तीन माससे लेट नहीं सकती थी, उस दिन पैर पसार कर सो गईं। मै समझा कि आज बाईजीको आराम हो गया, और वर्णी मोतीलालजीके मना करने पर भी निश्चिन्त सा हो ग्रामके बाहर घूमने चला गया। वहाँसे सामायिक करके मन्दिर चला गया। रात्रिको ९ बजे लौटा तो देखा कि लोग समाधि-मरण आदिका पाठ पढ़ रहे हैं। बाइजीने मोतीलालजीसे कहा कि 'अब हमको बैठा दो। बाईजीने दोनों हाथ जोड़े और 'ॐ सिद्धाय नम' कहकर प्राण त्याग दिये।

१०. पंक्ति भोजन

तीन दिनके बाद ललिता बोली—'हम बाईजीका मरण-भोज करेगे।' मैने कहा—'अब यह प्रथा बन्द हो रहो है।' वह बोली—'ठीक है परन्तु हम तो उन्हीके स्मरणके लिये उन्हीका धन भोजनमे लगाते

है। आपके पास जो था वह स्याद्वाद विद्यालयको दान कर चुके। अब हमारे पास जो है, उसे लगावेंगे।'

ललिताने एक हजार मनुष्योंका भोजन बनवाया और बारहवें दिन खिलाया। सागर विद्यालय व अनाथालयके छात्रों व बालक बालिकाओं को भी भोजन दिया। जितने माँगने वाले (भिखारी) आये उन सबको भोजन दिया। पश्चात् जो बचा उसे पल्लेदारोंको दे दिया, फिर भी जो बचा वह बाईजीका काम करनेवाली औरतोको दे दिया। ●

२. श्री सिंघई कुन्दन लालजी

•

पूज्य माता चिरौंजा बाईजीके पश्चात् सागर निवासी सम्मानीय सिंघई श्री कुन्दन लालजीका उपकार भुलाया नही जा सकता। आपको पूज्य-श्रीके आश्रय दाता कहें तो अतिशयोक्ति न होगी। पूज्य-श्री वर्णीजी आपको बड़े भैया कहते थे। कारण केवल यही है कि सिंघईजी वर्णीजीसे तीन वर्ष बड़े थे। परन्तु सिंघईजी उनको ऐसा मानते थे, जैसे कि वह ही उनसे बड़े हों। पूज्य-श्रीके अनन्य भक्त होनेके कारण सिंघईजी उनकी कोई भी आज्ञा टालते नहीं थे।

एक बारके कहने मात्रसे श्री सिंघईजीने सागरमें सरस्वती भवन और मानस्तम्भ तथा द्रोणगिरिके मन्दिरमे सुन्दर वेदीका निर्माण करा दिया। ५-५ हजारकी रकम सिघईजीके नाममे उनसे बिना पूछे ही वर्णीजी लिखा देते थे। सिघईजी कभी ना नहीं करते थे। पूज्य श्री वर्णीजीकी जीवन गाथाका प्रत्येक पृष्ठ उनकी उदारता, धार्मिकता व दयार्द्रताके गुणगानसे भरा पड़ा है।

बहुत सस्ता समय था। एक रूपयेमें एक मन गेहूँ आते थे। खानेके लिए घी और दूध भरपूर मिलता था। देहातमें दूध और दहीकी बिक्री नही होती थी। ऐसे सुख स्मृद्धि और शान्तिके समय वि० सं० १९२८ के ज्येष्ठ कृ० ९ शनिवारको श्री सिंघईजीका जन्म हुआ। आपके पिता श्री सिंघई कारेलालजी और माता श्री सिंघैन उद्योती बाईजी सागरके

जैन गृहस्थ परिवारोंमें साधारण परिस्थितिके होते हुए भी अपनी धार्मिकता, सच्चरित्रता एवं परोपकारिताके कारण आदर्श गृहस्थ माने जाते थे।

सिंघईजी अपने दो छोटे भाइयो और एक बहनके बीच सबसे बडे थे। भाइयोंमें से एक श्री रज्जी लालजी थे। जिन्होंने सदा देशकी मौन सेवा की, और दूसरे श्री नाथूरामजी थे जो अच्छे कुशल व्यापारी और धर्मात्मा थे। आपका बनाया हुआ १० हजार रुपयेका चान्दीका विमान सागरमे बेजोड है। श्री सिंघईजीको केवल एक ही पुत्र था जिसका नाम नन्हे लाल था। सिंघईजीका इसके साथ प्रगाढ प्रेम था, परन्तु अधिक दिन न जी सका। सागरमे प्लेगकी महामारी फैली, और वह उसको चपेटमे आकर सिघईजीको विरहका सन्ताप दे स्वर्ग सिधार गया। आपको दो पुत्रियाँ भी थी—एक श्रीमती सौ० गुलाब बाईजी थी जो सागरके प्रतिष्ठित धार्मिक एवं कुशल व्यापारी श्रीमान् बालचन्दजी मलैयाके घरकी शोभा थी, और दूसरी थी श्रीमती सौ० बहन तारा बाईजी, जिनका विवाह श्री चौधरी बाबूलालजी बोरिया वालोंके साथ हुआ था।

आपत्तियो और विपत्तियोके सागरको पार करता हुआ सागरका यह मनस्वी मानव मानवताके हृदय सागरके बीच एक ऐसे टापू पर जा पहुँचा जहाँसे उसने आपत्तियोंके भ्रममे फँसने वाले अनेक लोगोको हस्तावलम्बन देकर सुखके मार्ग पर पहुचाया।

छ. वर्षकी उम्रमे आपने पढना प्रारम्भ किया। ४ कक्षा हिन्दी और एक कक्षा अग्रेजी पढी। इसी बीच सोनागिरि, शिखरजी, गिरिनारजी आदि समस्त जैन तीर्थोंकी यात्राके लिये सकुटुम्ब जाना हुआ। जिसमें ५ मास बीत गए और पढाई बन्द हो गई। किरानाकी दुकान को। १६ वर्षकी अवस्थामें शादी हो गई। तत्पश्चात् घी तथा गल्लाकी दुकान करली। पिताजीसे २००) की पूँजी ली थी, वह कमाकर उन्हे वापस कर दी। और व्यापारमे अच्छी वृद्धि की।

पहले आप शिवकरण बलदेवजीकी हवेलीमे रहते थे। वह छोटे भाई नत्थालालको देदी। एक मकान मझले भाई रज्जीलालजीको भी बनवा दिया, परन्तु कुछ कौटुम्बिक कलह हो जानेके कारण आपको वह मकान

छोडकर गल्लाबाजार चले जाना पडा। वहाँ एक खण्डहर लिया और उसे ही वर्त्तमान मकानका रूप दिया।

घरसे निकले तब आपकी दशा बडी दयनीय थी। रात्रिके १२ बजे भैया (इकलौता पुत्र नन्हेलाल) को लेकर पीछे-पीछे उसकी माँ चल रही थी और आगे आगे आप स्वयं लालटेन लेकर चल रहे थे। कुटुम्बसे अलग होकर आपको बडा दुःख हुआ। पुत्रकी मृत्युका दुःख उन्हींके शब्दोंमें इसप्रकार व्यक्त किया जा सकता है, "यह बडा बाजारका मकान भैया (पुत्र) के विवाहके लिये बनवाया था।" कहते कहते सिंघईजीकी आँखोंसे आँसूकी झडी लग गई। "भैया गौर वर्ण थे। आशा थी कि जैन धर्मकी सेवा करता हुआ हमारी कुल परम्पराको अक्षुण्ण रक्खेगा। परन्तु भैया! भावना कब किसकी पूर्ण हुई? कौन शाश्वत रह सका?" लडखडाती हुई बोलीमें इतना कह कर आप फूट फूट कर रोने लगे।

धार्मिक प्रकृतिके व्यक्ति होनेके कारण आप अत्यन्त दयालू व उदार तो पहलेसे ही थे, परन्तु उनके इकलौते पुत्रके वियोगने उनकी करुणाके प्रवाहको और भी वेगवान् बना दिया। ता० २० जुलाई १९५७ आकाश मेघाच्छन्न था। सिंघईजी अपने विश्रान्ति गृहमें आग तापते बैठे थे। उनकी स्पष्ट मधुर वाणीमें णमोकार मन्त्र सुनाई पड रहा था। सागरमें जोरोंसे पडनेवाले इन्फ्लुएञ्जा तथा हैजेसे मरने वालोंकी करुण कथा सुनकर वे प्रार्थना कर रहे थे।

अज्ञात दान तो न जाने आपने कितने बार दिया है। रातको दुकानसे चले, एक हाथमें लालटेन और कन्धेपर कपडोंका गट्ठा। ठंडमें जो दीन दुखी सडक किनारे या पेडकी छायामें ठिठुरा पडा दिखाई दिया—रजाई, कम्बल, चद्दर, जो जैसा दिखा, चुपचाप उढा दिया और घर वापस आ गए। पाने वाले गरीब जानते थे कि रात्रिमें भगवान आये और कपडे बाँट गए। बेचारोंको क्या पता कि जहाँ प्रेम, उदारता, दयालुता और निर्लोभता आदि गुण होते हैं, वहीं भगवान होते हैं।

आपका शिक्षा-प्रेम तो इतना विशाल था कि द्रोणगिरि और सागरमें चलनेवाले दो ज्ञान-कल्पतरुओंके संरक्षणका प्रमुख भार अन्तिम समय तक आपके ऊपर निर्भर रहा। प्रान्तकी अनेक संस्थाओंको यथा समय सहायता करते रहे। सागर विद्यालयके सम्बन्धमें सिंघईजीके

अपूर्व सहयोगका उल्लेख करते हुए वर्णीजी अपनी जीवन गाथामें लिखते है कि । अक्षय तृतीया वि० सं० १९६५ को पाठशाला खोलनेका मुहूर्त निश्चित किया गया । इसी समय श्री सिंघई कुन्दन लालजीसे मेरा घनिष्ट परिचय हो गया । आप मुझे अपने भाईके समान मानने लगे । मासमें प्रायः १० दिन आपके घर भोजन करना पड़ता था ।"

जैसे शिक्षा प्रेमी थे, वैसे ही धर्म-निष्ठ भी थे । कोई भी जन तीर्थ नही जिसकी आपने सकुटुम्ब यात्रा नही की । कई मन्दिरोका जीर्णोद्धार कराया । धर्मशाला, जिन-चैत्यालय, मानस्तम्भ व वेदी निर्माण, तथा कलशारोहण आदि कार्य आपने इतनी शानके साथ सम्पन्न कराये कि लोग उन्हे भूल नही सकते । पूज्य वर्णीजी स्वय उनके विषयमें अपने शब्दोंमें लिखते हैं—

"सिंघई कुन्दनलालजी सागरके सर्वश्रेष्ठ सहृदय व्यक्ति हैं । आपका हृदय दयासे सदा परिपूर्ण रहता है । जब तक आप सामने आये हुए दुःखी मनुष्यको शक्त्यनुसार कुछ दे न लें तब तक आपको सन्तोष नही होता । न जाने आपने कितने दुःखी परिवारोंको धन देकर, अन्न देकर, वस्त्र देकर, और पूँजी देकर सुखी बनाया है । आप कितने ही अनाथ छोटे-छोटे बालकोंको जहाँ कहीं से ले आते है और अपने खर्चसे पाठशालामें पढ़ाकर उन्हे सिलसिलेसे लगा देते है । आप प्रति दिन पूजन स्वाध्याय करते है, अतिशय भद्र परिणामी है, प्रारम्भसे ही पाठशालाके सभापति होते आ रहे है और आपका वरद हस्त सदा पाठशालाके ऊपर रहता है ।

३. आ० १०८ श्री० सूर्य सागरजी

●

दिगम्बर जैन समाजमे १०८ आचार्य श्री सूर्य सागरजीको कौन नही जानता। पूज्य वर्णीजी आपको अपने गुरुके समान मानते थे तथा हृदयमें उनके प्रति अत्यन्त भक्ति रखते थे, जो कि उनके प्रति लिखे गए आपके पत्रो परसे व्यक्त होती है।

आचार्य-श्रीका जन्म कार्तिक शु० ९ शुक्रवार वि० सं० १९४० को गवालियर रियासतके शिवपुर जिलान्तर्गत पेमसर ग्राममे हुआ था। बाल्यपनका नाम हजारीमल्ल था। पिताके सहोदर भाई बलदेवजी झालरापाटन वालोंके यहाँ आपका लालन पालन हुआ। बादमे उन्हीके यहाँ दत्तक पुत्र हो गए।

विवाह हो जानेपर भी बचपनसे ही धर्माभिरुचि होनेके कारण सं० १९८१ मे एक स्वप्नके फलस्वरूप आप संसारसे विरक्त हो गए और इसी वर्ष आसौज शु० ६ को इन्दौरमे आचार्य श्री शान्ति सागरजी महाराजके पास ऐलक पदकी दीक्षा ग्रहण कर ली। दीक्षाका नाम सूर्य सागर रखा। कुछ ही दिनो पश्चात् मगसिर कृ० ११ को मुनिपदकी भी दीक्षा ले ली और कुछ कालमे ही आचार्य पदपर प्रतिष्ठित कर दिये गए।

आप स्वभावके निर्भीक व स्वतत्र विचारक थे। उत्तर भारतमे सर्वाधिक प्रतिष्ठा थी। आचार विचारमे मूल परम्पराकी आपने जीवनके अन्तिम क्षण तक रक्षा की। यद्यपि प्रारम्भिक शिक्षा हिन्दी तक सीमित थी, परन्तु स्वाध्याय और अध्ययनके द्वारा आपने अपने ज्ञानको खूब बढाया और कई ग्रन्थोकी रचना की।

अन्तमे जीवनको नश्वर जान डालमिया नगरमे समाधि ले ली। वहाँ नगरके बाहर दाह-सस्कारके स्थानपर प्रसिद्ध उद्योगपति शाहू शान्ति प्रसाद जी द्वारा निर्मित इनकी संगमरमरकी भव्य समाधि बनी हुई है। ●

४. पूज्य बाबा० श्री भागीरथ दासजी वर्णी

•

श्रद्धेय बाबा भागीरथ दासजीका जन्म मथुरा जिलेके पण्डापुर ग्राममे वि० स० १९२५ को हुआ था तीन वर्षकी आयुमे पिताका और ११ वर्ष की आयुमे माताका देहावसान हो जानेपर आप आजीविकाके लिये दिल्ली चले गए। जन्मसे वैष्णव थे, परन्तु दिल्लीमे एक जैन बन्धुके सम्पर्कसे ज्ञान सम्पादन करनेके कारण, तथा किसी समय पासके जैन मन्दिरमे से आनेवाले जैन रामायण पद्मपुराणके कुछ शब्द कानोमे पड जानेके कारण आप जैन धर्ममे दीक्षित हो गए।

धीरे-धीरे प्रपञ्चसे निवृत्त होते गए और कुछ काल पश्चात् आपने विधिवत् ब्रह्मचर्य प्रतिमाकी दीक्षा ले ली। आगे चलकर आप दसवी प्रतिमाके व्रत पालने लगे। आपका सयमी जीवन अत्यन्त श्लाघ्नीय रहा है। निर्वाहके लिये केवल दो चादर और दो लंगोटे मात्र ही परिग्रह रखते थे। तथा मीठे और नमकका आजीवनके लिये त्याग कर दिया था।

स्याद्वाद विद्यालयके संस्थापकोमे ये प्रमुख थे। अधिष्ठाता पद पर रह कर कई वर्षोंतक आपने इस संस्थाकी सेवा की है। पूज्य वर्णीजी इन्हीकी अध्यक्षतामें विद्याध्ययन करते रहे तथा इन्हे अपना उपकारी व धर्म गुरु मानते रहे। यदि दोनोंको दो शरीर और एक आत्मा कहे तो अत्युक्ति नही होगी। पूज्य वर्णीजीके जीवन पर इनकी गहरी छाप है।

अन्तमें ईशरी आश्रममें ही २६-१-४२ को आपकी सल्लेखना सम्पन्न हुई जिसके विषयसे वर्णीजी स्वयं लिखते हैं—

"बाबाजीका शरीर रुग्ण हो गया। औषधि सेवन नही किया। कृष्णाबाईने अच्छी वैय्यावृत्य की। न जाने क्यों बाबाजी हमसे वैय्यावृत्य नही कराते थे। जिस दिन आपका देहावसान होने लगा उस दिन दस बजे तक शास्त्र स्वाध्याय सुना। सामायिक पश्चात् हमने उठकर देखा तो बाबाजी भूमिपर एक लंगोटी लगाए पड़े हुए है। आपकी मुद्रा देखनेसे ऐलकका स्मरण होता था। हम लोग बाबाजीके कर्णोमे णमोकार मन्त्र कहते रहे। पाँच मिनट बाद आँखसे एक अश्रु बिन्दु निकला, और आप सदाके लिए चले गए।" ●

५. १०५ क्षु० श्री मनोहर लालजी वर्णी

•

आपका जन्म कार्त्तिक कृ० १० वि० सं० १९७२ को झाँसी जिलेके दुमदुमा ग्राममें हुआ था। जन्मका नाम मगनलाल तथा जाति गोलालारे है। प्रायमरी शिक्षाके पश्चात् संस्कृत शिक्षाका विशेष अभ्यास करनेके लिए सागर आये और वहाँके विद्यालयमे रहकर ही न्यायतीर्थकी परीक्षा पास की और शोलापुरमे 'शास्त्री' की। प्रकृतिसे भद्र देख वहाँ पर इनका नाम मनोहरलाल रखा गया।

आपके विषयमे स्वय वर्णीजी ऐसा लिखते है—"जब मै जबलपुरमे था तब वहाँ मेरी ब्र० मनोहरलालजीसे भेंट हुई। आपके क्रमश: दो विवाह हुए थे पर दोनो ही पत्नियोका वियोग हो जानेपर आप संसारसे उदास हो गए। अपने छोटे भाईके पास सब परिग्रह छोडकर केवल दो हजार रुपयेका परिग्रह रखा। पीछे उसे भी बरुआसागरके विद्यालयमें दान देकर तथा ५००) श्री मूडबिद्रीकी यात्राके लिये रख अष्टमी प्रतिमाके धारी हो गए। "पीछे वर्णीजीसे ही आपने क्षुल्लकके व्रत ग्रहण कर लिये। वर्तमान मे आप सहजानन्द तथा छोटे वर्णीजीके नामसे पुकारे जाते है।

आपका प्रवचन बहुत रोचक होता है, श्रोता गद्गद् हो जाते है। आपका स्वभाव अत्यन्त शान्त है। प्रान्त प्रान्तमें भ्रमण करके आपने अध्यात्म ज्ञानका प्रसार किया। संस्कृत तथा हिन्दी भाषामें अनेकों

गद्यात्मक व पद्यात्मक ग्रन्थोंकी रचना की, जिन्हें समाजमे बहुत अच्छा स्थान प्राप्त है। उनके प्रकाशनार्थ ही आपने 'सहजानन्द ग्रन्थमाला' नामकी एक सस्था स्थापित की है। आजकल आप प्राय· मुजफ्फर-नगर रहते है।

इसके अतिरिक्त आपने सहारनपुरमें एक गुरुकुलकी भी स्थापना की, जो पीछे हस्तनागपुर चला आया और हाई स्कूलके रूपमे परिवर्तित हो गया। उसके विषयमे वर्णीजी स्वयं लिखते हैं—

"जबलपुरमे एक दिन ब्र० मनोहरलालजी मुझसे कहने लगे कि मेरा विचार है कि कुछ परोपकार किया जाये। इसी प्रकार ब्र० चम्पा लालजी और ब्र० सुमेर चन्द्रजीका भी यही विचार हुआ। तीनो रत्न जबलपुरसे प्रस्थान कर हस्तनागपुर गए। वहाँ आप लोगोने उत्तर प्रान्तमे धार्मिक शिक्षाके प्रसारकी आवश्यकता बतलाई, जिसे सुनकर लोग प्रभावित हुए।

वहाँसे आप लोग सहारनपुर गए और वहाँ श्रीयुन् नेमिचन्द्रजी वकील तथा उनके भाई रतन चन्दजी मुख्तार साहबके सहकारमे ला० जिनेश्वर दासजीने १०,०००) स्थायी और २००) मासिक देना स्वीकार किया। जिसके फलस्वरूप गुलाल बाग (सहारनपुर) मे गुरुकुल की स्थापना हो गई। ला० हरिश्चन्द्रजी सहारनपुर वाले इसका सचालन करते है।"

"देहलीकी यात्रामे जब हम मेरठ आये तो शहरके मन्दिरमे श्री मनोहर लालजीने प्रवचन किया। गुरुकुलके लिये सकेत किया तो २०,०००) हो गए। मेरे हस्तनागपुर पहुचनेपर फाल्गुन शु० १२ वि०स० २००५ को वहाँ ही गुरुकुलका उत्सव हुआ। इसकी पूर्तिके लिये ५ लाखकी योजना की गई। अपील करनेपर ५०,०००) का चन्दा हुआ। ३४०००) पहलेका था। कुल ८४०००) हुआ। प० चन्द्र मौलिजीकी अपीलपर मुजफ्फर नगरसे भी १८०००) चन्दा हो गया। जब सहारनपुर आया तो वहाँ एक महानुभावने दो कमरा गुरुकुलके लिए बनानेका वचन दिया। श्री ला० प्रद्युम्न कुमारजी रईसने २९ बीघा जमीन देनेका वचन दिया।"

"दिल्लीसे प्रस्थान करके जब पुनः सहारनपुर आया तो कार्तिक सुदी १४ वि०सं० २००६ को उत्तर प्रान्तीय गुरुकुलका उत्सव हुआ, किन्तु अपीलमें विशेष सफलता न हुई, केवल सात आठ हजार रुपया आया। इसका मूल कारण यह है कि प्रान्तमें जितने जैन लोग है सबकी प्रवृत्ति (अपने बच्चोंको) अंग्रेजी पढ़ानेकी है। प्रतिपदाको प्रात काल मण्डपमें प्रवचन हुआ। मनुष्योंका समुदाय अच्छा था। गुरुकुलको कुछ चन्दा भी हो गया।"

"हस्तनागपुरमे गुरुकुलका नवीन भवन बनकर तैयार हो गया था। अत मगसिर बदी २ को ९ बजे उसका उद्घाटन हुआ।" ●

६—अन्तेवासी

•

पूज्य श्रीकी सरलता, सहृदयता, सच्चरित्रता तथा सत्य व्यवहारता के प्रति क्या युवा व क्या वृद्ध, क्या स्त्री और क्या पुरुष, सभी नतमस्तक हो जाते है, तथा अन्तर्हृदयसे उनके सान्निध्यमे शान्ति पूर्वक धार्मिक जीवन यापन करनेकी सहज भावना करने लगते है। सभी तन मन वचनसे आपके चरणोंकी सेवा करना आप सौभाग्य मानते है। अत जहाँ भी आप जाते थे वहाँ ही अन्तेवासी उत्पन्न हो जाते थे। भरसक साथ रहते थे और साथ न रहनेपर पत्र व्यवहार द्वारा सम्पर्क बनाये रखते थे। पाठकोंके परिचयके लिये उनमेंसे कतिपयका उल्लेख यहाँ किया जाना आवश्यक है।

१. क्षु० १०५ श्री मनोहर लालजी वर्णी

इनका परिचय पहले ही पृथक्से दिया जा चुका है।

२. क्षु० १०५ श्री पूर्ण सागरजी

आप जिला सागरके अन्तर्गत रामगढ (दमोह) के रहने वाले हैं। जन्मतिथि आश्विन वदी १४ वि० सं० १९५५ है। प्रारम्भिक शिक्षा प्राइमरी तक हुई है और महाजनी हिसाब किताबका अच्छा अनुभव है। विवाहके अनन्तर सिवनीके सेठ वृद्धिचन्दजीके यहाँ कार्य करने

लगे। पत्नी-वियोगके पश्चात् १०८ आ० श्री सूर्य सागरजी महाराजके शिष्य होकर गृह त्यागीका जीवन बिताने लगे। पश्चात् दीक्षा ग्रहण कर ली। अपना कर्त्तव्य पालन करनेमें पूर्ण निष्ठावान् हैं।

आपने दिल्लीमे एक केन्द्रीय महा-समितिकी स्थापना की है और उसके द्वारा अन्य संस्थाओंकी सहायता करते रहते हैं।

३. क्षु० १०५ श्री स्वरूपानन्दजी

आप खतौलीके रहने वाले थे। कौटुम्बिक नाम 'खिचौडीमल' था। इनके विषयमे स्वय वर्णीजी लिखते हैं—"दिल्ली यात्राके मध्य मुरारमे चातुर्मास हुआ। ला० खिचौडीमलजी साहब बराबर दो मास रहे। आप निरन्तर तीन पात्रोको भोजनदान देकर भोजन करते थे। दानशूर, सयमी व परोपकारी है। आप व्यापार नही करते। कुछ रुपया है, उसीके व्याजसे निर्वाह करते है। बनारस तथा सागर विद्यालयकी निरन्तर सहायता करते है। आपने अपने भानजेके पाणिग्रहणमे २५००) का दान किया तथा विवाह नवीन पद्धतिमे किया। मैं जब खतौली गया तो आपका अधिक समय मेरे पास ही जाता था।"

ईशरी आनेपर आपने वर्णीजीसे ही क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ली और सवारीका त्याग करके आश्रममे ही रहने लगे। 'स्वरूपानन्द' यह आपका दीक्षावस्थाका नाम है। आषाढ कृ० ७ स० २०२६ को समाधि-पूर्वक आपने आश्रममे ही देह त्याग किया।

४. ब्र० दीपचन्दजी वर्णी

माघ शु० ५ वि० स० १९३६ को होशंगाबाद जिलेके हरसिंहपुर नगरमे आपका जन्म हुआ। हिन्दीमें नार्मल तक तथा इग्लिशमे मिडिल तक शिक्षा प्राप्त की। अभ्यास द्वारा चित्र कला और सिलाई आदिमें तथा ब्रह्मचारी होनेके पश्चात् धर्मशास्त्रमे इन्होने विशेष दक्षता प्राप्त की।

आपके क्रमशः दो विवाह हुए थे। दोनो ही पत्नियोंका वियोग हो जानेपर आप कुछ दिन तो अपने पिताजीके साथ व्यापार करते रहे और तत्पश्चात् शिक्षकका कार्य करने लगे। वि० स० १९६३ में आपने

१०५ ऐलक पन्नालालजीके पास ब्रह्मचर्य व्रतकी दीक्षा ले ली और कुछ काल पश्चात् पूज्य बाबा भागीरथ दासजीके पास ब्रह्मचर्य-प्रतिमा धारण की। आप स्वभावके बड़े निर्भीक तथा कर्त्तव्य-निष्ठ थे। लेखक और वक्ता भी उत्कृष्ट कोटिके थे। समाजकी सेवा करते रहना यही इनकी दिन-चर्या थी। फाल्गुन कृ० १ वि० सं० १९९४ को समाधिपूर्वक आपने इह लीला समाप्त की।

५. ब्र० चम्पा लालजी सेठी

आपका जन्म वि०सं० १९५८ में मन्दसौरमें हुआ। गजवार्तिक पञ्चाध्यायी आदि उच्च कोटिके ग्रन्थोंका अध्ययन किया। धीरे-धीरे गृहवाससे निवृत्त होकर ब्रह्मचर्य प्रतिमा ग्रहण कर ली। पूज्य वर्णीजीकी चर्या व उपदेशोंका आपके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्हीकी सलाहसे बहुत समय तक आप ब्र० सुमेर चन्दजी भगत तथा क्षु० मनोहर लालजी वर्णीके साथ रहकर उत्तर प्रान्तीय गुरुकुल हस्तनागपुरकी सेवा करते रहे। वि० नि० स० २४८० मे कुण्डलपुरमें आपका स्वर्गवास हुआ।

६. ब्र० शीतल प्रसादजी

आपका जन्म ई० सन् १८७९ मे लखनऊमे हुआ था। प्रारम्भमें रुडकी एञ्जीनियरिंग कालेजसे एकाउन्टेन्टशिपकी परीक्षा पास कर सरकारी नौकरी करने लगे थे। सन् १९०४ की महामारीमें पत्नीका देहावसान हो जाने पर आप गृह-कार्यसे विरत रहने लगे। ३२ वर्षकी आयुमे मार्गशीर्ष मास सन् १९११ ई० श्री १०५ ऐलक पन्नालालजीके समक्ष शोलापुरमें आपने ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की।

वैदिक परम्परामे स्वामी दयानन्द सरस्वतीका जो स्थान है, वही आपका जैन समाजमे है। दि० जैन परिषदके संस्थापकोंमें ये प्रमुख थे। बहुत काल तक स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसीके अधिष्ठाता रहे, और अनेक संस्थाओंकी स्थापना की। धर्म प्रचारार्थ आपने लका देशका भी एक बार दौरा किया। पीछे आकर विधवा विवाहका पोषण करनेके कारण ये समाजकी दृष्टिमें कुछ नीचे गिर गए। १० फरवरी सन् १९४२ को समाधिपूर्वक लखनउमे ही आपकी दैहिक लीला समाप्त हुई।

७. ब्र० नेमि सागरजी वर्णी

वि० सं० १९३३ को दक्षिण प्रान्तमे आपका जन्म हुआ। सात वर्ष तक कन्नड़ स्कूलमें शिक्षक रहे और पीछे चार वर्ष कारकल जैन मठके व्यवस्थापक रहे। वि० सं० १९५८ को श्री १०८ ललित कीर्तिजी महाराजके पास ब्रह्मचर्य-प्रतिमा धारण की। बनारस, मोरेना आदिमे रहकर सस्कृत, व धर्म शास्त्रका विशेष अध्ययन किया।

इनके व्यक्तित्वसे प्रभावित होकर वि० स० १९८५ में श्रवणबेलगोलके व्यवस्थापकोने आपको भट्टारकके पदपर प्रतिष्ठित किया, जिसका बडी निस्पृहता व योग्यतासे आपने निर्वाह किया। उदासीन परिणतिके कारण आपने इसका भी त्याग कर दिया और जैन गुरुकुल वज्जे (दक्षिण कन्नड) मे स्वाध्याय और आत्म चिन्तनमें रहते हुए जीवन यापन करने लगे। माघ बदी १५ वि० स० २००७ को ईशरी आश्रममे ही आपकी समाधि सम्पन्न हुई।

८. भगत श्री प्यारेलालजी

आपका परिचय आगे आश्रमके सदस्योंमे दिया गया है।

९. भगत श्री सुमेर चन्दजी

कार्तिक शु० ९ वि० स० १९५३ को आपका जन्म जगाधरी (हरियाना प्रान्त) मे हुआ। स्कूलमे हिन्दी मिडिल तक शिक्षा ग्रहण करनेके पश्चात् आप घरके व्यवसायमें लग गये। वि० स० २००१ में पूज्य वर्णीजीसे आठवी प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। धार्मिक क्षेत्रमे ही नही देशके स्वतत्रता युद्धमे भी आपने सक्रिय भाग लिया था। शरीर और उसकी छायाका जो सम्बन्ध है वही सम्बन्ध पूज्य-श्रीके साथ इनका था।

पारसनाथ रेलवे स्टेशनके पुल परसे गिरकर एक बार आपको चोट आ गई, और वही इनकी मृत्युका कारण हुई। ३१.७.५७ को गिरिडीहमे समाधि पूर्वक आपने देहका त्याग किया।

१०. ब्र० छोटे लालजी वर्णी

पोष शु० १४ वि० स० १९५१ को सागर जिलाके अन्तर्गत नरयावली ग्राममें आपका जन्म हुआ। शिक्षा विशारदतक होनेपर भी स्वाध्याय

द्वारा ज्ञानमे विशेप उन्नति की। अपनी प्रकृतिके कारण व्यापारमें सफल न हो मके। बहुत काल तक सागर विद्यालयके सुपरिन्टेण्डेन्ट रहे। दो माहके शिशुको छोड़कर पत्नीका वियोग हो गया। फलस्वरूप उदास होकर ब्र० प्यारे लालजी भगतसे ब्रह्मचर्य दीक्षा ले ली।

जियागज, लालगोला, धूलिया और अडगाबादमें जैन पाठ-शालाओकी स्थापना कराई। कई वर्ष तक इन्दौर व ईशरी आश्रमोके अधिष्ठाता रहे। व्रती सघके मत्रीपदका भी कार्य किया। पीछे सोनगढ़के प्रति विशेप आकर्पित हो गए।

११. ब्र० श्री मूलशंकर जी देसाई

आप राजकोट (सौराष्ट्र) के रहनेवाले है। श्वेताम्बर परम्पराको त्यागकर आपने दिगम्बर परम्पराको अङ्गीकार किया। आ० श्री० सूर्य सागरजी महाराजसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ली। स्वाध्याय आदि द्वारा आपने ज्ञानमे बहुत उन्नति की। अच्छे वक्ता है। देशमे यत्र तत्र चातुर्मास आदि करके जनतामे धर्म प्रचार करना ही आपका एक मात्र कार्य है। कई ग्रन्थ भी लिखे है। आप बहुत काल पर्यन्त वर्णीजीके सान्निध्यम रहे है।

१२. ब्र० श्री धन्यकुमार जी

जेलर होते हुए भी आप प्रकृतिके अत्यन्त भद्र थे। सर्विससे निवृत्त होकर आप सपत्नीक ईशरी आ गए और दोनों ने ही पूज्यश्रीसे सप्तम प्रतिमा धारण कर ली। आपके विषयमे स्वय वर्णी जी लिखते है—

"कुछ दिनो पश्चात् धन्यकुमारजी भी सपत्नीक यहा (ईशरी) आ गए। आपका निवास-स्थान बाढ् है। आप बहुत ही सयमी है। स्त्री पुरुष दोना ही ब्रह्मचर्य व्रत पालते है। जब दोना साथ-साथ पूजन करते है, तब ऐसा प्रतीत होता है, मानो भाई बहन हों। आपका भोजन बडा सात्त्विक है। आपने कई पुस्तकोंकी रचनाकी है। निरन्तर पुस्तकावलोकन करते रहते है। मेरे साथ आपका बहुत स्नेह है। आपका कहना था कि ईशरी मत छोडो, अन्यथा पछताओगे। वही हुआ।" १९-२-५६ को ईशरी आश्रममे ही आपकी समाधि सम्पन्न हुई।

१३. ब्र० श्री मंगलसेन जी

आपका जन्म कार्तिक कृ० १३ वि० सं० १९४७ को जिला मुजफ्फर-नगरके अन्तर्गत मुबारकपुर ग्राममें हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा मैट्रिक तक हुई। विवाहित होते हुए भी उदासीन जीवन व्यतीत करते थे। वि० सं० १९८१ के माघमें वर्णी जीसे ही सप्तम प्रतिमा ग्रहण की। वेदी प्रतिष्ठा आदि अनेक कार्य कराए। पूज्य वर्णीजी महाराजसे आपका पुराना सम्बन्ध है। आपने रुग्नावस्थापन्न वर्णी जीकी सेवामें दिन रात एक कर दिया।

१४. ब्र० श्री नाथूराम जी

वि० सं० १९६९ को आपका जन्म मध्यप्रदेशके दरगुवाँ ग्राममें हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा विशारद तृतीय खण्ड तक हुई। घरमें साहूकारीका व्यापार था, पर गृह-कार्यमें आपका चित्त नही लगता था। वि० सं० २००२ को पूज्य श्रीसे सप्तम प्रतिमाके व्रत ग्रहण कर आप उनके साथ ही रहने लगे। अन्तिम समय तक छाया वत् ये उनके साथ रहे। उनकी वैयावृत्त्य तथा सेवा सुश्रुषामें निरन्तर लगे रहना ही एकमात्र आपकी स्वाध्याय, सयम तथा तप रहा है।

१५. ब्र० श्री हुकुम चन्द जी

कार्तिक कृ० ९ वि० सं० १९५२ को आपका जन्म मेरठ जिलाके अन्तर्गत सलावा ग्राममें हुआ। ३५ वर्षकी आयुमें पत्नीका वियोग हो जानेपर आपने पूज्य-श्रीसे ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत ग्रहण कर लिये। काग्रेस द्वारा देश सेवा में भी आपने भाग लिया है। कुछ दिनों नगर काग्रेसके मत्री भी रहे है। हस्तनागपुरमें उत्तर प्रान्तीय गुरुकुलकी स्थापना हो जानेपर आप प्राय उसीकी सेवामें दत्त-चित्त रहने लगे।

स्वाध्याय द्वारा समयसार आदि अध्यात्मिक ग्रन्थोंमें तथा षट्खण्डागम आदि सिद्धान्त ग्रन्थोमे आपने प्रवेश पा लिया है। आपकी चित्तवृत्ति अत्यन्त माध्यस्थ सेवाभावी और निरहंकारी है। आपकी प्रेरणासे ही श्री हरष चन्दजी खरखरी वालो की धर्म पत्नी पुष्पा देवीकी सहायतासे हस्तनागपुरमें उदासीन आश्रमकी स्थापना हुई है, जिसका सब कार्य भार आपके ही कन्धो पर है।

१६. ब्र० श्री कमलापति सेठ

लगभग वि० सं० २४१४ में आपका जन्म मध्य प्रदेशके वरायठा ग्राममें हुआ था। जातिके गोलापूर्व थे। प्रथम पत्नीसे एक पुत्र तथा द्वितीयसे दो पुत्र व एक कन्या हुए। सभी सदाचार पूर्वक जीवन यापन करते हैं।

स्वभावसे सरल और धर्मात्मा पुरुष थे। ब्रह्मचर्य प्रतिमाके व्रत स्वीकार करके भी आप घरमें रहते थे। श्री वर्णीजीके प्रति इनका अति अनुराग था। आपका अधिक समय इन्हींके सान्निध्यमें जाता था। फाल्गुन शु० ३ वि० सं०(?) को ईशरी आश्रममें ही आपकी समाधि पूर्वक दैहिक लीला समाप्त हुई।

१७. ब्र० श्री गोविन्दलाल जी

आषाढ शु० १ वि० सं० १९३५ को आपका जन्म गयामें हुआ था। इन्टरमीज्येट तक शिक्षा प्राप्त करके जजकी कोर्टमें सिरस्तेदारके पदपर काम करने लगे। पेंशन हो जाने पर पूज्य-श्रीसे सप्तम प्रतिमाके व्रत ग्रहण कर लिये और ईशरी आश्रममें रहकर त्यागी जीवन व्यतीत करने लगे। स्वाध्याय द्वारा आपने अच्छी धार्मिक योग्यता प्राप्त कर ली थी। आपका जीवन निस्पृही परोपकारी व धर्म-निष्ठा था। वि० सं० २००९, कार्तिक मासमें ईशरी आश्रममें ही समाधि पूर्वक आपकी इह-लीला समाप्त हुई।

१८. ब्र० श्री लक्ष्मी चन्द जी

सागर जिलाके अन्तर्गत कुर्रापुरके रहने वाले थे। प्रारम्भिक शिक्षा केवल प्राइमरी तक हुई, परन्तु गृह-त्यागके पश्चात् आपने अपने ज्ञानमें अच्छी वृद्धि कर ली। पत्नीका वियोग हो जाने पर आपने आ० श्री सूर्य सागरजी महाराजसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ग्रहणकी, और उनके पट्ट शिष्य बनकर अनवरत उनकी सेवामें रत रहने लगे। आपने जिस निष्ठासे उनकी सेवाकी है, उसका दूसरा उदाहरण इस कालमें मिलना दुर्लभ है।

आप स्वभावके निर्भीक, निर्लोभी, सेवाभावी और कर्त्तव्य परायण है। भोजन व्यवस्था बिल्कुल आडम्बर शून्य है। आचार्य महाराजकी

समाधिके पश्चात् आप वर्णीजीकी सेवामे रहने लगे तथा अन्त समय तक उसी निष्ठासे उनकी सेवा करते रहे।

१९. ब्र० श्री हरिश्चन्द्र जी

सहारनपुरके आस-पास कहीके रहने वाले है। ब्रह्मचर्य व्रतके साथ सत्य व्रतका कठोर पालन करते है। कितनी ही कठिनाई और आर्थिक हानि क्यो न उठाना पडे पर भूल कर भी आप असत्य भाषण करना स्वीकार नही करते।

प्रारम्भसे ही हस्तनागपुर गुरुकुलकी सेवा करते रहे है। वर्तमानमें भी उसके उप-अधिष्ठाता हैं। बीचमे सस्कृत और धर्म शास्त्रका विशेष अध्ययन करनेके लिए आप बनारस विद्यालयमे भी रहे है। स्वभावसे निस्पृह है। वर्णीजीमे आपकी अनन्य भक्ति है।

२०. पं० शिखर चन्दजी

भाद्रपद कृ० वि० स० १९६८ को जबलपुरमें आपका जन्म हुआ। पाँच वर्षकी आयुमे ही अपने पिता मास्टर पन्नालालजीके साथ आप मोरेना प० गोपाल दासजीके पास चले आये। मोरेनासे विशारद, इन्दौरसे शास्त्री और स्याद्वाद विद्यालय बनारसमे रहकर न्यायतीर्थ व काव्य तीर्थकी परीक्षामे सफलता प्राप्त की।

स० १९९४ मे बनारस विद्यालयमे आपको पूज्य-श्रीके प्रथम दर्शन हुए। आपकी भद्र व सरल प्रकृति तथा विद्वत्ताको देखकर पूज्य-श्रीने आपको स० १९९६ मे ईशरी बुला लिया। तबसे उनके अन्तिम क्षण तक आप शास्त्र सुनाने और तत्त्व-चर्चा करनेके द्वारा उनकी सतत सेवा करते रहे।

वर्णीजी चले गए पर आप आज भी ईशरीमें ही स्थायीरूपसे रहते है। ईशरी या मधुबनमे जो भी मुनिसंघ या त्यागीवर्ग आते रहते है, उनकी ज्ञान दान द्वारा सेवा करते रहना ही आपकी साधना है।

२१. प्रशममूर्ति ब्र० माता चन्दा बाई जी

आषाढ शु० ३ सं० १९४६ को आपका जन्म वृन्दावनके एक वैष्णव परिवारमें हुआ। और ११ वर्षकी आयुमें आरा निवासी प्रसिद्ध रईस

धर्मकुमार जी जैनके साथ आपका विवाह हो गया। एक वर्ष पश्चात् ही पति-वियोगका दुःख सहना पड़ा। परन्तु इन्होंने अपनेको सम्भाला और सस्कृत व धर्मशास्त्रके अध्ययनमे जुट गईं।

आगे चलकर आपने आरामे एक कन्या पाठशालाकी स्थापनाकी जिसने पीछे जैन बाला विद्याश्रमका वृहद् रूप धारण कर लिया। इसके अतिरिक्त जैन महिला परिषद्की स्थापना, महिलादर्श मासिक पत्रका सञ्चालन आदि सेवायें हैं जिनके कारण यदि आपको नारी जागरणका अग्रदूत कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

श्री १०८ आ० शान्ति सागर जी महाराजसे आपने व्रत-प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। पूज्य वर्णीजीमें इनकी अनन्य श्रद्धा है।

२२. ब्र० अनूपमाला देवी

आप आरा निवासी प्रसिद्ध रईस स्व० देवकुमार जीकी धर्मपत्नी है। बा० निर्मल कुमार व बा० चक्रेश्वर कुमारजी इनके पुत्र रत्न हैं। यद्यपि शिक्षा केवल प्राइमरी तक सीमित है, तथापि स्वाध्याय द्वारा आपने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली है। फाल्गुन सुदी ५ वि० स० १९३७ को श्री १०५ क्षु० जिनमतीजीसे ब्रह्मचर्य प्रतिमा ग्रहण की। वृद्धावस्था होनेपर भी आत्मकल्याणके प्रति सावधान है।

पूज्य-श्रीमें आपकी अनन्य श्रद्धा है। उदार हृदया है। बनारसका स्याद्वाद-विद्यालय-भवन और आराका जैन-सिद्धान्त-भवन इसी दम्पति युगलकी पुनीत सेवाका फल है। और भी अनेक लोकोत्तर कार्य किये है।

२३. ब्र० माता पतासा बाई जी

आपका जन्म भाद्रपद शु० १० वि० स० १९५१ को मारौठामे हुआ केवल १६ वर्षकी आयुमे वैधव्यके अभिशापका सामना हुआ। शिक्षा केवल हिन्दी सामान्य तक ही प्राप्त हो सकी थी, परन्तु पण्डिता भूरी बाईजी इन्दौरके सहवासमे रहकर धर्म शास्त्रके ज्ञानमे खूब अभिवृद्धि की। वि० सं० १९८६मे आ० श्री शान्ति सागरजी महाराजसे द्वितीय प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये।

वक्तृत्व कलामे आप बड़ी निपुण है। अब तक गया, सीकर आदि स्थानो पर २५ महिला पाठशालायें स्थापित करा चुकी हैं। विद्यादानमें लगभग १३०००) का दान दिया है। वर्त्तमान मुख्य निवास गया है। पूज्य-श्रीके ईशरी आ जानेपर आप भी उनके सान्निध्यमे ईशरी ही आकर रहने लगी थी। आपके विषयमें स्वयं श्री वर्णीजी कहते हैं—

"आश्रमकी बाइयोमे पतासा बाई गया वाली बहुत विवेकवती है। आपका शास्त्रज्ञान बहुत ही उत्तम है। आप विरक्त हैं। निरन्तर स्वाध्यायमें काल लगाती है। प्रतिदिन अतिथिको दान देनेमें आपकी प्रवृत्ति रहती है। आपके द्वारा गयाकी स्त्री समाजका बहुत ही सुधार हुआ है। आपके प्रयत्नसे वहाँ स्त्री शिक्षाके लिये १५०००) हो गया। आपने २०००) स्याद्वाद विद्यालय बनारसको दिये हैं। केवल १००) वार्षिक सूदका लेती है। मेरी आपने बाईजीकी तरह रक्षाकी है।

२४. ब्र० माता कृष्णा बाई जी

आपका जन्म फाल्गुन कृ० १२ वि० स० १९५० को फतेहपुरमे हुआ। साधारण शिक्षाके पश्चात् रामगढ निवासी सेठ रामनिवासजी गोयल कलकत्ताके साथ आपका विवाह हुआ। वि० स० १९९५ मे वैधव्यका सामना करना पडा। जन्मसे वैष्णव होते हुए भी आपकी स्वाभाविक रुचि जैन धर्मकी ओर गई। फल स्वरूप पूज्य वर्णीजीके पास द्वितीय प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये और आ० वीर सागरजीसे सप्तम प्रतिमा ले ली। बनारस रहकर शास्त्रीकी शिक्षा प्राप्त की। कलकत्तासे आकर आप ईशरी आश्रममे रहने लगी। वर्णीजी इनके विषयमे लिखते है—

"आश्रमकी बाइयोम कृष्णा बाई भी है। वे यहाँ कलकत्तासे आकर धर्म-साधन करने लगी है। आपकी उत्तम प्रकृति है। आपका गोमट्टसारका बोध है। सामायिक मे त्रिमूर्तिकी तरह स्थिर बैठी रहती है। एक बार भोजन करती है। दो धोतियाँ तथा ओढने बिछानेको दो चद्दर रखती है। भयकर शीतकालमे एक ही चद्दरके आश्रय पड़ी रहती है निरन्तर अपना समय स्वाध्यायमें बिताती है। साथम इनके एक ब्राह्मणी है जो बहुत ही विवेक वाली है।

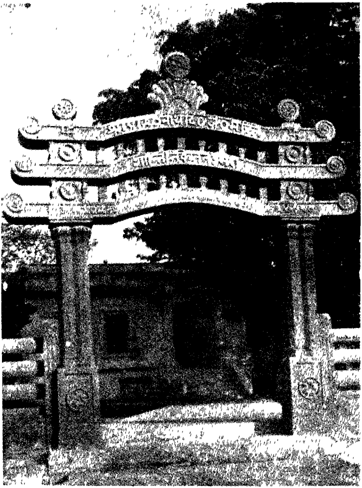
७–उदासीन आश्रम–ईशरी

१. स्थापना

वाई जीके समाधिमरणके पश्चात् फाल्गुन वि०सं० १९९२ सन् १९३८ मे जब पद-यात्रा करता हुआ श्री गिरिराजके दर्शनार्थ आया, तो वहाँ शास्त्र-प्रवचनके अनन्तर सबके मुख कमलसे यही ध्वनि निकली कि संसार बन्धनसे छूटनेके लिये यहाँ रहा जाये। इस गोष्ठीमें श्रीमान सखीचन्द जी, श्रीमान कन्हैया लालजी गया, बा० सूरज मल्लजी पटना, सेठ कमलापति जी बरायठा आदि अनेक महानुभाव थे। सबकी सम्मति हुई कि ईशरीमे एक उदासीन आश्रम खोला जावे।

इसके लिये २००) मासिकका चन्दा हुआ। कुछ देर बाद सेठी चम्पालाल जी गयाके कहने पर बा० सूरज मल्लजी पटनाने आश्रमका मकान बनाना तथा अकेले ही उसे चलाना स्वीकार कर लिया। उन्होंने एक बड़ी भारी जमीन खरीद कर उसमें आश्रमकी नीव डाली, और २५०००) लगाकर आश्रम बनवा दिया। जिसमे २५ ब्रह्मचारी सानन्द धर्म-साधन कर सकते है। दरवाजेके ऊपर एक सरस्वती भवन भी बनवा दिया। इस प्रकार लगभग १००,०००) मुक्त हस्तसे दान कर आपने सातिशय पुण्य व यशका संचय किया।

श्री वैजनाथ जी सरावगी राँची वालोने यहाँ पर एक बहुत ही सुन्दर धर्मायतन बनवाया है। उसमे एक मुनीम बराबर रहता है।



आश्रम के मन्दिर का मुख्य द्वार

एक बाड़ा भी उसमें लगाया है। सम्मेदाचलकी यात्राके लिये आने वालोंके दर्शनार्थ तेरहपन्थी धर्मशालामें केवल एक छोटा-सा चैत्यालय था। आपने उसे शिखरबन्द मन्दिरके रूपमें परिवर्तित कर दिया।

सेठ तुलाराम गजराज वच्छराज जीने भी एक सुन्दर भवनका निर्माण कराया है। तथा ग्रीष्म कालमें शान्तिके साथ साधन करनेके लिये बगीचेमें एक शीतल अन्तस्थल बनावा दिया है। सेठ बदरी दासजी सरावगी पटनाने भी कई कमरे दूसरी मञ्जिलमें बनवा दिये हैं।

पुरुष वर्गके स्थानसे पृथक महिला वर्गके रहनेके लिये भी कई कमरे बनाए गए है।

वर्णीजीकी समाधिके पश्चात् आश्रममें काफी वृद्धि हुई है। शान्ति पूर्वक शान्ति की साधना का अत्युत्तम शान्त स्थान होने के कारण इसका नाम शान्ति निकेतन रख दिया गया है। यहाँ पहले केवल एक छोटा-सा चैत्यालय था। अब बगीचेमे अन्तस्थलके ऊपर एक शिखरबन्द भव्य मन्दिरका निर्माण करा दिया गया है। चैत्यालय की सर्व प्रतिमाये इसीमे आ गई है।

वर्णीजीके कमरेके सामने जहाँ उनका दाह संस्कार हुआ था, उस स्थानपर उनकी स्मृतिमें सगमरमरका एक सुन्दर स्तूप बनाया गया है।

राय बहादुर सेठ हरषचन्द जीने भी मन्दिरके पीछे एक सुन्दर बङ्गलेका निर्माण कराया है। आगन्तुक अतिथियोंको प्राय: इसीमें ठहराया जाता है।

मन्दिरके दक्षिणमें महिलाओके लिये कुछ कमरे और बना दिये गए हैं।

२. द्रव्य व्यवस्था

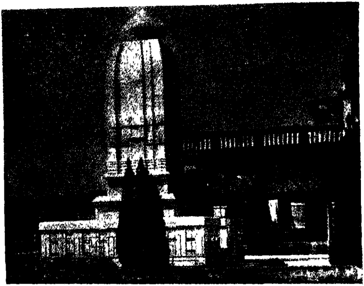
आश्रमकी स्थापनाके समय २००) मासिकके वचन मिले थे। तथा आश्रम निर्माता बा० सूरज मल्ल जीने इसकी रक्षाके लिए कलकत्ताका एक बडा मकान जिसका भाडा २००) मासिक आता है, लगा दिया है, और उसका विधिवत् ट्रस्ट भी कर दिया है। आपके सुपुत्र सेठ वसन्त लालजी बराबर आश्रमकी सहायता करते रहते हैं।



पार्श्वनाथ जैन मन्दिर शान्ति निकेतन



भूतपूर्व द्वार तथा चैत्यालय शान्ति निकेतन ईसरी



वर्णी स्तूप शान्ति निकेतन ईसरी



वर्णी कुटी शान्ति निकेतन ईसरी

श्रीमान दानवीर सेठ शान्ति प्रसादजी साहू साहबकी आश्रमके साथ बड़ी सहानुभूति है। इसके फलस्वरूप इन्हे आश्रमके प्रति ध्यान रहता है और बार-बार स्वयं पधारकर आश्रमका निरीक्षण और सम्हाल करते रहते हैं। आपकी ओरसे ज्ञानदान और औषधालय आदिके लिये निरन्तर मासिक सहायता आती रहती है।

स्व० श्री सेठ चान्दमल जी पाड्या रॉंची वालोंकी ओरसे आगन्तुक अतिथियोके लिये, वर्णीजीके पश्चात् भी कई वर्षो तक एक चौका बराबर चलता रहा।

इसीप्रकार श्रीमान सेठ वैजनाथ सारावगी रॉंची वालोकी ओरसे प्रति मास चार बार आश्रमस्थ ब्रह्मचारियोका निमंत्रण होता रहा। नियमानुसार और भी सहायता मिलती रहती है। इसी प्रकार सामनीके सेठ छेदी लालजी, त्यागियोंके भोजनमे जितना गेहूँ खर्च होता था, यह सब देते रहे।

इसके अतिरिक्त आश्रमके सहायकोमे सेठ नन्दलाल जी सरावगी कलकत्ता, सेठ बदरी प्रसादजी सरावगी पटना, सेठ जगन्नाथ पाड्या कोडरमा, सेठ कन्हैया लालजी छावडा हजारीबाग, सेठ सोनू लाल जी गया, सेठ छोगालाल जी सेठी गया, सेठ गजानन्द जी पाटन गया, सेठ कालू राम जी मोदी गिरिडीह, सेठ गिरनारीलालजी सरावगी गिरिडीह, स्व० सेठ छगा लालजी सरावगी रॉंची, सेठ लालचन्द्रजी रॉंची, सेठ गणेश लाल जी सरावगी डालटनगञ्ज, सेठ सागरमल जी पाड्या गिरिडोह, सेठ कन्हैया लालजी काला जियागञ्ज, सेठ बसन्ती लाल जी पाटोदी हजारीबाग इत्यादिका नाम उल्लेखनीय है।

और भी इस प्रान्तके अनेकानेक श्रीमान महानुभाव बडे प्रेमके साथ उदारतासे इस आश्रमकी सदा सहायता करते रहते हैं। तात्पर्य यह कि आश्रमको किसी भी परिस्थितिमे कभी न तो आज तक अर्थ सकटका अनुभव हुआ है, और न ही आगे होनेकी सम्भावना है। यह सब इस प्रान्तकी समाजके औदार्यका ही परिचायक है।

३. संचालन

आश्रमके सर्व प्रथम अधिष्ठाता भगत प्यारे लाल जी हुए जिनके सुशासनकी शान्तिमय शीतल छत्रछायामें यह धर्मांकुर पल्लवित होकर प्रगतिशील हुआ।

भूतपूर्व अधिष्ठाता ब्र० छोटे लालजीने भी आश्रमका कार्य बडे परिश्रम और योग्य रीतिसे संचालन किया।

ब्र० सुरेन्द्र नाथ जी भूतपूर्व अधिष्ठाता और प्रबन्ध कमेटीके सदस्य हैं। आपने कई वर्षों तक आश्रमके सम्पूर्ण कार्यको सफलता पूर्वक संचालन किया है। वर्तमानमें भी यद्यपि आप अधिष्ठाता पदसे मुक्त हैं, परन्तु आश्रमका सकल प्रबन्ध आप ही करते हैं। वे आश्रमके प्राण है और आश्रम उनका प्राण है।

आश्रममे स्थित महिलाओंकी सम्हाल श्री ब्र० पतासा बाई करती रही। अब उनका स्वर्गवास हो गया है, परन्तु आश्रममे वे अब भी जीवित हैं।

स्वर्गीय श्रीमान सेठ चान्दमल जी पांड्या रॉंची वाले कई वर्षो तक कमेटीके सभापति रहे। वर्तमानमें इसके सभापति श्रीमान राय बहादुर सेठ हरखचन्दजी पाड्या रॉंची वाले है।

४. साधना का उत्तम स्थान

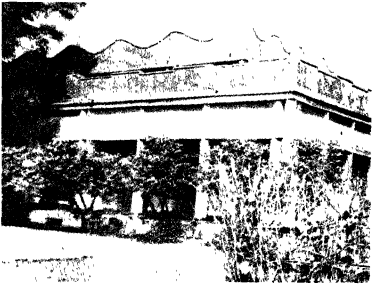
साधनाके लिये ईशरी अत्युत्तम व अनुकूल स्थान है। यहॉं का प्राकृतिक दृश्य नयनाभिराम है। पास ही हरे भरे गिरिराजके दर्शन होते है। श्री पार्श्व प्रभुका निर्वाण स्थान अपनी निराली शोभा मे दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करता रहता है। आकाश को चीरती हुई गिरिराज की हरी भरी चोटियाँ कभी तो धूमिल घनघटासे आच्छादित हो जाती है, और कभी स्वच्छ अनावृत्त दिखाई देती है। आश्रम से बाहर गिरिराज की ओर जाइये तो अटवी लग जाती है। पत्थरों की बडी बडी चट्टाने है। उन पर बैठकर मनुष्य ध्यान आदि कर सकते है।

श्री मान् सखी चन्द्रजी कैशरीहिन्दसे मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध था। आपने अपना अन्तिम जीवन धार्मिक कार्यो मे ही बितानेका दृढ सकल्प कर लिया था। इससे आपने **नोमिया घाट** मे एक अच्छा बङ्गला बनवाया, और उसी मे अधिकतर रहने लगे। बङ्गलामें चैत्यालय भी स्थापित करा लिया।

व्रतियोंके आहारादिकी व्यवस्था आपके यहाँ अनायास हो जाती है। मै प्राय: सालमें तीन मास नीमिया घाट रहता था। यहाँ से श्री



सेठ सूरजमल जी द्वारा निर्मित आश्रम का मुख्य द्वार



प्रवचन मण्डप शान्ति निकेतन ईसरी



सेठ बदरी दास जी पटना द्वारा निर्मित कमरे

पार्श्वनाथ स्वामी (टोंक) की यात्रा बड़ी सुगमता से हो जाती है। डाक बङ्गला तक सड़क है। जिसमे रिक्सा भी जा सकती है। चार मील के बाद एक सुन्दर पानीका झरना है। एक उत्तम धर्मशाला भी है और दुकानदार भी यहाँ रहते है।

वि० सं० २०१० में जब सागरसे पदयात्रा द्वारा पुनः ईशरी आया, तो देखा कि ईशरीमे बहुत परिवर्तन हो गया है। जहाँ पहले एक छोटी सी धर्मशाला थी, वहाँ आज विशाल पक्की धर्मशाला है, सुन्दर मन्दिर है, व्रती जनो के आत्मकल्याणार्थ अर्थ उदासीन आश्रम है, और छात्रोंके हितार्थ एक पाठशाला (हाईस्कूल) है। ग्राम की उन्नति भी पहले की अपेक्षा अधिक हो गई है। उदासीन आश्रम के अहाते में प्रवचन के लिये एक सुन्दर भवन अलग से बन गया है।

५. आश्रम निवासी

आश्रममे १२ महीने प्रायः १०-१२ त्यागी पुरुष और इतनी ही ब्रह्मचारिणी महिलाये रहती हैं। इनके अतिरिक्त बाहरसे भी त्यागी गण तथा उदासीन गृहस्थ बराबर धर्म साधनाके लिये यहाँ आते रहते है। यहाँ उन्हे दुहरा लाभ प्राप्त होता है—गिरिराजकी वन्दना तथा शान्त साधना।

वर्णीजी के समय के आश्रम निवासियों मे श्री भगत प्यारे लाल जी, ब्र० सुरेन्द्र नाथ जी, धन्य कुममार जी, श्री रतन चन्द जी मुख्तार क्षु० स्वरूपानन्द जी आदि के और इसी प्रकार महिला वर्ग में ब्र० पतासा बाई के नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनका संक्षिप्त परिचय आगे दिया गया है।

उनके पश्चात् भी अनेक त्यागी गण आये और चले गए। कुछ का स्वर्गवास हो गया। वर्तमान में ब्र० सुरेन्द्र नाथ जी को आदि लेकर यहाँ १० त्यागी गण तथा ब्र० चेना बाई को आदि लेकर प्राय इतनी ही महिलायें निवास करती है।

६. आश्रमका जीवन

[आश्रम-निवासी सकल पुरुष व महिलावर्ग की साधना सुचारु रीति से चलती है। प्राय. सभी साधन सुलभ है।]

(सभी त्यागी-जन प्रातः तीन बजे उठ जाते हैं। स्तुति पाठ व सामायिक के अनन्तर स्नानादि से निवृत्त होकर मन्दिर में पूजन करते हैं।) तदन्तर शास्त्र प्रवचन होता है। अनन्तर भोजन के बाद ११॥ बजे से सब त्यागी वर्ग सामायिक करते है। (तत्पश्चात् अन्न शोधन क्रिया होती है। फिर २ बजे से शास्त्र प्रवचन होता है। अनन्तर सायकालकी सामायिक और रात्रिके प्रारम्भमें शास्त्र प्रवचन होता है। त्यागियों के अतिरिक्त धर्म-लाभ की भावना मे कुछ अन्य महानुभाव भी रहते हैं।) सभी सब कार्यक्रमों मे शामिल रहते हैं। मै (वर्णीजी) भी सब कार्य क्रमो मे पहुँच जाता हूँ।

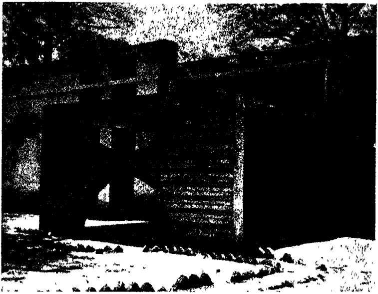
तीन बार प्रवचन होता है। प्रातःकाल का प्रवचन मै (वर्णीजी) कर देता हूँ। [आजकल ब्र० मुरेन्द्र नाथ जी करते हैं।] परन्तु मध्याह्न और रात्रि के प्रवचन अन्य विद्वान् करते है। मै श्रवण करता हूँ। प्रातः काल के प्रवचनमें प्रायः समयसार आदि कुन्द-कुन्द स्वामी के ग्रन्थ रहते हैं। इस युग मे कुन्द-कुन्द के समान वस्तु-तत्त्वका निरूपण करने वाला दूसरा आचार्य नही हुआ। मध्याह्न में (करणानुयोग व चरणानुयोग विषयक) सैद्धान्तिक ग्रन्थका विवेचन रहता है। और रात्रिको सर्व साधारणोपयोगी हिन्दी ग्रन्थ तथा प्रथमानुयोग के ग्रन्थोका स्वाध्याय चलता है।

यहाँ बाहरसे अनेक विद्वान् तथा विशिष्ट महानुभाव यदा कदा आते रहते है। उनके भोजनकी व्यवस्थाके लिये रायबादुर श्री चान्दमलजी राची वालोंकी ओरसे एक चौका खोल दिया गया है। जिसमे अतिथियो-के भोजनकी उत्तम व्यपस्था बन गई है।

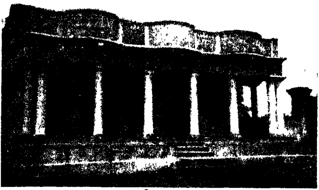
[त्यागी वर्गके लिये शुद्ध भोजनका पृथक चौका है। वर्णीजीके पश्चात् अतिथि जनोका आवागमन कम हो जानेसे अब उपरोक्त चौका बन्द कर दिया गया है। यदि कोई महानुभाव आते है तो उनके भोजनकी व्यवस्था भी त्यागियो वाले चौकेमें ही हो जाती है। भोजनकी व्यवस्था अत्यन्त सुन्दर व परिपूर्ण है। दूध, घी, फल आदि सभी पदार्थोंकी व्यवस्था है।]

७. अनेकोंको समाधि लाभ

आश्रममे १०८ पूज्य नेमि सागरजी महाराजको आदि लेकर समय समय पर अनेकों त्यागियो व उदासीन गृहस्थोंका समाधिमरण भी



बङ्गला रा० ब० श्री हरखचन्द जी पाण्डेय, राँची वाले



बङ्गला सेठ तुलाराम गजराज जी, कलकत्ता वाले

शान्तिके साथ सम्पन्न होता रहा है, जिसमें सकल त्यागी वर्ग क्षपककी वैयावृत्य द्वारा सातिशय पुण्यका लाभ करता है।

१. श्री आ० नमिसागरजी महाराज—महा तपस्वी थे। न जाने क्यों आपका हम (वर्णीजी) पर अधिक स्नेह था। जब देहली तथा बड़ौत आपके चातुर्मास हुए थे तब आप बराबर हमारे लिये शुभाशीर्वाद भेजते रहते थे। हम ईसरीमे थे। आपको आकांक्षा थी कि हमारा समाधिमरण वर्णी गणेश प्रसादके सान्निध्यमें हो। इस आकाक्षासे प्रेरित होकर आप देहलीसे मधुवन तकका लम्ब मार्ग तय कर श्री पार्श्वप्रभुके पादमूलमें पधारे थे। आप निर्द्वन्द निरीह वृत्तिके साधु थे। ससारके विषय-वातावरणसे दूर थे। आत्मसाधना ही आपका लक्ष्य था। ७० वर्षकी आपकी अवस्था थी, फिर भी दैनिक चर्यामें रञ्च मात्र भी शिथिलता नही आने देते थे।

श्री सम्मेदशिखरकी यात्रा कर आप ईसरी आ गए, जिससे सबको प्रसन्नता हुई। वृद्धावस्थाके कारण आपका शरीर दुर्बल हो गया तथा उदरमे व्याधि उत्पन्न हो गई, जिससे आपका विचार हुआ कि अब इसका त्याग करना ही श्रेयस्कर है। यह विचार कर आपने १२-१०-१९५६ की शुक्रवारको समाधिका नियम ले लिया।

आपने सब प्रकारके आहार और औषधका त्यागकर केवल छाछ और जल ग्रहण करनेका नियम रखा। उदासीन आश्रमके सब त्यागी-गण आपकी वैयावृत्यमे निरन्तर निमग्न रहते थे। श्री प्यारे भगत जी भी उस समय ईसरीमें ही थे। अत आप वैयावृत्यकी पूर्ण देख रेख रखते थे। हम भी उस समय पर आपको भगवती आराधना सुनाते थे। महाराज बड़ी एकाग्रतासे श्रवण करते थे।

महाराजके प्रति श्रद्धा व्यक्त करनेके लिये दिल्लीसे अनेक लोग पधारे। आस पासके भी अनेक महानुभाव आये, सेठ गजराजजी गगवाल भी सकुटुम्ब आकर आपकी परिचर्यामें निमग्न थे। महाराज तेरह-पन्थी कोठीमें ठहरे थे। मै आपके दर्शनके लिये गया। चलते चलते मेरी श्वास भर आई। यह देख महाराज बोले—आपने क्यो कष्ट किया? आप तो हमारे हृदयमे विद्यमान है। अनन्तर सबकी सलाहसे उन्हे उदासीन आश्रममें ले आए और सरस्वती भवनमे ठहरा दिया।

इस समय आपने अपने ऊपरसे झुंगी हटवा दी, तथा खुले स्थानमें पलालपर शयन किया। जब अन्तिम दो दिन रह गए तब आपने छाछका भी परित्याग कर दिया। केवल जल लेना स्वीकृत रक्खा। कार्तिक वदी ३ वि० सं २०१३ को १० बजे आपने तीन चुल्लू जलका आहार लिया।

महाराजकी आज्ञा लेकर सब लोग भोजनके लिये चले गए, तथा परिचारकोंके अतिरिक्त अन्य सर्व त्यागी सामायिक करने लगे। हम भी सामायिकमें बैठना ही चाहते थे कि इतनेमें समाचार मिला कि महाराजका स्वास्थ्य एक दम खराब हो रहा है। हम उसी समय उनके पास आए। हमने पूँछा महाराज सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान है। उन्होने हुँकार भरा और उसी समय आपके प्राण निकल गए।

महाराजके शवको पद्मासनसे बैठाकर ग्राममें जुलूस निकाला और आश्रमके पास ही बगलवाले मैदानमें आपका अन्तिम सस्कार किया गया। गोला तथा चन्दनका पुष्कल प्रबन्ध श्री गजराजजी कलकत्तावालोने पहलेसे कर रक्खा था। रात्रिमें शोक सभा हुई, जिसमें महाराजके गुणोंका स्मरण कर उन्हे श्रद्धाञ्जलियाँ दी गई।

२. **क्षु० सम्भव सागर जी** वाराणसीके रहनेवाले थे। जबसे क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की तबसे बराबर हमारे साथ रहे। एकबार शाहपुरमें मैं सामायिक कर रहा था और मेरे पीछे आप सामायिकमें बैठे थे। किसी कारण मेरे खेसमें आग लग गई। मुझे उसका पता नही था। आपने झटसे उठकर हमारा जलता हुआ खेस निकालकर अलग कर दिया।

आपका स्वास्थ्य धीरे-धीरे खराब होता गया। जब आपकी आयुके कुछ दिन ही शेष रह गये। तब बोले—'महाराज मै विशेष पढा लिखा नही, मेरा स्वास्थ्य अब अच्छा होनेकी आशा नही, इसलिये आप जिस तरह बने उस तरह हमारा सुधार करे। यह कहकर आपने सल्लेखना धारण कर ली।

आश्रमके सब ब्रह्मचारी आपकी सेवामें लीन हो गए। मै भी यथा समय उन्हे सम्बोधता रहा। मेरा तो यही कहना था, कि इस समय अधिक चिन्तनकी आवश्यकता नही। इस समय तो आप इतना ही चिन्तवन करो कि शरीरादि पर-पदार्थोंसे भिन्न हमारी आत्मा है। उसे कोई भी नष्ट करने वाला नहीं है।

यद्यपि वर्णी जयन्तीका उत्सव स्थगित कर दिया था, फिर भी आसपासके लोगोंकी अच्छी सख्या आकर यहाँ उपस्थित हो गई। कुँवार वदी ३ वीर निर्वाण २४८३ आपकी वर्तमान पर्यायका अन्तिम दिन था। दुर्बल होने पर भी आपकी चेतना यथा-पूर्व थी।

आज आपने अन्न जलका सर्वथा त्याग कर दिया। मैने कहा कि आत्मा पर-पदार्थोंसे भिन्न जुदा पदार्थ अनुभवमे आता है या नहीं? उन्होंने हुँकार भरा। तदनन्तर नमस्कार मंत्रका श्रवण करते-करते आपके प्राण शरीरमे बहिर्गत हो गए।

(३) ईशरीका यह स्थान वास्तवमे समाधिमरणके लिये अत्यन्त उपयुक्त है। अनेकोका यहाँ समाधिमरण हुआ है। **प्रेमसुख जी** बहुत सज्जन धर्मात्मा है। आपके समाधिमरणमे श्री ला० सुमेर चन्द जी जगाधरी वाले, मै तथा अन्य त्यागी गण बराबर संलग्न रहे। अन्तमे आपने शान्तिपूर्वक प्राणोका विसर्जन किया।

(४) इसी प्रकार यहाँ पर एक **जगन्नाथ बाबा** भिवानीवाले रहते थे। बहुत धार्मिक व कुशल व्यक्ति थे। जब आप बीमार पडे, तब मै तथा आश्रमके त्यागी उन्हे धर्म सुनाते रहे। अन्तमे निर्वाण अमावस्याके दिन, 'णमो अरिहताण' शब्दका उच्चारण कर पेशाबको बैठे। पेशाबके बाद बिस्तर पर आये। दोनो हाथ मस्तकसे लगाये। इतनेमे ही आपके प्राण पखेरू उड गए।

(५) इसी प्रकार यहाँ पर **श्यामलालजी** त्यागीके पिताका समाधिमरण हुआ। आपका समाधिमरण इस रीतिसे हुआ, । इस रीतिसे प्राय: उत्तम पुरुषोका होता है। आप प्रात काल बैठे थे, कुल्ला किया और परमेष्ठीका नाम लिया। लडके ने कहा—'बोलते क्यो नही'? बस आपका प्राण निकल गया।

(६) तथा इनके अतिरिक्त भी **श्री १०८ मुनि कल्याणसागर**, जी क्षु० स्वरूपानन्द जी, ब्र० गोविन्द लाल जी, ब्र० कमलापति जी, बरायठा, ब्र० धन्य कुमार जी, ब्र० सुमेरचन्द जी, ब्र० दमरू लाल जी, सिघई मिट्ठन लाल जी, सेठ सूरजमल जी को इस पावन स्थलसे समाधि लाभ हुआ है।

(७) **तथा इनके अतिरिक्त और भी** अनेकों मुमुक्षुओंकी सफल समाधियें यहाँ सम्पन्न हुई हैं। यथा—

१—पूज्य बाबा भागीरथ दास जी वर्णी	२६-१-४२
२—क्षु० १०५ श्री स्वरूपानन्द जी	अषाढ़ कृ. ७ वि सं. २०२६
३—ब्र० श्री नेमी सागर जी	माघ बदी १५ वि. सं. २००७
४—ब्र० श्री धन्य कुमार जी बाड	१९-२-५६
५—ब्र० श्री गोविन्द लाल जी—गया	१६-११-५१
६—सेठ श्री सूरज मलजी—पटना	२९-१२-४२
७—ला० छन्नू मलजी—देहली	१३-४-४३
८—सेठ गौरी दत्तजी—कोडरमा	१३-८-४३
९—सिंघई मिट्ठन लालजी—छपरा	१९-११-४३
१०—सेठ मूल चन्दजी बगडा—नागवा	७-४-४७
११—ब्र० दमरू लालजी	१७-९-४८
१२—ब्र० कमलापति जी बगयठा	फाल्गुन शु ३ म ?
१३—ब्र० राम चन्दजी—सीहोरा	१०-१-५३
१४—ब्र० नन्द लालजी—नागपुर	२८-६-५७

— इत्यादि इत्यादि

●



दानवीर श्री साहू शान्ति प्रसाद जी जैन

८–ईशरी आश्रमके कुछ महानुभाव

१. श्रीयुत् साहू शान्ति प्रसादजी

गिरिराजके लिये पदयात्रा करते हुए डालमिया नगर पहुचे। यहाँ पर भारतके गणमान्य व्यापारी श्री रामकृष्ण जी डालमियाका निवास है। आपकी सुपुत्री रमा रानीका सम्बन्ध श्रीमान् साहू शान्ति प्रसाद जी नजीबाबाद वालोंके साथ हुआ है। आप पाश्चात्य विद्याके पण्डित हो नही, जेन धर्मके महान श्रद्धालु भी है। आपके प्रयत्नसे यहाँ एक जेन मन्दिर स्थापित हो गया है। आप प्रतिदिन उसमे यथा समय धर्म कार्य करते है। आपकी माता भी बहुत धर्मात्मा है।

डालमिया नगर श्री साहू शान्ति प्रसादजीके पुरुपार्थका फल है। पुरुषार्थ उसीका सफल होता है जिसके पास पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म है। यहाँ आपके द्वारा निर्मित सीमेन्ट मिल्स, कागज मिल, सूगर मिल आदि नाना कारखाने है। कार्यकर्ताओक रहनेके लिये अच्छे स्थान है। आपने छ लाख रुपयेसे अपनी माताकी स्मृतिमे 'भारतीय ज्ञानपीठ' सस्था खोली है जिसका कार्यालय बनारसमे है। आपके द्वारा अनेकों छात्रोंको मासिक छात्र-वृत्ति मिलती है।

आप शान्त तथा भद्र परिणामी है। इस समय आपके द्वारा जैन धर्मके उत्कर्षको बढाने वाले अनेक कार्य हो रहे हैं। आपकी पत्नी रमा रानी भी सुयोग्य तथा सुशील नारी है। आपकी माताके नामसे इन्होने

छः लाख रुपया दानमें निकाला है। बनारसमें भारतीय ज्ञानपीठके नामसे एक बडी साहित्य प्रकाशन संस्था काम कर रही है। आपने स्याद्वाद विद्यालयको १०,०००) तथा सागर विद्यालयको ५०००) वार्षिक प्रदान करके उनकी त्रुटि पूरी कर दी है [और भी यत्र तत्र बहुत दान देते रहते है जिससे आप समाजमे दानवीरके रूपमे सम्मानित होते है। आश्रम भी सदा इनकी कृपाका पात्र बना रहता है।]

वर्णीजीके जीवन-कालमे आप बार-बार आश्रममे आते-जाते रहते थे, तथा यथा समय इसकी आवश्यकताओंकी पूर्ति भी करते रहते थे। अब भी आवश्यकता पडने पर आते हैं, और इसकी यथावकाश सहायता करते रहते हैं।

२. राय बहादुर श्री हरख चन्द जी पाण्डेय–रॉंची

आप श्रीमान सेठ सूरजमल जी रॉंची वालोंके सुपुत्र है। बडे योग्य, शान्त व सौम्य प्रकृतिके है। राँचीमे आपका बडा भारी कारोबार चलता है। अपनी योग्यताके कारण आपने केवल २२ वर्षकी आयुम भारतकी अंग्रेजी सरकारसे रायबहादुरकी उपाधि प्राप्त की थी।

आपके चाचा श्रीमान सेठ चान्दमल जी भी राय बहादुर थे। पहले आश्रमके सभापति वही थे। उनके पश्चात् प्राय १९५६ मे आप ही यहाँ सभापति हुए चले आ रहे है। इनकी सौम्य प्रकृति तथा व्यवस्था-पकत्वकी योग्यता ही इसमें हेतु है।

आप आश्रमकी दत्तचित्तसे तन मन धन तीनोंके द्वारा सेवा करते है। प्राय: महीनेमे एक बार आते है। इनकी देख-रेखम पूज्य वर्णीजी द्वारा आरोपित आश्रमका यह वृक्ष बराबर पल्लवित व पुष्पित हो हो रहा है।

३. ब्र० श्री प्यारे लाल जी भगत

मगशिर शु० ६ वि० सं० १९४१ को आगरा जिलाके अन्तर्गत राजाखेड़ा ग्राममें आपका शुभ जन्म हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा अक्षर ज्ञान तक सीमित होते हुए भी इन्होने उच्च कोटिके धार्मिक शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। वि० सं० १९९१ में इन्दौरमे श्री कुन्थु सागर जी महाराज



राय बहादुर सेठ हरषचन्द जी पाण्डेय, रॉंची

की उपस्थितिमें स्वयं सातवी प्रतिमाके व्रत धारण किये। इनकी सामाजिक सेवा सराहनीय है। अधिष्ठाता पद पर रहते हुए इन्दौर व ईसरी दोनों आश्रमोकी आप बहुत काल तक सम्हाल करते रहे।

श्री वर्णीजी स्वय इनके सम्बन्धमें लिखते है—"आप शान्त स्वभाव और दयालू है। वर्तमानमें कलकत्ता (श्री पार्श्वनाथ मन्दिर) बेलगछियामें रहते है। आपके द्वारा राजाखेडामें बडी भारी पाठशाला चल रही है। दो लाखका ध्रुव फण्ड उसके पास है। उसका सचालन भी आपके द्वारा ही होता है। (इन्दौरके राय सेठ हुकम चन्द) तथा कलकत्ताके बडे-बडे सेठ आपके अनुयायी है। मालूम एक दो बार राजाखेडा जा आते है। अनुभवी तथा प्राचीन पद्धतिके रक्षक है। किसीके रौबमे नही आते। आपकी व्याख्यान शैली उत्तम है।

सागरसे लौटकर जब पुन स० २०१० मे ईसरी आया तो आप कई स्थानो पर मङ्गल मिलनेके लिये गए। आश्रममें समाधि धारने वालोकी तन मनसे वैयावृत्य करते है। अगहन सु० ६ वि० स० २०१० को ईसरीमे आपकी जयन्तीका उत्सव हुआ। २ बजे जलूस निकला। तत्पश्चात् सभा हुई जिसमे अनेको श्रद्धाञ्जलियाँ समर्पितकी गई।

४. ब्र० श्री सुरेन्द्र नाथजी

फाल्गुन सु० ८ वि० स० १९६० को आपका जन्म फरुखाबादमे हुआ। ६ वर्ष की आयुमें पिताका वियोग हो गया। लेन-देनका काम था। शिक्षा साधारण-सी थी। कपडे व सर्राफेके काम किये, पर सफल न हुए। अत वि० स० १९७८ में कलकत्ता आना पडा। यहाँ पहले घीका और फिर बीडीके तम्बाकू व पत्तेका काम किया। वि० स० २००५ मे पत्नी तथा भाईयोका वियोग हो जानेके कारण चित्त उदास हो गया। ४८ वर्षकी आयुमे वि० स० २००८ को आप ईसरी आश्रममे आ गये। तबसे यहा ही स्थायी रूपसे स्थित है।

यद्यपि प्रारम्भिक शिक्षा ना के बराबर थी, तथापि माताजीकी कृपा से पूजन विषयक ज्ञान हुआ, कलकत्तामें भगत प्यारे लालजीके सान्निध्य मे सिद्धान्त शास्त्रोका अध्ययन किया और ईसरी आनेके पश्चात् वर्णीजी के सान्निध्यमे अध्यात्म शास्त्रोका गहन अध्ययन किया। अभ्यन्तर रुचिके कारण शस्त्रज्ञता ही नहीं अनुभव पूर्ण तत्त्वज्ञता भी प्राप्त हुई।

मार्च १९५२ को ईसरी मे ही भगतजीसे दूसरी प्रतिमाके व्रत लिये और कोई ६-७ मास पश्चात् उन्हींसे सप्तम प्रतिमा धारण कर ली। उसी समय आपको आश्रमके अधिष्ठाताके पद पर नियुक्त कर दिया गया। पीछे आकर आपने यद्यपि अधिष्ठाता पदका त्याग कर दिया, परन्तु आश्रमके साथ आप इतने घुल मिल गए कि आप आज तक अपने प्राणोकी भाँति इसकी सकल देख रेख स्वय ही करते है। और आश्रम भी इनकी छत्र छायामे बराबर अभिवृद्धि कर रहा है।

वर्णीजीका आगमन यहाँ आपके दो वर्ष पश्चात् हुआ। आप इनके विषयमे स्वयं लिखते है—"ब्र० सुरेन्द्र नाथजी बहुत ही सरल प्रकृतिके मनुष्य है। आपका त्याग अति निर्मल है। स्वाध्यायके अति प्रेमी है। विनय गुणके भण्डार है। उदार भी है। कलकत्ता निवासी है। घरसे उदास रहते है। यद्यपि सर्व प्रकार सम्पन्न है, परन्तु इतने निर्मोही है कि लडका मोटर मे गिर पडा, फिर भी कलकत्ता नही गए।"

५. ब्र० श्री सोहनलालजी

ई० सन् १८९७ को आपका जन्म आगरम हुआ। जीवन निर्वाहके लिये कालका चले गए। प्राय. ३० वर्ष तक वहाँ अध्यापकके रूपमे कार्य किया। मन्दिरके प्रबन्धक व पुजारी भी रहे। सन् १९४१ मे पत्नीका वियोग हो जानेपर आप विरक्त होकर ईसरी आ गए, और आश्रमको ही अपना स्थायी निवास बना लिया।

भगत प्यारेलालजी तथा अन्य आगन्तुक विद्वानोके सान्निध्यमे आपने शास्त्रज्ञान प्राप्त किया। भगतजीसे ही आपने सप्तम प्रतिमाके व्रत ग्रहण किये। आपकी भद्र व सरल सेवा-भावी प्रकृतिको देखकर श्री भगतजीने आपको उप-अधिष्ठताके पदपर नियुक्त कर दिया, जिसको आपने अपने जीवनके अन्तिम क्षण तक इस योग्यतासे निबाहा कि वचन कहनेके लिये समर्थ नही। अपनी सुविधाओको तिलाञ्जली देकर आप सदा आश्रम-वासियोंकी तथा आगन्तुक महानुभावोकी सुविधाका विचार रखते थे। आगन्तुकोंका बड़े प्रेमसे स्वागत करते थे।

लगभग ४० वर्ष तक आपने इसी प्रकार निरीह भावसे आश्रमकी तन मनसे सेवा की और १९६७ को ७० वर्षकी आयुमे समाधिपूर्वक इस विनश्वर देहका इसी तपो भूमिमे विसर्जन करके स्वर्ग सिधार गए।

६. श्रीयुत् सोनूलाल जी गया

आप गया निवासी है। वहाँ ही आपका बडा भारी कारोबार है। चार पुत्र है बडा कुटुम्ब है। जब से वर्णीजी का सम्पर्क हुआ है, आप का चित्त विरक्त हो गया है। कारोबार लडको को सौप कर आप निवृत्ति का जीवन व्यतीत करते है। वर्णीजी के जीवन काल मे यत्र-तत्र उनके दर्शनो को जाते रहते थे। और उनके पश्चात् प्राय: आश्रममें ही रहते है। कभी-कभी आवश्यकता पडने पर कुछ दिनो के लिये गया भी चले जाते है।

आप बडे भद्र परिणामी है। ब्र० सुरेन्द्रनाथ जी के परम मित्र है। यदि इन्हे दो शरीर व एक जान कहे तो अनुचित न होगा। आपके रहने मे आश्रम की बहुत शोभा है। तन मन धनसे बराबर आश्रम की सेवा तथा सहायता करते रहते है। आश्रम की व्यवस्था तथा देख-रेख आदि मे आप ब्र० सुरेन्द्र नाथ जी के दाये हाथ है।

७. श्रीमान सेठ छोगा लाल जी–गया

आप गया के निवासी है। वहाँ ही इनका बडा अच्छा कारोबार चलता है। बडे सुयोग्य व आज्ञाकारी चार पुत्र है। जब पहली बार पद-यात्रा करते हुए वर्णीजी गया पधारे थे, तभी उनके प्रभाव से आपका चित्त गृहस्थसे विरक्त हो गया था। सारा कारोबार पुत्रो को सम्भाल कर आप उदासीन जीवन व्यतीत करते थे। यत्र तत्र वर्णी जीके दर्शनो को जाते रहते थे। जितने दिन ईशरी मे रहे आप बराबर उनकी सेवा मे सलग्न रहे।

पूज्य-श्री की समाधि के पश्चात् अर्थात् सन १९६१ मे आप निश्चित् रूप से आश्रम वासी हो गए। आपने यहाँ अपने लिये कमरा बनवा लिया। आप का शरीर काफी वृद्ध हो चुका था। इसलिये उनकी सेवा के अर्थ एक नोकर और भोजन की पृथक व्यवस्थाके लिये एक बाई उनके जीवन पर्यन्त उनके साथ रही।

आप आश्रम के बडे भक्त थे। हर प्रकार से इसकी सेवा के लिये उद्यत रहते थे। ८० वर्ष की आयु मे भी आप स्वय खडे रहकर यहाँ जैन मन्दिर के निर्माण कार्य की देख-रेख करते रहे। आर्थिक सहायता

भी देते रहे। अन्तिम दिनो मे स्वास्थ्य अत्यन्त क्षीण हो जानेके कारण आप गया चले गए। परन्तु घर पर न ठहर कर शहर से दो मील दूर अपने बाग में ठहरे। धर्म-ध्यान के अर्थ वहाँ ही एक चैत्यालयकी स्थापना कर ली। और अन्त मे वहाँ ही शान्ति पूर्वक इस देहका त्याग किया।

८. ब्र० श्री सोहनलाल जी (द्वितीय)

मगसिर कृ० ६ वि० स० १९५७ को आपका जन्म चौपारन मे हुआ था। सम्पन्न व्यक्ति है। ३ पुत्रियाँ है। कपडे का व्यापार है। काम धाम लडको को सौप कर स्वय निवृत्त हो गए है। वर्तमान मे आप की आयु लगभग ७४ वर्ष की है। जीवन का यह अन्तिम पाद शान्ति पूर्वक प्रभु पार्श्वके चरणोमे ही बीते, ऐसा सकल्प करके आप ने ईसरी आश्रम को ही अपना निवास स्थान बनाना श्रेयस्कर समझा है। स० २०२७ मे आपने अधिष्ठा पद को स्वीकार करके आश्रमकी शोभा को बढाया है।

आप बडे सरल प्रकृति के व्यक्ति है। कोई जैसा कहता है, वैसा ही मान लेते है जिसके कारण अनेको लोगो को गलत लाभ उठाने का अवसर मिल जाता है। साधु-भक्ति आपकी एक विशेषता है। जब से आप आश्रममे आए है, कोई न कोई दिगम्बर साधु यहाँ अवश्य रहता है। साधुओको आहार दान दिये बिना आपको स्वय खाना अच्छा नही लगता है। उनकी सेवामे ही आपका सारा जीवन धन्य हुआ जा रहा है।

•